HARI RAM GUPTA

सिखों का इतिहास

A HISTORY OF THE SIKHS

1739-1768

केंद्रीय हिंदी निदेशालय

शिक्षा - मंत्रालय • भारत सरकार

सिखों का इतिहास

[नादिरशाह के आक्रमण से लेकर रणजीतसिंह के उत्थान तक]

(1739–1799)

तीन खंडों में

लेखक

हरीराम गुप्त

प्रस्तावना

यदुनाथ सरकार

–o–

खंड 1

सिख राज्य-संघों का विकास

(1739–1768)

द्वितीय परिशोधित संस्करण

–o–

केंद्रीय हिंदी निदेशालय : शिक्षा मंत्रालय : भारत सरकार

प्रकाशन संख्या : ED. 393 / 3000

© भारत सरकार, 1964

इस पुस्तक का अनुवाद केंद्रीय हिंदी निदेशालय की देख-रेख में श्री वेदपाल सहगल ने तथा पुनरीक्षण श्री शिवकुमार वर्मा ने किया है।

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, प्रकाशन संख्या : 39

प्रकाशक : प्रबंधक, प्रकाशन शाखा, सिविल लाइंस, दिल्ली–8।
मुद्रक : प्रबंधक, भारत सरकार मुद्रणालय, फरीदाबाद।

प्रस्तावना

हिंदी और प्रादेशिक भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाने के लिए यह आवश्यक है कि इनमें उच्चकोटि के प्रामाणिक ग्रंथ अधिक से अधिक संख्या में तैयार किए जाएँ। शिक्षा-मंत्रालय ने यह काम अपने हाथ में लिया है और इसे बड़े पैमाने पर करने की योजना बनाई है। इस योजना के अंतर्गत अँग्रेज़ी और अन्य भाषाओं के प्रामाणिक ग्रंथों का अनुवाद किया जा रहा है तथा मौलिक ग्रंथ भी लिखाए जा रहे हैं। यह काम राज्य-सरकारों, विश्वविद्यालयों तथा प्रकाशकों की सहायता से आरंभ किया गया है। कुछ अनुवाद और प्रकाशन-कार्य शिक्षा-मंत्रालय स्वयं अपने अधीन करा रहा है। प्रसिद्ध विद्वान् और अध्यापक हमें इस योजना में सहयोग प्रदान कर रहे हैं। अनूदित और नए साहित्य में भारत-सरकार की शब्दावली का ही प्रयोग किया जा रहा है ताकि भारत की सभी शैक्षणिक संस्थाओं में एक ही पारिभाषिक शब्दावली के आधार पर शिक्षा का आयोजन किया जा सके।

यह पुस्तक केंद्रीय हिंदी-निदेशालय द्वारा प्रस्तुत की जा रही है। आशा है कि भारत सरकार द्वारा मानक ग्रंथों के प्रकाशन-संबंधी इस प्रयास का सभी क्षेत्रों में स्वागत किया जाएगा।

मुहम्मद अली करीम चागला

शिक्षा-मंत्री
भारत-सरकार

दो शब्द

विश्वविद्यालय स्तर के मानक ग्रंथों के अनुवाद तथा प्रकाशन की योजना के अंतर्गत केंद्रीय हिंदी निदेशालय भी एक संस्था के रूप में अनुवाद, मौलिक लेखन तथा उनके प्रकाशन का काम कर रहा है।

हिंदी के राष्ट्रभाषा पद पर आसीन होने के साथ ही यह आवश्यक हो जाता है कि हम राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय भाषाओं में संचित ज्ञान-विज्ञान को हिंदी में जनसाधारण के लिए सुलभ बनाएँ। प्रस्तुत पुस्तक 'ए हिस्ट्री ऑफ़ दि सिख्स' के प्रथम खंड का अँग्रेज़ी से हिंदी में अनुवाद है और इस दिशा में एक महत्त्वपूर्ण प्रयास है। सिखों की मिसलों के उदय तथा उनके द्वारा पंजाब पर अधिकार-ग्रहण के बीच का काल इतिहास का अंधकार-काल कहा जा सकता है। इस काल का कोई विशेष अध्ययन नहीं मिलता। यह पुस्तक इस काल पर प्रकाश डालती है और इससे इतिहास का एक नया अध्याय खुलता है। अपनी प्रामाणिकता तथा गंभीर विषय-विवेचन के कारण यह पुस्तक अपने विषय की एक मानक पुस्तक के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी है।

आशा है भारत सरकार के इस प्रयास का सभी क्षेत्रों में स्वागत किया जाएगा।

ए. चंद्रहासन

निदेशक
केंद्रीय हिंदी निदेशालय

आमुख

सिख मिसलों के विकास पर आचार्य हरीराम गुप्त के शोध-प्रबंध ने अपने प्रकृष्ट गुणों के कारण मुझे बहुत प्रभावित किया है। पंजाब यूनिवर्सिटी की पीएच० डी० की उपाधि के लिए मैंने तथा पंजाब के विद्वान् भूतपूर्व गवर्नर सर एडवर्ड मैकलाघन ने इसका परीक्षण किया था। इस प्रकृष्ट ग्रंथ ने आधुनिक भारतीय इतिहास की एक खाई को बड़ी योग्यता से पाट दिया है। इसी बात को ध्यान में रखकर मैंने लेखक से इसे प्रकाशित करवाने के लिए आग्रह किया तथा आर्थिक सहायता प्राप्त करने के लिए उन्हें सही मार्ग दिखाया।

जैसा कि डॉ० गुप्त ने संकेत किया है, यद्यपि सिख गुरुओं के चरित्र के संबंध में (यदि हम बंदा को शामिल कर लें तो सन् 1715 में समाप्त होनेवाले काल के बारे में) पर्याप्त खोज-कार्य हुआ है तथा रणजीत सिंह के इतिहास से तो लोग और भी भलीभाँति परिचित हो चुके हैं, परंतु मिसलों के उदय तथा उनके द्वारा पंजाब पर अधिकार जमाए जाने के बीच के काल के विषय में कोई विशेष अध्ययन नहीं हुआ। और मज़े की बात तो यह है कि यह काल बहुत ही रोचक है तथा ऐतिहासिक महत्त्व की बातों से भरा पड़ा है। यही वह समय है जिसमें सिख जाति ने एक राजनीतिक शक्ति का रूप ग्रहण किया था।

जितना यह विषय आकर्षक तथा महत्त्वपूर्ण है उतनी ही कठिनाइयाँ इस विषय को लेने में, प्रारंभ में हुईं। विषय को प्रतिपादित करने वाली सामग्री, जो कि मुख्य रूप से पाँडुलिपियों के ही रूप में थी, आधा दर्जन से भी अधिक भाषाओं में बिखरी पड़ी थी, तथा उन्हें प्राप्त करने के लिए अनेकानेक पुस्तकालयों की सहायता आवश्यक थी। उनमें से एक पुस्तकालय, जिसका लेखक ने उद्धरण दिया है, लगभग एक हजार मील की दूरी पर स्थित था। मैंने इस शोध-प्रबंध को लिखे जाते समय भी देखा है तथा उसे परिष्कृत रूप में भी देखा है। इसके बलबूते पर मैं डॉ० गुप्त की उस लगन तथा सफलता की सराहना किए बिना नहीं रह सकता, जिसके साथ उन्होंने छुटपुट तथा चारों ओर दूर-दूर तक बिखरी, उस संपूर्ण सामग्री को एकरूप देकर, पढ़ने योग्य बनाया है। छपाई के मूल्य को कम करने की आवश्यकता के कारण, प्राच्य भाषाओं की बहुत-सी उक्तियों को भी छोड़ना पड़ा है। यही नहीं, संक्षेप के लिए उन्हें विषय की

पुष्टि करनेवाले, बहुत से अँग्रेज़ी वाक्यांशों का भी त्याग करना पड़ा है। पाद-टिप्पणियाँ तो उन्हें बहुत ही संक्षेप में लिखनी पड़ी हैं। इससे कई बार तो पाठक को लेखक के पांडित्य तथा उसकी विश्वस्तता तक पर संदेह हो सकता है। परंतु मैं, जिसने उनके इस इतिहास को अपने मूल तथा पूर्ण-रूप में, पाँडुलिपि में देखा है, अनुभव करता हूँ कि इस ग्रंथ की स्थिति अखंडनीय है। इसी भाँति उनके द्वारा दी गई लंबी-चौड़ी समालोचनात्मक ग्रंथ-सूची में भी प्रकाशन के समय, बहुत कुछ काट-छाँट कर दी गई है तथा वह नामों की सूची ही रह गई है। परंतु इससे एक बात तो प्रमाणित हो ही जाती है कि लेखक ने किसी भी स्रोत को अछूता नहीं छोड़ा तथा किसी भी बात को बिना आलोचनात्मक-परीक्षण के अंगीकार नहीं किया है।

इस प्रकार पंजाब तथा साथ ही दिल्ली साम्राज्य के इतिहास का एक अध्याय तो फौलादी चट्टानों पर खड़ा हो चुका है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह ग्रंथ भारतीय इतिहास के अन्य शोधकर्ताओं के लिए आदर्श सिद्ध होगा।

—यदुनाथ सरकार

प्राक्कथन

भारत के सब प्रांतों में से पंजाब—भारत तथा उत्तर-पश्चिम से निरंतर आनेवाले लोगों का टकराव स्थल—भारतीय इतिहास के विद्यार्थी के लिए अपना एक विशेष महत्व रखता है। उसी प्रकार पंजाब के इतिहास में सिखों के इतिहास जैसी रुचिकर अन्य बात नहीं है। इन लोगों के इतिहास के कुछ पहलुओं पर पूर्व लेखकों ने पर्याप्त प्रकाश डाला है। उदाहरण के लिए सिख गुरुद्वारे के इतिहास तथा इस जाति तथा मुग़ल सरकार के प्रारंभिक संघर्ष (1469–1715) का यूरोपीय तथा भारतीय विद्वानों ने काफी विवेचन किया है। यही नहीं रणजीत सिंह तथा उसके उत्तराधिकारियों के अधीन सिख राजतंत्र (1799–1849) के इतिहास पर भी उच्चकोटि के लेखकों ने बहुत कुछ लिखा है।

यद्यपि बीच के काल (1716–1799) को पूरी तरह नज़रंदाज़ नहीं किया गया है फिर भी उसकी ओर उतना ध्यान नहीं दिया गया है, जिसकी कि उसके लिए अपेक्षा की जाती है। सिख-इतिहास में इस काल का विशेष महत्व है। इसी समय में सिखों ने अपने बलबूते पर, अपने को संसार के सबसे अच्छे सैनिक राष्ट्रों की श्रेणी में ला खड़ा किया। यही वह समय है, जिसमें कि सिखों ने प्रतिभा तथा महत्वाकांक्षा के प्रदर्शन के लिए उपयुक्त अवसर पाकर, उसका आश्चर्यजनक लाभ उठाया और मुग़ल साम्राज्य के खंडहरों पर स्वतंत्र रजवाड़े स्थापित करने का प्रयत्न आरंभ कर दिया। इसी के बाद उनमें राजनीतिक अस्तित्व की भावनाओं ने जन्म लिया तथा वे राज्य स्थापित करने के काम में जुट गए। इसी समय में उन्होंने उत्तरी भारत की राजनीति में महत्वपूर्ण भाग लिया। सन् 1739 से सन् 1799 तक विदेशी आक्रांताओं के तूफ़ानी बवंडरों का सामना करने में उनका महत्वपूर्ण योगदान है। यही वह समय है, जिसमें सिखों ने उत्तर-पश्चिम से विदेशी आक्रांताओं के संपूर्ण हमलों को रोक कर, देश की अमूल्य सेवा की।

उस काल के इसी महत्व ने, इस लेखक को यह विषय अपने हाथ में लेने के लिए उत्साहित किया। आगे चल कर यह बहुत ही आकर्षक भी सिद्ध हुआ। खोज के लिए यह काल इतिहास के विद्यार्थी के आगे खुला पड़ा हुआ था। अपने प्रयत्न में लेखक को कहाँ तक सफलता मिली है इसका निर्णय तो पाठक ही कर सकते हैं।

इस बीच के संपूर्ण काल का विवेचन करने की लेखक की बहुत इच्छा थी। परंतु इसे बहुत दुःख के साथ अंत में इसके प्रारंभिक भाग (अर्थात् सन् 1716–38) को छोड़ना पड़ा। यह इसलिए किया गया, क्योंकि उसके लिए बहुत कम सामग्री उपलब्ध हो रही थी। जो कुछ सामग्री प्राप्य है वह केवल सिख-स्रोतों से ही आती है, और वह भी केवल श्रुति-परंपरा पर ही आधारित है। इसके सिवा और कोई समकालीन साक्ष्य उपलब्ध भी नहीं है। इसीलिए लेखक को सन् 1739 ही से प्रारंभ करना, सबसे अधिक उपयुक्त प्रतीत हुआ। उसी वर्ष, अपने अनेक बलिष्ठ योद्धाओं के साथ क्रूरकर्मा नादिर शाह ने बिना किसी रोक-टोक के भारत के अरक्षित मैदानों को रौंदा था। उसके इस अभियान ने, न केवल बाबर के लड़खड़ाते घराने पर ही अंतिम प्रहार किया, अपितु देश में प्रचलित गड़-बड़ी तथा अराजकता को भी पूर्णता के शिखर पर पहुँचा दिया। इसी समय में सदियों से पिसते चले आ रहे हिंदू कृषक वर्ग ने, शक्तिशाली मुग़लों के बड़प्पन के मायाजाल से मुक्ति पाई तथा उसी का यह फल हुआ कि वे मुग़ल सरकार के प्रति अपने रोष के कारण अब हथियारबंद होकर उठ खड़े हुए। वे लोग खालसा दल में भी इसीलिए शामिल हुए कि वे यह जानते थे कि पंजाब में केवल वही ऐसे लोग हैं जो उनके उत्पीड़कों का वीरता से सामना कर सकते हैं। इसी का यह फल हुआ कि रावी तथा लुधियाना के बीच का संपूर्ण देश स्वतंत्रता के लिए अनवरत युद्ध करने वालों का देश बन गया। सिखों का यह संघर्ष गुरु हर गोबिंद, गुरु गोविंद सिंह तथा बंदा बहादुर द्वारा किए गए संघर्ष से भिन्न था। उनका विप्लव धार्मिक था। उसके मूल में सरकार द्वारा उन पर किए गए अत्या-चार, तथा उनके नेता की हत्या से उत्पन्न होने वाली घृणा, तथा बदले की भावनाएँ थीं। परंतु प्रस्तुत संघर्ष तो स्वतंत्रता तथा प्रभुत्वसत्ता के आदर्श के लिए एक लड़ाई थी। उस समय सिखों के सम्मुख यही आदर्श था।

सन् 1768 को अपने विषय की अंतिम सीमा चुनते समय इस बात को ध्यान में रखा गया था कि यही वह वर्ष था जिसमें कि सिखों ने अपने को राजनीतिक तथा प्रादेशिक शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित कर लिया था। इससे पिछले ही वर्ष में उन्होंने अहमदशाह अब्दाली की अंतिम चढ़ाई को असफल कर दिया था। वे पंजाब की राजधानी लाहौर के उस समय निर्वि-वाद स्वामी बन चुके थे। इसके साथ ही प्रांत के अधिकांश भाग पर उनकी प्रभुसत्ता चलती थी। इस प्रकार, वे लोग दिल्ली के मुग़ल साम्राज्य तथा काबुल के दुर्रानी राज्य के बीच में आ खड़े हुए। इस स्थिति में

रहकर उन लोगों ने, न केवल उन दो साम्राज्यों के आपसी संबंधों में ही बाधा डाली परंतु उन्होंने भारतीय मुसलमान नवाबों को भी शक्तिहीन बना दिया। उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रों से आकर उनकी थकी-मांदी सेनाओं में नव रक्त का संचार करने वाली धाराओं को उन लोगों ने रोक दिया तथा इसके कारण उनका शीघ्रता से नाश हो गया। इस प्रकार यह काल पुराने साम्राज्य के विखंडन तथा नवीन राज्यों के संगठन को, विभाजित करता है।

इस स्थान पर इस ग्रंथ के स्रोतों के बारे में कुछ कहना उचित होगा। यह बात सच है कि साक्ष्य के रूप में उस काल की बहुत कम सामग्री है। लगातार होनेवाले विदेशी आक्रमणों, मराठा धावों तथा प्रांतीय सुबेदारों के विद्रोहों के कारण उत्पन्न राजनीतिक तथा आर्थिक उथल-पुथल के कारण, दिल्ली दरबार के इतिवृत्त में, पंजाब की घटनाओं का यदाकदा ही वर्णन किया गया है। लगातार चलती रहनेवाली गड़-बड़ियों के कारण प्रांतों के सूबेदारों या उच्च अधिकारियों के लिए यह अव्यावहारिक हो गया था कि अपने वैयक्तिक ज्ञान के आधार पर घटनाओं का विवरण लिखते रहें। अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में छोटे-मोटे अधि-कारियों ने निजी ज्ञान के आधार पर ऐतिहासिक घटनाओं का विवरण लिखा। ये ग्रंथ उस समय की सामाजिक स्थिति तथा वातावरण का हमारे सामने स्पष्ट वर्णन प्रस्तुत करते हैं। ऐसे अधिकारियों में तज़किराह-तहमास खां मिसकिन तथा नूर-उद्-दीन द्वारा लिखित नजीब-उद्-दौला प्रमुख हैं।

हमलावरों की सेनाओं के साथ-साथ प्रायः कुछ लेखक तथा कवि भी आया करते थ। इन लोगों का उद्देश्य अपने स्वामी के वीरतापूर्ण कार-नामों का विवरण लिखना होता था। ऐसा करते समय वे लोग, देश की हालत पर भी बहुत प्रकाश डाला करते थे। इस वर्ग में काज़ी नूर-मुहम्मद के जंग-नामा का सब से अधिक महत्व है। यह एक अनोखी पाँडुलिपि है। सन् 1764-65 में हुए दुर्रानी के सातवें आक्रमण पर, इसी ग्रंथ ने पहली बार पूरा प्रकाश डाला है।

चित्र के दूसरे पहलू को देखने के लिए पंजाब तथा दिल्ली में रह रहे, पेशवा के अधिकारियों द्वारा लिखे गए मराठी अख़बारात तथा विवरणियों का एक विशिष्ट स्थान है। उनमें दी गई तिथियाँ बिल्कुल सही हैं तथा प्रत्येक बात का सविस्तार वर्णन किया गया है। अपने इन्हीं गुणों के कारण वे उस काल के फारसी-इतिहासों में रह गई खाइयों को पाटने में बहुत सहायक होते हैं। अंताजी मानकेश्वर तथा हिंगणे परिवार द्वारा भेजे गए पत्र अपरिहार्य हैं। इनका प्रकाशन, परासनीय द्वारा बंबई सरकार की

राव बहादुर जी० एस० सर देसाई द्वारा संपादित 'सेलेक्शनस फ्राम दी पेशवास दफ़्तर' नामक सराहनीय ग्रंथ-माला के अंतर्गत हो चुका है।

प्लासी की लड़ाई (1757) के बाद अँग्रेज बंगाल के स्वामी बन गए। उसी समय से उन्होंने उत्तरी भारत की गतिविधियों में डट कर भाग लेना आरंभ कर दिया। इसके फलस्वरूप अनेक प्रसिद्ध हिंदू तथा मुसलमान सरदारों ने फोर्ट विलियम के गवर्नर को फारसी में पत्र लिखे थे। उनसे हमें बहुत सी सूचनाओं तथा तिथियों का पता चलता है। दुर्रानी के अभियान के समय उसकी प्रगति की दैनिक सूचना तथा आक्रांता की और बातों के बारे में, समाचार देने के लिए अनेक हरकारे नियुक्त किए गए थे। सन् 1767 में हुए दुर्रानी के अभियान की छोटी से छोटी तथा महत्वपूर्ण घटनाओं का पूरा-पूरा विवरण प्राप्त है। इम्पीरियल रेकार्ड डिपार्टमेंट (वर्तमान नेशनल आरकाइव्ज ऑफ इंडिया) ने उनका अनुवाद करवा कर उन्हें प्रकाशित भी करवा दिया है।

इस पुस्तक को लिखने में जिन-जिन ग्रंथों से सहायता ली गई उन सब का संक्षिप्त विवरण ग्रंथ सूची में दे दिया है।

जहाँ तक विषय-क्षेत्र का प्रश्न है हम कह सकते हैं कि लगभग 30 वर्ष के इस अल्प समय में पाँच नदियों के उस प्रदेश में ऐसी महत्वपूर्ण तथा युगप्रवर्तन करनेवाली घटनाएँ हुईं, जैसी उस प्रदेश के इतिहास में कभी नहीं हुईं। इस काल में भयंकर नादिरशाह तथा उसके सिपहसालार अहमदशाह दुर्रानी के नौ हमले, एक मराठा आक्रमण, प्रांत में मुग़ल शासन का क्रमशः परंतु पूर्ण पतन, नव निर्मित दुर्रानी साम्राज्य का तीव्र गति से विस्तार, उस समय की दो महत्वपूर्ण शक्तियों, अर्थात् दुर्रानी तथा मराठों द्वारा शक्तिशाली मुग़ल साम्राज्य को लूटने के लिए संघर्ष, 1761 में पानीपत में मराठा शक्ति का अचानक तथा भयंकर पराभव और अंत में सिखों का नगण्य स्थिति से बढ़कर एक सार्वभौम शक्ति के रूप में उत्कर्ष हुआ है।

अतः, इन पृष्ठों में कही गई कहानी एक ओर तो आक्रमण-प्रत्याक्रमण तथा मानव द्वारा मानव के प्रति किए गए कुकृत्यों की दुखद कहानी है और दूसरी ओर धर्म तथा स्वतंत्रता के लिए सिखों द्वारा उठाई गई यातनाओं और कठिनाइयों की अद्भुत कहानी है। इन पृष्ठों को लिखते समय लेखक ने मूलस्रोत की ओर जाने के सिद्धांत को सदैव ध्यान में रखा है। उसने संपूर्ण समकालीन सामग्री, तथा विश्वस्त और मूल्यवान द्वितीय स्रोतों का उपयोग किया है। यह सामग्री, प्रमुख रूप से, अप्रकाशित फारसी ग्रंथों, मराठी, गुरुमुखी, उर्दू, अँग्रेज़ी तथा फ्रांसीसी अभिलेखों से प्राप्त होती है।

जिनमें से अधिकांश का उपयोग, इस विषय पर पहले लिखने वाले अन्य व्यक्तियों ने नहीं किया है। किसी भी द्वितीय स्रोत को, समकालीन लेखक से अधिक महत्व नहीं दिया गया है, परंतु इसके साथ ही जहाँ तक हो सका है वहाँ तक मूल स्रोतों को भी बहुत सावधानी से देखाभाला है। तथ्यों की व्याख्या करते समय, किसी भी पूर्वाग्रह को बाधक नहीं होने दिया गया है। चार साल के अपने अनुसंधान के फलस्वरूप लेखक ने न केवल भारतीय इतिहास के एक विस्मृत अध्याय को ही प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है अपितु उसने कई प्रचलित अशुद्धियों को ठीक करने तथा तिथि क्रम में भी शुद्धता स्थापित करने का यत्न किया है।

सिखों ने कदाचित् ही अपना इतिहास लिखा था। हिंदुओं ने भी अपनी कारगुज़ारियों को लिपिबद्ध करने की कभी चिंता नहीं की। सिखों के कारनामे, मुसलमानों के विरुद्ध पड़ते थे। उनका उल्लेख करते समय मुसलमान लेखकों का दृष्टिकोण पक्षपातपूर्ण होता था।

दूसरी बात यह भी है कि जहाँ पुराने अभिलेख उपलब्ध हैं, वे अनुसंधान करने वाले विद्यार्थियों को सदैव नहीं मिल पाते हैं। कुछ सामग्री कुछ व्यक्तियों तथा भारतीय रजवाड़ों (पूर्व कालीन) के अधिकार में हैं तथा वे कुछ कारणों से यह नहीं चाहते कि उसे इतिहास के विद्यार्थी उपयोग में लाएँ।

इसके बाद व्याख्या करने का कठिन प्रश्न सामने आता है। जिन मामलों में पहले से संपूर्ण इतिहास उपलब्ध होते हैं वहाँ नव-सामग्री का सरलता से उपयोग हो सकता है, परंतु जहाँ कहीं इतिवृत्त बहुत कम, तथा इधर-उधर बिखरा हुआ होता है, जैसे कि अठारहवीं सदी का सिख इतिहास है, वहाँ इतिहास लेखक का काम बहुत ही कठिन हो जाता है। और फिर जिन प्रमाणों का लेखक ने सहारा लिया है, उनमें से अधिकतर न तो अभी प्रकाशित ही हुए हैं और न ही संपादित। लेखक से यह आशा की जाती है कि वह अन्य पाँडुलिपि की सहायता के बिना, प्रस्तुत पाँडुलिपि में दिए गए नामों के अशद्ध हिज्जों को ठीक करें। बहुत से मामलों में तो इस कठिनाई को दूर करने में सर्वेक्षण मानचित्र भी सहायक नहीं होते क्योंकि जो स्थान कभी प्रसिद्ध थे, वे आज या तो उजड़ चुके हैं या फिर उनका कोई महत्व नहीं रहा है।

इससे भी बड़ी कठिनाई जो सामने आई, वह थी, विशेषज्ञ द्वारा मार्ग प्रदर्शन की कमी। इसके फलस्वरूप मुझे लगभग अपने ही साधनों का सहारा लेना पड़ा। भाषा संबंधी भी थोड़ी सी कठिनाई सामने आई। विषय-सामग्री फ़ारसी, मराठी, उर्दू, हिंदी, अँग्रेज़ी तथा फ्रांसीसी भाषाओं में

बिखरी पड़ी थी। मैं अनेक कठिनाइयाँ सहकर ही इन भाषाओं में लिखे गए ग्रंथों का उपयोग कर सका हूँ। सर यदुनाथ सरकार के शब्दों में यदि हम यह कहें, तो उचित ही है कि, "इस प्रकार के अध्ययन द्वारा लेखक से पूर्णता की आशा करना वैसा युक्तियुक्त है जैसे कि एक सुनार से यह आशा करना कि वह स्वर्ण की खोज करे, खान खोद कर कच्ची धातु को वहाँ से निकाले, तथा उसे परिष्कृत करके आभूषणों का निर्माण करे और इस तरह अपने व्यावसायिक कौशल का परिचय दे।"

अंत में मुझे अपने पूज्य गुरु प्रो० सीता राम कोहली के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए अपार हर्ष हो रहा है। वे सिख इतिहास के एक लब्ध प्रतिष्ठित विद्वान हैं तथा उन्हीं के सुझाव तथा अमूल्य सहायता के बल पर यह कार्य सम्पन्न हो सका है। सर यदुनाथ सरकार ने अपनी अत्यधिक मूल्यवान तथा विरल पाँडुलिपियों को देखने की अनुमति देकर मुझ पर जो अनुग्रह किया है, उसके कारण मैं उनका हृदय से आभारी हूँ। इस सामग्री में से अधिकतर या तो ब्रिटिश म्यूज़ियम लाइब्रेरी के फ़ोटोग्राफ़ हैं, या फिर वे इंडिया आफिस लाइब्रेरी की पुस्तकों की प्रतियाँ हैं। यही नहीं मुझको जिन और पुस्तकों की भी आवश्यकता हुई, वे सब उन्होंने कृपापूर्वक उपलब्ध करा दीं। इनमें फादर वेनडेल द्वारा लिखित "हिस्ट्री आफ दी जाट्स" का उन द्वारा पेंसिल से लिखा गया अनुवाद तथा अनेक मराठी अभिलेख आते हैं। कुछ प्रकरणों पर बिना किसी भेदभाव के चर्चा करके उन्होंने बहुत सी अस्पष्ट बातों को स्पष्ट करने में बहुत सहायता पहुँचाई है। इसके साथ-साथ विभिन्न अवसरों पर सहायता पहुँचाने के लिए डी० ए० वी० कालेज, लाहौर के प्रो० श्री राम शर्मा का आभारी हूँ। नूरमुहम्मद के जंगनामों को देख सकने की अनुमति देने के लिए खालसा कालेज, अमृतसर के प्रिंसीपल जोध सिंह का अनुगृहीत हूँ। भाई दित सिंह पुस्तकालय के प्रयोग की अनुमति देने के लिए फिरोजपुर के भाई तख्त सिंह तथा 'प्राचीन पंथ परकाश' की एक प्रति तथा अपनी पत्रिका के पुराने अंकों के लिए 'फुलवाड़ी' के संपादक सरदार हीरा सिंह दर्द के प्रति आभार प्रदर्शित करना आवश्यक है।

—हरीराम गुप्त

लाहौर
फरवरी, 1937

द्वितीय संस्करण का प्राक्कथन

पुस्तक का यह संशोधित संस्करण निकल रहा है इसलिए यह बता देना उचित होगा कि कथन को स्पष्ट करने तथा तत्वों को और अधिक पुष्ट करने की बात को ध्यान में रखकर संपूर्ण मूल-पाठ को संशोधित रूप में स्थापित किया गया है। इस संस्करण में अनुभाग 5, पृ० 74–77; अनुभाग 4, पृ० 126–128; अनुभाग 12, पृ० 136–140, अनुभाग 9, पृ० 172–180; अनुभाग 10, पृ० 180 तथा अनुभाग 16, पृ० 240–243 नए जोड़े गए अंश हैं। प्रथम संस्करण के अनुभाग 4 तथा 5 हटा दिए गए हैं।

होशियारपुर, —हरीराम गुप्त
जुलाई, 1952

विषय-सूची

पृष्ठ

1. लुटेरे सिख जत्थे, 1739—1745

प्रस्तावना, नादिरशाह की लड़ाई से सिखों द्वारा लाभ उठाना—सिखों द्वारा नादिरशाह की सेना के चंदावल की लूट—नादिरशाह के प्रस्थान के बाद व्यवस्था की पुनः स्थापना—सिखों का उत्पीड़न—निर्वासन में सिख-जीवन—सिखों द्वारा अमृतसर के दर्शनों का प्रारंभ—ढील देने की सरकारी नीति—ज़कारियाखाँ की मृत्यु—पंजाब के सूबेदार की नियुक्ति में विलंब—सिखों द्वारा अपनी शक्ति का पुनरुत्थान—सिखों का नियमित लुटेरे जत्थों के रूप में संगठन। 1–21

2. दल खालसा, 1745—1748

सिखों के आक्रमण—जसपतराय का सिखों द्वारा बध—लखपत राय द्वारा सिखों का कत्लेआम—ज़कारियाखाँ के पुत्रों के बीच गृह-युद्ध—सिखों द्वारा पुनः शक्ति-अर्जन—अमृतसर में सिखों द्वारा रामरौनी के दुर्ग का निर्माण—शाहनवाज़ खाँ का शासन—पहला दुर्रानी हमला—सिखों की शांतिपूर्ण प्रगति—पीछे हटते हुए अफ़गानों पर सिखों का धावा—दल-खालसा की स्थापना—दल-खालसा का संविधान। 22–49

3. सिख और मुइन-उल्-मुल्क, अप्रैल 1748—नवंबर 1753

मुइन-उल्-मुल्क द्वारा पंजाब का शासन संभाला जाना—अपने नए शासन में मुइन की कठिनाइयाँ—सिखों को दंड देने के लिए अभियान—रामरौनी दुर्ग का घेरा—सिखों का शांतिपूर्वक बस जाना—मुइन-उल्-मुल्क द्वारा ऐहतियाती उपाय—दुर्रानी के दूसरे आक्रमण के समय सिखों ने लाहौर को लूटा—सिख उत्पीड़न का फिर से आरंभ—नासिर खाँ का विद्रोह—शाहनवाज़ खाँ का विद्रोह—सिखों का फिर से दमन—पंजाब के मैदानों से सिखों का भगाया जाना—दुर्रानी का तीसरा हमला—पंजाब का मुगल साम्राज्य से अलग होना—दुर्रानी की काश्मीर विजय—सिखों द्वारा लूट-खसोट—सिखों का फिर से उत्पीड़न—दल-खालसा की तीव्र प्रगति—मुइन-उल्-मुल्क की मृत्यु। 50–71

4. 'राखी' पद्धति, नवंबर 1753—अप्रैल 1757

सिखों के लिए मार्ग साफ हो गया—पंजाब को बालक-शासन तथा घाघरा सरकार मिली—मुहम्मद अमीन खाँ की मृत्यु तथा बेगम की चरित्रहीनता—लाहौर में खोजों का शासन—कासिम खाँ का विद्रोह—विद्रोहों का जारी रहना—पंजाब में सरकार का विघटन—सिखों का शीघ्रता से उत्थान—'राखी' पद्धति की स्थापना—दुर्रानी का चौथा हमला—सिखों की अशांतिपूर्ण हरकतें। 72–88

5. सिख तथा तैमूर शाह, मई 1757—मई 1758

भूमिका—सिखों की शांतिपूर्ण प्रगति में विघ्न—जहान खाँ की सिखों के साथ लड़ाई—करतारपुर के सोधी बरबाघ सिंह का पीटा जाना—अदीना बेग तथा सिखों द्वारा मिलकर अफ़गानों को हराना—सिखों द्वारा अफ़गानों को त्रस्त किया जाना—मराठों का पंजाब पर आक्रमण—सरहिंद का पतन—अफ़गानों का पंजाब से मार भगाया जाना—सन् 1758 में लाहौर पर सिखों के अधिकार की किंवदंती। 89–104

6. **सिखों द्वारा राज्य-क्षेत्रों के अभिग्रहण का प्रारंभ, जून 1758—अक्तूबर 1759**

अदीना बेग़ खाँ की सिखों से लड़ाई—सरहिंद के सादिक बेग़ खाँ के हाथों सिखों की पराजय—अदीना बेग़ खाँ की मृत्यु—पंजाब में अराजकता—प्रादेशिक सरदारों के रूप में सिखों का जमना। 105–114

7. **आला सिंह के अधीन मालवा के सिखों की शांतिपूर्ण प्रगति, 1739—1761**

मालवा के सरदारों का उद्भव—आलासिंह के अधीन प्रगति—आलासिंह द्वारा शाही दल की सहायता—आलासिंह के प्रदेशों का विस्तार—आलासिंह द्वारा दिल्ली सम्राट की सहायता—पटियाला के राजा की नीति में परिवर्तन—आलासिंह द्वारा पानीपत में मराठों की सहायता—आलासिंह द्वारा दुर्रानी से शाही-फ़रमान की प्राप्ति। 115–120

8. **सिखों का लाहौर पर अधिकार तथा सिक्के चलाना**

दुर्रानी-मराठा संघर्ष—लड़ाई के परिणाम—सिखों द्वारा पंजाब में अनेक दुर्गों का निर्माण—रुस्तम खाँ तथा मिसकिन की सिखों द्वारा गिरफ़्तारी—सिखों का लाहौर पर आक्रमण परंतु 30,000 रुपए लेकर उसे छोड़ देना—वापिस लौटते दुर्रानी का सिखों द्वारा तंग किया जाना—दुर्रानी द्वारा किए गए प्रशासनिक प्रबंध—सिखों द्वारा संपूर्ण पंजाब की तबाही—अब्दाली के सिपह-सालार नूर-उद्-दीन की सिखों के हाथों पराजय—ख्वाजा अबेद की पराजय तथा गुजरांवाला से सिखों द्वारा उसका खदेड़ा जाना—सिखों का राजधानी पर अधिकार तथा सिक्के चलाना—तिथि तथा घटना की जाँच। 121–141

9. **घल्लूघारा तथा उसके बाद की घटनाएँ, 1762**

सिखों द्वारा जंडिआला का घेरा—घल्लूघारा—आलासिंह की गिरफ़्तारी—अमृतसर में सिखों के पवित्र स्थानों का नष्ट किया

जाना—अब्दाली का पंजाब में रुकना—अब्दाली ने काश्मीर को फिर जीता—कलानौर में अब्दाली का ग्रीष्म-शिविर—सिखों का मालवा की ओर भागना तथा वहाँ के ब्रार जाटों द्वारा उनके साथ किया गया दुर्व्यवहार—सिख भावना: मिलावट दूर हुई तथा विशुद्ध खालसा बच रहा—ज़ाइन खाँ पर सिखों का आक्रमण—सिखों का अमृतसर-दर्शन के लिए जाना—सिखों ने दुर्रानी को चक्कर में डाल दिया—सिखों ने देश में अव्यवस्था फैला दी—करनाल के समीप सिखों का शक्तिशाली दल के रूप में एकत्रित होना—अमृतसर से सिखों को खदेड़ने में अब्दाली की असफलता—सिखों के विरुद्ध लक्खी-जंगल की ओर अहमदशाह का अभियान—अहमदशाह का अफ़गानिस्तान के लिए प्रस्थान। 142–160

10. सरहिंद प्रांत की विजय, जनवरी 1763—जनवरी 1764

सिखों की सैनिक सफलताएँ—कसूर की लूट—जालंधर दोआब का रौंदा जाना—चिनाब के तट पर जहान खाँ की पराजय—मलेरकोटला का विध्वंस—मोरांडा की लूट तथा कत्लेआम—सरहिंद का पतन—सरहिंद के राज्य-क्षेत्र का विभाजन—प्रदेशों का वितरण—गैर-सिख व्यक्तियों के अधिकार क्षेत्र। 161–180

11. पंजाब तथा गंग दोआब में सिखों के उपद्रव, फरवरी 1764—जनवरी 1765

सिखों का गंग दोआब पर धावा—लाहौर के सूबेदार काबुलीमल का सिखों द्वारा अभित्रस्त किया जाना—चरतसिंह का रोहतास पर अधिकार—सरबुलंद खाँ को बंदी बनाया जाना—दक्षिण-पश्चिम पंजाब की सिखों द्वारा लूट—यमुना के पार सिखों का द्वितीय हमला—नजीब-उद्-दौला के विरुद्ध सिख-जाट मैत्री—दिल्ली के बाहर सिख-रुहेल्ला संघर्ष—सिखों का अचानक दिल्ली से पीछे हटना। 181–189

12. अहमदशाह दुर्रानी के सातवें आक्रमण के समय सिखों की उसके साथ छेड़-छाड़, दिसंबर 1764—मार्च 1765

अहमदशाह दुर्रानी का लाहौर पहुँचना—अहमदशाह द्वारा अमृतसर का विनाश—अहमदशाह का अदीना नगर की ओर

कूच—जालंधर दोआब की लड़ाई—अहमदशाह का पिंजौर होकर कुंजपुरा की ओर बढ़ना—सिखों को नाश करने की योजनाओं का त्याग—दुर्रानी के सामने आलासिंह का आत्मसमर्पण—सिखों द्वारा जमकर लड़ाइयाँ लड़ने का प्रारंभ—सतलज की लड़ाई—सिखों के साथ दूसरे दिन की लड़ाई—सिखों के साथ तीसरे दिन की लड़ाई—ब्यास की लड़ाई—अहमदशाह का भारत से प्रस्थान—सिख सरदारों के अधिकार-क्षेत्र। 190–202

13. प्रभुसत्ता ग्रहण, अप्रैल—सितंबर, 1765

सिखों का लाहौर पर अधिकार तथा सिक्कों का चलाना—सिखों द्वारा अपने इलाकों का विस्तार: बारी दोआब—रेचना दोआब—चज दोआब—सिंध सागर दोआब। 203–211

14. सिख तथा नजीब-उद्-दौला, सितंबर 1765—मई 1766

सिखों द्वारा नजीब के प्रदेश में लूटमार—शामली के निकट सिखों तथा नजीब के बीच लड़ाई—जाट-प्रदेश, रेवाड़ी तथा जयपुर की लूट—धौलपुर के समीप सिखों की मराठों के साथ मुठभेड़—सिखों द्वारा नजीब के प्रदेश में लूटमार तथा उसके हाथों उनकी पराजय। 212–220

15. सिखों का अंत में विजयी होना, जून 1766—दिसंबर 1768

सिखों द्वारा अपने अधिकार-क्षेत्रों का एकीकरण तथा विस्तार—अहमदशाह अब्दाली का भारत पर हमला—लाहौर में अहमदशाह—जहान खाँ की अमृतसर में पराजय—जालंधर दोआब में दुर्रानी—अहमदशाह का स्वदेश लौटना—अमर सिंह का 'राजा-ए-राजगान' की उपाधि प्राप्त करना—सतलज के तट पर शाह का डेरा—सिखों की नजीब के प्रदेश में लूट—भारत से अहमदशाह का प्रस्थान तथा लाहौर पर सिखों का पुनः आधिपत्य—सिखों द्वारा राज्य-क्षेत्र का विस्तार—गंग दोआब पर सिख आक्रमण—नजीब का सिखों के हाथों अपनी पराजय का

अनुभव—नजीब की सिखों के हाथों पुनः पराजय—सन् 1768 में सिख अधिकार-क्षेत्र—निष्कर्ष । 221–243

16. सिखों का जीवन तथा आचार-व्यवहार

शारीरिक गठन—मनोवृत्ति—चरित्र—सिख सेना में भरती—कवायद तथा अनुशासन—सैनिकों को पारिश्रमिक देने के—साज-सामान—युद्ध-प्रणाली—धावे—घोड़े—उनका भोजन—वेशभूषा, आमोद-प्रमोद—महिलाएँ—मेले । 244–262

17. देश की दशा

अराजकता तथा गड़बड़ी का काल—लोगों का चरित्र—गाँव—गाँव के प्रतिरक्षा-उपाय—गाँव के कर्मचारी—पंचायत—शिक्षा—सिंचाई के साधन—लोगों की गरीबी—मेले—व्यापार—सिख-शासन । 263–283

संदर्भ ग्रंथ सूची 284–295

पारिभाषिक शब्द-सूची (हिंदी-अँग्रेजी) .. 296–305

पहला अध्याय

लुटेरे सिख जत्थे, 1739–1745

1. प्रस्तावना

यह बात सदैव ध्यान में रखनी चाहिए कि शक्ति-अर्जन तथा स्वतंत्रता के लिए सिखों ने उस समय क़दम उठाए जब मुग़ल-साम्राज्य अपने ओज और बल से हाथ धो बैठा था। आंतरिक उथल-पुथल तथा असंयत दरबार के विभिन्न षड्यंत्र उस समय रोज़मर्रा की घटनाएँ बन चुके थे। दूरवर्ती सूबेदार तथा विदेशी आक्रांताओं के दल स्वार्थपूर्ण हितों को बढ़ावा देकर, राज-भक्ति की जड़ों को खोखली कर रहे थे। इस प्रकार इन बाह्य सुविधाओं और अपनी आंतरिक योग्यताओं के मेल से सिखों को अपनी मनोकामना परिपूर्ण करने का सुनहरा अवसर मिल गया। अटल विश्वास, उच्च आशाएँ तथा प्रतिरोध-शक्ति के साथ-साथ, उद्देश्य के प्रति दृढ़ता, सिख चरित्र के प्रधान गुण हैं। उस समय सिखों में ख़ामियाँ भी कम न थीं। किसी अग्रणी व्यक्तित्व के अभाव के कारण वे लगभग नेता-विहीन थे। सरकार की क्रूर उत्पीड़न-नीति के कारण उनकी आर्थिक स्थिति खराब थी। अपने घर-बार से मार भगाए जाने के कारण उनके पास जीवन-यापन के कोई सुनिश्चित साधन न रह पाए थे और सबसे बढ़कर एक बात यह थी कि जनता भी उस समय की सरकार के भय से उनकी विपदा में उनको किसी प्रकार की सहायता न देती थी।

परंतु उनकी नवोदित धार्मिक भावना, स्वतंत्रता प्राप्त करने का अटूट उत्साह तथा एकसमान दुःख-दर्द, अनुभूति, उद्देश्य तथा अत्यधिक गरीबी आदि ऐसे तथ्य थे जिन्होंने उनको भ्रातृत्व के स्नेहपूर्ण सूत्र में बाँध दिया। इसीलिए वे लोग विषमतम परिस्थितियों में भी सदैव हँसमुख बने रह सके।

उत्तर पश्चिम से सन् 1739 में विदेशी आक्रमणों की एक नई शृंखला का आरंभ हुआ। पाँच नदियों के उस भूभाग पर अपनी-अपनी सत्ता जमाने के लिए मुसलमानों तथा सिखों में एक लंबा तथा रक्तपातपूर्ण संघर्ष छिड़ गया।

इसी वर्ष से सिख-शक्ति के विकास का प्रथम सोपान भी प्रारंभ होता है। यही वह समय था जब उन्होंने अपने को एक निकाय में संगठित

किया। उनके साथ असंख्य हिंदुओं के आ मिलने के कारण उनकी शक्ति अत्यधिक बढ़ गई। सदियों से दबा हुआ हिंदुओं का रोष, नादिरशाह तथा अहमदशाह दुर्रानी के विशाल सेनाओं सहित स्वदेश पर चढ़ आने के कारण, उस समय उफ़ान खा बैठा। क्रूर उत्पीड़न ने सिखों को पहले बीहड़ जंगलों में खदेड़ दिया था तथा अत्यधिक दुरूह परिस्थितियों में पड़ कर वे छोटे-मोटे डाकुओं का रूप धारण कर चुके थे। धीरे-धीरे उन्होंने शक्तिशाली दस्युओं तथा लुटेरों का रूप धारण कर लिया तथा अपरिमित शक्ति अर्जित करके उन्होंने कानून की अवहेलना की। उन्हें बार-बार पराजित होकर तितर-बितर हो जाना पड़ता था परंतु वे पुनः संगठित होकर अपने-पुराने धंधे में जुट जाते थे।

2. नादिरशाह की लड़ाई से सिखों द्वारा लाभ उठाना, जनवरी-मई, 1739

नादिरशाह भारत में पाँच महीने रहा, इस अवधि में पंजाब तथा दिल्ली के प्रांतों में अत्यधिक गड़बड़ी मची रही।[1]

देश में असैनिक सरकार केवल नाम मात्र को रह गई थी। सहज रूप से ही अराजक शक्तियाँ चारों ओर दिखाई देने लगी थीं।[2] प्रांत की इस गड़बड़ स्थिति से सिखों ने, जो काफ़ी हद तक संगठित हो चुके थे, पूरा-पूरा लाभ उठाया। कपूरसिंह, बाघसिंह, तथा जस्सासिंह अहलूवालिया जैसे प्रतिभाशाली तथा योग्य व्यक्तियों के नेतृत्व के कारण उनका सितारा बुलंद हो गया था। उन्होंने अपने सहधर्मियों को इकट्ठा करके उन्हें समय से लाभ उठाने की प्रेरणा दी। विदेशी आक्रांता की लूटमार से बचने के लिए पंजाब के जो शांति-प्रिय निवासी जंगलों में जा छुपे थे उन्हीं पर पहले-पहल धावा बोल कर उन्होंने अपने कार्य का श्रीगणेश किया। अपनी इन बटमारियों से समृद्ध होकर तथा अपने कारनामों से निर्भीक होकर वे लोग पहाड़ी इलाकों को छोड़छाड़ कर नीचे उतर आए तथा पंजाब के उत्तर-पूर्वी मैदानों में चारों ओर फैल गए। वे जहाँ कहीं भी गए उन्होंने मार-

---

[1]आनंद राम, 21।

[2]"मुहम्मद शाह द्वारा देश में नियुक्त अधीक्षक तथा अधिकारीगण सब सत्ता खो चुके थे। विलायत के शाह के कारिंदे ही राज-काज का प्रबंध कर रहे थे।" बख्तमल 57; मालकाम स्केच 86; हिस्ट्री ऑफ़ दि पंजाब i, 183–4।

काट तथा तबाही मचा दी। पीछे हटते समय अपनी तथा अपने लूट के माल की सुरक्षा के लिए उन्होंने दलेवाल[1] में एक गारे-मिट्टी का छोटा-सा दुर्ग भी खड़ा कर लिया। यही वह स्थान था जहाँ से सिख लोग अपनी लूटमार के लिए निकला करते थे। वे दिन-दहाड़े डाके डालते[2] तथा 'अपर बारी-दोआब'[3] के पास पड़ोस के प्रदेशों से कर वसूल करते। यही वह स्थान था जहाँ से तेईस वर्ष पूर्व उनके नेता बंदा को बंदी बनाया गया था। आवश्यकता पड़ने पर वे इसके उत्तर में तथा हिमालय की निचली घाटियों में अपने बचाव के लिए भाग कर छिप सकते थे। नादिरशाह के दिल्ली की ओर बढ़ते समय पंजाब प्रांत की सेनाओं के बड़े भाग को अपने साथ ले जाने के कारण उनका कार्य बहुत सरल हो गया।[4] थोड़े दिनों बाद ही होनेवाली करनाल की लड़ाई में बहुत बड़ी संख्या में भारतीय सैनिक मारे

---

[1]बालकाम, 68; हिस्ट्री आफ दि सिख्स, i, 184। दलेवाल अमृतसर के उ० प० के घने जंगलों के बीच, रावी के किनारे स्थित था। यह स्थान 'रियारकी' कहे जाने वाले उपजाऊ प्रदेश का द्वार था।

[2]"हाट-बाजारों के छोटे-मोटे मार्गों को सिख रोक लेते थे। यह अनुभव करके कि मुहम्मदशाह के अधिकारीगण शहरों के प्रशासन में शिथिल पड़ चुके हैं, उन्होंने समय से लाभ उठाया तथा देश के बड़े-बड़े भागों को लूट लिया तथा लूट के माल को अपने साथ लेते गए।" बख्तमल, 57; देखिए ब्राउनी, ii, 13।

[3]अपनी पुस्तक के खंड 1 के पृष्ठ 109 पर मुंशी सोहनलाल लिखते हैं:—"उन्होंने (सिखों ने) बाघसिंह अहलूवालिया के नेतृत्व में बारी दोआब में अपने पाँव जमा लिए। उन्होंने सारा व्यापार ठप्प कर दिया। अनेक गाँवों तथा नगरों पर धावे बोल कर उन्हें लूट लिया तथा पास-पड़ोस के जमींदारों से बड़े-बड़े कर वसूल किए। बाघसिंह की बहिन का पुत्र जस्सासिंह अहलूवालिया एक सुंदर तथा हिम्मतवाला युवक था। वह अपने मामा का नायब था तथा बाघसिंह से संबद्ध प्रत्येक मामले में उसे पूरे अधिकार प्राप्त थे। दूसरे सिख मुखिया भी अहलूवालिया सरदार का नेतृत्व स्वीकार करते थे तथा प्रसन्नतापूर्वक उसके अधीन काम करते थे। उस समय ऐसा लगता था कि दोआब का संपूर्ण प्रशासन सिखों के अधीन होता जा रहा है।"

[4]पीछे से किसी भाँति के आक्रमण की संभावना को दूर करने के लिए उसने यह कदम उठाया था। सुरक्षा को और सुरक्षित करने के लिए उसने जकारिया खाँ के पुत्र हयातुल्ला खाँ तथा लाहौर के मंत्री

गए तथा अव्यवस्था और विपत्ति में पड़ कर बचे हुए सैनिकों में से बहुत से इधर-उधर भाग गए। "शाही-सेवा में बहुत कम सैनिक थे" तथा शांति पुनःस्थापित नहीं की जा सकी।[1]

इस प्रकार का समय साहसिक प्रवृत्ति वाले लोगों के लिए बहुत लुभावना होता है। लूटमार की विशाल संभावनाओं से आकर्षित होकर बहुत से दुःसाहसिक मनुष्य तथा वे लोग जो सरकारी उत्पीड़न से डर कर हिंदू बन गए थे अब फिर सिख जत्थों से आ मिले। इस भाँति उनका पक्ष बहुत बलवान हो उठा।[2] अब जहाँ कहीं भी उन्होंने हाथ डाला उन्हें सफलता मिली। अपनी सफलता के लिए ईश्वर से प्रार्थना करने के लिए वे लोग अपने धार्मिक स्थान अमृतसर जाया करते थे।[3]

3. सिखों द्वारा नादिरशाह की सेना के चंदावल की लूट, मई, 1739

ऐसा प्रतीत होता है कि सिख लोग काफी निडर हो चुके थे। दिल्ली से लौटते समय वे नादिरशाह की सेनाओं के चंदावल पर टूट पड़े तथा शाही राजधानी के ख़ज़ानों से लूटे गए माल का कुछ भाग उनसे छीन लिया। जैसे ही उनके गुप्तचरों ने उन्हें सूचना दी कि नादिरशाह 5 मई को दिल्ली से चल पड़ा है, सिख नेताओं ने बहुत-से छोटे-छोटे घुड़सवार जत्थे संगठित किए। उन्हें नादिरशाह के बग़ली दस्तों के आस-पास मँडराते रहने तथा मौका मिलने पर उन्हें लूटने की हिदायतें दी गईं। उन्होंने लूट के माल का बहुत बड़ा भाग हथिया लिया। लूट के माल के

लखपतराय के पुत्र दलपतराय को बंधक के रूप में अपने साथ ले लिया था।

[1]चहार-गुलज़ार-ए-शुजाई, 373 क।

[2]बख़्तमल, 57।

[3]"यद्यपि सिख लोग निस्संदेह डाकू थे तथा वे लोग ढोर-डंगर चुराना सम्मानित धंधा समझते थे, जैसा कि कुछ सौ साल पहले तक स्काटलैंड की सीमाओं पर होता था, परंतु फिर भी अपने धर्म के प्रति उनके उत्साह, तथा मुसलमानों के प्रति उनकी घृणा ने कुछ सीमा तक उन्हें गरिमा प्रदान कर दी थी। जिन मुसलमानों ने उनके गुरुओं की हत्या की थी तथा उनके पवित्र स्थानों को पैरों तले रौंदा था उनके विरुद्ध उनके आक्रमणों तथा उद्देश्यों ने राष्ट्रीय हित का रूप धारण कर लिया था।" ग्रिफिस-राजाज़, पृ० 17; दे० गार्डन पृ० 58–59।

अत्यधिक भार के कारण तथा मई की कड़कती धूप के कारण नादिरशाह के सैनिक उनका सफलतापूर्वक पीछा नहीं कर पाए।[1]

नादिरशाह ने लाहौर पहुँचकर पड़ाव डाला। मार्ग में चंदावल द्वारा उठाई गई हानि से उसे अवगत कराया गया। वह अत्यधिक नाराज़ हो उठा तथा अपनी सेना को लूटने वाले दुस्साहसिक लोगों के बारे में उसने जानकारी चाही। बटाला के अहमदशाह ने उन्नीसवीं सदी के प्रारंभिक वर्षों में अपना जो विवरण लिखा है उसमें नादिरशाह तथा शाही सूबेदार ज़कारिया ख़ाँ के बीच सिखों को लेकर हुए निम्नलिखित वार्तालाप का बहुत दिलचस्प वर्णन है :—

नादिर—क्या आपके प्रदेश में कुछ शरारती लोग हैं ?

ज़कारिया—हिंदू फकीरों की एक जमात को छोड़कर और कोई नहीं। ये लोग एक तालाब में, जिसे ये बहुत पवित्र मानते हैं, स्नान करने के लिए साल में दो बार इकट्ठे होते हैं।

नादिर—वे रहते कहाँ हैं ?

ज़कारिया—उनके घोड़ों की काठियाँ ही उनके घर हैं।

नादिर—ऐसा लगता है कि ये विद्रोही अवश्य अपना सिर उठाएँगे।[2]

4. नादिरशाह के प्रस्थान के बाद व्यवस्था की पुनः स्थापना

ख़ान बहादुर ज़कारिया खाँ, चिनाब नदी तक नादिरशाह के साथ-साथ गया। आक्रांता से यहाँ उसने छुट्टी ली। जाते-जाते उसने उसे प्रसन्न

---

[1]इस घटना के लगभग 40 वर्ष बाद फ़ोस्टर ने इस प्रकार लिखा, "नादिरशाह जिस समय दिल्ली से लौट रहा था उस समय सिख दलों ने आक्रमण किया। फ़ारस की सेना लूटमार के माल से भारग्रस्त थी तथा उसमें अव्यवस्था फैल चुकी थी। छुटपुट सिख घुड़सवार दस्ते चंदावल के माल-संरक्षकों पर टूट पड़ते थे तथा बहुत-सा माल लूट कर भाग जाते थे।" ट्रेवल्स, i, 313।

यह भी कहा जाता है कि लूट के माल के साथ-साथ सिखों ने अनेक भारतीय लड़के और लड़कियों को भी आक्रांताओं के चंगुल से मुक्त करने में सफलता पाई। ज्ञानसिंह, 623; सिद्क खालसा, 250; जहानकुश, 244।

[2]दे० सोहनलाल, खंड i, 13 का परिशिष्ट; रतनसिंह, 282; ज्ञानसिंह, 624–7; सिद्क खालसा, 251–6; हिस्ट्री ऑफ़ दी सिख्स, i, 184; एम० ग्रेगोर, i, 115; गार्डन, 58।

होकर अनेक तोहफ़े तथा उसके शाही स्वामी के नाम उसकी उन्नति करने के लिए एक सिफ़ारिशी पत्र दिया।[1]

ज़कारिया खाँ को एक नई स्थिति का सामना करना पड़ा। नादिर-शाह के आक्रमण ने सरकारी यंत्र को शिथिल कर दिया था। बहुत-से गाँव तथा अनेक प्रमुख नगर उजड़ चुके थे तथा व्यापार और कारोबार समाप्त हो चुके थे। नवाब, जो एक कृपालु तथा भला शासक था, देश में शांति तथा व्यवस्था स्थापित करने के काम पर जुट गया। उसने लुटेरों के विरुद्ध कठोर कदम उठाए। इस बात का उसे श्रेय दिया जाना चाहिए कि वह स्थिति के योग्य शासक सिद्ध हुआ।[2]

5. सिखों का उत्पीड़न

ख़ान बहादुर को शीघ्र ही सिखों की कार्रवाइयों का पता चल गया। उसे विश्वास हो गया कि देश की शांति तथा प्रगति में सिख ही सबसे

---

[1]जहानकुश, 244। बहुत से इतिहासकार ज़कारिया खाँ को नादिरशाह के कारावास से हज़ारों हिंदू तथा मुसलमानों को छुड़ाने का श्रेय देते हैं। परंतु खुशवक्तराय तथा "सादत-ए-ज़ाविद" का लेखक नवाब के साथ-साथ लखपतराय को इसका श्रेय देते हैं। दे० मासिर उल-उमरा, ii, 106–7; इबरत मिकाल, ii, 15क; खुशवक्तराय, 73–4; इलियट में सादत-ए-ज़ाविद, viii, 346; आनंद-राम, 88। तदनुसार मुहम्मदशाह ने ज़कारिया खाँ को आठ-हज़ारी के पद पर उन्नत कर उसे सैफउद्-दौला II की पदवी से सुशोभित किया। अब्दुलसमद खाँ मर चुका था इसलिए उसने मुलतान का सूबा भी उसी को सौंप दिया। (वही, 85) ज़कारिया खाँ ने इस सूबे पर अपने पुत्र हयातुल्ला ख़ाँ को नायब के रूप में नियुक्त कर दिया। आम जनता में वह प्यार से शाहनवाज़ खाँ पुकारा जाता था। (वही, 93)।

[2]सिखों द्वारा उजाड़े गए नगरों तथा गाँवों को फिर से बसाने के लिए ज़कारिया खाँ ने ज़ोरदार कदम उठाए। भूमि में फिर से खेतीबाड़ी करने के लिए उसने किसानों को तकावी के रूप में धन दिया, लतीफ़, हिस्ट्री ऑफ़ दी पंजाब, 193। इसके साथ-साथ उसने व्यापार तथा कारो-बार बढ़ाने का भी प्रयत्न किया तथा उसने लाहौर में मंडी उसमान, मंडी लाखा तथा मंडी शालामार आदि नए बाज़ार स्थापित करवाए। उसने चुंगियाँ भी हटा दीं। दे० सोहनलाल, i, 103–4; अहमदशाह, 627।

बड़ी बाधा हैं। इसलिए उसने एक बार फिर छोटे-छोटे घुड़सवार दस्ते संगठित कर उन्हें सिखों के विरुद्ध लगा दिया। उनका दलेवाल का दुर्ग लूट कर ध्वस्त कर दिया गया। उनमें से बहुतों को गोलियों से भून दिया गया तथा बहुतों को ज़ंजीरों से बाँध कर लाहौर लाया गया तथा दिल्ली दरवाज़े के बाहर नखास के पास एक स्थान पर क़त्ल कर दिया गया। बाद में यही स्थान शहीद-गंज के नाम से प्रसिद्ध हुआ।[1] सैनिक कार्रवाइयों के साथ-साथ सरकार ने अपनी असैनिक शक्ति से भी काम लिया। स्थानीय अधिकारियों तथा गाँव के मुखियों को हिदायतें दी गईं कि वे अपने-अपने अधिकार-क्षेत्र में किसी सिख को शरण न दें। इन हिदायतों को किसी भाँति भी टालने पर कठोर दंड दिया जाता था। नए जोश के साथ भेदिए अपने घृणित व्यापार में लग गए। उन्होंने नगरों तथा गाँवों, खेतों तथा जंगलों को छान डाला। दंडनायक, आयुक्त तथा अधिकारीगण एक बार फिर चौकन्ने हो गए।

जब उद्यमी सिख नेताओं ने ज़कारिया खाँ के इस रवैये को देखा तो वे लोग बारी दोआब को छोड़कर जालंधर दोआब में चले गए। नवाब ने भी उनका पीछा करने के लिए अदीना बेग खाँ नामक एक अनुभवी अधिकारी को एक बड़ी सेना के साथ जालंधर भेज दिया। अदीना बेग को दोआब में शांति तथा व्यवस्था पुनःस्थापित करने में सफलता मिल गई परंतु सिखों को कुचलने के लिए उसने कोई कठोर कदम नहीं उठाए। ऐसा लगता है कि वह शायद उनकी कार्रवाइयों की ओर से जान-बूझ कर आँखें बंद कर लेता था। वह उन्हें तब तक कुछ न कहता जब तक कि वे लोग उसके अधिकार-क्षेत्र में कोई बड़ी गड़बड़ी पैदा नहीं करते थे[2] परंतु ख़ान बहादुर को तो तब तक चैन नहीं आ सकता था जब

---

[1]गणेश दास, 198।

[2]दीवान बख्तमल ने 58–9 पन्नों पर लिखा है: "अदीना बेग एक लालची आदमी था। उसने सिखों को नहीं कुचला। यदि वह चाहता तो यह कोई कठिन काम नहीं था। परंतु उसके दिमाग में यह बात थी कि यदि उसने सिखों को दबा दिया तो हो सकता है और अधिक ऊँची रकम पर (राजस्व प्राप्ति की) किसी और को दोआब की सरकार का ठेकेदार बना दिया जाए तथा उसे उसके पद से पृथक् कर दिया जाए। इसलिए उसने सिखों से अच्छा व्यवहार किया तथा उनके साथ कई शर्तें तय कर लीं। इसी कारण सिख बलवान हो गए तथा उन्होंने धीरे-धीरे अनेक गाँव जागीर के रूप में हथिया लिए।" दे० ब्राउनी, ii, 14।

तक कि वह सिखों को अपने सूबे से बाहर न खदेड़ दे। उसने सिखों को मार भगाने के लिए अदीना बेग खाँ को कड़े आदेश दिए। यद्यपि यह सब करने के लिए जालंधर का फ़ौजदार अनिच्छुक था तथापि वह इस कार्य को बहुत देर तक रोके भी नहीं रख सकता था। फलस्वरूप उसने सिखों से इलाक़ा ख़ाली करने के लिए कहा। यह आदेश मिलने पर सिखों ने जस्सासिंह थोका (यह व्यक्ति आगे चलकर रामगढ़िया नाम से प्रसिद्ध हुआ) को अपना वकील नियुक्त करके अदीना बेग खाँ से शर्तें तय करने के लिए भेजा। अदीना बेग, सिख वकील की अपेक्षा बहुत चतुर प्रमाणित हुआ। उसने उसे अपनी सरकार के अधीन एक पद स्वीकार करने के लिए राज़ी कर लिया। अपने दूत के इस आचरण से सिख निराश हो उठे तथा सतलज पार करके सरहिंद सरकार में प्रवेश कर जाने में ही उन्होंने अपनी भलाई समझी। परंतु यहाँ से उन्होंने दिल्ली सरकार के लिए एक विषम स्थिति पैदा कर दी। इसके बारे में हरचरणदास लिखते हैं :—

"नादिरशाह के प्रस्थान के एक वर्ष बाद सन् 1740 में जाटों तथा सिखों का एक बड़ा समूह एकत्रित हुआ तथा सरहिंद की ओर चल दिया। उन्होंने बहुत गड़बड़ी मचाई। उन्होंने दारानतशाह को अपना नेता बनाया तथा बहुत से भूभाग हथिया लिए। जब यह समाचार बादशाह मुहम्मद-शाह के पास पहुँचा तो उसने अज़ीमुल्ला खाँ को इन विद्रोहियों का पीछा करने के लिए नियुक्त किया। अज़ीमुल्ला खाँ उस ज़िले में पहुँचा। उसने उन्हें पराजित करके तितर-बितर कर दिया तथा फिर शाहजहाँबाद को लौट गया।"[1]

अब सरकार भी सक्रिय हो गई तथा सिखों पर चारों ओर से दबाव पड़ने लगा। इसलिए अब उन्हें अपने बचाव के लिए इधर-उधर भागते रहना पड़ता था। सिखों को समूल नष्ट करने में सहायता देने के लिए सरकार ने आम लोगों की सूचना के लिए इनाम देने की एक नियमित अनुसूची निकाली। सिखों के बाल काटनेवाले को कंबल तथा बिस्तर इनाम में दिए जाते थे। जो सिखों के आवास आदि के बारे में सूचना देता था उसे दस रुपए मिलते थे तथा एक सिख को मारने या बंदी बनानेवाले को पचास रुपए इनाम में दिए जाते थे। इसके साथ-साथ सिखों के घरों को लूटने की सरकार की ओर से खुली छूट थी। दूसरी ओर सिखों को आश्रय

---

[1]दे० अली-उद्-दीन 166 क; राज खालसा 10; इतिहासी राम-गढ़िया, 410–11; छहर गुलज़ार शुजाई, 373 क; सरकार, 422–23।

देनेवाले को मृत्युदंड मिलता था। किसी सिख के मिलने आने पर उसके बारे में सूचना न देनेवाले को भी यही दंड दिया जाता था। जो कोई भी सिखों को अनाज या भोजन देता था उसे बलपूर्वक इस्लाम धर्म में दीक्षित कर लिया जाता था।[1]

वास्तव में संपूर्ण सरकारी तंत्र गतिशील हो उठा था। उस काम में सहयोग देने के लिए चौधरियों, मुकद्दमों, नगर के गैर-सरकारी आदमियों, रइसों तथा ज़मींदारों आदि सभी को बलपूर्वक या बहला-फुसला कर मिला लिया गया।

दिन-पर-दिन सिखों की यातनाएँ बढ़ती चली गईं तथा उनकी संख्या कम होती चली गई। उनके आदमी भूख, प्यास, बीमारी, लू तथा निष्ठुर गोलियों तथा घावों से मरते चले गए। अब उन्हें पंजाब के मैदान छोड़ने के लिए बाध्य होना पड़ा। वे लोग जम्मू तथा कांगड़ा के अपने प्रसिद्ध आश्रय-स्थानों, बीकानेर तथा मालवा के रेगिस्तानों तथा लक्खी के जंगलों की ओर भाग गए। इसके साथ-साथ उनमें से बहुतों ने अपने धर्म के चिह्न उतार फेंके तथा हिंदू-धर्म स्वीकार कर लिया। जो लोग इन चतुर चालों को न अपना सके उनमें से बहुत से राज्य के अधिकारियों के क्रोध तथा पड़ोसियों के लालच के शिकार हो गए।[2] इन कार्यों में जो सबसे अधिक क्रूर था तथा जिसने सिखों को बहुत बुरी तरह हिला दिया था वह था भाई तरुसिंह को दिया गया प्राणदंड।[3]

---

[1]रतनसिंह, 284–6; ज्ञानसिंह, 623; हिस्ट्री आफ़ दी सिख्स में पृष्ठ 50 पर गार्डन लिखता है—"लंबे केशों वाले सिखों को जहाँ भी मिले कत्ल कर देने के लिए लाहौर के सूबेदार ने एक घोषणा निकाली। जंगली जानवरों की भाँति उनका पीछा किया जाता था। उनके सिरों पर इनाम रखे हुए थे। हज़ारों को मौत के घाट उतार दिया गया। बाल कटवाने तथा अपना धर्म छोड़ने पर ही उन्हें माफ़ी मिलती थी।"—दे० प्राचीन पंथ प्रकाश, 285।

[2]रतनसिंह ने इस प्रकार की बहुत सी घटनाओं का वर्णन किया है जबकि सिखों को उस काल में अनेक बार सरकारी क्रोध का सामना करना पड़ा था। यह भी कहा जाता है कि इनमें से कुछ एक झड़पों में सिखों ने बहुत बहादुरी का परिचय दिया था। प्राचीन पंथ प्रकाश, पृ० 315–20।

[3]तरुसिंह, मांझा के फूला गाँव में रहनेवाला एक 25 वर्ष का जाट सिख युवक था। वह जंगलों में छिपे सिखों की सहायता किया करता था।

6. निर्वासन में सिख-जीवन

यह कहा जाता है कि "शहीदों का ख़ून धर्म का बीज होता है।" सिखों द्वारा आगे चलकर किए गए उत्तम तथा पुरुषोचित कार्यों ने इस कहावत को प्रमाणित कर दिखाया। पलायन तथा मृत्यु द्वारा घटती सिख जमात गुरु के सेवकों को हतोत्साह नहीं कर पाई। ये लोग या तो वे थे जो गुरु और बंदा के अधीन काम कर चुके थे या फिर उनके ही पुत्र तथा संबंधी आदि थे। वे लोग बहुत-कुछ देख चुके थे, बहुत-कुछ सह तथा भुगत चुके थे तथा प्रत्येक नवीन अत्याचार और कठिनाई उनकी आत्माओं को पवित्र करके नवीन उत्साह से भर देती थी। गुरु गोविंदसिंह ने उनके सामने अनुशासन, सेवा तथा बलिदान का आदर्श रखा था तथा वे सच्चे तथा विश्वासी शिष्यों की भाँति उसी आदर्श की पूजा करते थे। ज़कारिया खाँ के खूनी कार्यों से उन्हें याद हो आता था कि पार्थिव संपत्ति, शरीर तथा आत्माएँ उनकी अपनी नहीं हैं परंतु उस गुरु की हैं जिसने अपने व्यक्तित्व को पंथ के साथ एकाकार कर लिया था। इसलिए खालसा भ्रातृत्व के लिए किया गया प्रत्येक बलिदान उनके लिए गुरु का आशीर्वाद लेकर आता था तथा उन्हें मुक्ति के मार्ग के और पास ले जाता था। वे उस वर्ग से आए थे जिसे विपदा के समय सदैव यातनाएँ भुगतनी पड़ती थीं। वे कराहते-कराहते भी मनन करते रहते थे, सपनों में भी आशाएँ बाँधते थे तथा यातनाओं का सामना करते हुए भी परिश्रम करते रहते थे।

उसे बंदी बना कर लाहौर लाया गया तथा इस्लाम या मौत में से एक का चुनाव करने के लिए कहा गया। तरुसिंह ने मृत्यु का चुनाव किया। उसे चरखी पर चढ़ा कर यातना दी गई। उसकी पसलियाँ टूट गईं, कलाइयाँ खुल गईं, जोड़ ढीले पड़ गए, जगह-जगह से ख़ून के फव्वारे फूटने लगे तथा हड्डियाँ तड़तड़ाने लगीं। अभी भी धर्म परिवर्तन के लिए मनाही करने पर उसके सिर से खाल समेत बाल उखाड़ लिए गए। तरुसिंह के अर्ध-मृत शरीर को हिंदुओं को सौंप दिया गया। वे उसे लेकर एक धर्मशाला में चले गए तथा कुछ दिन तड़फड़ाने के बाद वह इस संसार से प्रस्थान कर गया। उसके अवशेष दिल्ली-दरवाज़े के बाहर शहीदगंज में दफ़ना दिए गए। यह घटना 25 जून, 1743 की है। (खुशवक्तराय, 72; सोहनलाल, i, 108–9; रतनसिंह, 327-51; ज्ञानसिंह, 644–56; सिद्क खालसा 272-95)।

इन सिखों को बहुत कठोर समय देखना पड़ा।[1] उत्पीड़ित, निर्वासित तथा जानवरों की भाँति पीछा किए जाने के कारण वे लोग दिन में अपने आप को छिपा रखते तथा रात में भोजन की तलाश में निकलते। वे लोग जंगली पेड़-पौधों, फलों तथा मांस पर जीवन-निर्वाह करते थे। दिन प्रति दिन उनकी यातनाएँ बढ़ती गईं परंतु वे अपने निश्चय पर दृढ़ता से जमे रहे। विपत्ति के समय में भी वे खुश रहते थे। दैनिक जीवन-यापन के लिए आवश्यक मामूली वस्तुओं को उन्होंने वैभवशाली नाम दिए। इसके साथ ही शत्रुओं को उन्होंने कई घृणित नाम भी दे डाले।[2] जबकि वे भयंकर उत्पीड़न के शिकार हो रहे थे, यह चीज़ उस समय के सिख जीवन का एक महत्वपूर्ण पहलू है। इससे हमें पता चलता है कि उन लोगों के

---

[1]सिखों के दुःख-दर्द तथा दुर्भाग्य से ज़कारिया खाँ को परिचित करवाया गया। वह समय-समय पर अपने दरबारी अभिनेताओं से स्वांग रचवाता तथा सिखों के जीवन तथा महत्वाकांक्षाओं की झलक लेता। यह जानकर कि वे अभी भी सरकार हथियाने के सपने संजो रहे हैं वह चिल्ला पड़ा, "या ख़ुदा, घास खाना तथा बादशाहत का दावा करना!" खुशवक्त राय, 71।

[2]एक सिख के आगमन पर कहा जाता था कि सवा लाख की भीड़ आ पहुँची है। पाँच सिख स्वयं को पाँच लाख की सेना घोषित करते थे। मृत्यु को परलोक-अभियान का नाम दिया जाता था। एक अंधे आदमी को पूर्ण जागरूक नायक की संज्ञा दी जाती थी तथा काने को वे लोग सहस्राक्षी सिंह कहकर संबोधित करते थे। बहरे को चंद्रशाला का वासी कहा जाता था तथा भूखे को वैभव से ओतप्रोत बताया जाता था। पत्थर के कटोरे को स्वर्ण-पात्र का नाम दिया जाता था। साग (हरे पत्तों की एक सब्ज़ी) हरा पुलाव था तो पका मांस महाप्रसाद। पीलू (एक जंगली वृक्ष का फल) को अंगूर, चनों को बादाम, तथा प्याज़ को चाँदी के बरक कहा जाता था। किसी कसूर पर पंथ द्वारा जुर्माना होने पर उसे वेतन समझा जाता था। कुछ बोलने को दहाड़ना कहा जाता। दमड़ी (एक पैसे के चौथाई भाग का एक ताँबे का सिक्का) को रुपया तथा रुपए को सूखी पपड़ी का नाम दिया गया था। शौच जाने का अर्थ था काजी की रसद पहुँचाना, और जब कभी जाते-जाते उन्हें विष्ठा दीख जाती तो वे कहते कि मुग़ल पड़ा है।

रतनसिंह 317; ज्ञानसिंह 629-30; अली-उद्-दीन, 210 क–ख तथा 364 क।

लिए दुःख तथा यातनाएँ कुछ मतलब नहीं रखती थीं तथा वे शौर्य तथा उल्लासपूर्ण जीवन को हँसते-हँसते जीना जानते थे । गरीबी तथा कठिनाइयों ने उन्हें एकता के निकटतम सूत्र में बाँध दिया। शांतिकाल में मानव-मानव के बीच जो भेद पनप उठते हैं उस समय वे अत्याचारी के प्रबल बेलन के नीचे दब कर रह गए; सब पुरुष भाई-भाई तथा स्त्रियाँ बहनें बन गईं। इस प्रकार के जीवन से उन्हें अपने धर्म के प्रति फौलादी कामना, अनन्य भावना तथा अपरिमित उत्साह पुरस्कार के रूप में मिले।

इन दिनों के सिख-जीवन की दूसरी विशिष्टता थी दैनिक प्रार्थना में सिखों का अटूट विश्वास। जैसे-जैसे उनकी कठिनाइयाँ बढ़ती गईं, वे उतनी ही अधिक प्रार्थनाएँ करने लगे। उनके दुःखी हृदयों पर इससे मरहम का असर होता था तथा वे अपने आदर्श के और पास खिंच आते थे। 'अरदास'[1] उनकी प्रसिद्ध प्रार्थना थी तथा सिख उसे नियमित रूप से करते थे । इससे उन्हें अपना ध्येय तथा अपने गुरुओं तथा दूसरे प्रसिद्ध सिखों द्वारा धर्म के नाम पर किए गए बलिदानों का स्मरण हो जाता था।

7. सिखों द्वारा अमृतसर के दर्शनों का प्रारंभ

जैसा कि हम देख चुके हैं, सिख लोग निर्वासित अवस्था में भी दृढ़-संकल्प बने रहे तथा उनकी इच्छा-शक्ति भी प्रबल बनी रही। अपने उत्पीड़न तथा मूलोच्छेदन के कारण सरकार के प्रति उनके हृदयों में बहुत क्रोध भरा हुआ था। अपने प्रत्येक कार्य के प्रारंभ से पहले वे अमृतसर के पवित्र सरोवर में एक बार डुबकी लगा लेना अत्यधिक आवश्यक समझते थे। तदनुसार निर्वासितों में से अधिक साहसी लोग अपने प्राणों की बाज़ी लगा कर भी उस तालाब तथा मंदिर के दर्शनों के लिए जाने लगे।[2] सिखों के इन साहसिक कार्यों को इतनी अप्रत्याशित सफलता मिली कि आगे चलकर

---

[1]अरदास' के पूर्ण पाठ के लिए देखें प्राध्यापक तेजासिंह द्वारा लिखित 'दी सिख प्रेयर'।

[2]खुशवक्तराय 71वें पन्ने पर कहते हैं, "रात में, या जब भी, उन्हें मौका मिलता था वे बड़ी उतावली से स्नान (अमृतसर के सरोवर में) कर लेते थे। वे लोग पीछा किए जाने वाले शिकार की भाँति भयभीत तथा काँपते रहते थे। स्नान के बाद वे लोग तुरंत किसी भी दिशा में भाग खड़े होते। ऐसे समय यदि कोई अपने दुर्भाग्यवश उनके मार्ग में कोई अड़चन डालता तो उसे अपने प्राणों से हाथ धोने पड़ते थे।"

उन्होंने एक वर्ष में बैसाखी तथा दीवाली के दो अवसरों पर अमृतसर के सरोवर में स्नान तथा मंदिर के दर्शन करना अपने जीवन की एक नियमित चर्या बना ली।[1]

8. ढील देने की सरकारी नीति

सन् 1739 से ही पंजाब सरकार के राजस्व का लगातार ह्रास हो रहा था। फ़ारस के आक्रमण से फैली अव्यवस्था तथा सिखों और सूबेदारों के हल्के रिसालों द्वारा उनका पीछा किए जाने के कारण तथा उनके द्वारा की गई जबरन उगाहियों के फलस्वरूप किसान कंगाल बन गए थे। सरकार अपनी सेनाओं को वेतन देने में असफल हो चुकी थी। पंजाब के मैदानों से सिखों को खदेड़ने के बाद जब उस प्रदेश में सामान्य स्थिति पुनः स्थापित हो गई तो प्रांतीय सेनाओं ने अपने बकाया वेतन के लिए गुलगपाड़ा मचाना शुरू कर दिया। सरकारी कोष खाली था तथा उनकी माँगों को पूरा करने के लिए पर्याप्त राजस्व भी नहीं आ रहा था। इसका परिणाम यह हुआ कि सेना को देय की अदायगी में असफल होने के कारण

मालकाम ने लिखा है "एक समकालीन मुसलमान लेखक के अनुसार सिख घुड़सवार अपने प्रिय तीर्थ स्नान की ओर तेज़ी से बढ़ते दिखाई पड़ते थे। अपने इस प्रयत्न में वे लोग प्रायः मारे जाते या बंदी बना लिए जाते। परंतु वे प्राणरक्षा करने की अपेक्षा शहीदी ताज पहनना ही अच्छा समझते थे। यही लेखक आगे चल कर कहता है कि कभी किसी सिख का ऐसा उदाहरण सामने नहीं आया कि अमृतसर की ओर बढ़ते समय बंदी बनाए जाने के बाद उसने अपने धर्म का परित्याग किया हो।" (स्केच ऑफ़ दी सिख्स, पृ० 88) गॉर्डन भी देखें, पृ० 59।

[1]अहमदशाह, 962। दे० प्रिन्सेप, 4; इबरतमिकल, 18(क) "हर छठे महीने सिखों के जत्थे अमृतसर के पवित्र सरोवर पर एकत्रित होते तथा आपस में विचार आदि करते। वे फिर बिखर कर जंगलों में जा पहुँचते। प्रदेश के मांझा भाग के बहुत से ज़मींदार सिखों के संबंधी थे। मुसलमानों द्वारा पीछा किए जाने पर वे लोग सिखों को छिपा लेते। इस जंगली इलाके के प्रत्येक गाँव में दो या तीन सिख घुड़सवार छिपे पड़े रहते। यदि वे लोग लूटमार तथा डाके न डालते तो ये जमींदार लोग उनकी सहायता करते। इस प्रकार की सुरक्षा पाकर उन लोगों को पकड़ पाना असंभव हो चुका था। एम० ग्रेगोर, i, 114–5।

ज़कारिया खाँ ने दीवान लखपतराय को कारावास में डाल दिया। सेना के सारे देय की अदायगी का वचन देकर जसपतराय ने अपने भाई लखपतराय को मुक्त करवा लिया। उसने अपने निजी कोष से बहुत बड़ी मात्रा में धन दिया तथा फिर ज़कारिया खाँ से दरबार के सब सरदारों के लेखों की जाँच करने की आज्ञा प्राप्त की। इस बात का उद्देश्य यह पता लगाना था कि क्या उन्होंने सरकार की पूरी देय रक़म अदा कर दी है? सबसे पहले वह लाहौर दरबार के तुरानी सरदारों के नेता मीर मुइन खाँ के पास पहुँचा। अपने भूभागों से प्राप्त आय के लेखों की जाँच करने के लिए मीर ने उसे आज्ञा नहीं दी। खान बहादुर ने उसे एक करारी धमकी दी तथा मीर इतना घबरा उठा कि उसने एक लाख रुपया तुरंत सरकारी कोश में जमा करवा दिया। दूसरे सरदारों के लिए यह उदाहरण काफी था तथा उन्होंने भी सूबेदार को बड़ी-बड़ी रक़में दीं तथा सारी बकाया रकमों की अदायगी कर दी गई।[1]

प्रांत के वित्त को नियमित करने तथा उसे सही आधार पर लागू करने के लिए यह उचित समझा गया कि भूमि इज़ारादारों (मालगुज़ारों) को पट्टे पर दे दी जाए। परंतु यह उपाय अविवेकपूर्ण तथा नीतिविरुद्ध प्रमाणित हुआ। इज़ारेदारों द्वारा ज़मींदारों (किसानों) के साथ किए जाने वाले कठोर तथा बुरे बर्ताव के कारण प्रांत के सब भागों में अव्यवस्था फैल गई।[2]

इन व्यवस्थाओं को चालू हुए बहुत समय नहीं हुआ था कि सिख लोग पंजाब के मैदानों में फिर दिखाई देने लगे। वे इतने दिलेर हो चुके थे कि प्रांत की राजधानी के पार्श्व में बसे अमृतसर तक जा पहुँचते थे। सरकार के सामने यह एक नई समस्या आ खड़ी हुई। पुरानी नीति पर चलने का केवल यही अर्थ सिखों को अस्थायी रूप से दबा देना ही था। इस नीति के अनुसरण में अन्य कठिनाइयाँ भी थीं। गतिशील रिसालों के संगठन से अत्यधिक गड़बड़ी तथा अराजकता के फैल जाने की आशंका थी। इससे खर्चा अत्यधिक बढ़ जाता तथा आय की भी तबाही हो जाती।

---

[1]देखें आह्वाल-ए-अदीना बेग खाँ, 51 ख–52 क अदीना बेग खाँ तथा उसके राजस्व अधिकारी भवानीदास को भी बंदी बनाकर दंड दिया गया। अपने स्वामी के लेखों को न बताने के कारण भवानीदास को एक बड़े उबलते कड़ाहे में डाल दिया गया।

[2]अहमदशाह, 838–9, देखें करमसिंह 140; एम० ग्रेगोर, i, 114।

इसलिए सरकार ने इस बार ढील देने की नीति आज़माने का निश्चय किया। वे देखना चाहते थे कि क्या सिख लोग शांत किसानों की भाँति देश में बस सकते हैं? इसी नीति का फल था कि जब सिख लोग अप्रैल तथा अक्तूबर में बहुत बड़ी संख्या में अमृतसर में एकत्रित हुए तो उनके साथ किसी प्रकार की कोई छेड़छाड़ नहीं की गई। बस उन्हें केवल थोड़ा-बहुत डराया-धमकाया भर गया।[1]

9. ज़कारिया खाँ की मृत्यु, 1 जुलाई 1745

यह आश्चर्य की बात है कि अपने स्वतंत्रता-संग्राम की संपूर्ण अवधि में जब-जब सरकार ने उन्हें समूल नष्ट करने का प्रयत्न किया तब-तब सिखों को उत्थान के दैवी अवसर प्राप्त हुए। ज़कारिया खाँ 1 जुलाई, 1745 को मृत्यु को प्राप्त हुआ। वह पंजाब के अत्यधिक लोकप्रिय सूबेदारों में अंतिम था। वह एक योग्य तथा न्यायप्रिय शासक था। हिंदू तथा मुसलमान दोनों ही समान रूप से उसका सम्मान करते थे। उसकी मृत्यु पर सारे देश ने शोक मनाया।[2]

10. पंजाब के सूबेदार की नियुक्ति में विलंब

ज़कारिया खाँ की मृत्यु के बाद दिल्ली के वज़ीर कमरुद्दीन खाँ ने पिछले सूबेदार के सब से प्रभावशाली दरबारी मुइनखाँ को कार्यभार

---

[1] खुशवक्तराय, 71 : "दीवान लखपतराय तथा कुछ एक और दरबारी सरदारों को बैसाखी तथा दिवाली के दिनों में अच्छी खासी सेना के साथ अमृतसर में नियुक्त कर दिया गया परंतु नवाब की आज्ञा थी कि उस क़ौम के साथ कोई झगड़ा मोल न लिया जाए। यदि वे (सिख) लड़ें तो भी उन्हें होशियारी से काम लेना था। उन्हें रामतीर्थ पर खेमे डालने थे तथा मेले के पूरे उभार के समय ढोल बजाते हुए सरोवर की ओर बढ़ना था। वे चाहते थे कि सिख लोग सरकार के रोब तथा शाही क्रोध से भयभीत होकर भाग खड़े हों। जब खान बहादुर की सेनाएँ अमृत-सरोवर के निकट पहुँचीं तो कुछ सिख बिना स्नान किए ही भाग खड़े हुए।"

[2] दे० इलियट में सादत-ए-जाबिद, viii, 336–54; आनंद राम, 139। (दे० खुशवक्तराय, 74; सोहनलाल, i, 109; अहमद शाह, 836; इबरत मिकल, 54 ख; सरकार, i, 191)।

चलाने के लिए नियुक्त कर दिया तथा फिर बादशाह को सलाह दी कि वह पिछले सूबेदारों के पुत्रों में से याहिया खाँ की नियुक्ति लाहौर प्रांत में तथा शाहनवाज़ खाँ[1] की नियुक्ति मुलतान में कर दे। मुहम्मदशाह यह नहीं चाहता था कि तुरानी दल पंजाब को अपना गढ़ बना ले। इसीलिए उसने इस प्रस्ताव को रद्द कर दिया। परंतु वज़ीर पंजाब को अपने ही घराने में रखने के लिए कटिबद्ध था। उसने याहिया खाँ को अपने पिता का शासन-भार संभालने के लिए गुप्त रूप से भेज दिया। शाहनवाज़ खाँ भी शीघ्र ही लाहौर पहुँच गया तथा उसने अपने पितृदाय के पूर्ण विभाजन की माँग पेश कर दी। इस समझौते में विलंब हो गया तथा दोनों भाइयों की सेनाएँ आपस में भिड़ गईं। अंत में किसी प्रकार शांति स्थापित की गई। शाहनवाज़ खाँ को कुछ नक़द रुपया तथा जवाहिरात आदि दिए गए। इसके बाद वह जालंधर दोआब की अपनी फ़ौजदारी को वापस चला गया। अब वज़ीर ने खुद अपने लिए पंजाब की सूबेदारी के लिए प्रार्थना की। बहुत हिचकिचाहट के साथ तथा मनाने पर बादशाह मान गया तथा 3 जनवरी, 1746 के दिन याहिया खाँ को नायब सूबेदार नियुक्त कर दिया गया।[2]

11. सिखों द्वारा अपनी शक्ति का पुनरुत्थान

सिखों की बढ़ती हुई समस्या को देखते हुए यह आवश्यक था कि पंजाब में किसी बलवान तथा स्थायी सूबेदार की नियुक्ति की जाए। इस प्रकार के गंभीर मामले में की गई देरी तथा याहिया खाँ और शाहनवाज़ खाँ के बीच हुई अनबन के परिणामस्वरूप प्रांत की शांति तथा समृद्धि को बहुत ठेस पहुँची। चारों ओर शांति भंग होने लगी। एक ओर तो जम्मू के राजा ने विद्रोह खड़ा कर दिया तथा कर देना बंद कर दिया, तथा दूसरी ओर सिखों ने भयंकर गड़बड़ी उत्पन्न कर दी।[3] मांझा के जाट किसानों के असंतोष के कारण स्थिति और भी अधिक बिगड़ गई। वे

---

[1]ज़कारिया खाँ ने अपने पीछे तीन पुत्र छोड़े। उनके नाम थे याहिया खाँ, शाहनवाज़ खाँ तथा मीर बक़ी। वे सब कमरुद्दीन की बहन के बेटे थे। याहिया खाँ तो उसका दामाद भी था।

[2]आनंदराम, 289–95; बयान, 160; अशुब ii, 451; स्यार, iii, 12; सरकार i, 192–3।

[3]आनंदराम, 289। दे॰ सरकार i, 193।

जुल्म की चक्की के दो पाटों में पिस रहे थे। राजस्व अधिकारियों द्वारा किए गए शोषण[1] तथा सिखों की तलाश में घूमने वाले सैनिक दस्तों के दुर्व्यवहार से विनाश तथा अनादर के सिवाय कुछ न मिला।

जब तक सरकार ने शांत तथा उद्यमी जाटों के साथ हस्तक्षेप नहीं किया, वे अपने खेतिहर जीवन से संतुष्ट रहे तथा अपने पड़ोसी के मामलों में उन्होंने अपने को कभी नहीं उलझाया। परंतु अपने शासकों के अत्याचारों के कारण वे लोग लुटेरे सिखों की ओर आकर्षित होने के लिए बाध्य हो गए क्योंकि वे लोग देखते थे कि सिख लोग बाह्यरूप से जीवन के सब वैभव लूट रहे हैं। इसलिए इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि वे लोग अपने कठोर तथा क्लेशपूर्ण जीवन के स्थान पर डाके डालने के सरल जीवन की ओर आकर्षित हो गए। फल यह हुआ कि वे लोग लूटमार तथा लूट-खसोट करने लगे और उनके द्वारा इस नए धर्म के अपनाए जाने से यह स्पष्ट हो गया कि हल्के फलके ने प्रतिशोधी के खड्ग का रूप धारण कर लिया है। प्रिंसेप लिखते हैं, "पुनरुज्जीवित पंथ भावना पहले गुप्त संगठन तथा इक्के-दुक्के विध्वंस कार्यों के रूप में प्रकट हुई। दस-बीस हथियारबंद आदमियों के गिरोह जिन्हें प्रांतीय भाषा में 'धारबी' अर्थात् लुटेरे कहा जाता था, आवागमन के मार्गों पर छाए रहते थे। वे लोग धन के लिए अथवा जीवन निर्वाह के साधनों के लिए गाँवों पर आक्रमण करते अथवा नगरों को लूटते थे। उस समय की शासकीय सत्ता की उपेक्षा के कारण यह संस्था प्रगति करती चली गई। अत्यधिक सफल सरदारों ने अपने लूट के धन से घोड़े खरीद लिए तथा अपने अनुयायियों को हथियारों से लैस किया तथा उन्हें सवारी के लिए घोड़े दिए। उनके उदाहरण तथा सफलता ने पंथ को युवकों तथा दुस्साहसित मनोवृत्ति वाले लोगों में लोकप्रिय बना दिया। उनकी संख्या दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ने लगी तथा अंत में उन के मुखियों ने शासकीय सत्ता का खुलेआम विरोध करते हुए अपने-अपने डेरे अर्थात् शिविर डाल लिए। वे लोग साहसिक तथा कठोर उद्यम के कार्यों के द्वारा ख्याति प्राप्त किया करते थे। यह इनके विरोधियों में भय तथा अनुयायियों में सुरक्षा का भाव उत्पन्न करती थी। इसके द्वारा जो धन तथा ख्याति मिलती उससे उन्हें अपने को और मज़बूत बनाने के साधन प्राप्त होते थे।"[1] सब तबक़ों तथा आयु के लोग उनसे आ मिले। इस स्वतंत्र जीवन की ओर[2] युवक-गण या तो उच्च आदर्श और उत्साह के कारण या फिर

---

[1]दे० बूटेशाह, 255 ख।

[2]प्रिंसेप 3। दे० अहमद शाह, 839–40।

सहज व्याकुलता के कारण आकर्षित हो उठे। वृद्धलोग उनकी लूट-खसोट में सफलता देख कर उनके निकट आ गए। इन सब के साथ ही साथ अनेक ऐसे व्यक्ति भी उनमें आ मिले जो चाहते थे कि दंड-भय से मुक्त हो, मनचाहा जीवन व्यतीत करें। इस भाँति बलवान तथा मंथर गति से चलने वाले पैतृक किसानों की वह जाति जिसने अपनी परिश्रमशीलता से पंजाब की कृषि-पद्धति का निर्माण किया था अब तलवार चलाने में भी उतनी ही चतुर हो गई जितनी कि हल सँभालने में थी।

आनंदराम ने जो उस समय पंजाब में थे, लिखा है: "कानून की अवहेलना करनेवाले, लुटेरे तथा दुस्साहसिक लोग (जो अब तक छिपे हुए थे) अब सिर उठाने लगे तथा नगरों, गाँवों और परिवारों को तबाह करके साम्राज्य को तहस-नहस करने लग गए। ज़कारिया खाँ के न्यायपूर्ण शासन द्वारा स्थापित शांति तथा समृद्धि का विनाश कर दिया गया। ज़कारिया खाँ की मृत्यु के तेरह महीने तथा तेईस दिन के बाद भी, आज 13 अगस्त, 1745 को जब मैं यह लिख रहा हूँ, इस प्रांत में चारों ओर अव्यवस्था का साम्राज्य फैला हुआ है।"[1]

12. सिखों का नियमित लुटेरे जत्थों के रूप में संगठन

इसी समय के लगभग सिखों ने अपने को छोटे-छोटे जत्थों में संगठित करने की आवश्यकता अनुभव की। एक अत्याचारी सरकार से उन्हें अपने जान-माल की रक्षा करनी थी। अपने धर्म को लोकप्रिय बनाने के लिए उन्हें उन सब व्यक्तियों की आवश्यकताओं की ओर ध्यान देना था, जो प्रतिदिन उनमें आकर मिल रहे थे। गाँवों में शांत जीवन व्यतीत कर रहे अपने संबंधियों तथा मित्रों की उन्हें सुरक्षा की व्यवस्था करनी थी तथा उनका विरोध करने वालों को उन्हें चुप कराना था। सुयोजित लूटमार के लिए योजना-बद्ध कार्यक्रम बनाना था, हथियार तथा भोजनादि की सही व्यवस्था करनी थी। संक्षेप में संगठन की आवश्यकता थी।

ऐसा प्रतीत होता है कि ज़कारिया खाँ की मृत्यु के बाद 14 अक्तूबर, 1745 को पड़ने वाली पहली दीवाली के अवसर पर सिख लोग अपने पवित्रतम तीर्थ-स्थान अमृतसर में एकत्रित हुए। उन्होंने प्रांतीय राजधानी की अव्यवस्था की स्थिति से लाभ उठाते हुए गुरुमत के अनुसार एक नए संगठन की घोषणा कर दी।

---

[1]आनंदराम 150–1।

उन्होंने अपने को पच्चीस दलों में बाँट लिया। प्रत्येक दल में लगभग एक सौ व्यक्ति थे।[1]

---

[1]ऐसा लगता है कि दीर्घकालीन उत्पीड़न के बाद सिखों द्वारा नियमित रूप से पारित यही सर्वप्रथम 'गुरुमत' था। इस आश्चर्यजनक संस्था से प्रत्येक व्यक्ति को सत्ता में भाग मिल गया और प्रत्येक सिख के लिए यह संभव हो गया कि वह बड़े से बड़ा ओहदा तथा प्रभाव प्राप्त कर सके।

ज्ञान सिंह 664-5। इन दलों के नेताओं के नाम निम्नलिखित हैं। ग्रिफिन ने इनमें से कुछ एक का वर्णन अपने ग्रंथों में किया है, जैसा कि नीचे दिए गए विवरण से स्पष्ट है :—

1. स्यालकोट ज़िले के नरोके गाँव का श्यामसिंह। दे० राजाज़ ऑफ पंजाब, 464। पाद टिप्पणी।

2. कलसिया (गाँव) का गुरबक्श सिंह। दे० चीफ्स एंड फैमलीज ऑफ नोट, 83.

3. पैंजगढ़ का करोड़ासिंह। दे० : राजाज़ ऑफ पंजाब, 464 पा० टि०।

4. पैंजगढ़ का करम सिंह

5. दल्लेवाल का गुरदयालसिंह

6. सुकर चक के नोथसिंह तथा

7. चंदासिंह दे० पंजाब चीफ्स, ii

8. काँग के कालासिंह तथा

9. खियालासिंह

10. भाटचंग का धरमसिंह खत्री

11. बाघसिंह। दे० पंजाब चीफ्स, 386

12. जस्सासिंह। दे० राजाज़ ऑफ दी पंजाब, 455

13. हरीसिंह। पंजाब चीफ्स, 385

14. पंजवार का छज्जासिंह

15. दीपसिंह शहीद। चीफ्स एंड फैमलीज़ ऑफ नोट, 218

16. भूमासिंह। पंजाब चीफ्स, 385

17. फैजुल्लापुर का नवाब कपूरसिंह दे० पंजाब चीफ्स, 321; राजाज ऑफ दी पंजाब 461

18. कनाह का जयसिंह। दे० पंजाब चीफ्स, 315

19. सदासिंह, दे० सुधसिंह, डोडिया,—पंजाब चीफ्स, 386

ये दल न केवल धर्म के कारण अपितु समान हितों के कारण भी आपस में एक-दूसरे से बँधे हुए थे । इसलिए, प्रतिरक्षा तथा आक्रमणों के लिए, जिनमें सम्मिलित प्रयास आवश्यक होते हैं, एक सामान्य संघ का निर्माण हो गया ।

किसी सरदार के अधीन भरती होने वाले व्यक्ति से यह अपेक्षित होता था कि वह लड़ाई लड़ सके, तथा घुड़सवारी कर सके । उसके पास अपना घोड़ा तथा अपनी बंदूक होना ही उसकी सबसे बड़ी सिफारिश थी यद्यपि सरदार लोग अपने लूट के माल में से उन्हें ये चीज़ें देने का आश्वासन देते थे । परंतु इन नए धर्मोन्मत्त व्यक्तियों का उत्साह इतना अधिक था कि घोड़ा पाने के लिए वे अभियान की प्रतीक्षा नहीं करते थे । ये अपने ही घर से धन चुराकर घोड़ा खरीदते तथा किसी सिख जत्थे से जा मिलते ।[1]

ये अनुयायी अपने सरदार से सुरक्षा तथा लूटमार करने की अनुज्ञा के सिवा और किसी चीज़ की माँग नहीं करते थे । वेतन का तो कोई प्रश्न ही नहीं था । विशुद्ध धर्मतंत्र होने के नाते उस समय का सिखधर्म अपने अनुयायियों में पद अथवा स्थिति के आधार पर कोई अंतर नहीं करता था । एक जत्थे के नए व पुराने सभी सदस्य अपने नेता तथा पूरे खालसा दल के समान व्यवहार पाते थे । एक चढ़ाई के दौरान जो लूट इकट्ठी होती, वह हर एक सरदार को अपनी-अपनी अनुचर-संख्या के हिसाब से बाँट दी जाती थी । प्रत्येक अनुचर को लूट के माल में से बराबर भाग मिल जाता था ।

इस संगठन ने अत्यधिक बड़ी मात्रा में नेता उत्पन्न करने का महत्वपूर्ण कार्य किया । ऐसे नायकों की संख्या बहुत बढ़ गई थी । जिनका शौर्य और योग्यता उनके संकटग्रस्त साथियों के उचित किंतु कठोर प्रतिशोध के प्रयत्नों की मार्ग-दर्शक होती थी । इन नेताओं को किसी उच्च सत्ता ने नियुक्त नहीं किया था, वे तो अपनी सहज योग्यता द्वारा ही वह उच्च पद प्राप्त कर सकने में सफल हुए थे । यदि एक सिख में दुर्दम्य भावना, नेतृत्व-योग्यता, सहज समझ, तत्काल

---

20. हीरासिंह नक़ाई । दे० पंजाब चीफ्स, 119 ।

21. अगरसिंह

22. सुक्खासिंह

23. मदनसिंह

24. बीरसिंह मज़हबी

25. अमृतसर का करम सिंह । (अमृतसर के समीप नारली गाँव का करम-सिंह—पंजाब चीफ्स, 178) दे० खुशबक्तराय, 81, तारीख-ए-सिधु 127, शमशीर खालसा, 78 ।

[1]दे० बूटेशाह, 308—(क), अली-उद्-दीन—158 (क-ख)

निर्णय-क्षमता तथा असीम साहस होता तो यह निश्चित था कि उसके चारों ओर बहुत से साथी आ इकट्ठे होंगे चाहे वह नेता कितने ही नीचे तबक़े का क्यों न रहा हो ।

नेतृत्व तथा स्वतंत्र भावना वाले मनुष्य अपने पुराने दल से पृथक् होकर अपने अलग जत्थे बना लेते थे। खालसा-भ्रातृत्व इस कार्य को प्रोत्साहित करता था। सैनिक-प्रतिभा वालों के लिए प्रगति का मार्ग खुला हुआ था । फल यह हुआ कि लगभग प्रत्येक गाँव में एक सरदार का आविर्भाव हो गया, जिसने आस-पास के दुस्साहसिक लोगों को अपने साथ मिला लिया ।

इस प्रकार के जत्थों में सिखों के संगठन को उनके सैनिक उत्थान का महत्व-पूर्ण प्रारंभ माना जा सकता है । उन्होंने छापामार पद्धति से युद्ध करने का निर्णय किया, क्योंकि उन्होंने अनुभव किया कि इस भाँति का युद्ध अत्यधिक प्रभावी तथा कम से कम जोखिम-वाला होता है । इसमें सफलता अपने नेता पर विश्वास तथा अपने साथियों पर किए जाने वाले भरोसे पर निर्भर होती है । इसने सिख प्रतिरोध के स्वरूप को बदल दिया । इसने इन्हें न केवल अपने शत्रु का सामना करने के लिए तथा लूटमार के लिए शक्ति दी अपितु इसने उन्हें अपने असंख्य लुटेरों को सीधे-सादे रिसाला-दस्तों का रूप देने का विचार भी दिया, जो आगे चलकर अत्यधिक लाभप्रद सिद्ध हुआ । इसका विस्तार किया गया तथा इसे परिष्कृत करके इसे समुदाय की प्रथम, नियमित रूप से संगठित राष्ट्रीय सेना का आधार बनाया गया । यह संगठन दल-खालसा नाम से लोक-प्रसिद्ध हुआ । इसका वर्णन अगले अध्याय में किया जाएगा ।[1]

---

[1]दे० मालकाम, 89; एम० ग्रेगोर, हिस्ट्री ऑफ दी सिख्स, i, 186; राजाज़ ऑफ दी पंजाब, 16; गार्डन, 59-60 तथा 70 ।

दूसरा अध्याय

दल-खालसा, 1745-1748

1. सिखों के आक्रमण

अपने नवीन संगठन द्वारा अर्जित सफलताओं के जोश में सिखों ने अपने शत्रुओं को दंड देने का निश्चय कर लिया। अब उन्होंने नौशहरा, मजीवा तथा दूसरे और गाँवों पर धावे बोले तथा साहिब राय, राम रंधावा, करमा छिन्ना, हरभगत निरंजनिया, काज़ी फ़ाज़िल अहमद खाँ, खोक्खर शमशीर खाँ आदि उन अनेक चौधरियों और मुकद्दमों का काम तमाम कर दिया, जिन्होंने उनके विरुद्ध सरकार की सक्रिय सहायता की थी। बटाला, जालंधर, तलवान, विजवाड़ा, धाग मंजकी तथा फगवाड़ा आदि नगरों को भी तहस-नहस कर दिया गया।[1]

इन प्रारंभिक सफलताओं से उत्साहित होकर सिखों ने एक बड़े जोखिम के काम में हाथ डाला। उनके दुःसाहसी युवकों के एक जत्थे[2] ने मुग़ल सैनिकों का वेश बनाया तथा जनवरी माह की एक शाम को वे लोग मोची दरवाज़े से लाहौर नगर में प्रवेश कर गए। यह वर्ष का सबसे ठंडा महीना होता है। इसलिए नगर के लोग जल्दी ही अपने-अपने घरों में विश्राम के लिए जा चुके थे। गली-कूचे लगभग खाली हो चुके थे तथा दुकानों और मकानों के मद्धिम प्रकाश के कारण लुटेरों को पहचाना नहीं जा सका। लुटेरों ने बाहर जाने के सब मार्गों पर रोक लगा दी, दुकानदारों को तलवार के घाट उतार दिया तथा अपने घोड़ों पर लूट का माल लाद कर नौ-दो ग्यारह हो गए। उनके नगर छोड़ने से पहले किसी एक दल ने उस भाग में रहने वाले काज़ियों तथा मुफ्तियों का भी सफाया कर दिया, क्योंकि सिख-बंदियों को दंड देने में उनका बहुत हाथ रहा।[3]

2. जसपतराय का सिखों द्वारा वध, लगभग मार्च, 1746

लाहौर को लूटने के बाद सिख लोग रावी तट के घने जंगलों में छिपे अपने दल से जा मिले। मुग़ल सैनिकों के लिए उनका पीछा करना बहुत कष्टप्रद

---

[1]ज्ञानसिंह, 664; शमशीर खालसा, 78।

[2]ज्ञानसिंह ने यह संख्या 5,000 दी है। स्पष्ट ही यह अतिशयोक्ति जान पड़ती है।

[3]ज्ञानसिंह।

तथा थका देनेवाला कार्य था क्योंकि अपनी ढीली सलवारों के कारण वे कँटीली झाड़ियोंवाले प्रदेश से कठिनाई से निकल पाते थे तथा दलदली भूमि के कारण उनके घोड़ों के पाँव बार-बार गीली मिट्टी में धँस जाते थे।[1] लाहौर के सूबेदार याहिया ख़ाँ को जब अपनी राजधानी के बाज़ार मोची दरवाज़ा में घटी बातों का पता चला तो उसने लखपतराय को सिखों के विरुद्ध तत्काल कार्रवाई करने की आज्ञा दी। दीवान ने अपने रिसाले का एक शक्तिशाली दस्ता रवाना कर दिया। सिखों को इनके दलदली स्थान में बनाए गए अड्डों से मार भगाने में इस दस्ते को सफलता मिल गई। सिख लोग अमीनाबाद की ओर भाग खड़े हुए। अमीनाबाद का फौजदार, लखपतराय का भाई जसपतराय था। उस समय वह वहाँ से दस कोस के फ़ासले पर खोखरू गाँव में शिविर डाले पड़ा था। गोंदलाँवाला के निवासी उसके पास शिकायत लेकर आए कि 2,000 सिख घुड़-सवारों ने अचानक उनके गाँव पर धावा बोल दिया है तथा गाँव की भेड़-बकरियों को अपने साथ खदेड़ कर ले जाने के बाद वे लोग अब रोड़ी बाबा नानक के स्थान पर बैठे उन्हें मार-मार कर खा रहे हैं। दीवान ने उन्हें सूचना भेजी कि वे लोग बकरियाँ उनके स्वामियों को लौटा कर वहाँ से तुरंत भाग जाएँ। सिखों ने उसे उत्तर भिजवा दिया कि उन्होंने पिछले दो-तीन दिनों से कुछ भी नहीं खाया है तथा वे अगली सुबह ही वहाँ से चले जाएँगे। फौजदार ने उन्हें तत्काल भाग जाने की फिर से आज्ञा दी। परंतु सिख हटनेवाले नहीं थे। इस पर जो कुछ भी सैनिक उसके पास थे उन्हीं को लेकर जसपतराय एक हाथी पर सवार हो सिखों के विरुद्ध चल पड़ा। सिखों ने उसका डटकर सामना किया। युद्ध

---

[1]जहाँ तक इस घटना की तिथि का संबंध है, दो शब्द कहना उपयुक्त होगा। इस बात से सब विद्वान सहमत हैं कि जसपतराय की हत्या उस समय की गई थी जबकि उसका भाई लखपतराय लाहौर का प्रधान मंत्री था। उसने सिखों से जसपतराय के खून का भरपूर बदला लिया। इस पद पर वह सन् 1726 से 21, मार्च, 1747 तक रहा। उसने ज़कारिया खाँ तथा याहिया खाँ के अधीन नौकरी की। रतनसिंह ने पृ० 372 पर बताया है कि यह घटना वि० संवत् 1804 (28 फरवरी, 1747 से 27 फरवरी, 1748) में घटी।

ज्ञान सिंह पृ० 665 पर बताते हैं कि यह घटना अप्रैल, 1748 की है। ये दोनों ही तिथियाँ स्पष्ट रूप से ग़लत हैं। पन्ने 105 ख पर अली-उद्-दीन तथा पन्ने 74 पर खुशवक्त राय ने इस घटना को याहिया खाँ के समय की बताया है, जो अपने पद पर 21 मार्च, 1747 तक था। इन दोनों विद्वानों के मत पर चलते हुए मैंने करमसिंह की तिथि को मंजूर किया है। देखें : फुलवाड़ी, अक्तूबर, 1928, पृ० 988; रतनसिंह, 373।

के दौरान निबाहूसिंह नामक एक रंगरेटा सिख ने जसपतराय के हाथी की पूंछ पकड़ ली, तथा बिजली की गति से ऊपर चढ़ कर उसने फौजदार का सिर धड़ से अलग कर दिया। यह देख शाही सैनिकों में चारों ओर भगदड़ मच गई।[1]

3. लखपतराय द्वारा सिखों का कत्लेआम, लगभग अप्रैल-जून, 1746

अपने भाई के दुःखद अंत का समाचार पाकर दीवान लखपतराय ने सिखों से बदला लेने का बीड़ा उठा लिया। ऐसा सुनने में आता है कि उसने 'खालसा' को समूल नष्ट करने की सौगंध खाई। उसने याहिया खाँ से आज्ञा प्राप्त कर लाहौर के सब सिखों को बंदी बना लिया तथा शहीद गंज पर उन्हें तलवार के घाट उतार दिया।[2]

सिखों का प्रधान दल रावी के ऊपरी भागों की दलदली भूमि में शरण लिए पड़ा था। याहिया खाँ तथा लखपतराय व्यक्तिगत रूप से उनका पीछा करने चल पड़े। सिख अपने को जंगलों में छिपाते, रावी के दाहिने तट के साथ-साथ, उस प्रांत के उत्तर-पूर्वी भाग की ओर बढ़ने लगे। कई छोटी-मोटी मुठभेड़ें हुईं। इन सब में सिखों को बहुत हानि उठानी पड़ी। वे लोग हल्के तोपखाने की मार के सामने बिल्कुल असहाय हो जाते थे। अंत में वे लोग खनवान (गुरदासपुर के 10 मील दक्षिण में बूढ़े ब्यास के दाएँ तट पर) की ओर बढ़े। यहाँ घना जंगल था तथा वह जंगली जानवरों से भरा पड़ा था।

सिखों ने दिन में छिपे रहकर तथा रात में शत्रु को परेशान करके गुरिल्ला युद्ध जारी रखा। परंतु उनका बल घटने लगा था। उनके पास खाने-पीने

---

[1]अली-उद्-दीन, 105 क-ख; रतनसिंह, 374; ज्ञान सिंह 665; खुशवक्त राय, 74। दीवान के धर्म-गुरु बाबा किरपाराम ने सिखों को रिहाई का पाँच सौ रुपया देकर जसपतराय का शीश ले लिया तथा अमीनाबाद ले जाकर उसकी अंत्येष्टि क्रिया पूर्ण की। लखपतराय ने यहाँ एक समाधि का निर्माण करवाया। वहाँ पर बना कुआँ आज भी मौजूद है।

[2] अली-उद्-दीन, 105 क-ख, दे० खुशवक्त राय, 72।

कौड़ा मल, कुंजा मल, दिला राम, हरी राम, काशमीरी मल, सूरत सिंह, हर सिंह, भाई देश राज तथा चौधरी जवाहर मल जैसे लाहौर के प्रमुख नागरिक एक शिष्टमंडल बना कर लखपतराय की सेवा में उपस्थित हुए तथा उससे बेकसूर लोगों का खून न बहाने के लिए कहा। अमावस्या (9 अप्रैल) के पवित्र दिन को देखते हुए तो उन्होंने और भी ज़ोर दिया। लखपतराय ने उनकी एक न सुनी। सिखों की धर्मपुस्तकें जला दी गईं तथा गुरुद्वारे मिट्टी में मिला दिए गए।

का सामान तथा गोला-बारूद की कमी हो गई थी। जंगल में शिकार भी दुर्लभ हो गया था। बहुत से लोग भूख तथा घावों से मर रहे थे। लखपतराय से माफ़ी प्राप्त कर, बहुत से माता-पिताओं ने, अपने पुत्रों को सिर मुंडवाने तथा सिख धर्म के सब चिह्नों का त्याग करके, हिंदू धर्म में वापस आने के लिए प्रेरित किया। वे सब लोग जिन्होंने लूटमार करने के लिए खालसा दल से नाता जोड़ा था, उससे पृथक् हो गए तथा शांतिपूर्ण धंधों में लग गए; परंतु जो लोग नवीन धर्म के प्रति सच्चे थे, वे डटे रहे।

अत्यधिक दुर्दशा में फँस कर सिखों ने एक रात अपने शत्रुओं को चकमा देकर निकल भागने का निश्चय किया। उनमें से कुछ जो अपने साथियों के लिए अपने जीवन की आहुति देने के लिए तैयार थे "वाहे गुरु जी का खालसा, वाहे गुरु जी की फतेह" का प्रचंड घोष करते हुए शत्रुओं की पंक्तियों में घुस पड़े। इससे लखपत-राय की संपूर्ण सैनिक-शक्ति उस स्थल विशेष की ओर आकर्षित हो गई तथा दूसरे सिख परोल और कथूआ की ओर भाग निकलने में सफल हो गए।[1]

परंतु शीघ्र ही लखपतराय फिर उनके पीछे लग गया। उसने चौधरियों तथा लंबरदारों को उसके साथ सहयोग करने के लिए निश्चित हिदायतें दीं। पहाड़ी लोगों को उन्हें उत्तर की ओर बढ़ने से रोक कर मैदानों की ओर खदेड़ने के लिए कहा गया तथा पहाड़ियों को तलहटियों में रहने वालों से कहा गया कि वे उनके भागने के सब द्वार बंद कर दें।

चारों ओर से बुरी तरह पीछा किए जाने के कारण उन्ह बाध्य होकर बसौहली पहाड़ियों में जा कर रुकना पड़ा (पठानकोट तथा डल्हौज़ी के बीच में रावी तट पर)। वहाँ पर नदी ऊँचे तटों के बीच से होकर वेग से बहती है। उस स्थान में सिख जा फँसे, उसके आगे वे भागने में असमर्थ थे। शत्रु उनके पीछे थे, सामने ऊँचे पर्वत खड़े थे। चारों ओर प्रतिकूल जन समुदाय था तथा बाईं ओर वेगवती नदी बह रही थी।

कुछ सिखों ने नदी पार करके भागने का प्रयत्न किया। परंतु नाले के ढलवाँ चट्टानी किनारों तथा जल की तेज़ धारा के कारण वे ऐसा न कर पाए। दो दल्लेवालिया सिख युवक नदी में यह देखने के लिए कूद पड़े कि क्या उसे पार किया जा सकता है। परंतु उनमें से कोई भी फिर दिखाई नहीं पड़ा। सिखों ने पहाड़ी पर चढ़ने का प्रयत्न किया। यह कुछ स्थानों पर तो बिल्कुल सीधी तथा बाकी जगहों पर बहुत ऊबड़-खाबड़ थी। फिसलनभरी तथा सीधी चढ़ाई के कारण उन्हें इस ओर भी अधिक सफलता न मिल पाई। उनमें से कुछ चोटी तक पहुँचे

---

[1]पठानकोट के उत्तर-पश्चिम में लगभग 14 मील की दूरी पर बाजू नदी के तट पर परोल बसा है। इसके सात मील पूर्व में रावी नदी पर कथूआ है।

भी परंतु गोलियों तथा पहाड़ी लोगों के पत्थरों ने उनका काम तमाम कर दिया। इसलिए सिखों ने सब प्रयत्न छोड़ दिए तथा वे जहाँ छिप सकते थे वहाँ छिप गए।[1]

खुशवक्त राय ने उनके कष्टों का बहुत सजीव वर्णन किया है। वह लिखता है कि शाही सेनाओं ने प्रत्येक गुफा और कंदरा में घुस कर, उन्हें भयभीत कर, बटाला की ओर मैदानों में खदेड़ दिया। बाहर भाग निकलने के सब मार्ग रोक दिए गए। लखपतराय तथा याहिया खाँ उन पर टूट पड़े तथा चार सौ सिखों को उसी स्थान पर मौत के घाट उतार दिया। लगभग इतने ही लोगों को बंदी बना लिया गया। बहुत-से सिख रावी में डूब मरे तथा बहुत-से अपना जीवन बचाने के लिए एक कुएँ में कूद गए। उनमें से कुछ-एक ने क्षणभर में अपने बाल काट फेंके तथा उस नए वेश में निकल भागे। बंदियों में से जिन लोगों ने अपने केश तथा दाढ़ियों को मुँड़वा लिया, उन्हें छोड़ दिया गया तथा बाकी लोगों के बाल, खाल सहित उखाड़ लिए गए तथा उन्हें हज़ारों यातनाएँ देकर, मौत के घाट उतार दिया गया। गुप्तचर तथा सैनिक दस्ते उनकी तलाश में इधर-उधर घूमते रहते थे। जहाँ कोई सिख मिलता उसका काम तमाम कर दिया जाता। प्रत्येक सिख के सिर पर लखपतराय ने पाँच रुपए का इनाम लगा दिया था। परिणाम यह हुआ कि पलायन तथा मृत्यु के कारण सिखों की संख्या प्रतिदिन घटने लगी।

उस हत्याकांड से बचकर भाग निकलने वाले सिख बीस मील की दूरी पर बह रही ब्यास नदी की ओर भाग गए। अपना पीछा करने वालों से बड़ी बहादुरी से लड़ते हुए उन्होंने अपना मार्ग बनाया। ब्यास पार करते समय भी उन्हें भयानक कष्ट सहने पड़े। रतनसिंह ने इसका विशद चित्रण किया है। वे कहते हैं कि जब वे लोग ब्यास के तट पर पहुँचे तो लखपतराय ने उन्हें आ दबोचा। यह जून माह की दोपहर का समय था। पहाड़ों की बरफ़ के पिघलने से, नदी में बाढ़ आई हुई थी। शत्रु सरगरमी से पीछा कर रहे थे। कोई नाव उपलब्ध न थी। सिखों ने गुरु की प्रार्थना की तथा गोंइदवाल के स्थान से नदी में कूद पड़े।[2] जब वे दूसरे किनारे पर पहुँचे तो उन्हें तीन मील तक ऐसी भमि पर चलना पड़ा जिसमें गहरी रेत थी। वे लोग अपने घावों की पीड़ा तथा भूख और प्यास

---

[1]रतनसिंह, 392-3।

[2]लगभग उन्नीसवीं सदी के मध्य तक तथा एम-ग्रेमोर के समय तक गोइंदवाल के घाट का उपयोग ब्यास पार करने के लिए किया जाता था। यह स्थान वर्तमान कपूरथला नगर से पाँच मील की दूरी पर लाहौर जानेवाले मुख्य मार्ग पर स्थित था। देखें : हिस्ट्री ऑफ दी सिख्स, खंड 1, पृ० 5।

के कारण तो मर ही रहे थे और अब दहकती रेत ने उनकी यातना को और बढ़ा दिया। उन्होंने अपनी पगड़ियाँ फाड़ डालीं। उनकी पट्टियाँ अपने पैरों में लपेट लीं, इस तरह वे लोग जैसे-तैसे उसे पार कर गए। इसके बाद उन्होंने जालंधर दोआब में प्रवेश किया तथा एक गाँव के पास जा ठहरे। उन्होंने अभी कठिनाई से ही अपना भोजन पकाना आरंभ किया था कि उन पर अदीना बेग खाँ अचानक टूट पड़ा। उन्हें यह भी सूचना मिली कि लखपतराय ने ब्यास पार कर ली है। इस पर उन्होंने भोजन पकाना तो छोड़ दिया और अदीना बेग की सेनाओं से लड़ते तथा राह बनाते वे लोग सतलज तक जा पहुँचे। उसे तिहारा के स्थान से पार करके तथा मार्ग में ठंडे पानी की गद्दियाँ लगाते वे लोग बहुत कठिनाइयों के बाद मालवा पहुँचे। लखपतराय लाहौर लौट गया।[1]

इस अभियान के दौरान बहुत से सिख मारे गए तथा बंदी बनाए गए।[2] बंदियों को लाहौर लाया गया। उन्हें ऊँटों पर बैठाया गया था तथा उनके सिर पर कागज की टोपियाँ थीं। शहीदगंज पर उनके सर धड़ से अलग कर दिए गए। इसी समय लखपतराय ने एक घोषणा भी निकाली। उसने धमकी दी कि जो कोई गुरु का नाम लेगा उसका पेट फाड़ दिया जाएगा।[3]

---

[1]रतनसिंह, 389-90; मालवा के सिखों ने मंझा के अपने बंधुओं के प्रति बड़ी सहानुभूति दिखाई। उन्होंने अपने घर उनके लिए खोल दिए। उनके घावों की बड़ी सावधानी तथा भक्तिभाव से देखरेख की। नेतागण अपने बचे-खुचे साथियों सहित विभिन्न स्थानों पर ठहरे हुए थे। सुक्खासिंह जयतों में जा ठहरा, जस्सासिंह कोट कपूरा में, कपूरसिंह धिग वंजहूके में, हरीसिंह दयालपुर में, चरतसिंह पक्का पथराला में तथा दीपसिंह अपने समूह सहित लक्खी-जंगलों में भाग गया। बहुत से सिख दरौली के पड़ोस में स्थित तिहाड़ा में जा टिके। ज्ञानसिंह 678।

[2]रतनसिंह के अनुसार यह संख्या 40,000 थी। पृ० 394। ज्ञान सिंह ने पृष्ठ 678 पर इस संख्या को 7,000 बताया है। पहली तो स्पष्ट रूप से अत्युक्ति है जब कि दूसरी कुछ सही प्रतीत होती है।

[3]अली-उद्-दीन, 105ख–106क; देखें प्रिंसेप, 4-5; रतन सिंह, 375-95; ज्ञान सिंह, 667–79 (लखपतराय ने गन्ने के रवे को गुड़ कहने पर भी प्रतिबंध लगा दिया था। कारण यह था कि यह शब्द गुरु जैसा सुना जा सकता है। उसने कहा कि इसे रोड़ी कह कर पुकारा जाए। यह आज भी पंजाब में प्रचलित है। रतनसिंह, 378)।

इसी समय के आस-पास, लाहौर का नगर कोतवाल, सुबेगसिंह तथा उसके पूर्ण युवा पुत्र शाहबाज सिंह को यातनाएँ देकर जान से मार डाला

इस प्रकार के कठोर उपायों ने कुछ दिनों के लिए सिख धर्म की प्रगति को रोक दिया। गुरु के भक्तों का उत्साह बहुत कुछ शिथिल पड़ गया। ऐसे लोग जिन्होंने खालसा धर्म के प्रति श्रद्धा के कारण नहीं, अपितु लूटमार तथा दुस्साहसपूर्ण कार्य करने के लिए उन जत्थों से संबंध जोड़ा था अब खालसा-पंथ से अलग होने लगे। अपने भाई की मृत्यु का पूरा बदला ले लेने का लखपतराय को भी संतोष हो गया।

4. जकारिया खाँ के पुत्रों के बीच गृह-युद्ध, 21 नवंबर 1746—21 मार्च 1747

परंतु खालसा के भाग्य में बहुत देर तक कष्ट उठाना नहीं बदा था। शीघ्र ही लखपतराय को अपनी करनी का फल मिलनेवाला था। सिखों के भी दिन फिरने में कोई खास देर नहीं थी। लगभग पाँच माह बाद याहिया खाँ के छोटे भाई शाहनवाज़ खाँ ने उसके विरुद्ध विद्रोह खड़ा कर दिया। वह 21 नवंबर, 1746 के दिन लाहौर जा पहुँचा तथा उसने शालामार उद्यान के बाहर खेमे गाड़ दिए। उसने दीवान सूरतसिंह द्वारा, याहिया खाँ को कहला भेजा कि वह अपने पिता की संपत्ति का पूर्ण विभाजन कर दे। अदीना बेग खाँ, कौड़ामल तथा हशमतउल्ला खाँ भी उसके साथ हो लिए।

याहिया खाँ उसे कुछ भी देने का इच्छुक नहीं था। परंतु वह लड़ाई भी नहीं चाहता था। वार्तालाप लंबा खिंचता चला गया। किसी भी निर्णय पर न पहुँचा जा सका। दोनों भाइयों के सैनिक प्रायः भिड़ जाते थे। अंत में याहिया खाँ अपने नए व पुराने सब साथियों के साथ लाहौर के बाहर आया। उसके साथ मुमीन खाँ, लखपतराय, मीर नेमन खाँ तथा मीर अमीन बेग आदि थे। भयंकर युद्ध हुआ। अंत में याहिया खाँ ने अपने पिता के खज़ाने में से 600,000 रुपए देकर झगड़े का अंत कर दिया। इसके बाद शाहनवाज़ खाँ पीछे हट गया तथा बटाला की ओर चल दिया। वहाँ उसने याहिया खाँ के अनेक ज़िलों पर अधिकार जमा लिया तथा आस-पड़ोस के अनेक सरदारों को अपने अधीन कर लिया।

गया। वह बहुत दिनों से लाहौर सरकार की सेवा करता आ रहा था। उसने अनेक अवसरों पर सिखों तथा प्रांतीय दरबार के बीच होने वाली बातचीत के दौरान प्रांतीय दरबार के वकील का काम भी किया था। विस्तार के लिए देखें रतनसिंह, 321–7 तथा ज्ञानसिंह, 634–7।

इससे लाहौर का सूबेदार खीझ उठा तथा उसने लड़ाई की तैयारी आरंभ कर दी। शाहनवाज़ ने जब यह सुना तो वह लाहौर जा पहुँचा तथा हज़रत इशान के मकबरे के समीप उसने अपने डेरे डाल दिए। सत्तरह मार्च, 1747 को लड़ाई शुरू हुई। अदीना बेग ने आक्रमण का नेतृत्व किया तथा मुनीम खाँ को खाइयों से बाहर निकलने के लिए बाध्य कर दिया। दूसरे दिन शाहनवाज़ ने खुद धावा बोला। मीर मुमीन की पराजय हुई और उसे बंदी बना लिया गया। झगड़े के प्रारंभ से ही याहिया खाँ के जिन सैनिकों का वेतन पिछले चार-पाँच माह से बकाया पड़ा था वे लोग शहर में एकत्रित होकर अपने बकाया वेतन के लिए शोर मचाने लगे। शाहनवाज़ खाँ ने उन्हें सरलता से ही अपनी ओर मिला लिया। उसने 21 मार्च को बिना किसी विरोध के लाहौर में प्रवेश किया तथा याहिया खाँ की संपूर्ण संपत्ति हथिया ली और उसे बंदी बना लिया।

शाहनवाज़ खाँ ने "उन सब पुराने सरदारों को, जिन्होंने उसके बाप-दादा की सेवा में अपने बाल सफेद किए थे, उनके पदों से हटा कर तथा उनके घरों तथा संपत्ति आदि को ज़ब्त करके" पंजाब के सूबेदार की हैसियत से अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली। उसने लखपतराय के स्थान पर कौड़ामल को अपना दीवान नामज़द किया तथा ओजस्वी सूबेदार अदीना बेग खाँ को जालंधर दोआब के सनिक-असैनिक पद पर पक्का कर दिया।[1]

5. सिखों द्वारा पुनः शक्ति-अर्जन, नवंबर 1746—मार्च 1747

ज़कारिया खाँ के पुत्रों के बीच जो गृह-युद्ध नवंबर, 1746 में आरंभ हुआ था, उससे शासन में शिथिलता आ गई थी। इस काल में सिखों को अपनी शक्ति का फिर से संगठन करने के लिए आवश्यक समय तो मिला ही, साथ ही उनके और अधिक उत्कर्ष के लिए भी यह बहुत उपयुक्त सिद्ध हुआ। बुरे दिनों के अनुभव ने खालसा में एक तीक्ष्ण अंतर्दृष्टि पैदा कर दी थी। यह अंतर्दृष्टि

---

[1]सरकार, i, 194-5।

[2]कौड़ामल मुल्तान के वल्लुमल खत्री का पुत्र था, जिसके पिता तथा दादा मुल्तान के सूबेदारों की सेवा में रह चुके थे। (शाह युसुफ़, 55क)। आनंदराम, 289–95, 304; टी० मुजफ्फरी, 73 क-ख; अशुब, ii, 451-2; इबरत मिक़ल, ii, 55क; सोहन लाल, i, 113-4; अली-उद्-दीन, 106 ख, खुशवक्त राय, 76।

प्रकृति की अनुपम देन होती है जिसकी सहायता से लोग अपने अवसरों का पूर्ण लाभ उठा सकते हैं। मालवा में मिली पाँच माह (जुलाई–नवंबर) की अल्पावधि ने उनके घावों को भर दिया था तथा पिछले युद्ध की विभीषिका का आतंक भी उनके हृदयों से बहुत कुछ दूर कर दिया था। गृह-युद्ध के छिड़ जाने पर वे अपने आश्रय स्थानों से निकल कर अमृतसर का दर्शन करने के लिए आने लगे। इसमें दोहरा लाभ था। पवित्र सरोवर में स्नान करने तथा हरिमंदिर के गुरुद्वारे में प्रार्थनाएँ करने से उनके दुखी मन को बहुत शांति मिलती थी। इससे उनमें उत्साह बढ़ता था तथा गुरु का आशीर्वाद मिलता था। दूसरा लाभ यह था कि यह स्थान उनके लिए एक मिलन-स्थान बन गया। याहिया खाँ के यातनापूर्ण शासन के समय उनके बहुत से सहधर्मी चारों ओर दूर-दूर तक बिखर गए थे। किसी भी नवीन कार्यक्रम को लागू करने से पहले यह आवश्यक था कि बिखरी हुई पंथ-शक्ति को एक स्थान पर एकत्रित किया जाए।

ज़िले के मुसलमान अधिकारियों को सिखों की इस चाल के प्रति सचेत कर दिया गया था। अमृतसर के मुग़ल फौज़दार ने स्नान करने के लिए आनेवाले सिखों पर कठोर दृष्टि रखने के लिए उस सरोवर के चारों कोनों पर चार गुंबद बनवाए। वहाँ दिन-रात हथियारबंद पहरा रहता था। सरोवर की ओर बढ़नेवाले प्रत्येक सिख को तत्काल गोली मार देने का उन्हें आदेश था। सुखासिंह नामक एक प्रमुख सिख ने दिन-दहाड़े वहाँ जाकर स्नान करने का दृढ़ निश्चय किया। उसने एक तुर्क की पोशाक पहनी तथा दोपहर में वह सरोवर पर पहुँचा। उसने एक डुबकी लगाई तथा अपनी पगड़ी उतार कर यह प्रगट कर दिया कि वह सिख है। इसके बाद वह भाग खड़ा हुआ। उसके उदाहरण का और दूसरे सिखों ने भी अनुकरण किया तथा शीघ्र ही दस-दस, बीस-बीस के दलों में दिलेर सिख अपने पवित्र नगर में घुसने लगे। शीघ्र ही सारे देश में यह खबर फैल गई तथा जिन सिखों ने तलवार छोड़ कर हल अपना लिया था अब फिर बड़ी संख्या में लूट के लालच में खालसा दल में आकर मिलने लगे। अपने साहसपूर्ण कार्य में उन्हें सफलता मिली। अपने सीमित साधनों से उस विषम स्थिति का सामना करने में अपने को असमर्थ देख अमृतसर का ज़िला अधिकारी लाहौर लौट गया। संभवतः याहिया खाँ के पक्ष में लड़ने के लिए उसकी सेनाओं की उपस्थिति भी आवश्यक हो चुकी थी।

अब सिखों के विभिन्न दस्ते अमृतसर से निकलकर बारी तथा रेछना दोआब पर बाज़ की तरह टूट पड़े। उन्होंने सरकारी अधिकारियों से, और खास तौर पर उनसे, जिन्होंने उन्हें सताया था, भरपूर बदला लिया। उन्होंने शीघ्र ही बहुत-सा धन लूटमार से प्राप्त कर लिया। उनके रिक्त भंडार

एक बार फिर भर गए । अब उनके पास हथियारों, गोलाबारूद, घोड़ों तथा दूसरी आवश्यक वस्तुओं की कोई कमी न रही ।[1]

6. अमृतसर में सिखों द्वारा रामरौनी के दुर्ग का निर्माण, लगभग 30 मार्च 1747

ज़कारिया खाँ के पुत्रों के बीच हुए झगड़े में शाहनवाज़ खाँ ने अपने बड़े भाई याहिया खाँ को तथा दीवान लखपतराय तथा मीर मुमीन खाँ को पराजित कर दिया था तथा उन सबको बंदी भी बना लिया था । जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है । शाहनवाज़ ने कौड़ामल को अपना दीवान नियुक्त किया था तथा अदीना बेग खाँ को जालंधर दोआब की फौजदारी पर पक्का कर दिया था । कौड़ामल एक खुलासा सिख था[1] (गुरु गोविंद सिंह के उसूलों को अंगीकार किए बिना गुरु नानक के धर्म में विश्वास करने वाला) तथा अदीना बेग का झुकाव सिखों की ओर अपनी नीति के कारण था । अपने आश्रयदाता के प्रति सम्मान भाव होने के कारण, जिसका पद पंजाब के सूबेदार के बाद ही आता था, सिखों ने अपनी लूटमार पर रोक लगा दी । इसमें उनका एक और भी उद्देश्य था । अपनी शक्ति का पुनर्गठन करने के लिए उन्हें समय की वास्तव में आवश्यकता थी । शाहनवाज़ खाँ की सरकार भी अभी स्थिर नहीं हो पाई थी तथा कौड़ामल और अदीना बेग ने नए सूबेदार को यह सलाह देने में भलाई समझी कि सिखों के साथ हस्तक्षेप न किया जाए । अतः, जब सरकार ने सिखों के मामलों में हस्तक्षेप नहीं किया और जब उन्होंने भी संगठित होने की बात सोची तो वे शांत रहे ।

तीस मार्च को पड़नेवाले बैसाखी-उत्सव के कारण सिख लोग अपने धार्मिक केंद्र अमृतसर में एकत्रित हुए । बारह वर्ष के तूफ़ानी तथा दीर्घकालीन युग के बाद उन्होंने वह उत्सव बड़े उत्साह तथा तड़क-भड़क के साथ मनाया । उस दिन खालसा दल की महासभा का आयोजन किया गया तथा एक गुरुमत पारित किया गया । इसमें यह निर्णय किया गया कि अमृतसर में किला बनाया जाए । यह एक बहुत बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य था । क्योंकि जो सिख अपने घरों को नहीं लौटना चाहते थे और जो दीर्घकाल तक व्यस्त जीवन व्यतीत करने के पश्चात् आलसी जीवन व्यतीत नहीं करना चाहते थे, उन्हें किसी-न-किसी काम पर

---

[1]रतनसिंह, 313-4; ज्ञानसिंह, 682 ।

[2]फोरेस्टर, 315; मालकाम, 91; रतनसिंह, 397 ।

लगाया जाना आवश्यक था। इसके साथ-साथ उन्हें इस बात का भी कोई भरोसा तथा कि उस अशांति-काल में सरकार उन्हें कितने दिनों तक आराम की साँस लेने देगी।

इन दो असुविधाओं के होते हुए भी कि अमृतसर प्रांतीय राजधानी के बिल्कुल पास (लाहौर के 30 मील उत्तर में) बसा हुआ था तथा ग्रांड ट्रंक रोड पर स्थित होने के कारण वह लाहौर और दिल्ली के बीच आने-जानेवाली सेनाओं के मार्ग पर पड़ता था, उन्होंने उसे अपनी आगामी सैनिक राजधानी के रूप में चुना। इस चुनाव के पक्ष में बहुत-सी बातें थीं। सिख इसे 'गुरु का काशी' मानते थे। उनका विश्वास था कि जो भी सिख उस स्थान में मृत्यु को प्राप्त होगा वह सीधा स्वर्ग को जाएगा। वह उनके वास्तविक स्थान मांझा के केंद्र में था। तथा उसके चारों ओर पलास के वृक्षों का घना जंगल था। अतः, वे वहाँ की जनता से मित्रता-पूर्ण व्यवहार की आशा कर सकते थे तथा आवश्यकता के समय सुरक्षा से पीछे हट सकते थे। इन सब के साथ-साथ वे लाहौर दरबार की नीति तथा वहाँ की सेनाओं की गतिविधियों पर भी बहुत अच्छी तरह नज़र रख सकते थे।

उत्सव की समाप्ति पर सिखों ने निर्माण-कार्य आरंभ कर दिया। हरि-मंदिर के गुरुद्वारे से दो मील की दूरी पर स्थिति पवित्र रामसर सरोवर के समीप उसकी नींव रखी गई। दो गज़ चौड़ी नींव खोदी गई। सिख खुद ही राज, मज़दूर तथा बढ़ई का काम करने लगे। किले की चारों दीवारों पर एक साथ ही काम शुरू हो गया। दरवाज़ों तथा गुंबदों की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया गया। दुर्ग के चारों ओर एक गहरी तथा चौड़ी खाई खोदी गई। इसे "रौनी" का नाम दिया गया। दुर्ग "रामरौनी" (भगवान का आश्रय) कहलाया।[1] यह 500 आदमियों को आश्रय देने के लिए एक छोटा-सा गारे-मिट्टी का दुर्ग था। इस प्रकार का छोटा दुर्ग बनाने के पीछे शायद यह विचार काम कर रहा था कि वे लोग सरकारी अधिकारियों की ईर्ष्या को जागृत नहीं करना चाहते थे। उनके लिए तो यह एक दुर्ग था, परंतु लगता यह था कि यह किसी ज़मींदार की भली प्रकार से सुरक्षित हवेली-मात्र हो। वैसा दिखने का कारण यह भी था कि

---

[1]इस दुर्ग को एम० ग्रेगोर ने अपनी पुस्तक "हिस्ट्री आफ दी सिख्स", खंड i, पृ० 131 में इसे "राम रौरी" का अशुद्ध नाम दिया है। यही गलती कन्हैया लाल ने "तारीख-अए-पंजाब" पृष्ठ 73 में इसे "'राम रतनी'" कह कर की है तथा सर जदुनाथ सरकार ने "फाल ऑफ दी मुगल एंपायर" खंड i, पृ० 426 में इसे "राम रोटी" कह कर की है।

खुशवक्त राय, 83; रतनसिंह, 398–400; ज्ञानसिंह, 683-4; राज खालसा, 3; प्रिंसेप, 9।

इसके चारों ओर दूर-दूर तक खेत फैले हुए थे। शीतकाल में उनमें गेहूँ, चना तथा सरसों पैदा होती तथा ग्रीष्म में चारा पैदा होता। दुर्ग के पूरा हो जाने पर वे लोग मंदिर तथा सरोवर को सुंदर बनाने के काम पर जुट गए। अमृत सरोवर के समीप ही हरीसिंह भंगी को भी अपना कटरा अर्थात् निवास-स्थान बनाने की अनुमति दे दी गई।

7. शाहनवाज़ खाँ का शासन

शाहनवाज़ खाँ ने अपने भाई को बंदीगृह में डाल कर मार्च, 1747 में प्रांतीय सरकार हथिया ली। नए सूबेदार का वर्णन सब समकालीन लेखकों ने एक असंयमी तथा रक्तपिपासु मनुष्य के रूप में किया है। "तारीख-ए-मुहम्मद-शाही" के लेखक ने तो उसे नादिरशाह से भी अधिक क्रूर बताया है। उसका प्रशासन अत्याचार तथा उत्पीड़न से भरा हुआ था। वह प्राय: छोटे-मोटे कुसूरों के लिए अत्यधिक कठोर तथा अमानुषिक दंड दे दिया करता था। आँख निकलवाने तथा पंगु बना देने के दंड तो बहुत सामान्य दंड थे। नीचे उद्धृत किए गए लेखक हमें बताते हैं कि नवाब के क्रूर प्रशासन ने बहुत से शांति-पूर्ण जीवन बितानेवाले किसानों को चोर-डाकू बना दिया।[1]

पंजाब प्रांत का इस प्रकार हड़पा जाना दिल्ली दरबार को फूटी आँखों भी नहीं सुहाया। परंतु शाहनवाज़ खाँ के विरुद्ध कोई कठोर कदम नहीं उठाया गया। इसका कारण यह था कि वज़ीर कमरुद्दीन खाँ पहले अपने दामाद याहिया खाँ को सुरक्षित रूप से मुक्त करवा लेना चाहता था। इस बात की बहुत-कुछ संभावना थी कि दिल्ली से सेना भेजने पर उसे मौत के घाट उतार दिया जाता। वज़ीर ने शाहनवाज़ खाँ को समझौता करने के लिए अनेक पत्र लिखे। उसने याहिया खाँ को स्वतंत्र करने की माँग की परंतु उसने सदैव यही उत्तर दिया कि याहिया खाँ की स्वतंत्रता इस बात पर निर्भर करती है कि उसे शाही फ़रमान द्वारा पंजाब की सूबेदारी पर स्थायी रूप से नियुक्त कर दिया जाए।[2] परंतु जुलाई के अंत में याहिया खाँ के भाग निकलने के कारण दिल्ली के वज़ीर तथा अपने मामा के साथ किसी समझौते पर पहुँच पाने की शाहनवाज़ खाँ की सब आशाएँ मिट्टी में मिल गईं। उसने एक और प्रयत्न किया। उसने बादशाह के पास एक दूत इस प्रार्थना के साथ भेजा कि उसे उसकी भूलों के लिए माफ़ी

---

[1]अशूब, ii, 451-2; बख्त मल, 60; खुशवक्त राय, 76; सोहन लाल, i, 114; अहमद शाह, 857; अली-उद्-दीन, 106ख।

[2]अशूब, ii, 452; बयान, 161; इबरत, मिकल, ii, 55क।

दे दी जाए तथा वज़ीर के अधीन उसकी नियुक्ति नायब सूबेदार के पद पर कर दी जाए। दूत 3 सितंबर, 1747 को दिल्ली पहुँचा परंतु उसे कुछ सफलता न मिल पाई। शाहनवाज़ खाँ को अब विश्वास हो गया कि अब बादशाह तथा उसका वज़ीर उसे अवश्य दंडित करेंगे। फल यह हुआ कि वह सोचने लगा कि कहाँ-कहाँ से सहायता प्राप्त हो सकती है। इस समय भारत के राजनीतिक आकाश में एकाएक विपत्तियों के काले बादल छा गए और उसमें एक बार फिर नया राजनीतिक परिवर्तन होने वाला था।

8. पहला दुर्रानी हमला, दिसंबर, 1747--मार्च, 1748

नादिरशाह की हत्या 9 जून, 1747[1] को की गई। उसका सबसे काबिल सिपहसालार अहमदशाह अब्दाली शक्ति प्राप्त करने में सफल हुआ तथा उसने अफ़गानिस्तान में एक स्वतंत्र वंश को जन्म दिया। जिसे दुर्रानी भी कहा जाता है।[2] नादिरशाह ने काबुल के बूढ़े मुग़ल सूबेदार को अपने पद पर बने रहने दिया था, उसके पुत्र नासिर खाँ को मार भगाने के बाद दुर्रानी ने पीछे हटते हुए सूबेदार का पेशावर तक पीछा किया। इस स्थान को अपना अड्डा बनाकर तथा अपने सामने कोई बाधा न देख, वह अफ़गानिस्तान की जन-शक्ति के बलबूते पर भारत को, जिसे पश्चिम के लोगों ने सदैव कुबेर के खज़ाने के रूप में देखा है, लूटने का स्वप्न देखने लगा।

जैसा कि हम पहले ही बता चुके हैं, शाहनवाज़ खाँ लाहौर में अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के लिए शक्तिशाली मित्रों की खोज में था। पेशावर में अहमदशाह दुर्रानी की उपस्थिति का उसने स्वागत किया। अपने पिछले कारनामों के परिणामों के भय से उसने दिल्ली के बादशाह के विरुद्ध उससे सहायता की प्रार्थना की। अहमदशाह ने अपने प्रथम प्रयास की अद्वितीय सफलता से उत्साहित होकर

---

[1]आक्रमण के बाद भी नादिरशाह ने दिल्ली-दरबार से अपने संबंध बनाए रखे। उसने एक पत्र के साथ 81 घोड़े मुहम्मदशाह को तथा नौ-नौ घोड़े उसके दो मंत्रियों को भेजे। ये 2 मई, 1746 को दिल्ली पहुँचे। इसके बदले में मुहम्मदशाह ने 51 हाथी नादिरशाह को भेंटस्वरूप भेजे। ये सब 1 जुलाई, 1746 को लाहौर पहुँचे। आनंदराम, 168, 170।

[2] अब्दाली तथा दुर्रानी की उपाधियों के बारे में विस्तार से जानने के लिए देखें—आर० सी० टेम्पल की टिप्पणी, इंडियन एन्टिक्यूरी, खंड XII सितंबर, 1883, पृ० 259 तथा जे० ए० एस० बी० खंड XLIX, पृ० 95।

उसके निमंत्रण को एकदम स्वीकार कर लिया। जब वह नादिरशाह के साथ भारत आया था तो उसने दिल्ली साम्राज्य की कमज़ोरी को भली-भाँति अनुभव कर लिया था। फलस्वरूप वह दिसंबर 1747 के मध्य में पेशावर से चला तथा 8 जनवरी, 1748 को लाहौर के पश्चिम में 4 मील की दूरी पर स्थित शाहदरा आ पहुँचा। इस बीच शाहनवाज़ खाँ के रवैये में भी परिवर्तन आ चुका था। उसके साथ अपने संबंधों से लाभ उठाते हुए दिल्ली के वज़ीर ने उसे समझौते तथा खुशामद भरे पत्र लिखे तथा उसके हृदय में सम्मान तथा देश-भक्ति की भावनाओं को उत्तेजित किया। इससे युवक सूबेदार का हृदय द्रवीभूत हुआ तथा उसने जिस आक्रांता को कुछ समय पहले ही निमंत्रित किया था उसका विरोध करने के लिए तैयारियाँ आरंभ कर दीं।[1]

अहमदशाह ने शाहनवाज़ खाँ को फिर से अपनी ओर मिलाने का पूरा प्रयत्न किया, परंतु वह असफल रहा।[2] इसलिए वह 10 जनवरी को रावी पार कर शालामार उद्यान में आ डटा। अफ़गानियों तथा मुग़लों के बीच 11 जनवरी को युद्ध हुआ। शाहनवाज़ खाँ पराजित हो कर उसी रात दिल्ली की ओर भाग खड़ा हुआ।

अब्दाली ने राजधानी के बाहरी भाग को और विशेषरूप से मुग़लपुरा मुहल्ले को, जो नगर का सबसे समृद्धिशाली हिस्सा था, खूब लूटा परंतु बाकी नगर को उसने 30 लाख रुपया लेकर छोड़ दिया। शाहनवाज़ खाँ का पूरा असबाब जिसमें शिविर का सामान, तोपखाना, हाथी-घोड़े तथा ऊँट आदि थे, विजेता के हाथ लगे तथा इससे उसके सैन्य-साधनों में बहुत वृद्धि हुई। दिल्ली पर आक्रमण की आवश्यक तैयारियाँ करने के लिए अब्दाली, कसूर के जुमला खाँ[3] को लाहौर में अपना सूबेदार बना कर, 19 फरवरी को वहाँ से चल दिया।

---

[1]सियार का लेखक इस बात के लिए अदीना बेग को दोषी ठहराता है कि उसने शाहनवाज़ खाँ को अब्दाली को निमंत्रित करने के लिए प्रोत्साहित किया तथा साथ ही दिल्ली दरबार को इसकी सूचना भी दे दी। (दे० सियार iii, 9, 16-17)

[2]अहमदशाह ने हारून खाँ तथा साबिर शाह को एक के बाद एक अपना दूत बना कर शाहनवाज़ खाँ के पास भेजा। परंतु पहले को तो बेइज्ज़त करके निकाल बाहर किया गया तथा दूसरे को कत्ल कर दिया गया। बयान, 163-4; सियार, iii, 17; मुजफ्फरी, 74क; हुसैन शाही 20; तारीख-ए-अहमद, 6।

[3]इलियट, भाग VIII, में वर्णित जिला खाँ पृ० 106 तथा सोहनलाल द्वारा वर्णित जाली खाँ, i, 123।

शाहनवाज़ खाँ के दिल्ली पलायन ने अकर्मण्य बादशाह, उसके वज़ीर तथा दरबार को झकझोर दिया। वज़ीर कमरुद्दीन खाँ के अधीन 2 लाख की विशाल सेना अफ़गानियों की प्रगति रोकने के लिए भेजी गई। शाही सेना के लोग 25 फरवरी को सरहिंद के समीप जा पहुँचे। वहाँ उन्हें यह जानकर बहुत आश्चर्य हुआ कि उस स्थान का सूबेदार अली मुहम्मद अपने अफ़गानी भाई से लड़ाई लड़ने से बचने के लिए बरेली जिले में स्थित ओनला भाग गया। उन्होंने सरहिंद को आधार बना कर युद्ध करने का निश्चय किया। आगे बढ़ने से पूर्व उन्होंने अपना भारी सामान, अतिरिक्त हथियार तथा गोला-बारूद सरहिंद में छोड़ दिया। इसके साथ ही साथ उन्होंने महिलाओं को, जिसमें वज़ीर का हरम भी सम्मिलित था सरहिंद के उसी छोटे दुर्ग में 1,000 घुड़सवार तथा पैदल सेना के साथ छोड़ दिया।

शाही सेनाओं ने लुधियाना के सीधे मार्ग को छोड़ कर 20 मील उत्तर-पूर्व मच्छीवाड़ा के स्थान पर सतलज को पार करने का निश्चय करके एक घातक भूल की। सरहिंद से अपना संचार संबंध न बनाए रखकर, लुधियाना दुर्ग के पास सतलज के घाट में संरक्षक दस्ते न रख कर तथा शत्रु की गतिविधियों पर कोई नज़र न रखकर तो उन्होंने और भी भयंकर भूल की। दूसरी ओर शत्रु बहुत सजग तथा सक्रिय था तथा अपनी प्रत्येक गतिविधि और स्थिति को पूरा तरह गोपनीय रखता था। अब्दाली 1 मार्च, 1748 को लुधियाना के उस पार सतलज के तट पर पहुँच गया। बिना किसी विरोध के उसने नदी पार की तथा रातोंरात 40 मील का फ़ासला तय करके उसने 2 मार्च की सुबह सरहिंद के किले को अपने कब्ज़े में ले लिया। किले के सब सैनिकों को उसने तलवार के घाट उतार दिया, युद्ध-सामग्री के संपूर्ण भंडारों पर अधिकार जमा लिया तथा स्त्रियों को ग़ुलाम बना लिया।[1]

शाही दल को बहुत हानि उठानी पड़ी। सरहिंद के पतन का समाचार सुनकर तो उनकी निराशा का कोई ठिकाना न रहा। वे मच्छीवाड़ा से मनुपुर (सरहिंद

---

[1]अब्दाली ने अपनी सेनाओं को आज्ञा दी थी कि जिस किसी भारतीय को वे शिविर या मैदानों में पाएँ उसे वहीं कत्ल कर दें। इससे वज़ीर या किसी और सरदार का कोई भी गुप्तचर जो समाचार लाने गया वापिस न लौटा।" (मुजमिल, 101, सरकार i, 218)।

दुर्ग में वज़ीर द्वारा बंधक के रूप में रखे गए अली मुहम्मद रोहिल्ला के पुत्र अब्दुल्ला खाँ तथा फ़ज़ुल्ला खाँ को भी अब्दाली ने अपने साथ रख लिया। बाद में उन्हें अक्तूबर 1751 में मुक्त कर दिया गया। (गुलिस्तान-ए-रहमत, 25 और 45-6)।

से उत्तर-पश्चिम की दिशा में 10 मील की दूरी पर) लौट गए । यहाँ उन्हें अफ़गानों के कुछ दस्ते इधर-उधर घूमते दिखाई पड़े । शाही दल वालों ने वहीं अपनी खाईबंदी कर ली । अब्दाली ने सरहिंद को तो अपना आधार बनाया तथा उसके 5 मील उत्तर-पश्चिम में खाईबंदी कर ली । शुरू-शुरू में तो उनमें छोटी-मोटी मुठभेड़ें होती रहीं । ग्यारह मार्च को जब वज़ीर एक बड़े आक्रमण का नेतृत्व करने की तैयारी में लगा हुआ था तो वह एक तोप के गोले से घातक रूप से आहत हो गया । अपने पुत्र मुइन-उल्-मुल्क को बुला कर उसने कहा, "मेरे बेटे ! मैं तो अब चला, मेरी इहलीला अब समाप्त होने को है, परंतु बादशाह का काम अभी समाप्त नहीं हुआ है । इस खबर के फैलने से पहले ही घोड़े पर सवार होकर धावा बोल दो । उसके बाद तुम आकर मेरी खबर ले सकते हो"। (आनंद, 347) ।

इसके बाद वज़ीर का प्राणांत हो गया । मुइन ने अपने पिता के प्रति जो भावनाएँ थीं उनको दबाया तथा अपने पिता के हाथी पर उसी के झंडे को लेकर जा सवार हुआ । उसने आक्रमण का नेतृत्व किया । मध्य भाग में शाहज़ादा अहमद शाह था । इसके आगे मुइन था । दाहिने स्कंध पर सफ़दरजंग तथा बाएँ पर ईश्वरीसिंह था । दुर्रानी ने अद्भुत चालें चलीं । एक हज़ार घुड़सवार प्रत्येक स्कंध पर अचानक दिखाई पड़े, उन्होंने गोलियाँ की बौछार की तथा नवीन दस्तों को आगे बढ़ने का स्थान देते हुए वे धीरे-धीरे पीछे हट गए । इस भाँति नए तथा ओजस्वी आदमी हर बार आगे आ जाते । इस नई चाल के कारण बायाँ स्कंध मुकाबला नहीं कर सका तथा राजपूतों का अंधाधुंध कत्ल हुआ । मध्य भाग में घमासान युद्ध हुआ । एक गोली ने मुइन की चमड़ी को छील दिया । एक गोली उसके भाई के पाँव में आकर लगी । अदीना बेग दो बार घायल हुआ तथा और बहुत से प्रमुख अधिकारी मारे गए । दाहिने स्कंध ने बहादुरी से शत्रु का सामना किया तथा अफ़गानों को मार भगाया । इसके बाद सफदरजंग मुइन की सहायता के लिए जा पहुँचा । इसी समय दुर्रानी के राकेट तथा बारूद के भंडार में आग लग गई तथा 1,000 अफ़गान वहीं मारे गए । इस भाँति दुर्रानी मानो सरौते के फलकों में फँस गया । वह मैदान छोड़ कर भाग खड़ा हुआ । तथा पंजाब पुनः मुग़ल साम्राज्य के अधिकार में आ गया ।

शत्रु का तत्काल पीछा करके शाही दल ने अपनी विजय का पूरा लाभ नहीं उठाया । लड़ाई (16 मार्च) के पाँच दिन बाद भारतीय अपने शिविरों से बाहर निकले । तब तक अहमदशाह अब्दाली अपने घर की ओर लौट चुका था, इसलिए शाही दल वालों ने भी 12 अप्रैल तक सतलज के तट पर आनंद-मंगल मनाया । इसके बाद शाहज़ादा अहमदशाह दिल्ली की ओर चल दिया तथा मुइन-उल्-मुल्क

ने भी पंजाब के सूबेदार के नए पद को सँभालने के लिए लाहौर की ओर प्रस्थान किया ।[1]

9. सिखों की शांतिपूर्ण प्रगति

पिछले अध्याय में बताया जा चुका है कि सिख या तो अपने गाँवों को वापस चले गए थे या फिर अमृतसर में बस गए थे, जहाँ उन्होंने रामरौनी दुर्ग बनाना आरंभ कर दिया था । जो सिख अपने गाँवों को चले गए थे उन्होंने गुरु गोविंदसिंह के उपदेशों को शांतिपूर्ण ढंग से फैलाने का अत्यधिक महत्वपूर्ण कार्य किया । सीधे-सादे किसान तथा दूसरे ग्रामवासी देख चुके थे कि धूल में मिल जाने के बाद भी सिख किस तरह अपनी शक्ति बढ़ाते जा रहे हैं । जब कभी सिख अपने घरों को जाते तो वे सभी गतिविधियों के केंद्र बन जाते थे । उनके द्वारा भोगी गई यातनाएँ तथा उनकी बहादुरी के कारनामे हर एक के ओठों पर होते थे । गाँव के युवक उन्हें घेर लेते तथा बड़े उत्साह तथा लगन से उनके दुःसाहसिक कार्यों को सुनते । वे उनके साथ खेलों में शामिल होते । उनसे कुश्तियाँ लड़ते तथा उनके साथ शिकार पर जाते । गरीब आदमी तथा औरतें उनके द्वार पर भिक्षा माँगने जाते । सताए हुए लोगों के ज़ख्मों पर मरहम रखना, ग़रीब तथा विपदा के मारों को राहत पहुँचाना सिखों ने अपना सब से प्रमुख धार्मिक सिद्धांत बना लिया था । इसलिए सताए गए लोग भी उनके पास दुःख निवारण के लिए आते थे । वह युग गिरोहबाज़ी का युग था । एक आदमी भले ही अपने बलबूते पर कुछ न करे परंतु एक गिरोह के सदस्य के नाते वह बहुत कुछ करने तथा कर गुज़रने का साहस कर सकता था । गिरोह के भाई-चारे की छत्रछाया में पनपने वाले व्यक्तित्व पर इस तत्व का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा । इन्हीं कारणों से मध्य पंजाब के किसानों में सिख-धर्म ने जन-आंदोलन का रूप ले लिया । जब सिख

---

[1]अहमद शाह, 859–63; आनंदराम, 34–77; मुजमिल, 101–12; बयान, 164–7; (ये सब समकालीन हैं); दे० अमीरा, 97–8; ज़फर-नामा, 4 ख, 12 क; सियार, iii, 18-9; हुसैन शाही, 27–30; मुज़फ्फरी, 74 क-ख, शिव परशाद, 14 ख, 15 क; इमाद, 59 क, 62 क; चहर-गुलज़ार, 426 ख,427 क; चहर गुशन, 16 क; चहर चमन, 165 ख,166 क; तारीख-ए-सलातीन-ए-अफ़गानान, 148; इबरतमिकल, i, 56 ख-57 ख; मुस्तकिस, 298क; तारीख-ए-अहमद,7–8; तारीख-ए-अली, 126; अली-उद्-दीन, 108 क-109 ख; सरकार, i, 211–33 ।

अपने घरों से अमृतसर या अपने किसी अड्डे को वापिस जाते तो उनके साथ गाँवों के अनेक युवक सिख-धर्म में दीक्षित होने तथा खालसा जमात में भरती होने के लिए हो लेते। ये सब बातें तथ्यों पर आधारित हैं। इनका अध्ययन हम आगे चल कर करेंगे। एक सिख सरदार के जत्थे में अधिकतर उसी के गाँव के या फिर उसके रिश्तेदारों या मित्रों के गाँवों के ही युवक होते थे।

इस प्रकार सात मास (मई–नवंबर) के इस समय का अच्छा उपयोग किया गया। अमृतसर के सिखों ने आराम से रामरौनी के दुर्ग का निर्माण किया। अपने मंदिर तथा सरोवर को बड़ी शान-शौकत से सजाया-सँवारा तथा उसके समीप ही अपने रहने के लिए एक कटरा भी बना लिया।

नवंबर के शुरू में ही दुर्रानी के आसन्न आक्रमण की अफ़वाहें देश में चारों ओर फैल गईं। सिख लोग हथियार लेकर एक बार फिर उठ खड़े हुए। दूसरे नागरिकों की भाँति उन्होंने भी अपनी औरतों तथा बच्चों को जम्मू, चंबा, कांगड़ा, तथा होशियारपुर की पहाड़ियों में भेज दिया तथा फिर अपने पवित्र स्थानों को विनाश से बचाने का बहाना लेकर वे अमृतसर में आ जुटे। अहमदशाह दुर्रानी तथा उसी की नाम-राशिवाले दिल्ली के शहज़ादे के बीच युद्ध प्रारंभ होने पर सिखों ने न तो मुग़लों के साथ सहयोग किया और न ही अफ़गानों के साथ। उनका संघर्ष तो दोनों के विरुद्ध था।[1] ऐसा प्रतीत होता है कि सिख बारी दोआब के उत्तरी भागों में चले गए। वहाँ उनकी मारधाड़ को रोकनेवाला कोई न था। इस भाँति अब वे अपने शत्रुओं से गिनगिन कर पुराने अत्याचारों का हिसाब चुकता करने तथा लूटमार द्वारा अत्यधिक धन अर्जित करने लगे। वे रावी तथा जालंधर के दोआब के एक बड़े भाग के स्वामी बन बैठे, तथा आस-पड़ोस के देशों पर भी आक्रमण करने लगे।[2]

10. पीछे हटते हुए अफ़गानों पर सिखों का धावा, 18 से 26 मार्च, 1748 तक

अहमदशाह अब्दाली 11 मार्च को शाही सेनाओं द्वारा पराजित हुआ था। उसने 17 मार्च को लुधियाना के पास सतलज पार की तथा पीछा किए जाने के भय से वह शीघ्रता से लाहौर की ओर भागता हुआ चला गया।

---

[1]अब्दाली उनके साथ बातचीत कर सकता था। उसके पास आदमी कम थे तथा भारत में अपने हाथ मज़बूत करने के लिए उसे स्वस्थ सैनिकों की बहुत आवश्यकता थी। परंतु इस बारे में कोई हवाला हाथ नहीं लगा है।

[2]दे० ज्ञानसिंह 684; शमशीर खालसा, 85; मालकाम, 91।

लाहौर पहुँच कर उसने हड़बड़ी में जो कुछ बटोरा जा सकता था, बटोरा और जल्दी-जल्दी अफ़गानिस्तान की ओर बढ़ चला ।

सिखों को इन सब बातों का पता था । उन्होंने निश्चय कर लिया कि परास्त जनरल से छेड़खानी किए बिना वे उसे पंजाब से बाहर नहीं जाने देंगे । जब तक वह चिनाब न पहुँच गया उन्होंने अब्दाली की सेना के पिछले भागों पर अनेक स्थानों पर धावे बोले तथा घोड़े, ऊँट, हथियार तथा माल-असबाब के रूप में बहुत-सा माल लूट में अर्जित किया ।[1]

11. दल-खालसा की स्थापना, 29 मार्च, 1748

पिछले पृष्ठों में हम यह देख चुके हैं कि सन् 1745 में सिखों ने अपने छोटे-छोटे जत्थे बना लिए थे । इनमें वे नए रंगरूटों को भर्ती करते तथा उन्हें हथियारों और घोड़ों से सुसज्जित करते थे । नेतागण अपनी निजी महत्वाकांक्षाओं से प्रभावित थे । वे अब तक छोटे-मोटे कार्यों से ही संतुष्ट थे । घल्लूघारा के मामूली से अवसर के सिवा उन्हें कभी अपनी शक्तियों को एकत्रित करने का अवसर न मिला था । वहाँ भी वे एक सर्वोच्च नेता की कमान के अधीन नहीं लड़े थे ।

कमान की एकता के अभाव में भी सिख सैनिकों में बहुत उत्साह तथा सहन-शक्ति थी । अर्ध-शताब्दी तक प्रशिक्षण प्राप्त करने के कारण वे मृत्यु का उपहास करनेवाले पैदाइशी योद्धा बन चुके थे । युद्ध को तो वे पुरुष के लिए एक सम्मान-नीय पेशा समझते थे । आमने-सामने होकर युद्ध करना उनके लिए वैसा ही था जैसा कि एक अँग्रेज़ के लिए फुटबाल या घुड़दौड़ का खेल खेलना । सिख बड़े स्थिरचित्त तथा बलवान थे । भय के प्रति उनकी उतनी ही उपेक्षा थी जितना कि उनका अपने प्रति असीम गर्व तथा मुसलमानों के प्रति जन्मजात घृणा । छापामार लड़ाई, घात लगा कर लड़ना, छिप कर गोलाबारी करना तथा प्रलोभन देकर वश में करना उनकी प्रिय चालें थीं । वे आत्मसमर्पण करने तथा बंदी बनने की अपेक्षा अपना ही सफ़ाया कर लेना अधिक उचित समझते थे ।

---

[1]सोहन लाल, i, 172; अहमद शाह, 862; ग्रिफिन द्वारा लिखित "राजाज़" 457 । (बख्तमल के पृ० 65 के अनुसार सिखों ने सिंधु नदी तक उसका पीछा किया । यह विचार अतिशयोक्तिपूर्ण प्रतीत होता है । उनकी उस समय की शक्ति को देखते हुए यह संभव नहीं दिखता है कि उन्होंने विरोधी आबादी में घुसकर यह हिम्मत की होगी और फिर उन्हें बैशाखी के उत्सव में भी उपस्थित होना था जो सन्निकट था ।

छोटे पैमाने पर उनके संगठन से उन्हें स्पष्ट लाभ मिले। उन्होंने दूरदर्शिता से काम लेना, आज्ञा शिरोधार्य करना तथा महान उद्देश्यों की कल्पना करना सीख लिया। जिस नेता में आदेश करना व पालन कराने की योग्यता होती थी उसके अनुचर उसकी आज्ञा मानते, उसमें अटूट विश्वास रखते तथा उसका सदैव ध्यान रखते थे। शायद लूटमार में भी उसे औरों की अपेक्षा बड़ा भाग मिलता था। जिन लोगों को लेकर वह विजय प्राप्त करता, वे उसके प्रति बड़ी भक्ति रखते थे। अपने धर्म के विरोधियों के प्रति उनके मनोभाव समान थे। उनको एकता के सूत्र में बाँधने वाला धर्म भी एक था। लूट के माल से सरदार (नेता) काफ़ी मालामाल हो जाता था। समय-समय पर वह अपने अनुचरों को इनाम तथा भेंट आदि देकर उनको अपने साथ एक सूत्र में बाँधे रख सकने में समर्थ रहता था। यही नहीं, सफल अभियानों तथा विजयों के लगातार चलते रहने के कारण वे एक सूत्र में सदैव के लिए बँध जाते थे।

खालसा के बढ़ते हुए प्रभाव का यथासमय एक और विकास होना अवश्यंभावी था। वह विकास था सारे लड़ाकू सिखों को एक स्थायी राष्ट्रीय सेना के रूप में एकत्रित कर पाना। सिखों को इसकी कल्पना गुरु गोविंदसिंह तथा बंदा बहादुर ने मूर्त्त रूप में प्रदान की थी। अपने शत्रुओं का विरोध करते समय उन्होंने अनुभव कर लिया था कि एकता होना आवश्यक है। उनके सामने इतनी कठिनाइयाँ थीं कि उनके लिए यह अनिवार्य हो चुका था कि वे मिलकर तथा किसी सिद्धांत पर एकमत होकर एक निकाय के रूप में काम करें। चारों ओर से ख़तरों से घिरे होने के कारण, उन्हें एकता में ही सफलता की एक आशा किरण दिखाई देती थी। इसी के सहारे वे जीवित रह सकते थे।

ये ही वे बातें थीं जिनके कारण कुछ बुद्धिमान तथा दूरदर्शी सिख नेताओं ने प्रत्येक दल के सरदार तथा सैनिकों के बीच की आसक्ति के घेरे को विस्तृत करने की आवश्यकता का अनुभव किया। एक सर्वोच्च कमान की छत्रछाया में आकर ही यह हो सकता था। इस भाँति प्रत्येक व्यक्ति न केवल अपने साथियों और मुखिया से, बल्कि संपूर्ण पंथ के साथ एक सूत्र में बँध गया। यह भी अनुभव किया गया कि 65 मुखियों[1] की स्वतंत्र स्थिति जिसमें तेज़ी से विकास हो रहा था,

---

[1]अली-उद्-दीन के पन्ने 110 क-ख से यह अंश यहाँ दिया जा रहा है। इनमें से कुछ ग्रिफ़्स से भी लिए गए हैं। दे० सोहन लाल, i, 127-8।

(1) पंजवाड़ का हरीसिंह भंगी (पंजाब चीफ्स, 385)
(2) पंजवाड़ का झंडा सिंह (पं० ची० 386)
(3) पंजवाड़ का गंडा सिंह (पं० ची० 386)
(4) नत्था सिंह (पं० ची० 365)

इस प्रकार के कदम उठाए बिना उन्हें शक्तशाली नहीं बनाएगी। दूसरी ओर यह भय था कि यदि उन्हें अपनी ही राह चलते रहने दिया गया तो उनमें पारस्परिक ईर्ष्या तथा स्वार्थ की भावनाएँ उठ खड़ी होंगी।

---

(5) गुलाब सिंह
(6) चरत सिंह (चरत सिंह कन्हैया, पं० ची० 339)
(7) दीवान सिंह
(8) गूजर सिंह
(9) गरजा सिंह तथा
(10) निबाहू सिंह
} ये तीनों भूरीलाल गाँव के नत्था तथा लल्लन के पुत्र थे।
(चरत सिंह सूकरचाकिया का सेवक सरजा सिंह सन् 1763 में मरा, पं० ची० 308)
(11) करतारपुर के निकट मुश्तफाबाद का लहना सिंह
(12) फूलासिंह रोरन वाला
(13) बाघा गाँव का सनवाल सिंह रंधावा (पं० ची० 20)
(14) डोडा का गुरबख्श सिंह (पं० ची० 212)
(15) कलालवाला का दुनवासिंह
(16) चैनपुर का तारासिंह (माननवाला का तारासिंह। यह अमृतसर में नारली में बसा पं० ची० 177)
(17) सैयद महमूद गाँव का बाघ सिंह
(18) चौधरी बघेला के पुत्र हकीकत सिंह तथा
(19) महताब सिंह (पं० ची० 321)
(20) कान्हा का जयसिंह (पं० ची० 315)
(21) कान्हा का झंडा सिंह (पं० ची० 315)
(22) कान्हा गाँव के हरसों के पुत्र तारासिंह
(23) तथा मनोहरसिंह
(24) जयसिंह कन्हैया के भतीजे शोभा सिंह
(25) तथा भीम सिंह
(26) अमर सिंह बांघ (पं० ची० 305)
(27) भीका का शोभा सिंह
(28) फैजुल्लापुर के नाथू का पुत्र नवाब कपूर सिंह (पं० ची० 321, राजाज़ आफ़ दी पंजाब, 461)
(29) झावला का बघे सिंह
(30) गुलाब सिंह दल्लेवालिया

सिखों के सौभाग्य से उनमें एक ऐसा योग्य नेता प्रकट हुआ जिसका सब सिख सम्मान करते थे तथा जिसमें संगठन की असाधारण योग्यता थी। इस

---

(31) हरी सिंह दल्लेवालिया
(32) जस्सा सिंह अहलूवालिया
(33) नोध सिंह का सुसुर चाकिया (पं० ची० 11)
(34) नोध सिंह का ससुर गुलाब सिंह
(35) महताब सिंह
(36) रुरौरा सिंह
(37) हरी सिंह
(38) लज्जा सिंह (पं० ची० 171)
(39) नंद सिंह संघानिया (पं० ची० 543)
(40) कपूरसिंह सोरिआनवाला
(41) अमर सिंह किंगरा
(42) किला जीवन सिंह के साहिब सिंह तथा
(43) जीवन सिंह (साहिब सिंह सियालकोटिया, पं० ची० 386)
(44) दीप सिंह तथा 45—नत्था सिंह शहीद (मासी—218-9)
(45) मोहर सिंह रानियाँवाला
(46) माहन सिंह रानियाँवाला
(47) लंका फ्रंकिया का बाघसिंह
(48) झंडा सिंह सुल्तानोना
(49) मिर्जा सिंह कल्होन (पं० ची० 230)
(50) बुलाकी चक का शाम सिंह मान
(51) बुलाकी चक का माला सिंह (पं० ची० 452)
(52) शेखपुरा का बहल सिंह
(53) शेखपुरा का अमीर सिंह
(54) हीरा सिंह (पं० ची० 119)
(55) गंगा सिंह
(56) लाल सिंह
(57) अमर सिंह
(58) महताब सिंह
(59) रूप सिंह
(60) अनूप सिंह नाकाई
(61) दसौंदा सिंह (अदीना की नौकरी) में 1730–58; (पं० ची० 211)

व्यक्ति का नाम था जस्सा सिंह अहलूवालिया ।[1] उसने सुप्रसिद्ध सरदार नवाब कपूरसिंह के अधीन प्रशिक्षण प्राप्त किया था । नवाब सब से अधिक श्रद्धास्पद सिख नेता था । उसे नवाब ने निरंतर सहायता दी थी तथा उसका मार्गदर्शन किया था । इसके साथ ही साथ अपने विशुद्ध गुणों के सिख नेताओं में उसका स्थान बहुत ऊँचा उठ गया । नवाब वृद्ध होता जा रहा था । इसलिए वह युद्ध-प्रिय खालसा का नेतृत्व किसी और को सौंप देना चाहता था । उसकी आँखें होनहार जस्सा सिंह की ओर लगी हुई थीं, तथा वह किसी उचित अवसर की तलाश में था ।

अहमद शाह अब्दाली के पंजाब से निकल जाने के बाद यह अवसर भी आ गया । बैसाखी के पवित्र दिन (29 मार्च, 1748) सिख अमृतसर में इकट्ठे हुए । इस अवसर पर नवाब कपूरसिंह ने एकत्रित लोगों को पंथ में एकता की आवश्यकता के बारे में भली-भाँति समझाया तथा जस्सा सिंह को संपूर्ण सिख सेनाओं के सर्वोच्च पद पर बैठा दिया । समस्त लड़ाकू सिखों को 'दल खालसा' का नाम दिया गया । विभिन्न सिख मुखियों में से ग्यारह नेता अत्यंत योग्य थे । इसलिए 65 समूहों को ग्यारह प्रमुख प्रभागों में संगठित कर दिया गया । प्रत्येक को अलग नाम तथा पताका दी गई । परंतु उन सब की शक्ति अलग-अलग थी ।

1—अहलूवालिया जत्था : जस्सा सिंह अहलूवालिया के नेतृत्व में था । इसके साथ-साथ वह किसी भी चढ़ाई या लड़ाई के समय 'दल-खालसा' की मुख्य कमान भी संभालता था ।

---

(62) तारा सिंह घइबा (मासी—323)

(63) अमृतसर का धर्म सिंह खत्री

(64) मारी का सुख सिंह (मासी—192)

[1]जस्सा सिंह लाहौर के निकट अहलू गाँव के एक कलाल (शराब बनाने वाला) दयाल सिंह का पुत्र था । अहलू गाँव का होने के कारण ही उसका नाम अहलूवालिया पड़ा । उसका जन्म सन् 1718 में हुआ । अब वह केवल 15 वर्ष का ही था तो नवाब कपूर सिंह उससे बहुत स्नेह करने लगा । उसे पहल दी गई तथा सिखों के घोड़ों को दाना खिलाने के काम पर नियुक्त कर दिया गया । युवा होने पर वह एक लंबे शरीर तथा अद्भुत स्वास्थ्य-वाला युवक निकला । नाश्ते में ही वह एक सेर मक्खन तथा ढेर-सारी चीनी चट कर जाता था । एक समय के भोजन में वह आधे बकरे का मांस हड़प जाता था । रतन सिंह, 265-6; ज्ञानसिंह, 571 राज खालसा 370 ।

2—फैजुल्लाहपुरिया सिंहपुरिया जत्था : यह फैजुल्लाहपुर गाँव के सुप्रसिद्ध नवाब कपूरसिंह के अधीन था।

3—सूकरचाकिया जत्था : यह गुजराँवाला जिले के सूकरचक गाँव के नोंध सिंह के अधीन था।[1]

4—निशानवाला जत्था : यह दल-खालसा के ध्वज-रक्षक दसौंधा सिंह के अधीन था।

5—भंगी जत्था : हरी सिंह भंगी के अधीन।[2]

6—कन्हैया जत्था : लाहौर ज़िले के कान्हा गाँव के जयसिंह कन्हैया के अधीन।

7—नवाब जत्था : लाहौर ज़िले की तहसील चुनियाँन में बहरवाल गाँव के हरी सिंह नक्की के अधीन।[3]

8—दल्लेवालिया जत्था : रावी तट पर स्थित डेरा बाबा नानक के निकट दल्लेवाल गाँव के गुलाब सिंह के अधीन।

9—दीप सिंह का जत्था : आगे चल कर इसे शहीदी जत्था पुकारा जाने लगा। इस जत्थे का नेता अफ़गानों से लड़ता हुआ वीर गति को प्राप्त हुआ था। इसका वर्णन हम आगे पढ़ेंगे।

10—करोड़ा सिंघिया जत्था : पैजगढ़ के करोड़ा सिंह के अधीन।

11—नंद सिंह संघानिया का दल : आगे चल कर यह रामगढ़िया जत्था के नाम से पुकारा जाने लगा।[4]

---

[1]यह नोध सिंह महाराजा रणजीत सिंह का परदादा था। थोड़े दिनों बाद ही उसकी एक गुफ़ा में मृत्यु हो गई। मुग़ल सैनिकों से अपना बचाव करने के लिए उसने एक गुफ़ा में शरण ली थी। जब मुग़ल सैनिक उसे गुफ़ा के बाहर निकालने में असमर्थ रहे तो उन्होंने गुफ़ा में ही आग लगा दी। चरन सिंह, जो उस समय केवल 14 वर्ष का था, उसका उत्तराधिकारी बना। (अली-उद्-दीन, 203 ब)।

[2]इस जत्थे के नेता भूमा सिंह को भंग खाने की बहुत बुरी लत पड़ी हुई थी। उसकी इसी आदत के कारण उसे 'भंगी' की उपाधि दी गई तथा उसका जत्था भंगी जत्था के नाम से पुकारा जाने लगा। उसकी मृत्यु पर हरि सिंह उसका उत्तराधिकारी बना।

[3]हीरा सिंह को नक्काई इसलिए पुकारा जाने लगा कि वह दक्षिणी लाहौर में स्थित नक्का नामक स्थान का रहनेवाला था।

[4]दे० करम सिंह, फुलवाड़ी, मई, 1928, पृ० 573 तथा पंजाब चीफ्स 170; बख्तमल, 66; खुशवक्त राय, 103; सोहन लाल, i, 110; ब्राउनी, ii।

12. दल-खालसा का संविधान

इस अवसर पर सिखों द्वारा स्थापित तथा मैत्री और अवलंबन पर आधारित उस अपरिष्कृत पद्धति को संविधान का नाम देना उचित नहीं है। हमें सीधे-सादे अनपढ़ किसानों से यह आशा नहीं करनी चाहिए कि उन्होंने कोई विस्तृत योजना बनाई होगी जैसा कि हम विधान-सभाओं द्वारा पारित अधिनियमों तथा धर्म-गुरुओं द्वारा बनाए गए नियमों में देखते हैं। इस समय सिखों ने जो योजना अपनाई थी वह मानव-प्रकृति के सामान्य नियमों पर आधारित थी। यह पद्धति किसी विशेष उद्देश्य को सामने रखकर चिंतन के बाद नहीं बनी थी। इसलिए यह अस्थायी तथा अपूर्ण थी। जो कोई भी सिख गुरु गोविंद सिंह के उसूलों पर विश्वास करता था उसे दल-खालसा का सदस्य मान लिया जाता था। उनकी सहमति प्राप्त करने की कोई आवश्यकता नहीं समझी जाती थी। प्रत्येक व्यक्ति के लिए खालसा सेना में भरती होना अनिवार्य समझा जाता था। उन्हें अपने धर्म के शत्रुओं तथा उत्पीड़कों के विरुद्ध युद्ध करना था, इसलिए यह मान लिया गया था कि प्रत्येक धर्मनिष्ठ सिख दल-खालसा का सदस्य बन चुका है। परंतु दल-खालसा के किसी एकक में तब तक किसी को सम्मिलित नहीं किया जाता था जब तक कि उसे भली-भाँति हथियार चलाना तथा घुड़सवारी करना नहीं आ जाता था। प्रत्येक व्यक्ति को, चाहे उसने छोटे-से-छोटे घर में ही क्यों न जन्म लिया हो, अपनी इच्छानुसार अपना नेता चुनने का अधिकार था।

लूटमार के धावे या किसी शत्रु का खुल कर सामना करने के समय विभिन्न उप-प्रभाग संयुक्त हो जाते थे। इस प्रकार के अवसरों पर सेना 'दल-खालसा' कहलाती थी। सामान्य सहमति से सब मुखिये इस बात को मान चुके थे कि इस प्रकार के अवसरों पर संगठित कार्यवाही में उनका पथ-प्रदर्शित करने के लिए समय-समय पर अपने में से ही किसी एक को दल का मुखिया नियुक्त किया जाए तथा बाकी दस मुखियों की युद्ध-परिषद् या सलाहकार समिति बन जाए।

16; (उसने चरत सिंह के बदले चिरसाह सिंह, सुख सिंह के बदले तोकहा सिंह तथा करोड़ा सिंह के बदले किरवार सिंह, को जस्सा सिंह अहलूवालिया का साथी बताया है), सरूप लाल की तारीख-ए-सिक्खान, 2; तारीख-ए-पटियाला, 52।

जब इन प्रभागों ने भूभागों पर कब्ज़ा करना आरंभ किया तो ये "मिसिल" के नाम से पुकारे जाने लगे। यह एक अरबी शब्द है तथा इसका अर्थ है समरूपता। उनकी नींव समता के सिद्धांत पर रखी गई थी इसलिए सिखों ने प्रभाग के स्थान पर इस शब्द का प्रयोग किया है।

उनकी एकता इसलिए और बनी रही कि "शरबत खालसा" अर्थात् संपूर्ण सिख समाज वर्ष में दो बार—अर्थात् बैसाखी और दिवाली पर, जो प्राय: अप्रैल और अक्तूबर में पड़ती है—अमृतसर में इकट्ठा होता था। इन अवसरों पर सिख मुखिया अपने प्रधान नेता के सभापतित्व में एक विशेष सभा का आयोजन करते तथा 'पंथ' के विशेष हितों को ध्यान में रख कर संकल्प (गुरुमत) पारित करते। अकाली, अर्थात् वे पुरुष जो युद्ध तथा पूजा के प्रति पूर्ण निष्ठावान थे सिख-धर्म के केंद्रीय संघ थे। अमृतसर में रहकर वे धार्मिक मामलों में पूर्ण रूप से निदेश दे सकते थे। अनियमितता के सब मामले उनको निर्दिष्ट होते थे। इस भाँति वे धर्म-रक्षक का काम करते थे। वे पक्के धर्मोन्मत्त व्यक्ति थे तथा सिद्धांतों की पवित्रता का पूरी तरह पालन करते थे। दोष विवेचक के रूप में वे सिखों के सामान्य आचरण पर निगरानी रखते थे तथा राष्ट्रीय परिषदों में प्रमुख भाग लेते थे। अपने धर्म में आने वालों को वे दीक्षा देते, समाज के कानूनों को तोड़ने वालों पर जुर्माना करते तथा आज्ञा न मानने वालों को वे न तो पूजा ही करने देते और न ही अमृतसर में किसी धार्मिक अनुष्ठान में भाग लेने देते।

इस भाँति एक प्रकार की संघीय एकता स्थापित हो गई तथा दल-खालसा के नेता को गुरुद्वारे तथा राज्य दोनों का ही मुखिया माना जाने लगा। जब आपतकाल की स्थिति नहीं होती थी तब प्रत्येक प्रभाग स्वतंत्रतापूर्वक अथवा मिलकर कार्य करता जैसी उसकी इच्छा अथवा आवश्यकता होती। प्रत्येक प्रभाग के सरदार को युद्ध में अपने अनुयायियों का नेतृत्व करना पड़ता था तथा शांति के समय उसे ही मध्यस्थ का काम करना पड़ता था। अपने साथियों पर सरदार की निरंकुश सत्ता नहीं होती थी। वे उसका यथोचित आदर करते तथा उसके साथ सम्मानपूर्वक व्यवहार करते थे, परंतु वे उसकी किसी भी ऐसी बात को मानने के लिए बाध्य नहीं थे जो समस्त पंथ, प्रभाग तथा आपसी लाभ के हित में न होती थी। इसलिए अपने साथियों की इच्छाओं तथा आवश्यकताओं के प्रति मुखिया को सदैव बहुत सावधानी बरतनी पड़ती थी। उसे उनके साथ बहुत होशियारी तथा समझा बुझा कर व्यवहार करना पड़ता था। केवल इसी एक मार्ग पर चलते रह कर वे उन्हें अपनी सेवा में बनाए रख सकते थे अन्यथा उनकी थोड़ी सी उदासीनता पर वे उसे छोड़ कर दूसरे सरदार से जा मिलते जो उनका स्वागत करने के लिए सदैव तैयार रहता था।

यही कारण था कि मामूली से मामूली सिख भी दल-खालसा में प्रसन्न रहता था क्योंकि वह अपने मुखिया के सब अत्याचारों तथा हिंसात्मक कार्यों से पूरी तरह मुक्त था। इसीलिए छोटे-से-छोटा सिख घुड़सवार भी प्राय: अपने स्वतंत्र विचार रखता था।

स्वैच्छिक सेवा की इस पद्धति के कारण मुखियों का उनके प्रति व्यवहार अच्छा होता था तथा लूट के माल तथा भूमि में भी उनका भाग सुनिश्चित होता था। लूट के कुल माल को मुखियों में उनके साथियों की संख्या के आधार पर ठीक-ठीक अनुपात में बाँट दिया जाता। मुखिया इसके बाद अपने आदमियों में फिर से विभाजन कर देता। किसी बँधे-बँधाए वेतन के स्थान पर यही उनका पारिश्रमिक था। सरदार के नाते-रिश्तेदार तथा मित्रगण ऊँचे-से-ऊँचे तथा नीचे-से-नीचे सिख से संबंध बनाए रखते थे। इसीलिए उनके बीच कोई बहुत बड़ा भेद नहीं रह गया था। सब एक ही वंश के थे तथा शस्त्रधारण ही उनका पेशा था। इसके साथ-साथ अंतिम गुरु तथा "पहौल" के बंधन में पाए जाने वाले आदेश के अनुसार वे भाईचारे के सुदृढ़ सूत्र में बँध गए थे। वे समान उद्देश्यों के लिए लड़ते तथा समान कष्ट भोगते। इस प्रकार उनके चरित्र तथा विचार-पद्धति का विकास भी समान ही हुआ।

जो सिख मुखिया दल-खालसा के विभिन्न दलों के प्रधान पद पर थे वे सचमुच महान् सैनिक तथा अंतर्दृष्टि वाले व्यक्ति थे। उनमें बड़ी-बड़ी योजनाएँ बनाने, बात को ठीक-ठीक समझ सकने तथा उसके मर्म तक पहुँचने की शक्ति थी। उनमें से प्रत्येक सिख शक्ति का निर्माण कर रहा था। उसे ऐसे साधनों की आवश्यकता थी जिन पर वह पूरा-पूरा भरोसा कर सके। अपने अधीन काम करने वाले सैनिकों के रूप में उसे वे प्राप्त हो गए। उन सब के दिलों में बड़े-बड़े अरमान थे और इसलिए वे अपने सरदार की आज्ञा मानते, उसके पदचिह्नों पर चलते तथा उसकी सहायता करते। इस भाँति सरदार तथा सैनिक एक समान उद्देश्य से बँधे होने के कारण ख्याति पर ख्याति अर्जित करते चले गए।[1]

दल-खालसा की स्थापना के लिए उठाया गया कदम सिखों के इतिहास में सब से अधिक महत्वपूर्ण बात थी। इसने बत्तीस वर्ष के बाद उन्हें एक बार फिर एकता के सूत्र में बाँध दिया। इसने सिखों को एकता और शक्ति का अति उपयोगी मंत्र सिखाया, कठोर से कठोर, अमानुषिक अत्याचारों के समक्ष भी उन्हें धार्मिक एकता के सूत्र में बाँधे रखा और उन्हें एक अनुशासित दल के रूप में संगठित किया। वे इस बात को समझ चुके थे कि अपने सरदार की आज्ञा मानना उनके लिए एक धार्मिक कर्तव्य है। उन पर लागू किया गया आदेश उस गुरु का है जिसने अपने व्यक्तित्व को पंथ के साथ एकाकार कर लिया

---

[1]दे० अहमद शाह, 966–8; सोहन लाल, भाग i, 14, का परिशिष्ट; एम० ग्रेगोर, i, 118-19; कनिंघम, 111–8; लतिफ़ का पंजाब, 290; गार्डन, 73–8, राज खालसा 382।

है। वे यह मान चुके थे कि पंथ के लिए किया गया प्रत्येक बलिदान ही गुरु की सच्ची सेवा है। उद्देश्य की इस एकता तथा तालमेल ने उन्हें अपने समय की सर्वश्रेष्ठ सैन्य शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया तथा राजनीतिक शक्ति बनने के लिए उनका मार्ग प्रशस्त कर दिया।

तीसरा अध्याय

सिख और मुइन-उल्-मुल्क

[अप्रैल 1748—नवंबर 1753]

1. मुइन-उल्-मुल्क द्वारा पंजाब का शासन संभाला जाना, अप्रैल, 1748

सिखों का शक्तिशाली सैन्य दल के रूप में संगठित होने का वास्तविक महत्व उन्हें संगठित होने के तुरंत बाद ही ज्ञात हो गया। उनके नए संविधान ने उन्हें वे साधन दिए जो आनेवाली कठिनाइयों में उनके लिए आवश्यक थे। सिखों को आशा थी कि नीति-भ्रष्ट दिल्ली दरबार याहिया खाँ या शाहनवाज़ खाँ जैसे किसी कमज़ोर व्यक्ति को ही लाहौर की सूबेदारी पर नियुक्त करेगा तथा वे अपने संगठन के बल पर अपनी मनमानी कर सकेंगे। जब उन्होंने देखा कि एकता के कारण वे उसी भाँति के शक्तिशाली हो चुके हैं जैसे कि गुरु गोविंदसिंह तथा बंदा बहादुर के समय में थे तो उनकी आशाएँ बढ़ गईं और उनके उत्साह की कोई सीमा न रही।

परंतु उनकी इन आशाओं पर शीघ्र ही वज्रपात होने वाला था। मृत्यु-शय्या पर पड़े मुहम्मद शाह ने मनुपुर की लड़ाई के वीर, तथा अफ़गान हमलावर को मार भगाने वाले को सीमांत के उस अत्यधिक विक्षुब्ध प्रांत की सूबेदारी पर नियुक्त करके सचमुच विशुद्ध—राज मर्मज्ञता का परिचय दिया। यह समझा गया कि वज़ीर कमरुद्दीन खाँ का पुत्र मुइन-उल्-मुल्क, जो कि मीरमन्नु के नाम से अधिक लोकप्रिय था, अपने कठोर अनुशासन तथा चतुर राजनय के सहारे भविष्य में उत्तर-पश्चिम से हमला करने वालों तथा पंजाब की दुर्जय किसान प्रजा के दिलों में भय का संचार करने के लिए सबसे अधिक उपयुक्त व्यक्ति होगा।

अप्रैल के मध्य तक उसने अपनी नवीन सरकार का कार्यभार संभाल लिया। कौड़ामल को उसने अपना दीवान नियुक्त किया तथा जालंधर दोआब[1] की फौज़दारी पर अदीना बेग खाँ की पक्की नियुक्त कर दी।

---

[1]खज़ाना-ए-अमीरा, 98; खुशवक्त राय, 79; अहमद शाह, 863-4; शाह यूसफ, 55 ख।

2. अपने नए शासन में मुइन की कठिनाइयाँ

नई सरकार मुइन के लिए कोई फूलों की शय्या नहीं थी। स्वर्गवासी ज़कारिया खाँ के पुत्रों, याहिया खाँ तथा शाहनवाज़ खाँ के बीच हुए गृह-युद्ध ने संपूर्ण खजाने को रिक्त कर दिया था तथा देश की सारी वित्त व्यवस्था भंग कर दी गई थी। गृह-युद्ध के तुरंत बाद ही दुर्रानी की चढ़ाई ने राजनीतिक क्लेश को और भी बढ़ा दिया था। इस उथल-पुथल से सिखों तथा कानून का उल्लंघन करने वाले अन्य लोगों को अनुकूल अवसर मिल गया तथा उन्होंने अपनी लूटमार को बहुत बड़े पैमाने पर बढ़ा लिया। लगातार बने रहनेवाले अफ़गानी आक्रमण ने मुइन की कठिनाइयों को और भी बढ़ा दिया। अपने शासन की कठिनाइयों को दूर करने के साथ-साथ मुइन-उल्-मुल्क को दुर्भाग्यवश (दिल्ली के नवीन वज़ीर) सफ़दरजंग की साज़िशों को विफल बनाने के लिए भी व्यवस्था करनी पड़ी। वज़ीर तुर्रानी दल का समूल नाश करने की कसम खाए बैठा था। वह मुइन को दिल्ली दरबार में अपना प्रतिद्वन्द्वी भी मानता था। मुइन, अपनी योग्यता के साथ-साथ अपने स्वर्गवासी पिता कमरुद्दीन खाँ की ओर से भी वज़ीरी के लिए दावेदार हो सकता था।

ऐसा प्रतीत होता है कि इन कठिनाइयों से निपटने के लिए मुइन ने एक उपाय सोचा। यह उपाय था एक सुसंगठित सेना को अपने अधीन रखना। तदनुसार उसने सेना का संगठन किया। इसमें अधिकतर उसी की अपनी जाति के मध्य एशिया के तुर्क ही थे। वे लोग नादिरशाह की सेना के विघटन (जून, 1747) के बाद नौकरी की तलाश में इधर-उधर मारे-मारे फिर रहे थे। मुइन उन पर पूरा-पूरा भरोसा भी कर सकता था।[1]

3. सिखों को दंड देने के लिए अभियान, लगभग मई-जून, 1748

प्रांत की शांति भंग करने वाले तत्वों में सिख सबसे अधिक क्लेश पहुँचाने वाले थे। इसलिए नए सूबेदार का सबसे पहले उन्हीं की ओर ध्यान गया।

---

[1]दो तुर्की जमादार जिनके नाम क्रमशः साबत-उद्-दीन तथा मुहम्मद नाज़िर बेग थे मुल्तान से लाहौर मुइन की सेवा करने के लिए आए। उन्होंने तीन तुर्की बालक भेंट में दिए, जिनकी आयु 8 से 9 वर्ष तक थी। (मिसकिन, 47-8) इनमें से एक जिसका नाम तहमारा मिसकिन था दिल्ली के एक नवाब के पद तक जा पहुँचा। उसने 1782 में आगे के चौदह वर्षों की पंजाब में घटी घटनाओं के बारे में एक पूर्णतः मौलिक वृत्तांत लिखवाया। यह बहुत महत्वपूर्ण है (ब्रिटिश म्यूज़ियम परशियन पाँडुलिपि 8807; सरकार की प्रति उद्धृत)।

देश में शांति स्थापित करने के काम पर जब मुइन जुट गया तो उसने सिखों का पीछा करने के लिए तथा उन्हें दंडित करने के लिए अभियान भेजने आरंभ कर दिए। मनुपुर की लड़ाई में उसकी विजय हुई थी इस कारण उसके नाम ने सिखों के हृदय में आतंक पैदा कर दिया था। अतः, वे लोग उसके दस्तों के पहुँचने से पहले ही पीछे हट गए। उन्होंने बारी-दोआब खाली कर दिया तथा जालंधर दोआब में चले गए। यहाँ अदीना बेग ने उनके प्रति कुछ मित्रता प्रदर्शित की। परंतु मुइन उन पिछले सूबेदारों से भिन्न था जिनको अदीना बेग चकमा देने में सफल रहा था। मुइन ने अदीना को सिखों को दबाने के लिए कठोर आदेश दिए। इच्छा न होते हुए भी अदीना बेग ने सिखों के विरुद्ध किए गए अभियान का नेतृत्व किया। फलस्वरूप जो मुठभेड़ हुई उसमें दोनों दलों को भारी हानि उठानी पड़ी। अकेले सिखों के 600 आदमी, उस लड़ाई में खेत रहे। सिखों की विशाल संख्या को देखते हुए अदीना बेग ने उनका पीछा करने का विचार त्याग दिया तथा बलवर्धन के लिए मुइन से प्रार्थना की।[1]

4. रामरौनी दुर्ग का घेरा
लगभग अक्तूबर, 1743 से फरवरी, 1749

इसी बीच वर्षा शुरू हो गई तथा आगे की सब कार्रवाइयाँ लगभग तीन मास (जुलाई से सितंबर) के लिए स्थगित की गईं। सिखों ने भी सरकार से छेड़-छाड़ न की तथा बारी और जालंधर दोआब के उत्तरी भागों में पर्वत-घाटियों तक ही अपनी गतिविधियों को सीमित रखा। जैसा कि पहले लिख चुके हैं उनके लिए यह एक धार्मिक आदेश था कि वे बैसाखी तथा दिवाली के उत्सव हरिमंदिर में मनाएँ। फलस्वरूप अक्तूबर में दिवाली के अवसर पर सिखों ने एक बार फिर अमृतसर में एकत्रित होने का खतरा उठाया। उन्होंने सरोवर में स्नान किया, मंदिर में प्रार्थनाएँ कीं, सारे स्थान को दीपों से जगमगाया तथा पवित्र ग्रंथ पर भेंट चढ़ाई। यह सब तो उन्होंने किया, परंतु वे मुइन-उल्-मुल्क की सरकार द्वारा उत्पन्न किए गए संभावित खतरों से अचेत नहीं थे। तदनुसार उन्होंने कुछ आवश्यक कदम भी उठाए। उनमें से पाँच सौ व्यक्तियों ने रामरौनी के दुर्ग में शरण ली और बाकी लोग आस-पास के जंगलों में छिप गए ताकि आपत् काल में वे दुर्ग के सैनिकों की सहायता कर सकें।

इस कहानी को किताब-ए-तारीख़-ए-पंजाब के लेखक खुशवक्त राय ने 83-4 पन्नों पर निम्नलिखित शब्दों में कहा है:—"यह खबर सुन कर नवाब

[1]सोहन लाल, i, 127–8; ब्राउनी, ii, 16; बख्तमल, 67।

मीरमन्नु अपनी सेनाओं को लेकर उनका पीछा करने चला। उसका हुक्म पाकर अदीना बेग भी उससे आ मिला। अमृतसर पहुँच कर उन्होंने रामरौनी जिसे अब रामगढ़ कहते हैं, घेरा डाल दिया। चार माह तक घेरा चलता रहा तथा नित्य प्रति झड़पें भी होती रहीं।[1] दुर्ग में जितने सैनिक थे उनमें से, इस बीच, 200 सिख मारे गए ? शेष सैनिकों ने जस्सा सिंह थोका (बढ़ई) को जो कि अदीना बेगा खाँ की सेना में था, एक पत्र लिखा। उन्होंने लिखा कि वह उनकी तबाही का कारण है क्योंकि वह मुसलमानों की ओर है और यदि वह उस दिन उसकी सहायता के लिए नहीं आएगा तो उसे वे फिर कभी अपने पंथ में नहीं लेंगे। अपने सह-धर्मावलंबियों का ख्याल करके जस्सा सिंह ने अदीना बेग खाँ की सेवा का त्याग कर उसी रात दुर्ग में प्रवेश किया।[2] घिरे हुए लोगों के धैर्य को इससे बहुत बल मिला। इस समय कौड़ामल जो नानक शाह के धर्म में विश्वास रखता था, दीवान के पद पर था। जस्सा सिंह ने दीवान को यह संदेश भेजा—"दुर्ग के सैनिकों को केवल आपके ही प्रयत्नों से राहत मिल सकती है। यदि आप प्रयत्न करें तो 300 जानें बचाई जा सकती हैं।" कौड़ामल ने नवाब से प्रार्थना करते हुए कहा, "सिखों ने सदैव गड़बड़ी तथा अशांति फैलाई है। यह उचित होगा यदि आप उनके गुज़ारे के लिए कुछ बंदोबस्त कर दें। इसके बाद वे कुछ गड़बड़ी न करेंगे तथा मैं उसके लिए उत्तरदायी रहूँगा।" परंतु अदीना बेग ने इसका विरोध किया। मुइन ने कहा, "कौड़ामल जो कुछ करता है वह सरकार के लिए सदैव हितकारी होता है।" अदीना बेग ने कहा, "बुराई करनेवालों के साथ भलाई करना भले लोगों के साथ बुराई करना है।" नवाब ने उत्तर दिया, "कुत्ते के मुँह को नवाले से भर देना ज्यादा अच्छा है।" उसने कौड़ामल के सुझाव को स्वीकृति दे दी। पट्टी के परगना के राजस्व में से एक-चौथाई उन्हें प्रदान करके वह लाहौर वापिस चला आया। कौड़ामल ने बहुत से सिखों को अपनी सेवा में ले लिया तथा उनके प्रति सब प्रकार की मेहरबानियाँ दिखाईं। गुरु में विश्वास रखने के

---

[1]रतनसिंह 401 के अनुसार सिखों के रात्रि-आक्रमण मुइन की सेनाओं को बहुत परेशान करते थे। सिख बड़ी संख्या में आकर अपने दुर्ग के साथियों की इस भाँति सहायता किया करते थे।

[2]जस्सा सिंह ने अपनी पुत्री की हत्या की थी इस कारण उसे खालसा भाईचारे से पृथक् कर दिया गया था (रतनसिंह, 402; ज्ञानसिंह, 687) और अदीना बेग खाँ के पास भेजे जाने पर उसका सिखों का पक्ष छोड़ना शायद इसका दूसरा कारण रहा हो। इस अवसर पर जस्सा सिंह के अधीन 100 सिख तथा 60 हिंदुओं का एक दस्ता भी था। रतनसिंह, 402; ज्ञानसिंह 687।

कारण वह सिखों को पाँच रुपए प्रतिदिन धूम्रपान करने के लिए जुर्माने के रूप में देता था ।"[1]

5. सिखों का शांतिपूर्वक बस जाना, फरवरी-दिसंबर, 1749

दीवान कौड़ामल की मेल-मिलाप वाली नीति के कारण सिख कुछ समय के लिए शांत रहे । उनमें से बहुतों ने दीवान के अधीन सेवा स्वीकार कर ली तथा बहुत-से लोगों ने अपने-अपने घर जाकर शांतिपूर्वक जीवन बिताना शुरू कर दिया । दीवान के इस प्रश्रय की प्रतिक्रिया स्थानीय हिंदू तथा मुसलमान अधिकारियों के रवैये पर भी हुई तथा गाँवों में सिख किसानों को उन्होंने परेशान करना छोड़ दिया । इस शांतिकाल में, जो लगभग एक वर्ष के कुछ अधिक ही रहा, सिखों की संख्या बढ़ गई । इसका कारण यह था कि ग़ैर-सिख किसान तथा गाँवों की छोटी जाति के लोग, इस आशा से सिख बनने लगे कि उनके साथ भी अनुग्रहपूर्ण व्यवहार किया जाएगा । यह इस तथ्य के कारण भी संभव हो सका कि गुरु गोविंद सिंह के संगठन का, कोई भी व्यक्ति सदस्य बन सकता था । इस संबंध में जाति-पांति की कोई बाधा नहीं थी ।

6. मुइन-उल्-मुल्क द्वारा ऐहतियाती उपाय

यद्यपि सिख शांत हो गए थे परंतु मुइन-उल्-मुल्क की सरकार ने अपनी ओर से, सिखों के खतरे से निपटने के लिए उपाय करने में उदासीनता नहीं दिखाई । सिखों के विरुद्ध, छुटपुट लड़ाई-झगड़ों में तोपखाने का उपयोग बहुत कारगर समझा गया था । इसलिए सेना के इस अंग को फिर से संगठित करके मज़बूत बनाया गया । सरकार ने एक नई हल्की तोप, जिसे ज़िजायरस् (लंबी तोड़ेदार

---

[1]खुशवक्त राय, 83-4; रतन लाल, 400–404; ज्ञानसिंह, 684–87; फोरेस्टर कहते हैं (i, 314), "यह माना जा सकता है कि यदि उसके वज़ीर कौड़ामल ने उस अवसर पर उनकी सहायता न की होती तो उनकी सेना का समूल विनाश हो जाता । कौड़ामल ने, जो खुद खालसा धर्म का ही था, मीर-मुन्नू को पूर्ण विजय प्राप्त नहीं करने दी जबकि वह अपनी सबल शक्ति से ऐसा कर सकता था "

देखें: मालकाम, 91-2 ।

बंदूक) कहा जाता था, का निर्माण किया। लाहौर की सेना में शीघ्र ही इस प्रकार के 900 तोपची सैनिक शामिल कर दिए गए।[1]

7. दुर्रानी के दूसरे आक्रमण के समय सिखों ने लाहौर को लूटा, दिसंबर, 1749—फरवरी, 1750

क्योंकि हृदय परिवर्तन किसी ओर से भी नहीं हुआ था इसलिए सरकार तथा सिखों के बीच शांति, अधिक देर तक न रह सकी। मुइन यह जानता था कि सिख जो लाहौर सरकार के लिए सदा शूल की भाँति रहे हैं, इतनी आसानी से शांति-पूर्वक बसने वाले नहीं हैं। दूसरी ओर, सिख लोग, सूबेदार द्वारा जिजायरसों के निर्माण तथा, अपनी निजी देखरेख में जिजायरचियों के दल के प्रशिक्षण तथा युद्ध की तैयारियों को शंका की दृष्टि से देखते थे। इसलिए दोनों ही दल एक-दूसरे से बदला लेने की सोच रहे थे। संभव है कि सिख अमृतसर के निष्क्रिय जीवन से ऊब चुके थे। उनके बहुत से नेता यह महसूस कर रहे थे कि गुरु गोविंद-सिंह ने जिस राज्य के विनाश के लिए उन्हें संगठित किया था उसी के दान पर जीवित रहना उनके लिए बड़े शर्म की बात है। वे यह भी सोच रहे थे कि वे अपने हाल ही के संगठन से लाभ नहीं उठा रहे हैं तथा साथ ही पिछली अर्द्ध-शताब्दी के अपने संघर्ष से प्राप्त फलों को भी खोते जा रहे हैं। इसलिए वे अपनी पुरानी कार्यवाहियाँ करने के लिए कोई उपयुक्त अवसर देख रहे थे। अहमदशाह के नूतन आक्रमण से उन्हें वह अवसर मिल भी गया। दुर्रानी ने दिसंबर 1749 के मध्य में सिंधु नदी पार की तथा मार्ग के प्रदेशों को उजाड़ता हुआ वह चिनाब के दाएँ तट पर बसे कोपरा नामक स्थान पर आ टिका। मुइन-उल्-मुल्क तेज़ी से लाहौर से चल पड़ा तथा उसने वज़ीराबाद से चार मील पूर्व में स्थित शाहदरा पर डेरा डाला।

अब्दाली ने मुइन को एक पत्र लिखकर माँग की कि वह आगे के लिए "चार महालों" की राजस्व सौंपे तथा नादिरशाह के समय से बकाया धनराशि दे। अपने सैनिक साधनों की कमज़ोरी के भय से मुइन ने वह पत्र दिल्ली के बादशाह के पास भेज दिया तथा उससे सहायता के लिए सेना भेजने की प्रार्थना की। यह स्पष्ट था कि वह समय प्राप्त करने के लिए पत्र-व्यवहार बढ़ा रहा था। परंतु

---

[1]देखें: मिसकिन, 67-81; यह लेखक हमें यह भी बताता है कि सूबेदार मुइन-उल्-मुल्क इन नए सैनिकों की कवायद तथा चालों को विशेष शौक से देखता था तथा अपने हाथों से जिज़ायरचियों को चाँदी के कड़े तथा दूसरे तोहफे इनाम में देता था।

उसके आश्चर्य का उस समय कोई ठिकाना न रहा जब उसे पता चला कि बादशाह ने आक्रांता को चार महालों का राजस्व प्रदान कर दिया है ।

मुइन अपने सैनिक साधनों की सीमाओं के प्रति सजग था । सियालकोट, औरंगाबाद, गुजरात तथा पसरूर से प्राप्त होने वाले 14 लाख रुपए का सालाना राजस्व देकर, उसने दुर्रानी की माँग पूरी की । अहमदशाह अब्दाली, जिसने मनुपुर के विजेता के सैनिक बल का अंदाजा लगाने के लिए ही यह अभियान किया था, देश में आगे नहीं बढ़ा, तथा कंधार वापिस लौट गया ।[1]

दुर्रानी के आक्रमण से तथा आक्रांता के विरुद्ध लाहौर के सूबेदार की सेनाओं के व्यस्त होने से सिखों को इस बात का संकेत मिल गया कि वे अपनी कार्यवाही आरंभ कर सकते हैं । वे बड़ी संख्या में अमृतसर में आ कर इकट्ठे हुए तथा उन्होंने लाहौर पर आक्रमण करने का निश्चय किया । इसका कारण यह था कि वे अपने उस पाप को धो देना चाहते थे, जो उन्होंने मुग़लों का अनुग्रह स्वीकार करके किया था । बस फिर क्या था, वे टिड्डी दल की भाँति राजधानी पर टूट पड़े और उन्होंने नगर के बाहरी भागों को लूट कर भस्मसात कर दिया । इसके बाद नवाब कपूरसिंह ने नगर में प्रवेश किया, तथा कोतवाली के चबूतरे पर जाकर आसन जमाया । यहाँ बैठ कर वह नगर के राजस्व में से एक भाग प्राप्त करना चाहता था । मुइन का कार्यवाहक नायब इज़ाज खाँ एक सेना लेकर उससे लड़ने के लिए आया तो कपूरसिंह उस स्थान से हट गया तथा नगर के बाहर चला गया ।[2]

8. सिख-उत्पीड़न का फिर से आरंभ, मार्च-जून 1750

जब मुइन लाहौर लौटा तो उसे यह देख कर बहुत क्रोध आया कि सिखों ने उस सुंदर राजधानी के उपनगरों को लूट लिया है तथा नष्ट कर दिया है । पहले उसने उनकी जागीरों को ज़ब्त कर लिया तथा उनके भत्तों को बंद कर दिया । इसके बाद उसने अपने जिज़ायरचियों को सिखों का पीछा करने तथा जहाँ-कहीं भी वे मिलें वहीं उनको कत्ल कर देने की आज्ञा दी । मिसकिन ने अपने

---

[1]तारीख़-ए-अहमदशाही, 46–8; मिसकिन, 53; बयान, 174-5; जफर नामा, 20 क (सब समकालीन हैं) देखें । खज़ान-ए-अमीरा 98; मासिर-उल्-उमरा, i,360; सियार, iii, 29-30; तारीख़-ए-मुज़फ्फरी, 80 क; तारीख़-ए-सलातीन-ए-अफ़गानान, 151-3; इरशाद-उल्-मुस्तकिम, 294 ख; इबरत मिकल, ii, 61 ख; अली-उद्-दीन, iii क; शाह यूसफ, 55 ख–56 क; इलियट, viii, 114-5; सरकार i, 417–9 ।

[2]खुशवक्त राय, 82; अली-उद्-दीन, iii, ख ।

'तज़किरा' के पन्ने 68-9 पर इसका आँखों देखा वर्णन इस प्रकार किया है। "मुइन ने उनमें से बहुत से ज़िज़ायरचियों को सिखों का पीछा करने के काम पर लगाया। उन्होंने इन दुरात्माओं का 28 कोस तक (एक दिन में) पीछा किया तथा जहाँ कहीं भी सिखों ने उनका सामना किया उन्होंने उनका सफ़ाया कर दिया। जो कोई (मुइन के पास) सिखों के शीश काट कर लाता था उसे प्रति शीश 10 रुपए के हिसाब से इनाम मिलता। जो कोई (सिखों का) घोड़ा लाता उसे उसको रख लेने दिया जाता। यदि दुर्भाग्य से लड़ाई में (सिखों के साथ) किसी का घोड़ा मारा जाता तो उसे सरकारी अस्तबल से दूसरा दे दिया जाता।" इस भाँति हज़ारों सिखों को मौत के घाट उतारने में मुइन को सफलता मिल गई, परंतु एक मुस्लिम इतिहासकार कहता है, "छूटा तीर तथा बीता समय वापस नहीं लाया जा सकता; नगर तो उजड़ ही चुका था।"[1]

9. नासिर खाँ का विद्रोह, जुलाई, 1750[2]

बहुत देर तक यातनाएँ सहना सिखों के भाग्य में नहीं बदा था। मुइन को अपना ध्यान एक और बड़ी तथा भयानक विपत्ति की ओर लगाना पड़ा। यह विपत्ति उसके विश्वस्त अधिकारी तथा चार महालों के सूबेदार नासिर खाँ के विद्रोह के कारण सामने आई थी।

---

[1]मिसकिन 68-9; सिखों के साथ इस भाँति की लड़ाई लगभग चार वर्ष तक चलती रही। अली-उद्-दीन, iii ख।

[2]"फ़ॉल ऑफ़ दी मुग़ल एम्पायर" में i, पृष्ठ 416 पर सर जदुनाथ सरकार ने इस घटना की संभावित तिथि जुलाई, 1749 दी है। इस घटना की सही तिथि मैं किसी भी मूल पुस्तक में नहीं पा सका हूँ। दो समकालीन लेखकों द्वारा वर्णित घटनाओं के आधार पर मैंने इसे एक वर्ष बाद अर्थात् जुलाई, 1750 माना है। उन दो समकालीन लेखकों ने घटनाओं का वर्णन निम्न क्रम से किया है :—

(i) तारीख़-ए-अहमदशाही—(1) अब्दाली का द्वितीय हमला, पन्ने 46-8; (2) नासिर खाँ का विद्रोह, पन्ना 65; (3) शाहनवाज़ का विद्रोह, पन्ने 67-8।

(ii) मिसकिन का तज़किरा—अब्दाली का दूसरा हमला, पन्ना 53; नासिर खाँ का विद्रोह, पन्ने 54–7; शाहनवाज़ का विद्रोह, पन्ने 59–62।

सर जदुनाथ सरकार अपनी उसी पुस्तक के पृष्ठ 427 पर, तारीख़-ए-अहमदशाही के 83-4 पन्नों का अनुसरण करते हुए कहते हैं कि जब दिसंबर

काबुल तथा पेशावर का भूतपूर्व सूबेदार नासिर खाँ नौकरी की इच्छा से मुइन के पास आया। इस प्रकार के अनुभवी प्रशासक को अपने अधीन रखने में मुइन को प्रसन्नता हुई तथा उसने चार महालों के प्रशासन के लिए उसकी नियुक्ति कर दी।

यह भेद बाद में खुला कि उसने दिल्ली के वज़ीर सफ़दरजंग के साथ दुरभि संधि कर रखी थी। वज़ीर तुर्रानी-दल के प्रति अपनी ईर्ष्या तथा घृणा के कारण उनके प्रमुख नेता मुइन को उसके पद से हटा कर नासिर खाँ को लाहौर की सूबेदारी पर बैठाना चाहता था। इधर नासिर खाँ ने अपनी सेना बढ़ा ली थी तथा ऊँचे वेतन का लालच देकर उसने मुइन के 1,000 मुग़लिया सैनिकों को अपनी ओर फोड़ लिया था। इस एहसानफरामोशी से मुइन को बहुत दुःख हुआ तथा वह एक सेना लेकर उसके विरुद्ध बढ़ा। मुइन ने खान को सियालकोट पर एक करारी पराजय दी तथा उसे बेइज्जत करके दिल्ली भेज दिया।[1]

10. शाहनवाज़ खाँ का विद्रोह, सितंबर, 1750

अभी कठिनाई से ही मुइन को इस विपत्ति से मुक्ति मिली थी कि उसे एक और ख़तरे का सामना करना पड़ा। यह था शाहनवाज़ खाँ का विद्रोह। दिल्ली के वज़ीर ने मुल्तान के प्रशासन का कार्यभार स्वतंत्ररूप से शाहनवाज़ खाँ को दे दिया था। इससे मुइन अपने प्रशासनिक कार्यभार के एक बड़े भाग से वंचित कर दिया गया। लाहौर के सूबेदार के पद पर उसकी नियुक्ति का निश्चित वचन देकर उसे मुइन को मार भगाने के लिए भी उकसाया गया।[2] शाहनवाज़ खाँ ने

1751 में अहमदशाह अब्दाली ने चार महालों के राजस्व की माँग करते हुए मुइन को पत्र लिखा तो उसने उसके उत्तर में उसे लिखा, "नासिर खाँ जिसने पहले दो वर्षों में चार महालों पर प्रशासन किया था, उघाए गए संपूर्ण राजस्व के साथ भाग गया था। वह केवल एक वर्ष का राजस्व दे सकता है। सिर्फ इसी समय के बीच वह भू-भाग उसके अधीन रहा है।" इससे बिल्कुल स्पष्ट पता चलता है कि सन् 1748 से 1750 तक चार महाल नासिर खाँ के कब्ज़े में रहे तथा सन् 1750 से 1751 तक वे मुइन के अपने अधिकार में रहे।

[1]तारीख़-ए-अहमदशाही, 65; मिसकिन 55–7; तारीख़-ए-मुजफ़्फ़री, 80 क; सरकार, i, 416; फर्राहत्-उन्-नाज़िरिन, इलियट, भाग viii, 166।

[2]तारीख़-ए-अहमदशाही, 67-8-मिसकिन, 59। यहाँ यह बता देना भी उचित होगा कि शाहनवाज़ ने तर्रानी वंश के होते हुए भी थोड़े दिन पहले शिया धर्म स्वीकार कर लिया था तथा इस भाँति वह वज़ीर का ही एक सहधर्मी बन चुका था।

अपनी सेना बढ़ा कर 15,000 कर ली। फिर उसने इस बहाने कि वह अपने पिता के मकबरे पर श्रद्धांजलि अर्पित करना चाहता है, मुइन से प्रार्थना की, कि वह उसे लाहौर आने दे। मुइन उसकी प्रार्थना स्वीकार करने को तैयार था परंतु शर्त यह थी कि वह अपनी सेनाओं के साथ न आए। शाहनवाज़ खाँ ने तिरस्कार पूर्ण रवैया प्रदर्शित किया तथा मुइन ने युद्ध की तैयारियाँ आरंभ कर दी।

इससे मुइन के लिए एक विषम-स्थिति पैदा हो गई। सिखों का खतरा मौजूद था। वे लोग लाहौर से उसकी सेनाओं की अनुपस्थिति का लाभ उठा सकते थे। दीवान कौड़ामल ने उसे सलाह दी कि इस अवसर के लिए वह अपनी सेना में सिखों की भरती कर ले। परंतु मुइन के हृदय में उनके प्रति कुछ संदेह था। पर विश्वास दिलाए जाने पर उसने कौड़ामल को उन्हें भरती करने की अनुज्ञा दे दी। तदनुसार कौड़ामल अपने साथ सिखों का एक बलशाली दल लेकर मुल्तान की ओर चला।[1]

दोनों विरोधी दलों में घमासान युद्ध हुआ। शाहनवाज़ खां बड़ी वीरता से लड़ा परंतु अंत में पराजित होकर मारा गया।[2] कौड़ामल ने उसका सिर काट कर मुइन के पास भिजवा दिया। अपने दीवान की इस शानदार सफलता से वह बहुत प्रसन्न हुआ था। उसने उसे महाराज की उपाधि से विभूषित करके मुल्तान प्रांत की नायब सूबेदारी पर प्रतिष्ठित कर दिया।

कौड़ामल ने सिखों की सेवा को भली-भाँति पुरस्कृत किया। बहुतों को तो उसने मुल्तान में ही अपनी सेवा में रख लिया तथा उनके लिए उसने मुइन से लाहौर जिले के चूनिया तथा झाबल के परगनों की सवा लाख रुपए वार्षिक आय की एक जागीर भी सुरक्षित करवा ली। बाद में दिवाली के अवसर पर सिख अमृतसर में एकत्रित हुए तथा नवाब कपूरसिंह ने जागीर की आय से एक लंगर आरंभ किया।[3]

---

[1]रतनसिंह, 404; ज्ञानसिंह, 690; शमशीर, 87; ने उनकी संख्या 10,000 बताई है। सिखों को की गई अदायगी के बारे में वे और भी विस्तृत सूचना देते हैं। पैदल की दैनिक मज़दूरी 8 आना, घुड़सवार की एक रुपया तथा सरदार की 5 रुपया थी।

[2]शाहनवाज़ खाँ की कब्र मुल्तान के पूर्व में हज़रत शम्स, ताबरीज़ के मकबरे के पास स्थित है (सोहन लाल, i, 131)।

[3]तारीख़-ए-अहमदशाही, 67-8; मिसकिन, 59-62; तारीख-ए-मुज़फ़्फ़री, 80 क; खुशवक्त राय, 84-5; अली-उद्-दीन, 109 ख-110 क; शाह यूसफ 53-ख-55-ख; सरकार ii, 416-7; ज्ञानसिंह 694 (इसके बाद से सिखों ने कौड़ामल को मिट्ठामल नाम दे दिया। पंजाबी में कौड़ा का अर्थ कड़वा तथा 'मिट्ठा' का अर्थ मीठा होता है। रतनसिंह, 404; ज्ञानसिंह 691)।

11. सिखों का फिर से दमन

जैसे ही मुइन-उल्-मुल्क को इन विपत्तियों से मुक्ति मिली तथा सिख-समस्या से निपटने के लिए उसने अपने को काफ़ी शक्तिशाली अनुभव किया तो उसने दमन की अपनी नीति फिर से शुरू कर दी। ऐसा लगता है कि उसे यह विश्वास हो गया था और शायद वह ठीक भी था कि सिख लोग केवल जागीर से मिलने वाली राशि पाकर ही शांत हो कर बैठ जानेवाले जीव नहीं हैं। वह यह सोच रहा था कि वे लोग प्रांत में नवीन विपत्तियाँ खड़ी करने के लिए समय निकाल कर अपने को शक्तिशाली बना रहे हैं। इस प्रकार का आचरण वे पहले भी कई एक अवसरों पर कर चुके थे। यह उत्साही सूबेदार अधूरी कार्रवाई में विश्वास नहीं रखता था। तदनुसार उसने सरकार के सैनिक तथा असैनिक दोनों तंत्रों को इस काम पर एकबार फिर लगा दिया। ज़िलों तथा गाँव के अधिकारियों को सिखों की गिरफ़्तारी के पुराने आदेश फिर से दिए गए। प्राणदंड का भय दिखाकर लोगों को सिख संप्रदाय के सदस्यों को शरण देने से वर्जित कर दिया गया।

सरकार की इन कार्यवाहियों से सिख, गाँव तथा शहरों के आस-पास से खदेड़े गए तथा वे रावी, ब्यास तथा सतलज के तटों के शरण-स्थलों की ओर चले गए। वे लोग दूरवर्ती स्थानों तथा पहाड़ियों और मरुस्थल के अलंघनीय भागों में भी जा सकते थे, परंतु उन्होंने अपनी जान की बाज़ी लगाकर भी नवाब तथा उसकी मुग़लिया पलटन को परेशान करने के लिए इन्हीं शरणस्थानों में ठहरना उचित समझा। इसके साथ-साथ वे 'अमृत के सरोवर' में स्नान भी करना चाहते थे। नवाब के सेवक तथा सैनिक गाँव-गाँव में उन्हें ढूँढ़ते फिरते थे और जब-कभी कोई सिख उनकी पकड़ में आ जाता, वे एकदम उसका सफ़ाया कर डालते। यदि कोई और आदमी भी सिखों की भाँति जीवन निर्वाह करता मिलता तो उसे भी बंदी बना लिया जाता तथा उसकी संपत्ति ज़ब्त कर ली जाती।[1]

मुइन-उल्-मुल्क ने 3 अक्तूबर 1751 में लाहौर के आस-पास गड़बड़ी पैदा करने वाले सिखों को दंडित करने के लिए मुमिन खाँ को भेजा। जब वे पहाड़ियों की ओर चल दिए तो अमीनाबाद के फ़ौज़दार मीर अमानतुल्ला खाँ से कहा गया कि वह 20 जिज़ोरियों, 5 रहकलों तथा 1 बड़ी तोप के साथ मुमिन खाँ से मिले। उसे स्पष्ट आदेश दिए गए थे कि वह पहाड़ी भागों के ज़मीदारों की सहायता से इस जाति को समूल नष्ट कर दे।[2]

---

[1]खुशवक्त राय 79

[2]एस० पी० डी० : फुटकर कागज़ आदि पृ० 3, नं० 1271, तारीख 14-10-1751।

12. पंजाब के मैदानों से सिखों का भगाया जाना

सिखों को खदेड़ने की इस नीति का इतनी कठोरता से पालन किया गया कि उन्हें एक बार फिर हिमालय की पर्वतमालाओं की निचली घाटियों के पुराने आश्रयस्थानों, केंद्रीय तथा पूर्वी पंजाब के घने जंगलों तथा मालवा और बीकानेर के मरुस्थलों की ओर शरण लेने जाना पड़ा। सिख इससे पहले भी कई बार बुरे दिन देख चुके थे इसलिए उन्होंने इन उत्पीड़नों की अधिक चिंता नहीं की।

जो सहन-शक्ति उन्होंने कृषि करते समय प्राप्त की थी वह इन स्थानों पर उनके बहुत काम आई। वे खतरे से भरा जीवन व्यतीत करते तथा अपने सह-धर्मियों के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होते। उनका शारीरिक गठन घुड़-सवारी के योग्य था। उनमें अद्भुत मनोबल था। उनका सुगठित शरीर था तथा उनमें साहसिक कार्यों के प्रति प्रेम था। जीवन के प्रति अदम्य उत्साह भी उन्हें सौभाग्य से मिला ही हुआ था। अश्वपालन उनका स्वभाविक गुण था। वे घोड़ों को प्यार करते थे तथा उनकी आवश्यकताओं को समझते थे। इसी भाँति घोड़े भी उनसे प्यार करते थे तथा उनको समझते थे। वे कदाचित् ही घोड़ों को चाबुक या ऐड़ लगाते। वे लोग प्रतिदिन उनकी पूर्ण देखभाल करते, उन के साथ खिलवाड़ करते तथा उन्हें अपनी वाणी, हाथों तथा गंध से भली-भाँति परिचित करवा देते। घोड़े के अयाल पकड़ कर वे उसकी नंगी पीठ पर सवार हो जाते। वे लोग बिना किसी त्रुटि के बड़ी चुस्ती के साथ इधर-उधर आया-जाया करते थे।

प्रत्येक "सिंह" बल तथा साहस में एक बबर शेर था। उनके पास रसद के भंडार नहीं होते थे तथा शारीरिक यातनाओं के बार-बार सहने के कारण उनकी आनंद की अनुभूति भी समाप्त हो चुकी थी। वे सरल भावना वाले लोग थे तथा उसे व्यक्त करने के उनके तरीके भी बिल्कुल सरल थे। वे कम-से-कम कपड़े तथा अधिक से अधिक कवच धारण करते थे।[1]

---

[1]बरछीधारी सिख की सहनशक्ति तथा गति की चपलता उसके बलाद-ग्राही स्वभाव से पूरी तरह मेल खाती थी। इसी के बल पर वह यदि अपने से अधिक संख्या वालों का मुकाबला न कर पाता तो भी वह उन्हें चक्कर में अवश्य डाल देता था·····वह बीस तीस मील एक दिन में बढ़ सकता था। इस अर्से में उसे खाने के लिए कुछ भुने चने तथा पीने के लिए स्वच्छ ठंडा पानी पर्याप्त होता था। तंबू से उसे नफ़रत थी, साधारण भाषा में असबाब समझे जाने वाली वस्तुओं में से उसके पास कुछ भी न होता था।·····अपने हथियारों के सिवा जो सामान, उसके पास होता था उसमें घोड़े का साज़ोसामान, खाना पकाने के कुछ मामूली

आतंक का राज्य अपना उद्देश्य प्राप्त करने में असमर्थ रहा। उत्पीड़ित जाट किसानों का वर्ग सरकार के अत्याचार तथा छेड़छाड़ से डरकर अपने घरों तथा खेतों से भाग खड़ा हुआ तथा गुरु गोविंद सिंह के पंथ का सेवक बन गया। इस भाँति वनवास में भी खालसा दल बढ़ता चला गया।[1]

13. दुर्रानी का तीसरा हमला, दिसंबर, 1751—मार्च, 1752

मुइन-उल्-मुल्क की सरकार को यह नीति बाध्य हो कर त्यागनी पड़ी। क्योंकि उसके सामने एक अधिक भयंकर खतरा आ खड़ा हुआ था। दिलेर अहमद शाह अब्दाली दिसंबर, 1751 में फिर भारत की सीमाओं पर आ खड़ा हुआ। इस हमले का बहाना यह बताया गया कि मुइन प्रतिज्ञानुसार 'चार महालों' की मालगुज़ारी कंधार के कोष में जमा करवाने में असमर्थ रहा है। इस बात की पहले से ही आशा थी। पहले उसने हसन खाँ को अपना राजदूत बनाकर लाहौर दरबार में वादा पूरा करवाने की माँग के साथ भेजा। कुछ समय निकालने के लिए मुइन ने बातचीत को लंबा किया। वह कौड़ामल से, जिसे उसने मुल्तान से बुला भेजा था, इस बारे में परामर्श करना चाहता था। उसके आ जाने पर यह उत्तर देने का निश्चय किया गया कि प्रांत में हाल ही में हुए उपद्रवों के कारण कुछ भी मालगुज़ारी वसूल नहीं हो पाई इसलिए सूबेदार कुछ भी मालगुज़ारी नहीं दे सका। यह बात अब्दाली के वकील को सूचित कर दी गई।[2]

बरतन तथा दो कंबल शामिल होते थे। एक कंबल वह अपने उपयोग में लाता तथा दूसरा स्वामिभक्त अश्व के लिए होता था। ..... उसकी सामरिक चालें कुछ-कुछ पार्थियन पद्धति से मिलती-जुलती थीं। वह झड़पों में विश्वास करता था, जो एक लंबी अवधि में होती रहती थीं। जहाँ द्वन्द्व युद्ध में वह अति भयंकर हो उठता था वहाँ वह अच्छे तोपखाने के सम्मुख बिल्कुल असहाय था।"

(जी० आर० सी० विलियम्स, कलकत्ता रिव्यू में 1875)

[1]देखें, सोहन लाल, i, 130; "सिखों के विरुद्ध मुइन के अधिकारियों के हमलों के दौरान हिंदू किसानों पर भी अत्याचार किए जाते थे। सिख लुटेरों को भोजन आदि पहुँचाने, उन्हें शरण देने तथा उनके बारे में सूचना न देने के कारण उन्हें भी नित्य बहुत कुछ सहना पड़ता था। इसलिए प्रतिदिन सिखों की संख्या खुले आम बढ़ती जा रही थी। ज़मींदार घरानों के कुछ सदस्य मुस्लिम अधिकारियों के भीषण उत्पीड़न के दबाव में अपने घरों को छोड़कर चले जाते, पहल ग्रहण करते तथा अपने सरदार से मुफ्त भोजन, कपड़ा, हथियार तथा घोड़ा प्राप्त करते।"

[2]दे० सलेक्शन्स फ्राम पेशवा दफ्तर, फटकर कागज़ात न० 1930 तथा 1944, यो न ल, i, 132-3।

शाह ने 24 लाख रुपयों की अदायगी की माँग के साथ अपने एक और कारिंदे दीवान सुखजीवनमल को लाहौर भेजा । मुइन ने बकाया धन की अदायगी में फिर अपनी असमर्थता प्रदर्शित की । उसका कहना था कि चार महालों की दो साल की मालगुज़ारी नासिर खाँ हजम कर चुका है तथा अब्दाली के आक्रमण के कारण किसान अपने गाँवों से भाग खड़े हुए थे इसीलिए कुछ भी धन एकत्रित नहीं हो पाया है । परंतु उसने फिर भी 9 लाख रुपए दिए तथा प्रतिज्ञा की कि यदि दुर्रानी अपनी सेनाएँ तत्काल सीमा के पार कर ले तो बकाया धन की भी अदायगी कर दी जाएगी । अब्दाली ने धन ले लिया तथा लाहौर की ओर बढ़ना जारी रखा ।

अब्दाली के आगे बढ़ते रहने की सूचना से लाहौर शहर में आतंक छा गया । धनवान लोग दिल्ली या जम्मू, जहाँ-कहीं-भी उन्हें शरण मिलने की आशा थी, भाग खड़े हुए । कहा जाता है कि खुद सूबेदार ने भी अपने परिवार के सदस्यों तथा खज़ाने को जम्मू के राजा रणजीत देव के पास देखभाल के लिए भेज दिया । इसके बाद मुइन ने शाहदरा से रावी को पार किया । उसके साथ 50,000 घुड़-सवार तथा पैदल सैनिक तथा 400 तोपें थीं । लाहौर से 22 मील ऊपर की ओर रावी तट पर उसने शाह दौला के पुल के पास अपनी सेनाएँ एकत्रित कर लीं ।

एक चतुर चाल द्वारा अहमदशाह अब्दाली ने मुइन की सेना के पीछे जाकर रावी पार की तथा शालामार बगीचे पर जा कर खेमे गाड़ लिए । जब मुइन को इस बारे में पता चला तो वह शीघ्रता से लाहौर लौट आया तथा नगर प्राचीर के अंतर्गत उसने अपनी सेनाओं की सुदृढ़ स्थिति कर ली ।

चार महीनों तक घेरा पड़ा रहा । तोपखाने के अभाव में न तो अब्दाली ही और दिल्ली से कुमुक न पहुँच पाने के कारण न मुइन ही इस लंबे खिंचते जा रहे युद्ध को छोटा कर पा रहा था । अफ़गानों ने लाहौर के चारों ओर 50 मील की दूरी तक के संपूर्ण प्रदेश को पूरी तरह तबाह कर दिया था । हालत इतनी बिगड़ चुकी थी कि तीन पड़ाव की दूरी तक कहीं दिया नहीं जलाया जाता था और दोनों सेनाओं के शिविरों में अनाज की बहुत कमी हो गई थी ।[1]

धीरे-धीरे रसद का पूर्ण अभाव होने लगा अतः 5 मार्च, 1752 को मुइन को अपनी खाइयों से निकलकर अफ़गानों से लड़ना पड़ा । लड़ाई में मुइन का सबसे अधिक विश्वस्त अधिकारी कौड़ामल अपनी जान से हाथ धो बैठा (6 मार्च, 1752) । इसके बाद मुइन के अधिकतर सैनिक उसे छोड़ कर भागने लगे और

[1] पृष्ठ 409–11 पर रतनसिंह लिखते हैं कि सुखसिंह नाम का एक बहादुर तथा ओजस्वी सिख दाना-पानी की तलाश करता हुआ दुर्रानी के सैनिकों से जा भिड़ा तथा लड़ते-लड़ते मारा गया; मिसकिन, 75 ।

पूरी तरह अनिच्छुक होते हुए भी उसने दुर्रानी की अधीनता स्वीकार करने का निश्चय कर लिया।[1]

14. पंजाब का मुग़ल साम्राज्य से अलग होना, मार्च, 1752

दूसरे दिन अपनी पगड़ी गर्दन में लपेट कर (अधीनता स्वीकार करने का एक संकेत) मुइन-उल्-मुल्क अपने केवल तीन साथियों को साथ लेकर अब्दाली के शिविर में चला गया। अपने साथ वह अनेक सुंदर घोड़े, नक़द रुपया तथा कपड़े आदि भेंट में देने के लिए लेता गया। अफ़गानों के सबसे बड़े सामंत शाहवली खाँ तथा जहान खाँ ने उसका स्वागत किया तथा वे लोग उसे बादशाह दुर्रानी के सम्मुख ले गए। उस युवक के भव्य रूप, वार्तालाप करने में उसकी निर्भयता तथा आचरण में उसकी आडंबरहीनता को देख कर अहमदशाह बहुत प्रभावित हुआ।[2] उसने उसे अपने गले से लगा लिया तथा "फरजंद खाँ बहादुर, रुस्तमे हिंद" की उपाधि से उसे विभूषित किया। इसके साथ-साथ उसे खिलकत, किरीट के लिए एक रत्न जटित कलग़ी तथा वही पगड़ी, जो वह उस समय पहने था, प्रदान की। उसने उसे

---

[1]खुशवक्त राय, 85-6; तारीख-ए-मुज़फ्फ़री 85 क; इलियट में फरहत-उल्-नाज़िरीन भाग viii, 16; (यह कहा जाता है कि अहमदशाह अब्दाली ने बहुत से सिख अपनी सेना में भरती कर लिए थे। इसमें उसका उद्देश्य यह था कि वे लोग मुइन की ओर के अपने बंधुओं को युद्ध से पृथक् करने में सहायता कर सकें। इस प्रयत्न में उसे सफलता भी मिली। पंथपरकाश के लेखक से हमें पता चलता है कि मुइन की सेना के लिए रसद आदि एकत्रित करने के लिए जो सिख लगाए गए थे उन्होंने प्रयत्नों में बहुत ढिलाई कर दी थी। ज्ञानसिंह 696-7; तारीख-ए-अहमदशाही, 91; मिसकिन, 76; ख़जाना-ए-अमीरा, 98; सैयार, iii, 44; फरहत-उल्-नाजरीन, इलियट viii, 168; तथा अली-उद्-दीन 111 ख; ये सब अदीना बेग को इस बात के लिए दोषी ठहराते हैं कि उसने पीछे से कौड़ामल पर गोली चलाई थी परंतु अहवली-ए-अदीना बेग, 54 क उसकी मृत्यु के लिए कसूर के बाज़िद खाँ को दोषी ठहराता है। दिल्ली क्रानिकल, 69।

[2]तारीख-ए-सलातीन-ए--अफ़गाना, 154; खुशवक्त राय, 87; मिसकिन, 78; अली-उद्-दीन, 112 क।

बादशाह दुर्रानी तथा मुइन-उल्-मुल्क के बीच निम्नलिखित रोचक वार्तालाप हुआ।

दुर्रानी—आपने पहले अधीनता स्वीकार क्यों नहीं की? मुइन—उस समय

अपनी ओर से पंजाब की सूबेदारी पर भी आसीन कर दिया।

मुइन ने अपने लोगों को क्षमा कर देने के लिए शाह से प्रार्थना की। इन लोगों ने शाह को रुष्ट करने के लिए कोई भी काम नहीं किया था। अहमदशाह ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। सब बंदी रिहा कर दिए गए तथा उसने अपने सैनिकों को आज्ञा दी कि लोगों को लूटा न जाए। मुइन ने नगर से जितना भी धन एकत्रित किया जा सकता था किया तथा किले की चाबियों के साथ-साथ उसने वह सब अब्दाली को भेंट कर दिया। इसके बाद मुइन ने एक संधि पत्र पर हस्ताक्षर किए। इसकी शर्तों के अनुसार मुल्तान तथा लाहौर के प्रांत दुर्रानी साम्राज्य में शामिल कर दिए गए।[1]

अहमदशाह अब्दाली ने अपने ही हमनाम दिल्ली के बादशाह के पास अपने दूत कलंदर बेग को उस संधि की शर्तों को पक्का करवाने के लिए भेजा। बादशाह ने 13 अप्रैल को दिवान-ए-खास में बेग से मुलाकात की तथा संधि पर अपनी मोहर लगा कर उसे रुखसत किया। इस भाँति मुग़ल साम्राज्य का सबसे अधिक महत्वपूर्ण सीमांत प्रदेश उसके हाथों से जाता रहा।[1]

15. दुर्रानी की काश्मीर विजय

जिस समय उसका राजदूत दिल्ली गया था उस समय अहमदशाह दुर्रानी ने काश्मीर को हस्तगत करने का निश्चय किया। फलस्वरूप उसने अब्दुल्ला खाँ

में किसी दूसरे स्वामी की सेवा में था। दुर्रानी—वह स्वामी आपकी सहायता के लिए क्यों नहीं आया? मुइन—उसका विचार था कि उसका सेवक अपनी हिफ़ाज़त खुद कर सकता है। दुर्रानी—यदि आप मुझे बंदी बना लेते तो क्या करते? मुइन—मैंने आपका सिर काटकर अपने स्वामी के पास दिल्ली भेज दिया होता। दुर्रानी—अब, जबकि आप मेरी दया पर हैं, मैं आपके साथ कैसा व्यवहार करूँ। मुइन—यदि आप एक दुकानदार हैं तो मुझे बेच दें (अर्थात् रिहाई का धन लेकर छोड़ दें) यदि आप कसाई हैं तो मुझे कत्ल कर दें। परंतु यदि आप एक बादशह हैं तो मुझे क्षमा करके अपना प्रसाद प्रदान करें। दुर्रानी—आप पर अल्लाह का रहम हो। मैं आपको क्षमा प्रदान करता हूँ (मिसकिन 79; हुसैन शाही, 32-3 ख; खुशवक्त राय 88; अह्वाल-ए-अदीनाबेग 54 ख; सोहन लाल, i, 134-5; तारीख-ए-अहमद 8; तारीख-ए-सलातीन-ए-अफ़ग़ानान, 154; अली-उद्-दीन, 112 क-ख; ब्रॉउनी, ii, 17)।

[1]दिल्ली क्रानिकल, 70 तथा 71; एस० पी० डी० XXI, 53 तथा 55; तारीख-ए-अहमदशाही, 93-5; सैयार, iii, 44; तारीख-ए-अहमद 9; शाह यूसुफ, 56 ख।

के अधीन एक शक्तिशाली दस्ता भेज दिया। वह सरलता से अपना मार्ग बनाता आगे बढ़ता गया। इसमें शायद जम्मू के रणजीत देव ने उसकी सहायता की। वह काश्मीर जा पहुँचा तथा दिल्ली के बादशाह द्वारा नामज़द शासक को वहाँ से मार भगाने के बाद उसने दुर्रानी की सत्ता की स्थापना कर दी। अहमदशाह ने दीवान सुखजीवनमल को वहाँ का सूबेदार तथा अब्दुला खाँ को उसका नायब नियुक्त कर दिया।[1]

16. सिखों द्वारा लूट-खसौट, दिसंबर, 1751—मार्च, 1753

दुर्रानी के नवीन हमले के ये चार माह (दिसंबर 1751—मार्च 1752) सिखों की और अधिक उन्नति के लिए बहुत सहायक थे। इसने उन्हें अपेक्षाकृत अधिक विशाल क्षेत्र में अपनी लूटमार को फिर से आरंभ करने का अवसर दे दिया। मुइन, प्रांत के विभिन्न जिलों के उसके फौजदार तथा उसकी सेनाएँ विदेशी आक्रांता के विरुद्ध लगी हुई थीं। उनके पास सिखों की ओर ध्यान देने का समय ही नहीं था। इसलिए उनकी लूटमार, हत्याकांडों तथा आग लगाने की घटनाओं में कोई रुकावट नहीं हुई। उन्होंने बारी दोआब को ध्वंस किया तथा फिर जालंधर दोआब की ओर बढ़ गए। मुइन की ओर से लड़ रहे अदीना बेग खाँ के लाहौर में होने के कारण उस समय यह क्षेत्र अरक्षित पड़ा था। वहाँ की धन दौलत[2] का पूरी तरह सफाया करके उन्होंने उस स्थान के प्रमुख मुसलमान परिवारों का विनाश कर दिया। इसके बाद उन्होंने सतलज पार की तथा थानेश्वर तक लूटमार करने के बाद वे लोग हिसार की ओर चल दिए[3] ऐसा प्रतीत होता है कि दल-खालसा का एक भाग पश्चिम की ओर रेचना तथा छाज दोआबों में भी बढ़ा। वहाँ बिना किसी

---

[1]ख़जाना-ए-अमीरा, 114; तारीख़-ए-मुजफ़्फ़री, 122 क।

[2]बख्तमल, 67-8; तथा 71; सोहन लाल, i, 135।

[3]उन्होंने पीरज़ादों के प्राचीन परिवारों को भयंकर यातनाएँ तथा हानियाँ पहुँचाई। (सोहन लाल, i, 135)।"सिखों ने कसाइयों को गायों की हत्या करने के कारण विशेषरूप से दंडित किया।" (रतनसिंह 434; ज्ञानसिंह 701) ब्राउनी, ii, 17।

तारीख-ए-अहमदशाही के 132 वें पन्ने पर 15 दिसंबर, 1751 को निम्न-लिखित लेख अंकित किया गया:—"इन दिनों नानक के पूजक सिख लाहौर की ओर से आए। कुछ दिन वे लोग सरहिंद में रहे तथा उस जिले के कई कस्बों आदि में लूटमार तथा ध्वंसात्मक कार्रवाई करने के बाद वे जींद की ओर बढ़े। हिसार और सोनीपत के सूबेदार कामगार खाँ बिलौच ने उनसे लड़ाई की तथा उस फिरके के अनेक दुष्टों को जान से मार डाला। इसके बाद वे हिसार की ओर भाग गए।"

रोकटोक[1] के उन लोगों ने खूब तबाही मचाई। इस भाँति सिखों ने बहुत-सा लूट का माल तथा अनेक नए रंगरूट भी प्राप्त कर लिए।

17. सिखों का फिर से उत्पीड़न, मार्च, 1752—नवंबर, 1753

लड़ाई के बाद मुइन-उल् मुल्क की स्थिति पूर्णरूप से सुरक्षित हो गई। दिल्ली में उसके प्रतिद्वंद्वियों से उसके संबंध समाप्त हो गए तथा विदेशी आक्रमण का ख़तरा भी जाता रहा। वह पहले से ही बड़े नवाबी ठाठ का जीवन बिताता था और अब तो वह पूरी तरह से आमोद-प्रमोद से परिपूर्ण जीवन में खो गया।[2] परंतु फिर भी वह अपने प्रांत में अव्यवस्था तथा ग़ैर-कानूनी कार्रवाइयाँ किसी भी हालत में सहन नहीं कर सकता था। विशेषरूप से उस समय जब कोई बाहरी खतरा नहीं था। प्रदेश के सब भागों से राजधानी में सिखों की लूटखसोट की सूचनाएँ आ रही थीं। अहमदशाह अब्दाली के सम्मुख अधीनता स्वीकार करने के तुरंत बाद ही उसने जालंधर दोआब में सिखों को सबक सिखाने के लिए अदीना बेग खाँ को रवाना कर दिया। उस समय तक सिख हिसार से इस ओर आ चुके थे। इस अवसर का अदीना बेग ने बहुत स्वागत किया। दुर्रानी के तीसरे हमले के समय के संदेह का जो कलंक उस पर लगा था उसे वह इस अवसर पर धो देना चाहता था।

सिखों का पीछा करने के लिए सेनानायकों ने जालंधर दोआब में प्रवेश किया। उन्हें गुप्त समाचार मिला कि सिख, शायद वैसाखी[3] का पर्व मनाने के लिए, मक्खोवाल के समीप इकट्ठे हुए हैं। सिखों पर अचानक हमला हुआ। उन्हें तो यह सूचना मिली थी कि दुर्रानी का लाहौर का घेरा अभी चल रहा है। इसीलिए उन्हें यह विश्वास था कि मुइन और उसके अधिकारियों के पास अभी इस ओर ध्यान

---

[1]सिख जो धीरे-धीरे महत्व प्राप्त कर रहे थे। सन् 1752 में अपने नेता चरतसिंह तथा गुरुबख़्शसिंह के अधीन, सैय्यद-कसरान तथा बसाली तक बढ़ गए तथा उन नगरों को लूटा। उन्होंने मुकर्रब खाँ (गुजरात के गक्खर मुखिया को लाहौर से लौटने तथा चिनाब के पार की अपनी संपत्ति दे देने के लिए बाध्य किया (जे० ए० एस० बी, भाग, 40, भाग i, 1871, पृ० 99)।

[2]अहमद शाह, 868; (नवाबी ठाठ तथा फिजूलखर्ची के कारण उसका घरेलू खर्चा भी बहुत अधिक था। मिसकिन द्वारा लिखित 'तहमाश' के पृष्ठों पर हमें इसका विस्तृत वर्णन मिलता है। सरकार, i, 424); ब्राउनी, 17।

[3]ब्राउनी, ii, 17; ने इसे होली कहा है। यह स्पष्टरूप से ग़लत है। उस वर्ष होली 18 वर्ष की थी तथा उस समय मुइन लाहौर में अपनी खाइयों में पड़ा हुआ था तथा अब्दाली उसे बुरी तरह घेरे था।

देने का अवकाश ही नहीं है । जब वे लोग अपने उत्सव में पूरी तरह खोए हुए थ तो अदीना बग तथा सादिक बेग उन पर अचानक टूट पड़े । उनमें से बहुतों को मौत के घाट उतार दिया और बाकी लोगों को अपनी जान लेकर भाग जाना पड़ा। परंतु उनकी निर्भीकता तथा हठबुद्धि इतनी अधिक बढ़ी हुई थी कि वे शीघ्र ही छोटे-छोटे दलों में बँट कर लूटमार करने लगे ।[1] अंत में वे चारों दिशाओं में बिखर गए ।

परंतु मुइन ने उनका पीछा नहीं छोड़ा ? अदीना बेग के वापिस लौट आने के बाद मीर मुमिन खाँ के अधीन एक बड़ी सेना लक्खी जंगलों की ओर भेज दी गई । उन्हीं जंगलों में सिख लोग शरण लिए पड़े थे । मुस्लिम सेनाओं को सिखों ने बहुत बुरी तरह परेशान किया । फल यह हुआ कि मुमिन को वापिस बुला लिया गया । हुसैन खाँ के अधीन एक और नवीन अभियान शुरू किया गया । सिखों के लिए यह अधिकारी अत्यंत चतुर साबित हुआ । छापामार चालें अपनाने की अपेक्षा उसने सिखों को खुले में आकर सामना करने की चुनौती दी । सिख उसके जाल में फँस गए तथा अंत में उन्हें हारकर मैदान से भागना पड़ा ।[2]

परंतु सिख बारी दोआब के उत्तरी भागों की ओर भागने में सफल रहे । उन्होंने वहाँ के अरक्षित कस्बों को अंधाधुंध लूटा । अब सूबेदार खुद उनके विरुद्ध बढ़ा । सन् 1752 के अंतिम दिनों के मुइन द्वारा किए गए इस अभियान का वर्णन उसके टहलुए तहमाश मिसकिन ने 'इस प्रकार किया है— "जब नवाब साहब बटाला ज़िले में एक प्रशासनिक दौरे पर थे तो उन्हें पता चला कि पास ही सिखों का एक बड़ा दल उत्पात मचा रहा है । वे लोग सड़कें अवरुद्ध कर रहे हैं तथा किसानों को नष्ट कर रहे हैं। उन्होंने सैय्यद जामिल-उद्-दीन खाँ को अपने बख्शी गाज़ीबेग खाँ के साथ उन्हें

---

[1]ब्राडनी ii, 17; तथा मालकाम ने पृष्ठ 92 पर सिखों की लूट के लिए अदीना बेग को दोषी ठहराया है । वह कहता है—उस योग्य परंतु चंट सरदार ने इस विक्षुब्ध जाति को केवल अपनी निजी उन्नति के साधन रूप में ही देखा । उन्हें समूल नष्ट न करने के लिए वह सजग था । मक्खोवान के समीप हुए युद्ध में उन्हें पराजित करने के बाद उसने उनसे एक गुप्त समझौता-सा कर लिया । इसके अनुसार, यद्यपि उनके धावों का क्षेत्र सीमित हो गया परंतु उन्हें सुरक्षा मिल गई । जिसके वे अभ्यस्त नहीं थे । इससे उन्हें भविष्य में किए जाने वाले प्रयत्नों के लिए शक्ति तथा साधन जुटाने में बहुत सहायता मिली ।

बख्तमल, 71-72, फोरेस्टर, i, 314 ।

[2]रतनसिंह, 307-10; ज्ञानसिंह, 701-05 । यह लड़ाई कोट बुड्ढा गाँव के निकट सतलज के बेत (द्वीप) में हुई ।

दंड देने के लिए भेजा । ये अधिकारी घटना स्थल की ओर बढ़े । उन्होंने सिखों से लड़ाई की तथा उन्हें मार भगाया । नौ सौ पैदल सिख सिपाही भाग कर रामरौनी के छोटे-से दुर्ग में जा छिपे । यह 'चक गुरु' के समीप ही था । जामिल-उद्-दीन ने तत्काल उस पर घेरा डाल दिया । थोड़े दिनों बाद गारद हाथों में तलवार लेकर बाहर की ओर भागी । उसे मौत के घाट उतार दिया गया ।[1] उधर मुइन के क्रोध का कोई ठिकाना न रहा । अंत में उसने सिखों की स्त्रियों तथा बच्चों को पकड़ने के लिए अपने सैनिकों को आज्ञा दे दी । फल यह हुआ कि उसके सिपाहियों ने एक बड़ी संख्या में उन्हें बंदी बना लिया । तथा उन पर अकथनीय जुल्म ढहाया । सिख महिलाओं के बारे में यह कहा जा सकता है कि उन्होंने इन अत्याचारों का बड़ी वीरता से सामना किया तथा अनेक बार उन्होंने लड़ते-लड़ते अपने प्राण दिए ।[2]

इन अत्याचारों का सिखों ने डट कर मुकाबला किया परंतु इस संघर्ष में उन्हें बहुत हानि उठानी पड़ी । इसका कारण यह था कि वे लोग हल्के तथा सुवाह्य तोपखाने के सामने बिल्कुल असहाय हो जाते थे । अब वे लोग एक बार फिर उत्तर की अलंघनीय पहाड़ियों में जा छिपे । अपने दुखी हृदयों को वे लोग नीचे लिखी कविता की पंक्तियों द्वारा बहलाने का प्रयत्न करते थे । यह उन्होंने अपने आप ही बनाई थी ।

"मीर मन्नू असाँ दी दात्री,
असाँ मीर मन्नू दे सोये,
ज्यों ज्यों मीर मन्नू वड्डदा,
घरीं घरीं असीं होए ।"[3]

(मीर मन्नू हमारे लिए हँसिया है, तथा हम उसके लिए सोया घास हैं, जितना अधिक वह हमें काटता है, हम उतना ही अधिक घर-घर में पनपते हैं)

परंतु शहीदों की इस राख से सिखों का उत्थान और भी अधिक तेज़ तथा गरिमा के साथ हुआ । मुइन की सारी कोशिशें बेकार हो गईं । सिखों ने उसे कभी

---

[1]मिसकिन, 81; सरकार, i, 426 ।

[2]ज्ञानसिंह 708–12, उनके इतिहास में आगे भी इस प्रकार के अनेक मौके आए । इन अवसरों पर सिख महिलाओं ने बड़ी वीरता का परिचय दिया । जॉर्ज टामस ने अपने 'मेमौयर्स' में पृष्ठ 75 पर निम्नलिखित विवरण दिया है:— ऐसे दृष्टांत प्रायः हुए हैं जब उन्होंने (सिख महिलाओं) ने अपने घर-द्वार की रक्षा के लिए हथियार उठाए । उन्होंने शत्रु के भयानक आक्रमणों का डट कर मुकाबला किया तथा अत्यधिक प्रशंसनीय साहस से अंत तक उनका सामना किया ।

[3]अली-उद्-दीन 112अ ।

चैन न लेने दिया। वह जितना सख्त होता जाता था वे भी उतने ही निर्भय होते जाते थे। सन् 1753 की शरद् ऋतु के साथ-साथ उन्होंने अपने धावे और भी अधिक प्रचंडता से करने शुरू कर दिए तथा वे लाहौर की सीमाओं तक मार करने लगे। मुइन ने खुद एक अभियान उनके विरुद्ध किया। इसका वर्णन मिसकिन ने इस भाँति किया है--"वह लाहौर के बाहर सात कोस आया तथा रावी के तट पर स्थित तिलकपुर (तारीख-ए-अहमदशाही पन्ना 282 के अनुसार वह लाहौर से उत्तर-पूर्व में 40 मील की दूरी पर स्थित मालकपुर में टिका था) गाँव के पास डेरे डाल दिए। वहाँ वह बहुत दिनों तक रुका रहा। ख्वाजा मिर्ज़ा के अधीन उसने सिखों को दबाने के लिए अपनी सेनाएँ चारों ओर भेजीं। सिखों की चढ़ाई का जैसे ही उसे पता चलता वह तुरंत अपने सिपाही उस ओर भेज देता। ख्वाजा मिर्ज़ा बीस-तीस कोस तक सिखों के पीछे अपने घोड़े दौड़ाता रहता। जब कभी उसे उनके बारे में कोई सुराग हाथ लगता तो वह उन पर अचानक टूट पड़ना तथा उनका कत्ल कर डालता। जो लोग सिखों को जीवित पकड़कर, या उनके सिर काट कर, या फिर उनके घोड़ों को पकड़ कर लाते उन्हें इनाम मिलते। जिस किसी भी मुग़ल का घोड़ा लड़ाई में जाता रहता उसे सरकारी खर्चे से उससे भी उत्तम नस्ल का दूसरा घोड़ा दे दिया जाता। जो सिख जीवित पकड़े जाते उन्हें लकड़ी के मुगदरों से मार डाला जाता था। कभी-कभी अदीना बेग भी 40–50 सिख बंदी दोआब ज़िले (जालंधर) से भेजता। लकड़ी के हथौड़ों से मार-मार कर प्रायः उनके प्राण ले लिए जाते थे।"

18. दल-खालसा की तीव्र प्रगति

पिछले पृष्ठों में हम देख चुके हैं कि मुइन लगभग पाँच वर्षों तक सिखों के विरुद्ध संघर्ष करता रहा। उसे सफलता मिली हो ऐसा नहीं कहा जा सकता। इस स्थिति के लिए उस काल की बहुत-सी आंतरिक तथा बाह्य शक्तियाँ उत्तर-दायी थीं। एक सुदृढ़ दल के रूप में संगठित हो जाने के कारण सिखों को उन खतर-नाक दिनों में बहुत लाभ पहुँचा। समान खतरों तथा बलशाली धार्मिक भावनाओं ने उन्हें अनुशासन में बाँध रखा था तथा 'पंथ' की सेवा के लिए प्रत्येक सिख को अपने नेता की आज्ञा मानने के लिए बाध्य कर दिया था। उसके साथ-साथ समान परिवेदनाओं, समान-यातनाओं, समान धर्म तथा समान उद्देश्य ने दल-खालसा के सदस्यों में भ्रातृत्व तथा प्रेम की भावनाएँ भर दी थीं।

दूसरी ओर अत्यधिक माल गुज़ारी, हाकिमों तथा मुग़लिया सैनिकों के दुर्व्यवहार के कारण पंजाब के किसान बेचैन तथा असंतुष्ट हो चुके थे।[2] इस विकट

---

[1]मिसकिन; 84। [2]मिसकिन, 84।

परिस्थिति से मुक्ति का और कोई मार्ग न देख उन्होंने सिख धर्म स्वीकार करना ही श्रेयस्कर समझा। इससे वे अपनी दयनीय दशा से तो मुक्ति पा ही जाते थे साथ ही उन्हें शक्ति के विशेषाधिकार अर्थात् लूटमार तथा अपने शत्रु को दंडित करने के अवसर भी मिल जाते थे। इस सबका अंतिम फल यह हुआ कि जहाँ कहीं भी किसानों को उत्पीड़न सहना पड़ता, वे अपने बाल बढ़ाकर 'अकाल! अकाल!' चिल्लाने लगते, 'पाहौल' लेते और सिख-धर्म अंगीकार कर लेते। इस भाँति दल-खालसा की संख्या दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती गई।

इस प्रकार जो तीर, सिखों का विनाश करने के लिए साधा गया था, वह अपने निशाने पर तो बैठ न सका उलटे उसने अपने साधक की योजनाओं को ही विफल कर दिया तथा उसी को बलशाली बना दिया जिसके विनाश के लिए उसे तैयार किया गया था।[1]

19. मुइन-उल्-मुल्क की मृत्यु, 3 नवंबर, 1753

प्रकृति भी नहीं चाहती थी कि सिखों को मानव-सहन-शक्ति की सीमाओं से परे की यातनाएँ भुगतनी पड़ें। उनके बुरे दिन समाप्त हो गए थे। शायद अपने ही किसी अधिकारी के हाथों विष दिए जाने के कारण, लाहौर से 8 कोस की दूरी पर रावी के तट पर स्थित तिलकपुर में 3 नवंबर, 1753 के दिन मुइन-उल्-मुल्क की अचानक तथा अप्रत्याशित मृत्यु हो गई।[2] सिखों को इससे तीन वर्षों के लिए मनमानी करने का अवसर मिल गया।

---

[1]सैयार, iii, 50-1; ब्राउनी, ii, 16; 16 बख्तमल, 67-8।

[2]मिसकिन ने जो उस समय मुइन के निजी अनुचर के रूप में उसकी सेवा में था अपने स्वामी के इस दुखद अंत का काफ़ी रोचक वर्णन किया है। (देखें पृ० 87–90) उसे शहीदगंज के समीप अब्दुल समद खाँ के दामाद अब्दुल रहीम खाँ की हवेली में दफ़ना दिया गया। शेरसिंह के शासनकाल में सिखों ने धार्मिक आवेश के एक क्षण में उस भवन को तोड़-फोड़ डाला तथा मुइन के अवशेषों को खोद कर बिखरा दिया। (लाहौर गज़ेटियर, पृ० 28; खुशवक्त राय, 88)।

चौथा अध्याय

'राखी' पद्धति

[नवंबर, 1753—अप्रैल, 1757]

1. सिखों के लिए मार्ग साफ हो गया, नवंबर, 1753

मुइन-उल्-मुल्क जैसे योग्य तथा ओजस्वी सूबेदार की मृत्यु से सिखों के मार्ग का एक बड़ा काँटा दूर हो गया। इसके बाद के तीन वर्षों में पंजाब में अपरिमित गड़बड़ी तथा अराजकता का साम्राज्य छाया रहा। तीन साल के इस छोटे से अर्से में इस सीमांत प्रांत की सूबेदारी के पद पर एक के बाद एक नौ उत्तराधिकारी आए। गृह-युद्ध, विश्वासघात और हत्या के चंगुल में उलझा दिल्ली दरबार पंजाब की सुध लेने में पूर्णरूप से असफल रहा। उधर अपने नवनिर्मित परंतु असंगठित साम्राज्य में उठ रही अशांति का दमन करने में ही दुर्रानी का संपूर्ण ध्यान लगा हुआ था। इसलिए समय-समय पर थोड़ी-बहुत सहायता भेजने के सिवाय वह लाहौर के सूबेदार के लिए और कुछ नहीं कर सका। आगे के पृष्ठों में हम लाहौर की गतिविधियों का संक्षेप में चित्रण करने का प्रयत्न करेंगे, तथा दिखाएँगे कि इससे सिखों को बिना किसी अड़चन के प्रगति करने का किस प्रकार अवसर मिला तथा उन्होंने उसका किस प्रकार उपयोग किया।

2. पंजाब को बालक-शासन तथा घाघरा सरकार मिली

पंजाब के अंतिम शाही सूबेदार की मृत्यु के बाद बादशाह अहमदशाह ने अपने तीन वर्षीय पुत्र महमूद खाँ को 13 नवंबर के दिन लाहौर तथा मुल्तान के दो प्रांतों का सूबेदार नियुक्त कर दिया। दीवान-ए-खास में शाहज़ादे को ख़िलअत आदि से विभूषित किया गया। तीन वर्ष के बालक सूबेदार का नायब भी बिल्कुल उसके अनुरूप ही चुना गया। यह था मुइन-उल्-मुल्क का दो वर्षीय पुत्र मुहम्मद-अमीन-खाँ। उसके लिए मीर-जामिल-उद्दीन खाँ के हाथों एक ख़िलअत तथा जवाहरात आदि भेजे गए। प्रांत का वास्तविक प्रशासन मुमिन खाँ के सुपुर्द किया गया।[1]

---

[1]शाही दरबार के अखबार नवीस ने अपने रोजनामचे में लिखा है। "(मुइन) सदैव नानक के पूजक सिखों के विरुद्ध लड़ता रहा। (वह) एक साहसी तथा वीर पुरुष था। लाहौर में उसकी उपस्थिति बहुत संतोष की बात थी, क्योंकि वह भूभाग देश की उस सीमा पर था जहाँ से अहमदशाह अब्दाली को भगाने की समस्या सदैव बनी रहती थी। (तारीख-ए-अहमदशाही, 257-8)।

सन् 1752 से पंजाब लगातार दुर्रानी साम्राज्य का एक भाग रहता चला आया था। इस भाँति वहाँ का सूबेदार अपनी यथार्थ शक्ति दिल्ली के बादशाह से नहीं परंतु अफ़गानिस्तान के शाह से प्राप्त करता था। मुग़लानी बेगम (मुइन की विधवा) जो कि एक प्रवीण तथा होशियार महिला थी दिल्ली द्वारा की गई इस औपचारिक नियुक्ति से प्रसन्न नहीं थी। उसके सहायक मुइन खाँ के भी इसी प्रकार के विचार थे इसलिए उन दोनों ने अहमदशाह अब्दाली से बातचीत शुरू की तथा जनवरी 1754 में उनकी इस बात की पुष्टि अहमदशाह ने की। इस अवसर को बहुत अधिक शानोशौकत से मनाया गया तथा बहुत आनंद मनाया गया।

3. मुहम्मद अमीन खाँ की मृत्यु (मई, 1754) तथा बेगम की चरित्रहीनता

भिखारी खाँ उर्फ रौशन उद्-दौला, रुस्तम-ए-जंग ने जो एक तुर्क सिपहसालार, मुइन का सबसे प्यारा मित्र तथा सबसे अधिक विश्वस्त गुमाश्ता था और जो अपने समय में प्रांत की सब गतिविधियों का केंद्र था।[1] बेगम के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। परंतु बेगम ने होशियारी से दूसरे सब तुर्की सरदारों को अपने पक्ष में कर लिया तथा गृह-युद्ध के भय को दूर कर दिया। इधर मई, 1754 के शुरू में ही बालक सूबेदार मुहम्मद अमीन खाँ की मृत्यु हो गई। मरते समय उसे भी विष दिए जाने के वे लक्षण प्रकट हुए जैसे कि उसके पिता की मृत्यु के समय उसमें पाए गए थे।[2] नए बादशाह आलमगीर द्वितीय ने 25 अक्तूबर, 1754 को मुमिन खाँ को पंजाब का सूबेदार बना दिया। परंतु उसकी सत्ता को बग़म ने धूमिल कर दिया। यथार्थ सत्ता बेगम के हाथों में ही रही।

मुग़लानी बेगम ने प्रांतीय सरकार पर अपनी स्थिति पूरी तरह सुरक्षित कर ली। परंतु इसके शीघ्र बाद ही वह अपनी स्त्री-सुलभ दुर्बलता प्रकट करने लगी। सब समकालीन साक्ष्य इस कथन से सहमत हैं कि वह अपने खोजों द्वारा दिखाए गए आनंद प्राप्ति के मार्ग में इस बुरी तरह फँस गई थी कि उसने मूर्खतावश शालीनता के सब बंधन तोड़ डाले तथा अपनी चरित्रहीनता के लिए बदनाम हो गई।[3]

---

[1]तारीख-ए-अहमदशाही, 282-3; फैयार, iii, 51; सरदार, 439।

[2]बहुत से लोगों का यह विश्वास था कि उस बेगुनाह बालक को खोजा जमूराद के हाथों भिखारी खाँ ने ज़हर दिलवाया था। उस खोजे की उसके पास पहुँच थी। मिसकिन 97-98। यह खबर 2 जून, 1754 को दिल्ली पहुँची। (दिल्ली क्रानिकल 92)

[3]बेगम के गाज़ी बेगखाँ बख्शी के साथ प्रच्छन्न प्रेम की गाथा इतनी फैल चुकी थी कि वह लाहौर के छोटे-बड़े सब नागरिकों के मुख से सुनी जा

4. लाहौर में खोजों का शासन

ये वे दिन नहीं थे जब एक महिला सूबेदार प्रशासनकार्य को नियंत्रित करने के लिए अपनी अत्यधिक कार्यशीलता का प्रदर्शन कर सकती। विशेषरूप से ऐसे समय जब विद्रोही सिखों के संगठनों का दमन करने की कठोर समस्या सामने मुँह बाए खड़ी थी। मुग़लानी बेगम खोजों के माध्यम से ही राज्य की गति-विधियों का संचालन कर सकती थी, और इसीलिए लाहौर में एक प्रकार से खोजों का ही राज्य हो गया। दीवान, बख्शी तथा दूसरे सरकारी अधिकारी बेगम की ड्योढ़ी में उसकी आज्ञाओं की प्रतीक्षा किया करते। ये आज्ञाएँ मियाँ खुशफ़हम, मियाँ अर्जमंद तथा मियाँ महावत लेकर आते। ये खोजे सब प्रकार की चर्चाओं में भाग लेते तथा इसीलिए वे लोग छोटे-बड़े सब कामों में बेगम के विश्वासपात्र बन गए। ये खोजे कभी भी आपस में एकमत नहीं होते थे तथा आपस में सदैव लड़ते-झगड़ते रहते थे[1] इसलिए स्थिति और भी गंभीर हो उठी।

खोजों के शासन तथा बेगम की चरित्रहीनता के कारण तुर्की सरदार बहुत बेचैन हो उठे। वे लोग मध्य एशिया के उन्हीं कबीलों से आए थे जिनसे बेगम का पिता तथा पति संबंधित थे। अब वे लोग इस प्रकार की भ्रष्ट सत्ता का सामना करने का निश्चय कर चुके थे।

5. कासिम खाँ का विद्रोह, 17 मार्च, 1754 के लगभग

दिल्ली साम्राज्य की अत्यधिक अस्तव्यस्तस्ता तथा बेगम के कुशासन ने

सकती थी। (मिसकिन, 99) दिल्ली के वज़ीर इमाद-उल्-मुल्क, गाज़ी-उद्दीन की एक चाची ने युवक चाकर मिसकिन (जिसने इस काल का अमूल्य वर्णन हमें दिया है) का नाम भी उसके साथ जोड़ा है। वज़ीर उसे जान से मारना चाहता था परंतु बेगम की सहायता से उसे भाग निकलने में सफलता मिल गई। (मिसकिन, 122) बेगम ने उसे फुसलाने की बहुत कोशिश की, उसे बड़े-बड़े इनामों के प्रलोभन दिए तथा उसे कई रात उसने अपने निजी कक्ष में रखा। (मिसकिन, 159-60)। सन् 1758 में बेगम जम्मू में थी। वहाँ वह अपने पुराने खोजे शाहबाज़ के साथ व्यभिचार में उलझ गई। "दो तीन महीनों तक इस बात की चर्चा सारे जम्मू नगर में होती रही।" (मिसकिन 230) इसके बाद बेगम जम्मू से हट गई तथा पास की सनबा पहाड़ी की ओर चल दी। वहाँ उसने चुपचाप शाहबाज़ से विवाह कर लिया (मिसकिन, 231) देखें गुलाम अली, 26; शिव प्रसाद, 33 ख; खज़ाना-ए-उमीदा (ये सब तत्कालीन लेखक हैं)।

[1]सरकार, ii, 52।

लाहौर में तुर्की सरदारों को इतना निर्भय बना दिया था कि उनमें से प्रत्येक अपने को अपने बलबूते पर एक स्वतंत्र राज्य स्थापित करने के योग्य समझने लगा था। वे सोच रहे थे कि मुग़लानी बेगम से कहीं अधिक उनका शासन जनता की खुशहाली तथा प्रसन्नता में सहायक होगा।[1]

भिखारी खाँ के विद्रोह के बाद कासिम खाँ का विद्रोह हुआ। वह एक तुर्क था। मुइन के अधीन उसने एक सैनिक के रूप में नौकरी शुरू की थी। धीरे-धीरे उन्नति करता वह जमादार के पद तक पहुँचा तथा भिखारी खाँ के विरुद्ध उसने मुग़लानी बेगम की सहायता की। उसकी सेवा से प्रसन्न होकर बेगम ने उसे लाहौर ज़िले में पट्टी परगना का फौजदार नियुक्त कर दिया।

कासिम खाँ को जिसे मुग़लानी बेगम प्यार से अपना बेटा कह कर पुकारती थी कुछ तोपें, 300 जिजायरचिस (यह बदाख़शानी लोग थे तथा नौकरी की तलाश में हाल ही में पंजाब में आए थे) और 100 तुर्कों का एक रिसाला तथा कुछ एक हज़ार घोड़े तथा पैदल सैनिक तथा कई हज़ार नक़द रुपए देकर सम्मानित किया गया। तहमाश खाँ मिसकिन उसके साथ गया। लाहौर से पट्टी की ओर कासिम के बढ़ने का बहुत सुंदर चित्रण उसने हमारे लिए छोड़ा है:—

"कासिम खाँ लाहौर से चला तथा दो कोस की दूरी पर उसने लखपतराय के बगीचे में डेरा डाला। दूसरे दिन हम भी उससे बगीचे में जा मिले। उसने हमारा खूब स्वागत किया तथा आतिथ्य प्रकट करते हुए रात्रि के नाच में खर्च करने के लिए उसने हममें से प्रत्येक को दो-दो सोने के सिक्के दिए। संयोग से उसी दिन सिखों के साथ एक मुठभेड़ हुई। लोगों ने उससे आग्रह किया कि वह उन कमीनों पर हमला करे तथा उनको तलवार के घाट उतार कर समाप्त कर दे। परंतु कासिम खाँ सहमत नहीं हुआ। शाम को हम लोग वापिस आ गए तथा अपने-अपने ख़ेमों में चले गए। लगभग उसी समय सिख लोग पीछे से लड़ते हुए आगे आए तथा हमारे ख़ेमों के पास पहुँच गए। इसके बाद वे लोग वापस चले गए तथा हमने संशय में रात्रि बिताई। दूसरे दिन हम पट्टी की ओर बढ़े तथा 12 कोस की दूरी पर स्थित एक मुग़ल गाँव में जिसका नाम दामोदरन है हमने डेरे डाले। उस स्थान का मुखिया तथा अन्य लोग सम्मान प्रदर्शित करने के लिए आए। इन सब को पकड़ कर बंदी बना लिया गया; किला तथा गाँव लूट लिया गया। यह कहकर गाँव पर घेरा डाल दिया गया कि वे लोग सिखों के साथ मिले हुए हैं। हम एक माह तक घेरा डाले रहे तथा उनके जिन स्त्री-बच्चों को बंदी बनाया गया था उनमें से किसी को भी स्वतंत्र नहीं किया गया। सिख प्रतिदिन दोनों समय (सुबह-शाम) हम पर आक्रमण करते, लड़ते तथा भाग जाते।

---

[1]सरकार, ii, 52।

"कुछ दिनों के बाद कासिम खाँ ने अपने एक भाई अली बेग खाँ को 1000 घुड़सवार तथा पैदल सैनिक देकर छप्पावाल के रास्ते, सिखों के एक गाँव पर जहाँ वे एकत्रित हुए थे, आक्रमण करने के लिए भेजा । सिख भी तैयार हो गए। लड़ाई शुरू हुई । अली बेग खाँ की हिम्मत पस्त हो गई । अपने को उस कार्य के लिए असमर्थ देख वह अपने बदाखशानी पैदल सैनिकों को मौत के मुँह में छोड़कर वापिस चल दिया । यह समाचार पाकर कासिम खाँ घोड़े पर सवार हुआ तथा उस स्थान की ओर चल पड़ा । मैं भी दो घुड़सवारों को ले उसके पीछे चला तथा दो कोस चलने के बाद उससे जा मिला। मैंने देखा कि आदमी दौड़ते हुए (लड़ाई के मैदान से) वापिस आ रहे हैं । इनमें मेरे कबीले के लोग भी थे । मुहम्मद आकिल आदि भी उनमें ही थे । ये लोग छप्पावाल की ओर से गए थे तथा सही सलामत लौटे थे । हम और आगे बढ़े । मुझे उस समय यह देख कर बहुत आश्चर्य हुआ कि केवल तीन सिख घुड़सवार सेना को खदेड़ रहे हैं । मैंने एक कोस तक उनका पीछा किया । राह में मुझे बहुत-से लोगों के शव दिखाई दिए । परंतु मुहम्मद आकिल ने बहुत ज़िद करके मुझे वापिस लौटा लिया । उस दिन हम अपनी सेना में सकुशल लौट आए । दूसरे दिन मैंने कासिम खाँ को एक छोटी-सी सलाह दी; परंतु उसने उसे स्वीकार नहीं किया तथा हमारे बीच थोड़ी-सी गरमागरमी भी हो गई । उस पर मैं लाहौर वापिस चला गया ।

"थोड़े दिनों बाद वह भी बिना कुछ लाभ उठाए तथा अत्यधिक कठोर यातनाएँ तथा कठिनाइयाँ भुगतने के बाद वापिस लौट आया । वह लाहौर से पाँच कोस की दूरी पर नदी (रावी) के किनारे आ ठहरा । मैं उसे देखने गया । उसने कहा मैंने 8000 से अधिक सिखों को मैत्रीपूर्ण बातचीत द्वारा अपनी ओर कर लिया है । मैं शीघ्र ही लाहौर पर अधिकार जमा लूँगा तथा और अधिक सेना एकत्रित करके दिल्ली पर कब्ज़ा करूँगा तथा फिर अपने को बादशाह बनाऊँगा।" उसने सहारनपुर के एक भगोड़े फौज़दार, कँगले ख्वाजा को मंत्रिपद तथा मुझे शाही मीर-बख्शी का पद सौंपने की पेशकश की । उस समय मैं केवल पंद्रह वर्ष का छोकरा था । मैंने उससे कहा कि इस प्रकार की बे सिर पैर की बातें उसको शोभा नहीं देती तथा उसे इसके लिए थोड़े दिनों बाद पछताना पड़ेगा । पाँच दिनों बाद उसने वह स्थान छोड़ दिया तथा उसने नगर (लाहौर) के बाहर शाह बतावल के समीप डेरे डाल दिए । मैं उससे फिर मिलने गया । उसके पास कुछ भी बाक़ी नहीं बचा था । उसने हज़ारों रुपयों के मूल्य की बंदूकें, तीर-कमान तथा और दूसरे हथियार तथा उपहार अपने सिख मित्रों में बाँट दिए थे । उसकी अपनी सेनाएँ अपने वेतन के लिए शोर मचा रही थीं । उन्होंने उसे घेर लिया तथा उसका तिरस्कार किया । उसी दिन उन्होंने उसके तंबू के रस्से काट डाले

तथा घसीट कर उसे बेगम के पास ले गए। बेगम ने उसे अपने महल के कारागार में डाल दिया तथा उस पर कड़ा पहरा लगा दिया गया।[1]

6. विद्रोह का जारी रहना, दिसंबर, 1754—अक्तूबर, 1756

इस बीच तुर्क सैनिकों में बेगम की चरित्रहीनता के कारण बहुत अरुचि पैदा हो गई। दिसंबर 1754 में मुग़लिया दरबारियों ने निर्णय किया कि, "क्योंकि स्वर्गवासी नवाब के घराने की प्रतिष्ठा में एक दरार पड़ गई है, उनके लिए सबसे उचित मार्ग यही है कि वे प्रांत का प्रशासन ख्वाजा मिर्जा खाँ को सौंप दें।" फलस्वरूप ख्वाजा मिर्जा लाहौर आया। उसने बेगम को एक हवेली में बंदी बना कर पंजाब की सूबेदारी संभाल ली। बेगम ने बहुत चतुराई से किसी प्रकार अपने मामा ख्वाजा अब्दुल्ला खाँ को अहमदशाह अब्दाली के पास भेज दिया। उसकी सेना ने आकर बेगम को फिर से सत्ता पर प्रतिष्ठित कर दिया (अप्रैल, 1755)। जुलाई, 1755 में ख्वाजा अब्दुल्ला ने बेगम को उसकी माँ के घर में ही बंदी बना दिया तथा लाहौर का निर्बाध स्वामी बन बैठा।[2]

जालंधर दोआब के फौजदार अदीना बेग खाँ ने प्रांतीय राजधानी में चल रही अशांति से लाभ उठाया। वह लाहौर पर चढ़ आया। उसने अब्दुल्ला को मार भगाया तथा राज्य का कार्य चलाने के लिए सादिक बेग खाँ को अपना नायब नियुक्त किया। बेगम ने गुप्त रूप से दुर्रानी से सहायता की याचना की तथा उसने बेगम को सूबेदारी के पद पर प्रतिष्ठित करने के लिए जहान खाँ को रवाना कर दिया। सादिक बेग सरहिंद की ओर भाग खड़ा हुआ, (दिसंबर, 1755 के लगभग)। बेगम ने संपूर्ण सत्ता अपने हाथों में ले ली[3] तथा ख्वाजा अब्दुल्ला को अपना नायब बना लिया। मार्च, 1756 में दिल्ली के वज़ीर इमाद-उल्-मुल्क ने मुग़लानी बेगम को बंदी बना लिया, उसकी सारी संपत्ति ज़ब्त कर ली, 30 लाख वार्षिक कर के बदले में लाहौर तथा मुल्तान की सरकारें अदीना बेग खाँ के हवाले कर दीं तथा सैय्यद जामिल-उद्दीन को अदीना बेग के सहायक के रूप में लाहौर का कार्यभार

---

[1]मिसकिन 94–6।

[2]मिसकिन 99–107 "इस ख्वाजा ने नगर के दरवाज़ों को बंद करने के बाद लाहौर के हिंदु-मुसलमान दोनों को बहुत बुरी तरह लूटा। उसने बहाना यह बनाया कि वे लोग भिखारी खाँ के साथी रह चुके हैं तथा उन लोगों ने बहुत से मनुष्यों का खून किया है। बहुत लोग बर्बाद हो गए। अनाज तथा अन्य वस्तुएँ बहुत मँहगी हो गईं।" तारीख-ए-आलमगीर सानी, 112।

[3]तारीख़-ए-आलमगीर सानी, 124, 151; तारीख़-ए-अहमद 9।

संभालने के लिए नियुक्त कर दिया। ख्वाजा अब्दुल्ला कंधार से दुर्रानी के सैनिकों का एक दल लेकर आया तथा जामिल-उद्दीन को मार भगाया। वह खुद वहाँ का सूबेदार बन बैठा तथा ख्वाजा मिर्जा को उसने अपना सहायक बना लिया।[1] (4 अक्तूबर, 1756)

7. पंजाब में सरकार का विघटन

पिछले पृष्ठों में वर्णित कहानी, मुइन की मत्यु के बाद से पंजाब की राजधानी में हुई क्रांतियों, लूट-खसोट, विश्वासघात तथा हत्या की उकता देने वाली घटनाओं से भरी पड़ी है। तीन साल के अल्प समय (नवंबर, 1753 से अक्तूबर, 1756) में सूबेदार के पद पर नौ[2] परिवर्तन हुए तथा धीरे-धीरे प्रशासन शिथिल पड़ता चला गया। मुल्तान एक अलग सूबेदार के अधीन था जो सीधा दुर्रानी के प्रति उत्तरदायी था। गुजरात, स्यालकोट, पसरूर तथा औरंगाबाद के चार महालों पर अहमदशाह द्वारा सीधे नियुक्त रुस्तम खाँ का शासन था। जालंधर तथा सरहिंद अदीना बेग खाँ के अधीन थे तथा वह लाहौर के सूबेदार को मान्यता देने की तनिक भी चिंता नहीं करता था। लाहौर के प्रति जो ज़िले निष्ठावान थे वे केवल राजधानी के आस-पड़ोस में ही स्थित थे। अमीनाबाद, शाहदरा, छीमाह गक्खर (वज़ीराबाद से 10 मील) आदि उनमें से मुख्य थे। दूसरी ओर शक्तिशाली स्थानीय ज़मीदार सैनिक एकत्र कर स्वतंत्र रवैया अपनाते जा रहे थे। इसी प्रकार सिंध सागर दोआब में गक्खर तथा तिवान, चज दोआब में वरैच सरदार तथा मुकर्रब खाँ, रेचना दोआब में छत्था तथा बजौह के ज़मींदार, गुरदासपुर तथा जंडियाला के हिंदू फ़कीर, बटाला परगना के रंधावा ज़मीदार तथा बारी दोआब में कसूर के अफ़गान, तलवान, फगवाड़ा और कपूरथला के राजपूत तथा जालंधर दोआब में अलावलपुर के अफ़गान शक्तिशाली होते जा रहे थे।[3]

---

[1]तारीख़-ए-आलमगीर सानी, 130-31,151; दिल्ली क्रॉनिकल, 131 तथा 132; मिसकिन, 120-6; गुलामअली 26-7; खजाना-ए-अमीरा, 52; शिवप्रसाद 33 ख; शाकिर 79-80; सयार, iii, 53; तारीख़-ए-मुजफ़्फ़री, 98 ख; मासिर-उल्-उमरा, ii, 852-2।

[2]नवंबर, 1753 से मई, 1754 तक मुहम्मद अमीन खाँ; मई, 1754 से अक्तूबर, 1754 तक मुग़लानी बेगम; अक्तूबर से दिसंबर 1754 तक मुमिन खाँ; दिसंबर 1754 से अप्रैल, 1755 तक ख्वाजा मिर्जा; अप्रैल से जुलाई, 1755 तक मुग़लानी बेगम; जुलाई से सितंबर, 1755 तक ख्वाजा अब्दुल्ला; सितंबर से दिसंबर, 1755 तक अदीना बेग खाँ; जनवरी से मार्च, 1756 तक मग़लानी बेगम; मार्च से अक्तूबर, 1756 तक अदीना बेग़ खाँ।

[3]खुशवक्तराय, 89; अहमदशाह, 870।

8. सिखों का शीघ्रता से उत्थान, नवंबर, 1753—अक्तूबर, 1756

प्रांत में इस प्रकार की गतिविधियों ने सदैव रहने वाले सिखों को स्वर्णिम अवसर प्रदान किया। वे एक बार फिर अधिक शक्ति तथा दृढ़ निश्चय के साथ उठ खड़े हुए। मुइन की अचानक मौत ने उनके इस विश्वास को और दृढ़ कर दिया कि एक दिन वे लोग अपने पितृ देश में अवश्य अपना शासन स्थापित करेंगे। प्रिन्सेप कहते हैं, "उनकी संख्या तथा निडरता दिन प्रति दिन शीघ्रता से बढ़ती चली गई। इन दाढ़ी वाले लुटेरों के झुंड पंजाब के विभिन्न ज़िलों को रौंदते, मवेशियों के झुंडों को अपने साथ खदेड़ कर ले जाते तथा तत्परतापूर्वक अंशदान न देने पर फ़सलों को तहस-नहस करते सदैव देखे जा सकते थे।" उन्होंने अपने शत्रुओं को दंडित किया, उनके गाँवों को लूट लिया तथा इस भाँति बहुत-सा लूट का माल इकट्ठा कर लिया।[1]

फिर उन्होंने अमृतसर के राम-रौनी दुर्ग का पुनर्निर्माण करने के लिए जस्सासिंह ठोका को लगा दिया। इसे मुइन-उल्-मुल्क ने भूमिसात कर दिया था। जस्सासिंह ने अपने दस्ते के लोगों और अन्य बहुत से सिखों को इस काम पर लगा दिया। उसकी किलेबंदी और भी अधिक मज़बूत की गई तथा इस बार उसका नाम रामगढ़ (ईश्वर का दुर्ग) रखा गया। इस स्थान को अपनी कार्य-वाहियों का आधार बना वे लोग लाहौर के आस-पास मंडराने लगे। यहाँ पर उन्होंने पट्टी के पदनामित फौजदार कासिम खाँ को जो लाहौर से पट्टी की ओर जा रहा था, परेशान किया तथा उससे युद्ध किया। अंत में बाध्य होकर उसे 8000 सिखों को अपनी सेवा में रखना पड़ा। (फरवरी-मार्च 1754) जब उसने उन्हें बंदूकें, तीर-कमानों तथा युद्ध की दूसरी सामग्रियों से लैस कर दिया तथा हज़ारों रुपए के मूल्य के उपहार आदि दे दिए तो वे लोग उसे छोड़ कर भाग गए।[2]

इसके बाद सिख अमीनाबाद की ओर बढ़े तथा उस स्थान के फौजदार ख्वाजा मिर्जा के साथ उन्होंने छेड़छाड़ की। ख्वाजा बड़ी ओजस्वी प्रकृति का आदमी था तथा सिख बवंडर का सामना करने के लिए उसने अपने देश के कोई पाँच छः हज़ार नए तुर्क सैनिक अपने भाई ख्वाजा काज़ी के अधीन भर्ती कर लिए थे।

---

[1]उन्होंने नूरदीन की सराय, सिंह कोट, मजीठा जंडियाला, सैयदेवाला, भूरेवाला, मंडियाला, बटाला, बोंडाला, मालपुर, फगवाड़ा, नौशहरा, शेखपुरा तथा करमा छिन्ना, राम रंधावा, महंत अकास दास हिंदालिया, औलिया खाँ घेब हसना भट्टी के गाँवों को लूट लिया। (रतनसिंह, 311-2; ज्ञान सिंह 713)।

[2]अक्षि-साक्षी, मिसकिन (पृ० 94-96) ने इस घटना का बहुत सुंदर वणन किया है।

इस बलवान शक्ति की सहायता से उसे सिखों को अपनी सीमाओं से मार भगाने में सफलता भी मिली। परंतु वह अपने पड़ोस में रहने वाले चड़तसिंह (रणजीत सिंह का दादा) की शक्ति को सफलतापूर्वक नहीं कुचल सका।[1] वे लाहौर की ओर लौट पड़े। एक अंधेरी रात में चड़तसिंह तथा जयसिंह अपने साथ 500 सिखों को लेकर तथा मुसलमानी परिधान धारण कर शाहलमी दरवाज़े से लाहौर में प्रविष्ट हुए। उन्होंने परीमहल तथा रंगमहल की बेगमों के महलों के समीप रहने वाले अमीर व्यापारियों तथा जौहरियों को लूट लिया। उस समय के (नवंबर 1753 से नवंबर 1754) नायब सूबेदार मुमिन खाँ ने उनका पीछा किया तथा जिनको वह पकड़ सका उनको उसने सज़ा दी। सन् 1754 के अंतिम दिनों में दल-खालसा ने अंबाला जिले को तहस-नहस कर दिया। लगभग 12,000 सिख सरहिंद पर टूट पड़े। नगर को लूटने के बाद वे ठिकरीवाला की ओर विलीन हो गए। सिखों ने एक बार फिर प्रांतीय राजधानी पर धावा बोला। जब तक ख्वाजा मिर्जा (दिसंबर 1754—अप्रैल 1755) लाहौर का सूबेदार रहा तब तक वे उसे सताते रहे। वह भी उन्हें दंड देने के लिए अपने भाई ख्वाजा काज़ी को उनके पीछे भेजता रहता था।[2]

सन् 1755 के मार्च के मध्य से लेकर अप्रैल के मध्य तक उनकी सेवाएँ अदीना बेग खाँ ने किराए पर ले लीं। उसने लगभग 50,000 घुड़सवार तथा लगभग इतने ही पैदल सैनिक कुतुबखाँ रोहिल्ला से लड़ने के लिए इकट्ठे किए। सतलज के किनारे रोपड़ की दूसरी ओर 11 अप्रैल, 1755 को उसने कुतुबखाँ को पराजित किया तथा उसे मौत के घाट उतार दिया। सरहिंद का प्रशासन अदीना बेग खाँ ने संभाल लिया तथा सतलज नदी को पार कर वह शाहाबाद, थानेसर, घुराम, मनसूरपुर, मुस्तफ़ाबाद तक बढ़ता चला गया।[3]

---

[1]मिसकिन, 102-05; बूटे शाह, 308 (क)।

[2]रतन सिंह, 31-21 ज्ञान सिंह, 713–5 (यह कहा जाता है कि सिखों के विरुद्ध एक झड़प में यह मुमिन खाँ मारा गया था। ज्ञान सिंह 716-7)। करम सिंह द्वारा उद्धृत कैफ़ियत मुकद्दम लखनौर साहिब, 1959-60 बंदा के बाद यह पहला अवसर था जबकि सिखों ने सरहिंद को लूटा (मिसकिन, 105)।

[3]तारीख-ए-आलमगीर सानी, 76—88 (कुतुब खाँ केशनाह बरौत, सरधना, तथा कंडेला परगनों का जागीरदार था। जब ये प्रदेश दिल्ली के वज़ीर ने मराठों को सौंप दिए तो कुतुब खाँ 11 मार्च को सरहिंद के प्रदेश में घुस आया तथा सोनीपत, पानीपत, करनाल, अजीमाबाद तथ थानेसर के भूभागों को लूट कर उसने सरहिंद पर अधिकार जमा लिया। मलेरकोटला का जमाल खाँ तथा सरहिंद के सूबेदार सादिक बेग खाँ के अफ़गान सैनिक भी उससे आ मिले। इस

जून, 1755 में लिखे एक मराठी पत्र को पढ़ने से पता चलता है कि थानेसर के निकट सिखों ने अदीना बेग खाँ का साथ छोड़ दिया तथा जयपुर के राजा माधोसिंह के भूभाग नारनौल तथा कनौद तक बढ़ गए तथा वहाँ उन्होंने अशांति पैदा कर दी। राजा ने मराठों के पास सहायता के लिए अपना कारिंदा भेजा तथा अच्युतराव को 5000 रुपए प्रतिदिन के हिसाब से नौकर रखा। इस सेना के साथ राजा की सेना के आ मिलने के बाद जब वे लोग सिखों की ओर बढ़े तो सिख वापिस पंजाब की ओर लौट गए।[1]

जयपुर के राजा के प्रदेशों में अपने लूट-मार के अभियान से लौट आने के बाद सिखों ने अदीना बेग खाँ को परेशान करना आरंभ कर दिया। नवंबर 1755 तक उन्होंने खान को इस बात के लिए बाध्य कर दिया कि वह फतेहबाद का परगना उन्हें जागीर के रूप में दे दे। अप्रैल, 1756 के लगभग उन्होंने लाहौर के समीप सैय्यद ज़ामिल उद्दीन को तंग करना शुरू किया। ऐसा प्रतीत होता है कि इसके बाद वे लोग अपर बारी दोआब में कलानौर, बटाला, तथा अमृतसर ज़िलों में शांतिपूर्वक बस गए। आगे चलकर ये स्थान उन के गढ़ बन गए।[2]

9. 'राखी' पद्धति की स्थापना

उस समय जब दिल्ली तथा लाहौर में अराजकता तथा कुशासन का पूरी तरह से बोलबाला था सिखों के उत्थान में एक और महत्वपूर्ण विकास हुआ जिसके कारण वे आगे चलकर एक राजनीतिक शक्ति बन सके। मालगुज़ारी एकत्रित करने वालों, लुटेरे सिख जत्थों तथा सरकारी सेनाओं आदि के कारण पंजाब के किसानों का विनाश हो चुका था। व्यापार लगभग ठप्प हो चुका था क्योंकि सड़कें तथा रास्ते पूरी तरह अरक्षित हो गए थे। इस प्रकार की दुर्व्यवस्था में खालसा को एक अवसर मिला जिसे उन्होंने हाथ से नहीं जाने दिया। देश के क्रूर लुटेरों में वही एकमात्र संगठित शक्तिशाली लोग थे। उनकी उपस्थिति देश के निवासियों को ही नहीं अपितु उस समय की सरकार को भी भयभीत कर देती

प्रकार के प्रबल शत्रु की बिल्कुल पास में उपस्थिति को अदीना बेग खाँ सहन नहीं कर सकता था। उसने उनका सामना करने की तैयारियाँ शुरू कर दीं। दिल्ली क्रॉनीकल, 122; चहार गुलज़ार शुजाई, 461, (क); तारीख-ए-मुज़फ्फरी, 98 'ख', 99; अहवाल-ए-अदीना बेग खाँ, 56 ख-57 क; अहमदशाह, 880-81; अंतिम लेखक कहता है कि विद्रोही के विरुद्ध उसकी सेनाओं की सहायता करते हुए दिल्ली के बादशाह ने अदीना बेग को "ज़फ़र-जंग-बहादुर" की उपाधि दी।

[1]एस-पी-डी, xxvii, 100।

[2]ग्रिफिन द्वारा लिखित राजाज़' 458, मिसकिन, 124; खुशवक्त राय 89।

थी। उन्होंने प्रत्येक गाँव के सामने एक योजना रखी इसके अनुसार किसानों को अपनी रक्षा का भार दल-खालसा को सौंपना पड़ता तथा उन्हें यह वचन देना पड़ता कि वर्ष में दो बार, मई तथा अक्तूबर में अपनी आय का पाँचवाँ भाग दल-खालसा को देंगे। आसाढ़ी तथा सावनी--जिन्हें रबी तथा खरीफ़ भी कहा जाता है--की फ़सलों के बाद यह अदायगी की जाती थी। इसके एवज़ में सिख उन्हें स्वयं अपनी, उनके पड़ोसियों तथा सरकारी सेनाओं की लूटमार, चोरी डकैती तथा छेड़-छाड़ से सुरक्षा प्रदान करते थे। सारांश यह कि उनके जान-माल की सुरक्षा का विश्वास दिलाया जाता था। इस पद्धति को 'राखी' या जामदारी का नाम दिया गया।[1]

शांति तथा सुरक्षा का इस प्रकार का प्रस्ताव असहाय ग्रामवासियों के लिए एक वरदान था। इस बात को कहने की कोई आवश्यकता नहीं है कि उनमें से बहुतों ने इससे पूरा-पूरा लाभ उठाया। फल यह हुआ कि पंजाब के पाँच दोआबों में से चार दोआबों के बड़े-बड़े भाग शीघ्र ही 'दल' की सुरक्षा में आ गए। इस पद्धति को कार्यरूप देने के लिए दल के एक या दो जत्थे सुरक्षा में आए प्रदेशों का कार्यभार संभाल लेते थे। इसके साथ-साथ आपत् काल में बलवर्धन के लिए अमृतसर में एक आरक्षित सेना भी रखी जाती थी। इस भाँति करोड़ासिंह तथा दीपसिंह के दल सतलज के दक्षिणी तट की ओर चले गए। सिंहपुरिए तथा अहलूवालिए घरा (ब्यास नदी के संगम के बाद का सतलज दरिया) के दोनों ओर रहे। जयसिंह कन्हैया तथा जालासिंह रामगढ़िया अमृतसर के उत्तर में स्थित रियारकी के उपजाऊ भूभागों में चले गए। नकाई लोग लाहौर के दक्षिणवर्ती भूभाग नक्का में जा बसे। चड़तसिंह, सूकरचाकिया तथा हरी सिंह भंगी, जिनके पास सबसे शक्तिशाली दल थे, शत्रु जनसमुदाय के मध्य रेचना तथा चज दोआबों के बीच जा टिके। निशान वालों तथा दल्लेवालों ने 'गुरु-की नगरी' (चक गुरु या अमृतसर) को सुरक्षित किया। इन्हें आपत् काल में आरक्षित सेनाओं के रूप में भी काम करना पड़ता था। इन सरदारों ने सुविधाजनक स्थानों में अनेक

---

[1]जब कभी कोई ज़मीदार किसी सिख सरदार को कर देना स्वीकार कर लेता था तो वह सरदार न केवल खुद ही उसे लूटने से रुक जाता परंतु दूसरों से भी उसकी रक्षा करता था। सर्व-सम्मति से उस रक्षा का इतना अधिक मान था कि दल-खालसा की यदि बड़ी सेना भी किसी ऐसी ज़मीदारी से होकर गुज़रती जहाँ किसी छोटे से छोटे सिख सरदार की सुरक्षा सेना होती तो उससे किसी प्रकार की भी छेड़छाड़ नहीं की जाती थी।" (ब्राउनी, प्रस्तावना) बूटे शाह, 308क; अली-उद्-दीन, 171 ख; गणेश दास, 297; तारीख-ए-जंग सैयाल, 68; सोहन लाल, ii 5; तुलसी राम 44-5।

छोटे-छोटे दुर्ग खड़े कर लिए। अपनी सत्ता को लागू करने के लिए वे लोग इनमें बलशाली गारदें रखते थे।[1]

इस कदम से कुछ समय के लिए सिखों की आर्थिक स्थिति मज़बूत हो गई तथा सिख सरदारों के लिए रियासतों का निर्माण हो गया। थोड़े दिनों के बाद वे निरंकुश मालिकों की भाँति उन पर शासन भी करने लगे। इस तरह इस कदम से उन्हें प्रादेशिक मुखिया बनने का विचार आया।

नवंबर, 1756 में अहमदशाह दुर्रानी ने चौथी बार हमला किया तथा उसने भारत में प्रवेश किया। उसने सदैव की भाँति सारे देश में गड़बड़ी तथा दुर्व्यवस्था फैला दी तथा सिखों को अगले पाँच महीनों तक और बेरोक-टोक अपनी गति-विधियाँ चलाते रहने का अवसर दिया।

10. दुर्रानी का चौथा हमला, नवंबर, 1756—अप्रैल, 1757

भारत पर हमला करने के लिए उस बार अहमदशाह दुर्रानी को मुग़लानी बेगम, नाजिब-उद्-दौला तथा बादशाह आलमगीर द्वितीय ने आमंत्रित किया। इन लोगों ने उसे अपने पूरे सहयोग का वचन दिया था।[2] दुर्रानी नरेश पतझड़ के आरंभ में कंधार से चला तथा नवंबर 1756 के आरंभ में ही वह पेशावर आ पहुँचा। उसने 15 नवंबर को पेशावर छोड़ा, 26 को सिंधु नदी पार की तथा 20 दिसंबर को लाहौर जा पहुँचा। लाहौर में बारह दिन रहकर उसने स्थानीय

---

[1]देखें—सोहन लाल, ii, 5।

[2]बेगम ने लिखा—"मुझे मालूम है कि मेरे स्वर्गवासी ससुर के महलों में करोड़ों रुपए की नक़दी तथा माल दबा पड़ा है। इसके अलावा ढेरों सोना-चांदी छतों में रखा गया है। बादशाह आलमगीर द्वितीय, उसके वज़ीर तथा सरदारों में पूरी-पूरी अनबन है। यदि इस बार आप हिंदुस्तान पर हमला करेंगे तो बिना कुछ खर्च उठाए आपके हाथों में हिंदुस्तान के साम्राज्य के साथ-साथ करोड़ों रुपए की संपत्ति भी आ जाएगी।" (अली-उद्-दीन, 114 ख)। नाजिब-उद्दौला ने लिखा:—"इस देश में मैंने 25,000 अफ़गान इकट्ठे कर लिए हैं। मैंने गंगापार के 40,000 अफ़गानों को भी आपकी सेवा के लिए तैयार कर लिया है। आप बिना किसी शंका के यहाँ आ सकते हैं। इमाद-उल्-मुल्क में आपका सामना करने की ताक़त नहीं है। मैं ही उसका सबसे बड़ा मित्र हूँ क्योंकि मैं आपका आज्ञाकारी हो गया हूँ अतः अब यहाँ और कोई (उसकी मदद के लिए) नहीं बचा है।" (नूरूद्दीन-14 ब)।

बादशाह के निमंत्रण के लिए देखें फ्रेंकलिन का शाह-आलम 4-5।

सरदारों से कर आदि वसूल किया। फिर 10 जनवरी को सतलज पार कर वह शीघ्रता से दिल्ली की ओर बढ़ा।

अपने पिछले हमलों के दौरान दुर्रानी को पंजाब के सूबेदार के सक्रिय विरोध का सामना करना पड़ता था। दिल्ली दरबार भी इस ओर कुछ न कुछ प्रयत्न करता ही था। कुछ और नहीं तो वहाँ कम-से-कम उसकी प्रगति के प्रति चिंता तथा उसको रोकने में उत्साह तो व्यक्त किया ही जाता था। परंतु इस अवसर पर साम्राज्य की दशा इतनी गिर चुकी थी कि किसी ने भी उसे आगे बढ़ते रहने में किसी प्रकार की बाधा न पहुँचाई। उसका सामना करने के लिए एक भी हिंदुस्तानी सिपाही आगे नहीं आया। हमलावर बढ़ता-बढ़ता शाही राजधानी में आ जमा। अब सब कुछ उसकी दया पर आश्रित था।

इस हमले की घटनाएँ यद्यपि हमारे विषय के बाहर हैं तथापि यह बताना आवश्यक है कि दिल्ली की स्थिति क्या थी तथा अब्दाली ने उसकी क्या दुर्गति की।

दिल्ली में अब्दाली ने 28 जनवरी, 1757 को प्रवेश किया। उसकी सेनाएँ उसी दिन से लूटमार तथा सब प्रकार के ज़ुल्म ढाहने पर जुट गईं।[1] अब्दाली खुद भी आहरण तथा यातनाएँ पहुँचाने की एक पद्धति पर चलने लगा। दरबार के कुलीन से कुलीन व्यक्ति को भी अत्यधिक अपमानित किया गया। सब बड़े-बड़े नवाबों की हवेलियाँ खोद डालीं गईं, छतें तोड़ दी गईं तथा उनकी महिलाओं से सब कुछ उतरवा लिया गया। कौन-सा नवाब कितने पानी में है तथा शाही हरम में कौन-कौन सी अनिंद्य सुंदरी अविवाहित है यह सूचना अब्दाली को देकर मुग़लानी बेगम ने उसकी 'अत्यधिक स्तुत्य' सेवा की।[2]

बाद में नगर को मुहल्लों में विभक्त कर दिया गया। सब स्थानों पर अफ़ग़ान सैनिक तैनात कर दिए गए तथा घर-घर से नियमित कर उगाहा जाने लगा। यातनाएँ देने के सब साधन काम में लाए गए। बहुत-से नर-नारी उन यातनाओं के शिकार हुए। बहुत-से लोगों ने ज़हर खाकर या डूबकर अपनी इहलीला समाप्त कर ली। दिल्ली में यह स्थिति लगभग एक माह तक बनी रही। यह नृशंसता केवल दिल्ली नगर तक ही सीमित न थी। बाद में मथुरा को लूटा गया। क़त्लेआम,

---

[1]"लोगों की औरतों तथा बेटियों, को उन्होंने इतनी निर्दयता से खींचा कि बहुतों ने अपनी नारी जाति की मृदुभावनाओं की रक्षा के लिए, उनके राक्षसी हाथों में पड़ने की अपेक्षा अपने प्राणों का बलिदान करना ही अधिक उचित समझा।" सैयार, iii, 54।

[2]हुसैन शाही, 37।

बलात्कार तथा आग लगाने की घटनाओं की कोई सीमा न रही; इसके बाद वृंदावन की भी यही दशा हुई।

देश की सरकार जहाँ पूरी तरह असमर्थ प्रमाणित हुई वहाँ असहाय लोगों की सहायता के लिए प्रकृति आगे आई। अब्दाली के शिविर में हैजे की महामारी फैल गई। लगभग 150 सैनिक प्रतिदिन काल के ग्रास बनने लगे। अब बिना देरी किए अहमदशाह को घर लौटना पड़ा। उसने अपने हरावल को वापस लौट जाने की आज्ञा दे दी। वह खुद 31 मार्च को दिल्ली पहुँचा तथा मुहम्मद शाह की 16 वर्षीय पुत्री हज़रत बेग़म के साथ बलपूर्वक विवाह करके उसने शाही हरम की 17 और महिलाओं तथा 400 बाँदियों को अपने अधिकार में ले लिया। एक माह पहले उसने बादशाह आलमगीर द्वितीय की पुत्री के साथ अपने पुत्र तैमूर का विवाह रचाया था। इन कन्याओं को प्राप्त करने के बाद उसने सरहिंद प्रांत को औपचारिक रूप से अपने साम्राज्य में मिला लिया तथा हस्त नगर के अब्दुल समद खाँ मुहम्मदजाई[1] को वहाँ का सूबेदार नियुक्त कर दिया। दिल्ली नगर को एक बार फिर लूटा गया। अनंत लूट के माल से लद कर अंत में 2 अप्रैल, 1757 को वह दिल्ली से चल पड़ा। मुग़लानी बेगम की प्रार्थना पर उसने वज़ीर का पद इमाद-उल्-मुल्क को सौंप दिया तथा नाज़िब-उद्-दौला को हिंदुस्तान का मीर बख्शी व अपना मुख्तार (पूर्णाधिकारी) नियुक्त किया। इस भाँति उसे मुग़ल सरकार का वास्तविक स्वामी बना दिया गया।[2]

---

[1]ब्राउनी ii, 18, पर अशुद्धि से अहमर खाँ का नाम दिया गया है।

[2]अब्दाली का खुद का माल 28,000 ऊँटों, हाथियों, खच्चरों, बैल-गाड़ियों तथा ठेलों पर लदा हुआ था। मुहम्मद शाह की विधवाएँ, जो उसी के साथ हो लीं थीं, अपने साथ 200 ऊँटों के बोझ की सम्पत्ति लेती गईं। यह माल भी एक प्रकार से उसी का था। उसके साथ 80,000 घोड़े तथा पैदल थे। प्रत्येक के पास अपना-अपना लूट का माल था। उसके रिसाले के सैनिक पैदल वापिस जा रहे थे। अपने घोड़ों पर उन्होंने लूट का माल लाद लिया था। परिवहन के साधन प्राप्त करने के लिए अफ़गान नरेश ने किसी के घर पर कोई घोड़ा या ऊँट, यहाँ तक कि गधा तक, न रहने दिया।" देखें, एस०पी०डी० 71; सरकार, ii125—30।

दिल्ली क्रॉनीकल, 135; तारीख-ए-आलमगीर-सानी, 152–62; राजवडे, vi, 395; मिसकिन, 131–7; सामिन-इन-इंडियन-एन्टिक्येरी, 1907, 10-18; 43-51, 55–70; (समकालीन) ख़जाना-ए-अमीरा, 52;

11. सिखों की अशांतिपूर्ण हरकतें, दिसंबर, 1756—अप्रैल, 1757

यह एक नियम-सा बन चुका था कि इस प्रकार के विदेशी हमलों के समय संपूर्ण देश में अव्यवस्था फैल जाया करती थी तथा उथल-पुथल मच जाया करती थी। सरकार का प्रशासन-कार्य स्थगित हो जाता तथा कानून और व्यवस्था समाप्त हो जाती। चारों ओर ज़मींदार विद्रोह के झंडे खड़े कर देते तथा सड़कों का यातायात रोक देते। छोटे लोगों की बात जाने दीजिए बड़े-बड़े प्रसिद्ध सरदार भी अव्यवस्था का पूरा-पूरा लाभ उठाते थे। कुंजपुरा के नजाबत खाँ ने अपने अफ़गानियों को लोहित-वर्ण की टोपियाँ तथा 'विलायती अलखालिक' पहना कर (जिससे कि वे दुर्रानियों जैसे लगें।) सरेआम डाके डालने आरंभ कर दिए।[1]

सिख अभी इतने बलवान नहीं हो पाए थे कि वे अपनी स्थिति बनाए रखते तथा अपने प्रभुत्व में आए लोगों की दुर्रानी के अत्याचारों से रक्षा करते। संपूर्ण रास्ते के लगभग सब लोग अपने घर-बार छोड़कर आस-पास की पहाड़ियों, जंगलों अथवा गहरी घाटियों की ओर भाग खड़े हुए। वहाँ अफ़गान लोग निरापद रहकर उनका पीछा नहीं कर सकते थे।[2] सिखों ने इस अव्यवस्था का पूरा लाभ उठाया। जिन लोगों ने उनकी 'राखी' पद्धति के अधीन शरण नहीं ली थी उनको उन्होंने लूट लिया। सैय्यद जामि-उद्दीन जब लाहौर से दिल्ली की ओर भाग रहा था तो उसे सिखों ने फिलौर के समीप लूट लिया। लगभग संपूर्ण खज़ाना, जो वह ले जा रहा था, उन्होंने हथिया लिया। जालंधर दोआब अरक्षित पड़ा था। अदीना बेग खाँ हांसी तथा हिसार के निर्जल भूभागों की ओर भाग गया था। अतः दोआब के उन लोगों को दंडित करने का सिखों को अति उत्तम अवसर मिल गया था, जिन्होंने उनके विरुद्ध अदीना बेग खाँ को सहायता दी थी। सारे दोआब में लूटमार मच गई तथा उन्होंने अपने शत्रुओं के साथ बहुत बेरहमी का बर्ताव किया। अहमदशाह जब दिल्ली की ओर बढ़ रहा था तो उन्होंने उस पर भी छुटपुट हमले किए। अफ़गान सेना के जो सैनिक इधर-उधर भटक गए थे उनका

सैयार, iii, 53 (काम की है)। इस मुहिम का वर्णन सर जदुनाथ सरकार ने अब तक सबसे अधिक विस्तारपूर्वक किया है। देखें, फ़ाल ऑफ़ दि मुग़ल एम्पायर, भाग ii अध्याय—xv-xvi, पृ० 82—136।

[1]इंडियन एन्टिक्यूरी में सामिन, 13; मिसकिन 133।

[2]लाहौर से सरहिंद के मार्ग पर किसी भी गाँव में लोग नहीं थे। छोटे-बड़े सब आदमी जिधर भाग सके उधर ही भाग खड़े हुए थे। तारीख-ए-आलमगीर सानी, सरकार द्वारा उद्धृत, ii, 63-4; ज्ञान सिंह 720।

सफ़ाया कर दिया गया तथा उनका माल-असबाब लूट लिया गया। रजवाड़े, खंड i, पृष्ठ 85 में उद्धृत मार्च, 1757 के एक मराठी में लिखे पत्र से पता चलता है कि उसके पुत्र तैमूर को भी लूट लिया गया था। उसमें लिखा है—"मार्च, 1757 के अंत में जब शाहज़ादे तैमूर के अधीन अब्दाली की सेना का अगला दस्ता दिल्ली से लूटी गई सम्पत्ति को लाहौर ले जा रहा था तो आलासिंह ने दूसरे सिख डाकुओं के साथ सनावर (अंबाला तथा पटियाला के मध्य में) के पास उसे रोक लिया तथा उसके आधे खज़ाने को लूट लिया। उन्होंने मलेरकोटला पर फिर एक बार आक्रमण किया तथा उसे लूट लिया। इन लुटेरों को इतनी अधिक सफलता मिली कि शाहज़ादे के कैदी होने तथा उनके हाथों मारे जाने तक की अफवाहें फैल गई। अफ़गानिस्तान वापिस लौटते समय अहमदशाह पर दिल्ली और चिनवा नदी के बीच सिखों ने फिर कई बार हमले किए। उस अनंत लूट के माल में से जिसे वह ले जा रहा था, उन्होंने बहुत सा आसानी से हथिया लिया।[1]

कुछ दिनों तक अहमदशाह लाहौर में ठहरा। सिखों के विरुद्ध अनेक अभियान-दल भेजे गए। बहुतों को क़त्ल कर दिया गया। उनके नगर अमृतसर को लूटा गया। वहाँ के पवित्र मंदिरों को गिराकर सरोवर को कूड़े-करकट से भरवा दिया।[2] सिख लाहौर तथा अमृतसर के आस-पास से भाग खड़े हुए। संदल बार तथा जम्मू की पहाड़ियों में जा कर उन्होंने शरण ली। यहाँ सरलता से उनका पीछा नहीं किया जा सकता था। सिखों की लूटमार की हरकतों के कारण अब्दाली उनके प्रति अत्यधिक क्रोधित हो उठा था। वह उन्हें पूरी तरह दंडित करना चाहता था, परंतु ग्रीष्म-ऋतु की बढ़ती हुई प्रचंडता तथा उसके असंगठित राज्य में उसकी अनुपस्थिति में उठ खड़े विद्रोहों के कारण उसे अफ़गानिस्तान की ओर शीघ्रता से लौट जाना पड़ा। सिखों को उनके पहाड़ी परकोटों से मार भगाने तथा उनके विरुद्ध लाहौर के सूबेदार द्वारा चलाए जाने वाले अभियानों में नियमित रूप से सहायता पहुँचाते रहने के लिए उसने जम्मू के रणजीत देव के साथ अपने समझौते को पक्का कर लिया तथा जाफखाल, संकात्रा तथा औरंगाबाद के तीन बादशाही परगने उपहार स्वरूप उसे दे दिए।[3]

इसके बाद दुर्रानी प्रांत के प्रशासन को अपने हाथों में ले लिया तथा अपने

---

[1]अहमदशाह, 877; मालकाम, 93; देखें, सरकार, ii, 71-2; एस० पी० डी० xxvii, 148; बख्तमल 77।

[2]हुसैन शाही, 41; तारीख-ए-अहमद 9-10; तारीख-ए-अली 132-3।

[3]शमशीर खालसा, 93; खज़ाना-ए-अमीरा, 100; स्यालकोट डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर, पृष्ठ 16।

11. सिखों की अशांतिपूर्ण हरकतें, दिसंबर, 1756—अप्रैल, 1757

यह एक नियम-सा बन चुका था कि इस प्रकार के विदेशी हमलों के समय संपूर्ण देश में अव्यवस्था फैल जाया करती थी तथा उथल-पुथल मच जाया करती थी। सरकार का प्रशासन-कार्य स्थगित हो जाता तथा कानून और व्यवस्था समाप्त हो जाती। चारों ओर जमींदार विद्रोह के झंडे खड़े कर देते तथा सड़कों का यातायात रोक देते। छोटे लोगों की बात जाने दीजिए बड़े-बड़े प्रसिद्ध सरदार भी अव्यवस्था का पूरा-पूरा लाभ उठाते थे। कुंजपुरा के नजाबत खाँ ने अपने अफ़गानियों को लोहित-वर्ण की टोपियाँ तथा 'विलायती अलखालिक' पहना कर (जिससे कि वे दुर्रानियों जैसे लगें।) सरेआम डाके डालने आरंभ कर दिए।[1]

सिख अभी इतने बलवान नहीं हो पाए थे कि वे अपनी स्थिति बनाए रखते तथा अपने प्रभुत्व में आए लोगों की दुर्रानी के अत्याचारों से रक्षा करते। संपूर्ण रास्ते के लगभग सब लोग अपने घर-बार छोड़कर आस-पास की पहाड़ियों, जंगलों अथवा गहरी घाटियों की ओर भाग खड़े हुए। वहाँ अफ़गान लोग निरापद रहकर उनका पीछा नहीं कर सकते थे।[2] सिखों ने इस अव्यवस्था का पूरा लाभ उठाया। जिन लोगों ने उनकी 'राखी' पद्धति के अधीन शरण नहीं ली थी उनको उन्होंने लूट लिया। सैय्यद जामि-उद्दीन जब लाहौर से दिल्ली की ओर भाग रहा था तो उसे सिखों ने फिलौर के समीप लूट लिया। लगभग संपूर्ण खजाना, जो वह ले जा रहा था, उन्होंने हथिया लिया। जालंधर दोआब अरक्षित पड़ा था। अदीना बेग खाँ हांसी तथा हिसार के निर्जल भूभागों की ओर भाग गया था। अतः दोआब के उन लोगों को दंडित करने का सिखों को अति उत्तम अवसर मिल गया था, जिन्होंने उनके विरुद्ध अदीना बेग खाँ को सहायता दी थी। सारे दोआब में लूटमार मच गई तथा उन्होंने अपने शत्रुओं के साथ बहुत बेरहमी का बर्ताव किया। अहमदशाह जब दिल्ली की ओर बढ़ रहा था तो उन्होंने उस पर भी छुटपुट हमले किए। अफ़गान सेना के जो सैनिक इधर-उधर भटक गए थे उनका

सैयार, iii, 53 (काम की है)। इस मुहिम का वर्णन सर जदुनाथ सरकार ने अब तक सबसे अधिक विस्तारपूर्वक किया है। देखें, फ़ाल ऑफ़ दि मुग़ल एम्पायर, भाग ii अध्याय—xv-xvi, पृ० 82—136।

[1]इंडियन एन्टिक्यूरी में सामिन, 13; मिसकिन 133।

[2]लाहौर से सरहिंद के मार्ग पर किसी भी गाँव में लोग नहीं थे। छोटे-बड़े सब आदमी जिधर भाग सके उधर ही भाग खड़े हुए थे। तारीख-ए-आलमगीर सानी, सरकार द्वारा उद्धृत, ii, 63-4; ज्ञान सिंह 720।

सफ़ाया कर दिया गया तथा उनका माल-असबाब लूट लिया गया। रजवाड़े, खंड i, पृष्ठ 85 में उद्धृत मार्च, 1757 के एक मराठी में लिखे पत्र से पता चलता है कि उसके पुत्र तैमूर को भी लूट लिया गया था। उसमें लिखा है—"मार्च, 1757 के अंत में जब शाहज़ादे तैमूर के अधीन अब्दाली की सेना का अगला दस्ता दिल्ली से लूटी गई सम्पत्ति को लाहौर ले जा रहा था तो आलासिंह ने दूसरे सिख डाकुओं के साथ सनावर (अंबाला तथा पटियाला के मध्य में) के पास उसे रोक लिया तथा उसके आधे खज़ाने को लूट लिया। उन्होंने मलेरकोटला पर फिर एक बार आक्रमण किया तथा उसे लूट लिया। इन लुटेरों को इतनी अधिक सफलता मिली कि शाहज़ादे के कैदी होने तथा उनके हाथों मारे जाने तक की अफवाहें फैल गई। अफ़गानिस्तान वापिस लौटते समय अहमदशाह पर दिल्ली और चिनवा नदी के बीच सिखों ने फिर कई बार हमले किए। उस अनंत लूट के माल में से जिसे वह ले जा रहा था, उन्होंने बहुत सा आसानी से हथिया लिया।[1]

कुछ दिनों तक अहमदशाह लाहौर में ठहरा। सिखों के विरुद्ध अनेक अभियान-दल भेजे गए। बहुतों को क़त्ल कर दिया गया। उनके नगर अमृतसर को लूटा गया। वहाँ के पवित्र मंदिरों को गिराकर सरोवर को कूड़े-करकट से भरवा दिया।[2] सिख लाहौर तथा अमृतसर के आस-पास से भाग खड़े हुए। संदल बार तथा जम्मू की पहाड़ियों में जा कर उन्होंने शरण ली। यहाँ सरलता से उनका पीछा नहीं किया जा सकता था। सिखों की लूटमार की हरकतों के कारण अब्दाली उनके प्रति अत्यधिक क्रोधित हो उठा था। वह उन्हें पूरी तरह दंडित करना चाहता था, परंतु ग्रीष्म-ऋतु की बढ़ती हुई प्रचंडता तथा उसके असंगठित राज्य में उसकी अनुपस्थिति में उठ खड़े विद्रोहों के कारण उसे अफ़गानिस्तान की ओर शीघ्रता से लौट जाना पड़ा। सिखों को उनके पहाड़ी परकोटों से मार भगाने तथा उनके विरुद्ध लाहौर के सूबेदार द्वारा चलाए जाने वाले अभियानों में नियमित रूप से सहायता पहुँचाते रहने के लिए उसने जम्मू के रणजीत देव के साथ अपने समझौते को पक्का कर लिया तथा जाफखाल, संकाला तथा औरंगाबाद के तीन बादशाही परगने उपहार स्वरूप उसे दे दिए।[3]

इसके बाद दुर्रानी प्रांत के प्रशासन को अपने हाथों में ले लिया तथा अपने

---

[1]अहमदशाह, 877; मालकाम, 93; देखें, सरकार, ii, 71-2; एस० पी० डी० xxvii, 148; बख्तमल 77।

[2]हुसैन शाही, 41; तारीख-ए-अहमद 9-10; तारीख-ए-अली 132-3।

[3]शमशीर खालसा, 93; खज़ाना-ए-अमीरा, 100; स्यालकोट डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर, पृष्ठ 16।

पुत्र तैमूरशाह को पंजाब का सूबेदार नियुक्त किया। अपने सिपहसालार जहान खाँ को उसका सहायक नियुक्त कर दिया।[1] उसने अपने विशेष दस्ते के 10,000 पर्शियन सैनिक तैमूरशाह के पास छोड़ दिए। उसे भारत में जन्मे तुर्की, पर्शियानों तथा अफ़गान सैनिकों की एक अलग सेना रखने की भी अनुमति दे दी गई। इन सब प्रबंधों से संतुष्ट होकर वह कंधार की ओर चल पड़ा।

[1]मिसकिन, 139।

पाँचवा अध्याय

सिख तथा तैमूरशाह, मई, 1757--मई, 1758

1. भूमिका

मुग़लों के साथ हुए अपने संघर्ष (1739-56) में सिखों ने उनका सामना काफ़ी सफलता के साथ किया तथा दुःख और नैराश्य के गिरे हुए वातावरण से उठकर वे शक्ति तथा विशेषाधिकार के उच्च स्तर पर जा पहुँचे। प्रांत के एक बड़े भाग पर उन्होंने अपना संरक्षित शासन स्थापित कर लिया। इस बात की पूरी-पूरी संभावना प्रतीत हो रही थी कि इन भूभागों पर वे लोग शीघ्र ही अपना पूर्ण स्वामित्व स्थापित कर लेंगे। परंतु उत्तर-पश्चिम से एक और शत्रु पहले ही मैदान में उतर आया जिसकी विशाल सैन्य-शक्ति के सामने कोई भी न टिक पाया। सिखों की प्रगति को उसने कम-से-कम 10 वर्ष के लिए पीछे धकेल दिया। इस शत्रु का नाम था अहमदशाह दुर्रानी।

दुर्रानी के साथ उनके संघर्ष ने उन्हें और भी विपत्ति में डाल दिया। अमृतसर पर बार-बार कब्ज़ा किया गया तथा उनके पवित्र स्थानों को अपवित्र तथा ध्वस्त किया गया। सिखों पर भयानक अत्यचार किए गए तथा उन्हें प्रत्येक स्थान से मार भगाया गया। परंतु प्रत्येक पराजय के बाद सिख और भी अधिक उत्साह के साथ उठे, तथा बहादुरी के साथ प्रत्येक अवसर से लाभ उठाते हुए वे लोग, अपने समय के सबसे शक्तिशाली व्यक्ति से संघर्ष करने के बाद, अंत में विजयी हुए।

अपने चौथे हमले के दौरान अहमदशाह ने दिल्ली की मुग़ल शक्ति को कुचल दिया था। साम्राज्य से सरहिंद का सूबा छीन कर उसने अपने अधिकार में कर लिया तथा राज्य के सब महत्वपूर्ण मामलों को चलाने के लिए उसने अपने व्यक्ति नजीब-उद्-दौला को नियुक्त कर दिया था। अपने पाँचवें अभियान (1759–61) में उसने उत्तर से मराठा शक्ति का लगभग पूरी तरह सफ़ाया कर दिया। छठा अभियान (1762) उसने सिखों का समूल विनाश करने के लिए किया जो पंजाब पर कब्ज़ा करने के मार्ग में बाधक थे। सन् 1762 में उसने कूप के स्थान पर सिखों को बुरी तरह पराजित किया तथा उनके लगभग 12,000 आदमियों को मौत के घाट उतार दिया।

परंतु अचानक उठनेवाले का पतन भी अचानक ही होता है। जहाँ इन तीन अभियानों ने अहमदशाह अब्दाली को शक्ति के शिखर पर पहुँचा दिया, वहीं

अगले तीन अभियानों ने, उसे पतन की गहरी खाई में ढकेल दिया। अपने सातवें अभियान (1764-65) के दौरान उसे अपने इन दाढ़ीवाले शत्रुओं के कड़े मुकाबले का सामना करना पड़ा। दिल्ली की ओर बढ़ने में उसके सामने इतनी अधिक बाधाएँ आईं कि उसे सदैव रक्षात्मक लड़ाई ही लड़नी पड़ी। अपने आठवें अभियान (1766-67) में तो उसे सिखों ने इतना अधिक परेशान किया कि उसने अनेक रियायतें तथा सहूलियतें देकर उन्हें अपने पक्ष में करने का प्रयत्न किया। परंतु इसमें भी उसे बुरी तरह मुँह की खानी पड़ी। अपने अंतिम हमले (1769) में वह झेलम के आगे बढ़ ही न पाया। तब तक सिख सिंधु तथा यमुना के बीच, पंजाब के मैदान के अधिकांश भाग पर अपनी प्रभुसत्ता पूरी तरह स्थापित कर चुके थे। सिखों की इस शानदार सफलता पर अब हम विचार करेंगे।

2. सिखों की शांतिपूर्ण प्रगति में विघ्न

पिछले अध्याय में हम यह देख ही चुके हैं कि प्रत्येक गाँव से एक बँधी रकम प्राप्त करने के बदले में उसकी रक्षा करने का अधिकार सिखों ने बड़े भू-भाग में स्थापित कर लिया था। इस भाँति प्रत्येक सरदार अपने पास के भूभागों पर अपना संरक्षित शासन बढ़ाने में व्यस्त था। सिख अपनी लूटमार की गति-विधि बंद करते जा रहे थे क्योंकि पास-पड़ोस के गाँव स्वेच्छा से उनकी रक्षा में आते जा रहे थे परंतु यह बहुत देर तक न चल पाया। लाहौर की अफ़गान सरकार ने इसमें विघ्न डाल दिया।

3. जहान खाँ की सिखों के साथ लड़ाई, लगभग 11 नवंबर, 1757

यद्यपि अहमदशाह दुर्रानी सिखों से बहुत अधिक नाराज़ था परंतु वह उन्हें खुद न कुचल सका क्योंकि वह अपने देश को लौट जाने की जल्दी में था। इसीलिए इससे अपने अनुभवी सिपहसालार जहान खाँ को कठोर अनुदेश दिए कि वह सिखों द्वारा की गई ज्यादतियों के लिए उन्हें पूरी तरह कुचल दे। जहान खाँ शीघ्र ही इस कार्य पर जुट पड़ा। परंतु वह अनुभवी अफ़ग़ान सेनानी अपनी जल्दबाज़ी तथा बुद्धिमत्ताविहीन राजमर्मज्ञता के कारण इस कार्य में पूरी तरह असफल रहा। जहान खाँ ने देश में शांति तथा व्यवस्था स्थापित करने का प्रयत्न किया ताकि लगान तथा व्यापारिक करों द्वारा उसके पास अपरिमित मात्रा में धन आता रहे। आरंभ में उसे इस बात में काफ़ी सफलता भी मिली। राजधानी तथा ज़िलों में शांति एवं न्याय स्थापित हो गया तथा सड़कें एक बार फिर व्यापार के लिए सुरक्षित हो गईं।[1] सिखों का चारों ओर पीछा किया गया और

[1]सरकार, ii, 67।

परिणामस्वरूप उन्हें विवश होकर हिमालय की पहाड़ियों तथा मालवा के मरुस्थल में शरण लेनी पड़ी ।

मालवा में भाग जानेवाले सिख सरदारों में से एक का नाम दीपसिंह था। लूटमार का जीवन छोड़ कर वह दमदमा साहिब में रहने लगा तथा अपना सारा समय सिखों की पवित्र पुस्तक 'ग्रंथ-साहब' की एक प्रतिलिपि तैयार करने में व्यतीत करने लगा। गुरुओं के शब्दों से उसे बहुत प्रेरणा मिली। अहमदशाह अब्दाली द्वारा अमृतसर के सरोवर तथा पवित्र मंदिर के अपवित्र किए जाने के कारण वह क्रोध से भर उठा। उसने दिवाली का त्यौहार अमृतसर में मनाने तथा पवित्र भवनों की मरम्मत करने का निश्चय कर लिया। इस योजना को कार्यान्वित करना खतरे से खाली न था। परंतु दीपसिंह का इरादा पक्का था। उसके आह्वान पर उसके जत्थे के बहुत से लोग आ जुटे तथा प्राणों की बाज़ी लगाकर उन्होंने गुरु के मंदिर तथा सरोवर पर रोशनी करने का निश्चय किया। मंदिर का भार अपने भतीजे सदासिंह पर छोड़ उसने जागा, बाहमन, नाहनवाला, बंजौक, गुरुचौत्र, फूल महाराज, दराल, मच्छू, गोविंदपुरा तथा कोट के गाँवों तथा लक्खी जंगल से लगभग 5,000 अनुयायी इक्ट्ठे कर लिए थे। सब अमृतसर की ओर बढ़े। मार्ग में वे सिखों के एक पवित्र स्थान तरनतारन पर रुके। अपने को बलिदान के लिए तैयार करने के लिए उन्होंने यहाँ अपनी कलाइयों पर खंबनियाँ बाँधीं तथा अपनी पगड़ियों पर केसर का छिड़काव किया।[1] इसके शीघ्र बाद ही वे लोग अमृतसर पहुँच गए। वहाँ पहुँच कर उन्होंने अपनी धार्मिक रस्में पूरी कीं तथा पवित्र पर्व को जितनी अच्छी तरह वे मना सकते थे उन्होंने मनाया। इसके शीघ्र बाद ही जहान खाँ के साथ उनकी एक लड़ाई हुई। मिसकिन ने उसका आँखों देखा वर्णन इस प्रकार किया है :—

"एक दिन एक जासूस द्वारा भेजे गए एक समाचार से जहान खाँ को पता चला कि बहुत से सिख 'चक गुरु' पर अपने (धार्मिक) स्नान के लिए इकट्ठे हुए हैं तथा वे बहुत हलचल तथा खूनखराबी कर रहे हैं। सूबेदार की सेनाएँ हाजी अतै खाँ के अधीन पास-पड़ोस के इलाकों का दमन करने, विवादग्रस्त मामलों को तय करने, तथा उनका (सिखों का) पीछा करने के लिए गई हुई थीं। वज़ीर ने इस अव्यवस्था की सूचना देते हुए सरदार हाजी अतै खाँ को एक पत्र लिखा। उसने उसे आज्ञा दी कि वह अपनी सारी सेनाएँ लेकर अचानक 'चक' की ओर बढ़ आए तथा एक निश्चित दिन वहाँ पहुँच आए। उसने वचन दिया कि

---

[1]तारीख-ए-सिक्खान, सरूप लाल, पृ० 71-2; दस्तूर-उल्-आलम सिक्खान, 130-32; राज खालसा, 40-1 ।

निश्चित दिन वह भी वहाँ इस गए-गुज़रे तबक़े के लोगों को काल के मुख में धकेलने के लिए वहाँ पहुँचेगा। उसने 'विलायत' की चलन के अनुसार लाहौर नगर में एक घोषणा निकाली कि प्रत्येक आदमी जिसके पास घोड़ा हो, चाहे वह सरकारी नौकर हो या न हो, उसके साथ अवश्य लड़ाई के मैदान की ओर चले। तदनुसार बेगम साहिबा से भी तहमास खाँ (मिसकिन) के अधीन अपने सब नौकरों को भेजने के लिए कहा गया। बेगम ने तत्काल अपने सब अनुचरों को बुलवाया। उनकी संख्या 25 थी। उन सब को मिसकिन के साथ बढ़ने की आज्ञा दी गई। कासिम खाँ (पट्टी का बहादुर सरदार) भी उनके साथ आ मिला। अब वे जाकर वज़ीर की सेनाओं से जा मिले। उनकी संख्या लगभग 2,000 थी। रात तक वे लोग सराय खानखानान तक आ पहुँचे। यह स्थान लाहौर से 6 कोस की दूरी पर था। अगले दिन वे लोग चक के दो मील इधर एक स्थान पर पहुँच गए (गोलेरवाल गाँव, अमृतसर से 5 मील दूर) उन्हें यह जान कर बहुत आश्चर्य हुआ कि कड़ी हिदायतों के बावजूद भी हाजी अतै खाँ ने आगे बढ़ने में देरी कर दी है।

'सिखों को इसकी गुप्त सूचना मिल गई तथा उन्होंने हम पर चारों ओर से धावा बोल दिया। लड़ाई शुरू हो गई तथा दोनों दलों ने एक-दूसरे पर आग बरसानी आरंभ कर दी। सिखों ने हमें बुरी तरह घेर लिया तथा चारों ओर से भीषण आक्रमण किया। हम बुरी तरह मुसीबत में पड़ गए। हमारे बहुत से आदमी तो निराश होकर भागने भी लगे। वज़ीर ने बड़ी फुर्ती और हिम्मत के साथ उन्हें रोकने का प्रयत्न किया उस समय यह लेखक मिसकिन दो घुड़सवारों सहित उसके साथ था। परंतु सिखों ने भागने वाले सैनिकों के निकलने के लिए कोई मार्ग न छोड़ा था। अंत में वे निराश तथा शिथिल होकर सेना में वापस चले आए। जहान खाँ ने अब अपनी तलवार निकाल कर भागे हुए आदमियों में से कुछ को घायल करते हुए कहा, 'तुम भागे क्यों?' संक्षेप में हम, सब मिल कर फिर से लड़ने लगे। स्थिति इतनी बिगड़ गई कि सबने जीवन की आशा खो दी। परंतु इस मिसकिन ने इतनी अधिक हिम्मत दिखाई कि यदि वह उसका वर्णन करने लगे तो कोई भी उसका विश्वास न करेगा। इसी समय हाजी अतै खाँ अपनी विजयी सेना के साथ आ पहुँचा। दुष्ट सिख, जो अपनी हिम्मत तथा बहादुरी पर बहुत गर्व कर रहे थे, अब चपल तलवारों और बेरहम तोपों की मार से पराजित हो गए। वे अभागे (सिख) सामना न कर सके तथा भाग खड़े हुए। विजयी सेना ने चक गुरु तक उनका पीछा किया। यह एक परकोटेवाला स्थान (उनके धार्मिक ग्रंथ का मंदिर) था तथा हमने उसके द्वार पर पाँच पैदल सिख सैनिक देखे (जो रक्षा के लिए खड़े थे)। हमारी सेना के वीरों ने उन्हें मौत के घाट उतार दिया। इस स्थान पर हुए झगड़े में लाहौर के एक बड़े

सरदार मीर नेमल-उल्लहा खाँ को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा। इसके बाद हमारी विजयी सेना ने वहाँ पर खेमे डाल दिए।"[1]

दीपसिंह, उसके पाँच भक्त जत्थेदारों तथा अनेक अन्य सिखों के प्राण इस लड़ाई में गए। बाबा दीपसिंह की याद में एक स्मारक रामसर (रामरौनी दुर्ग के पास) में बनाया गया। इसी भाँति राम सिंह जत्थेदार की याद में रामगढ़ियों के कटरे में, तथा सज्जन सिंह, बहादुर सिंह, अघढ़ सिंह तथा हीरा सिंह के स्मारक 'गुरु के-बाग' में बनाए गए। शहीद गंज—कुअर सिंह, मान सिंह, तथा संत सिंह आदि—शहीदों का स्मारक है।[2]

क्योंकि बाबा दीपसिंह तथा उनके अनुयायियों ने बिना किसी को हानि पहुँचाए धार्मिक कर्त्तव्य निभाते हुए अपने प्राणों की आहुति दी थी, इसलिए उनके सहधर्मियों ने उन सब को 'शहीद' की उपाधि से सम्मानित किया। दीपसिंह के बाद जत्थे की सरदारी एक और चतुर सरदार करम सिंह को सौंप दी गई। उसने अपने तथा अपने जत्थेवालों के लिए 'शहीद' की उपाधि धारण की।

इस जीत के बाद जहान खाँ ने धार्मिक कट्टरता के कारण अमृतसर में सिखों के पूजा के स्थानों को अपवित्र तथा नष्ट कर दिया। पवित्र सरोवर को भी पाट दिया गया।[3]

4. करतारपुर के सोधी बरबाघ सिंह का पीटा जाना, दिसंबर, 1757

जहान खाँ के क्रोध का एक और शिकार करतारपुर के सोधी बरबाघसिंह नामक सिख पुजारी को बनना पड़ा। वह अपना पूरा ध्यान धर्म-कर्म में ही लगाता था तथा अन्य सिखों की लूटमार से दूर रह कर शांतिपूर्ण जीवन बिताता था। उस समय मिसकिन द्वारा किए गए वर्णन को हम यहाँ उद्धृत कर रहे हैं,[4] "दो अफ़गान

---

[1]मिसकिन, 162-5।

[2] सिख मार्टीयर्स, 1969-; पंजाब नोट्स एंड क्वेरीज़ ii, सितम्बर 1885 208–9।

[3]ब्राउनी, ii, 19; मॉलकाम, 94।

[4]मिसकिन, 165. साजावाल :—

"लगान उगाहनेवाला वह अधिकारी जिसे किसी संपदा के स्वामी या किसान के हटाए जाने के बाद वहाँ का प्रबंध संभालने तथा लगान एकत्रित करने के लिए विशेष रूप से नियुक्त किया जाता था। भूमि स्टीवार्ड, कारिंदा, भूमि-स्वामी या रियाया द्वारा किराएदारों से देय-धन संग्रह करने के लिए नियुक्त दलाल' (सी० पी० सी० ii, 448)।

घुड़सवार सरहिंद से (लाहौर को) आ रहे थे। दैवयोग से वे लोग किले (करतारपुर) के इलाक़े में मारे गए। यह खबर पाकर जहान खाँ ने 'विलायत' की पद्धति के अनुसार तत्काल अपने कुछ कारिंदे उस स्थान के मुखिया को बाध्य करने के लिए भेज दिए (अपराधियों को प्रस्तुत करने के लिए)। वह चौधरी (गुरुद्वारा थाम साहिब का अधिकारी सोधी बरबाघ सिंह) उस इलाके का प्रसिद्ध मुखिया था। यही नहीं वह सिखों का सुप्रसिद्ध तथा सम्मानित धर्म गुरु भी था। उसके पास लाखों रुपयों की मालगुज़ारी की ज़मीनें भी थीं। ईरानी पद्धति से यंत्रणा देते हुए उन्होंने उसे मार-मार कर अधमरा कर दिया। रात पड़ने पर एक अज्ञात गाँव (होशियारपुर ज़िले के बाहरी गाँव) में भाग कर उसने किसी प्रकार अपनी जान बचाई। इसके बाद बिना कुछ प्राप्त किए कारिंदे निराश होकर लौट आए। उस क्षण के बाद देश में हाल ही में स्थापित शांति तथा व्यवस्थित शासन का अंत हो गया तथा सिख चारों ओर विद्रोह करने लगे।"

यही नहीं जालंधर के नासिर अली की सलाह तथा सहायता से कारिंदों ने सिख मंदिर को तोड़-फोड़ कर ज़मीन से मिला दिया।[1] उन्होंने उस स्थान पर

---

[1]सन् 1598 में गुरु अर्जुन ने इस गाँव तथा गुरुद्वारे की स्थापना की थी। गुरु अर्जुन के अपने हाथों द्वारा लिखित आदि ग्रंथ की मूल पुस्तक सन् 1664 में यहाँ रखी गई। एक अमूल्य धार्मिक अवशेष के रूप में सारी सिख जाति इसके प्रति बहुत श्रद्धा रखती है। वर्ष भर यात्री इस स्थान पर आते रहते हैं। सन् 1833 में महाराजा रणजीत सिंह ने मंदिर की इमारत बनवाने के लिए सवा लाख रुपए अनुदान के रूप में दिए थे। इसके साथ-साथ फतेहपुर गाँव की माल-गुज़ारी भी उसकी देख-भाल के लिए अलग रख दी गई थी। रणजीत सिंह की प्रार्थना पर ग्रंथी साधुसिंह सन् 1830 में इस ग्रंथ-साहब को लेकर लाहौर गया। इसके संरक्षक के रूप में उसका भरपूर सम्मान किया गया। प्रतिदिन 86 रुपए का चढ़ावा चढ़ाया जाता था तथा प्रत्येक महीने के प्रथम तथा अंतिम दिन 600 रुपए विशेष रूप से दान के रूप में दिए जाते। वर्ष में एक बार एक बहुमूल्य शाल तथा अश्व भी महाराजा के नाम पर भेंट किया जाता था। महाराजा नरेंद्र सिंह की इच्छा से यह पवित्र ग्रंथ सन् 1860 में पटियाला भी ले जाया गया। उसने इसके संरक्षकों को 51 रुपए प्रतिदिन के हिसाब से भत्ता दिया। इसे प्राप्त करने की असफल चेष्टा करते हुए उसने इन लोगों को तीन वर्ष तक अपने पास ही ठहराए रखा। अब यह ग्रंथ करतारपुर में गुरुद्वारा थाम जी में सुरक्षित है। प्रत्येक रविवार को यह पुस्तक जनता के दर्शनों के लिए शीशमहल में रखी जाती है। इस पर चढ़ाया जाने वाला चढ़ावा गुरुद्वारे की आय का एक अच्छा-खासा साधन है। सन् 1859 में साधुसिंह ने इस मूल ग्रंथ की एक अति सुन्दर

एक गाय की हत्या करके उस स्थान को अपवित्र किया। यही नहीं उस स्थान की सब हिंदू तथा सिख महिलाओं को बलपूर्वक इस्लाम धर्म म परिवर्तित कर लिया तथा पास-पड़ोस के स्थानों को भी पूरी तरह लूटा।

5. अदीना बेग तथा सिखों द्वारा मिलकर अफ़गानों को हराना, दिसंबर, 1757 के लगभग

धार्मिक कट्टरता के वशीभूत होकर जहान खाँ द्वारा किए गए अत्याचारों पर सिखों ने रोष प्रकट किया। सारी सिख जाति इतनी उत्तेजित हो उठी कि उन्होंने यथाशक्य अपनी शक्ति बढ़ाने का संकल्प किया जिससे कि वे वह वस्तु प्राप्त कर सकें जो दुर्रानी हड़प करते जा रहे थे। वे लोग होशियारपुर के उत्तर में स्थित शिवालिक की पहाड़ियों में चले गए। यहाँ उन्होंने एक योजना तैयार की। जिसमें हाथ बँटाने के लिए शीघ्र ही प्रसिद्ध अदीना बेग उनसे आ मिला। अदीना बेग के बारे में यहाँ कुछ और जानकारी देना आवश्यक प्रतीत होता है।

यह तो हम पहले ही बता चुके हैं कि दुर्रानी के हमले के समय जालंधर दोआब का सूबेदार अदीना बेग खाँ भाग कर हांसी तथा हिसार के मरुस्थलों की ओर चला गया था। कुछ समय के पश्चात् वहाँ से वह शिवालिक की पहाड़ियों की ओर चला गया तथा खाली-बलवान (होशियारपुर के उत्तर में लगभग 80 मील पर) की पहाड़ी में जाकर उसने शरण ली। पंजाब का कार्यभार संभालने के बाद जहान खाँ ने अदीना बेग को लाहौर में उपस्थित होने तथा जालंधर दोआब का प्रशासन संभालने के लिए बुलावा भेजा।

जहान खाँ के विरुद्ध अदीना बेग को संदेह था। उसका यह संदेह सही भी था। इसीलिए उस अनुभवी सरदार ने आज्ञा मानने में टालमटोल की। इस पर जहान खाँ ने जालंधर दोआब में तबाही मचा दी तथा अदीना बेग को धमकी दी कि उसका पीछा किया जाएगा तथा उसे दंडित किया जाएगा। अब अदीना बेग ने इस शर्त के साथ कि उसे दरबार म उपस्थित होने से छूट दे दी जाएगी, प्रशासन का कार्यभार संभालने की इच्छा व्यक्त की। जहान खाँ ने इस बात को स्वीकार कर लिया तथा उसके नाम से एक परवाना जारी कर दिया गया।

प्रतिलिपि महारानी विक्टोरिया को समर्पित करने के लिए तैयार की। इस उपहार को महारानी ने धन्यवाद सहित स्वीकार किय ।। सेक्रेटरी आफ स्टेट ने ग्रंथी को एक पत्र लिखकर महामहिम की स्वीकृति तथा धन्यवाद भी प्रदर्शित किया (ग्रिफ्स चीफ़्स एन्ड फ़मिलीज़ ऑफ नोट, 1890, पृ० 295-7); रतन सिंह 413; ज्ञान सिंह 722।

इसके साथ-साथ 36 लाख रुपए की वार्षिक धनराशि देने की 'खिलअत' भी उसे दी गई।[1]

इसके कुछ समय बाद जहान खाँ ने अदीना बेग को तत्काल लाहौर में उपस्थित होने की आज्ञा दी। अफ़गान सेनापति का अविश्वास करते हुए अदीना बेग ने आने से साफ़ इन्कार कर दिया। जहान खाँ क्रोधित हो उठा तथा उसने अदीना बेग को बंदी बनाने के लिए मुराद खाँ के अधीन अपना एक शक्तिशाली दस्ता भेज दिया। सरहिंद का नायक सूबेदार सादिक बेग खाँ तथा ख्वाजा मिर्ज़ा खाँ भी अपनी शक्तिशाली सेना लेकर उससे जा मिले। ख्वाजा के साथ पहाड़ी प्रदेशों का सुप्रसिद्ध सरदार राजा भूप सिंह भी अपने 25,000 अनुभवी घुड़-सवारों के साथ आ मिला था।

इस दुर्जय सेना के बारे में अदीना बेग को सब कुछ पता था। इसलिए वह अपना शिविर पहाड़ियों की तराइयों में ले गया। ताकि पराजय की स्थिति में शत्रु को चकमा देकर भागने में सरलता हो, कर के रूप में अत्यधिक धन देकर तथा लूट की अनेक रियायतें देकर उसने सोधी बरबाघसिंह तथा जस्सा सिंह अहलूवालिया को अपनी ओर कर लिया। इस भाँति संपूर्ण 'दल-खालसा' उसकी ओर से लड़ने के लिए तैयार हो गया।[2]

मुराद खाँ ने व्यास नदी को पार करके अदीना बेग खाँ के विरुद्ध व्यूह-रचना कर ली। इसके बाद जो लड़ाई हुई उसमें अफ़गानों को बुरी तरह मुँह की खानी पड़ी तथा उनका संपूर्ण भंडार तथा माल असबाब अदीना के हाथों आ गया। अब सिखों ने दोआब के सब ज़िलों को रौंद डाला तथा बहुत-सा माल लूट में अर्जित किया। जहान खाँ के भय से अदीना बेग खाँ ने नाला गढ़ की दुर्गम पहाड़ियों में शरण ली तथा जालंधर दोआब की फौजदारी पर जहान खाँ ने सरफ़राज़ खाँ को नियुक्त कर दिया।[3]

---

[1]मिसकिन, 145, 165; खज़ाना-ए-अमीरा, 100; सैयार, iii, 63; तारीख-ए-मुज़फ़्फ़री, 120 अ।

[2]गुलाम अली, i, 55-6; देखें अहमद शाह, 871-2; गणेशदास, 156; सियर iii, 64।

[3]गुलाम अली, i, 56; रतनसिंह, 420-21 तथा ज्ञान सिंह, 727-8 कहते हैं कि सिखों ने, सोधी बरबाघसिंह के स्पष्ट आदेशों के अनुसार जालंधर शहर को जला दिया। नासिर अली, जो कि करतारपुर में ढाए गए जुल्मों के प्रति उत्तरदायी था, इस शहर का रहने वाला था उन्होंने मरदों तथा बच्चों का कत्लेआम किया, औरतों को दासियाँ बनाया, मस्जिदों को सूअर के खून से नापाक किया

6. सिखों द्वारा अफ़गानों को त्रस्त किया जाना, जनवरी-फरवरी, 1758 के लगभग

जहान खाँ में राजमर्मज्ञता की अत्यधिक कमी शीघ्र ही भारत में अफ़गान राज्य को विनाश की ओर ले गई। चारों ओर अव्यवस्था तथा गड़बड़ी फैल गई यह स्थिति उत्पन्न करने में सिखों का बहुत बड़ा हाथ था। एक मराठी विवरणी में लिखा मिलता है:—"हमारी सलाह से सिखों ने संगठित होकर अब्दाली के शासन को उलटना शुरू कर दिया। कुछ स्थानों से उन्होंने उसकी चौकियों को हटा दिया। उन्होंने सादत खाँ अफ़रीदी को पराजित किया, संपूर्ण जालंधर दोआब[1] को लूट लिया तथा उसको पहाड़ियों की ओर भाग जाने के लिए बाध्य कर दिया। सूबेदार की आज्ञा से ख्वाजा आबिद खाँ लाहौर से 20,000 घुड़सवारों तथा पैदल सैनिकों के साथ सिखों से लड़ने के लिए आगे आया। अंत में वह पराजित हुआ तथा उसके बहुत से सरदार खेत रहे। उसके संपूर्ण शिविर तथा माल असबाब को लूट लिया गया तथा अब्दाली द्वारा पीछे छोड़े गए संपूर्ण तोपखाने पर अधिकार जमा लिया गया।" उस समय लाहौर में उपस्थित मिसकिन भी इसका समर्थन करता है। अफ़गानों की दीनता तथा सिखों की दुर्दम्यता के बारे में उसने लिखा है :—"इसके बाद जहाँ कहीं भी सेना भेजी जाती वह पराजित होकर लौट आती। लाहौर के आस-पास के स्थान तक भी सुरक्षित नहीं थे। प्रत्येक रात को हज़ारों की संख्या में सिख लोग शहर पर टूट पड़ते तथा लाहौर के परकोटे के बाहर बसी बस्तियों को लूट लेते। उनको मार भगाने के लिए कोई सेना न भेजी जाती। रात पड़ने के एक घंटे बाद शहर के द्वारबंद कर दिए जाते। सरकार का इससे बहुत अपमान हुआ तथा चारों ओर अव्यवस्था फैल गई।"[2]

तथा नासिर अली के मृत शरीर को कब्र से निकाल, उसके मुँह में सूअर का मांस ठूँस कर उसका अपमान किया।

देखें : तारीख-ए-इब्राहिम खाँ—ईलियट, viii, 266; खज़ाना-ए-अमीरा, 100; सैयार, iii, 64; तारीख-ए-मुजफ़्फ़री, 102 क; इरशाद-उल्-मुस्तिकीम; 295 क तथा 317 क; इम्पीरियल गज़ेटियर, 1908; पंजाब, i, 421।

[1] मिसकिन, 166; सैयार, iii; 64।

[2] एस० पी० डी० ii, 83, दिनांक 17-11-1757 परंतु यहाँ प्रश्न-वाचक चिह्न भी लगा है। इससे विदित होता है कि संपादक तिथि के बारे में निश्चित नहीं है। मैंने इन घटनाओं को जनवरी, 1758, में घटित माना है। देखें सरकार, ii, 69-70।

अफ़गानों पर अपना क्रोध उतारने का सिखों को शीघ्र ही एक और अवसर मिल गया। बहुत से अफ़गानों को मारकर तथा अंत में उन्हें पंजाब से निकालकर उन्होंने बदला लेने की इच्छा पूर्ण की। यह काम उन्होंने मराठों के साथी बनकर किया। अगले अनुभाग में हम पंजाब में इनके कार्यों का वर्णन करेंगे।

7. मराठों का पंजाब पर आक्रमण

जालंधर दोआब का भूतपूर्व, फौजदार अदीना बेग अपने पद की हानि को बहुत बुरी तरह महसूस कर रहा था। उसे इस बात का भी पूरा विश्वास था कि दुर्रानी का क्रोध आज नहीं तो कल उस पर अवश्य बरसेगा। इसीलिए उसने रघुनाथ राव से जो उस समय दिल्ली में था, बार-बार इस बात की प्रार्थना की कि वह मराठा राज्य सिंधु नदी तक बढ़ा ले। उसने यह भी संकेत दिया कि उसे बहुत-सा धन लूट में सरलता से ही प्राप्त हो सकेगा। उसने यह भी वचन दिया कि जिस दिन सेनाएँ आगे बढ़ेंगी उस दिन के लिए वह, 1,00,000 रुपए तथा पड़ाव वाले दिन के लिए 50,000 रुपए देगा।[1]

उक्त प्रलोभन तथा दिए गए वचन के कारण मराठों ने इस अवसर का हृदय से स्वागत किया। दिसंबर के अंत तक उनकी सेनाओं के एक दस्ते ने मल्हार राव के अधीन यमुना पार करके कुंजपुरा के अफ़गान दुर्ग पर घेरा डाल दिया। सरहिंद का सूबेदार अब्दुल समद खाँ पटियाला के आला सिंह से लड़ाई में उलझा हुआ था। उसने आला सिंह पर अर्थदंड लगाया था तथा उस समय वह सुनाम (पटियाला के दक्षिण पश्चिम में 40 मील दूर) के दुर्ग पर घेरा डाले पड़ा था। मराठों के अत्यधिक समीप पहुँच जाने के समाचार से वह घबरा उठा तथा उसने तत्काल आला सिंह से शर्तें तय कर लीं तथा 12 जनवरी, 1758 को वह शीघ्रता से सरहिंद की ओर चल दिया। वहाँ उसने दुर्ग की मरम्मत कराने तथा शहर के चारों ओर खाइयाँ खुदवाने का काम आरंभ कर दिया। परंतु मल्हार

मालकाम ने पृष्ठ 94 पर यही बात कही है। वह लिखता है:— वे सब लाहौर में एकत्रित हुए तथा उन्होंने न केवल दुर्ग तथा आस-पास के इलाके के सब संचार-साधनों को समाप्त करने का प्रयत्न किया परंतु उन्होंने आस-पास के नगरों तथा गाँवों से मालगुज़ारी इकट्ठी कर के बाँट ली।" मिसकिन, 166।

[1]मिसकिन, 167–8 खजाना-ए-अमीरा, 100; छत्तर गुलज़ार शुजाई, 463 ख; हुसैन शाही, 43; सैयार, iii, 64; गुलाम अली, i, 56; अह्वाल-ए-अदीना खाँ 55 ख।

राव पाँच लाख रुपए का कर वसूल करके फिर यमुना के इस पार लौट आया। अब्दुल समद खाँ के सिर से बला टल गई।[1]

8. सरहिंद का पतन, मार्च, 1758

पंजाब पर मराठों का आक्रमण फरवरी के अंत में आरंभ हुआ था। अपनी विशाल सेना के साथ रघनाथ राव 5 मार्च को अंबाला के निकट मुग़ल की सराय में, 6 मार्च को राजपुरा में, 7 मार्च को अलुटों की सराय बंजारा में तथा 8 मार्च, 1758 को सरहिंद के पास जा पहुँचा।[2] सरहिंद के घेरे का वर्णन दिल्ली के एक समकालीन इतिहासकार के शब्दों में यहाँ उद्धृत किया जाता है : "इस ओर से गई अनगिनत मराठा सेनाएँ तथा नानक को पूजने तथा पंजाब में डकैती करने वाले सिखों की अदीना बेग द्वारा एकत्रित सेनाएँ सतलज के उस पार से सरहिंद आ पहुँची। अब्दाली के सूबेदार अब्दुल समद खाँ ने उनसे लड़ने में अपने को असमर्थ पा स्वयं को किले में बंद कर लिया। मराठा सेना तथा अदीना बेग खाँ ने उस स्थान पर घेरा डाल दिया। कुछ दिनों की गोलाबारी के बाद अब्दुल समद खाँ तथा जंग-बाज़ खाँ भाग खड़े हुए। मराठों ने उन्हें जा पकड़ा तथा बंदी बना लिया। क्योंकि मराठे तथा सिख लोग लूटमार के सिवा और कुछ नहीं जानते थे। उन्होंने सरहिंद के छोटे-बड़े सब निवासियों को इतनी बुरी तरह लूटा कि किसी औरत-मर्द के पास तन ढकने के लिए एक कपड़ा तक न बचा। वे मकान गिरा कर लकड़ियाँ तक ले गए। उन्होंने फर्श तक खोद डाले (गड़े हुए धन की खोज में) तथा जो कुछ हाथ लगा उस पर उन्होंने अधिकार जमा लिया।[3]

सरहिंद पर मराठों के घेरे के समाचार जहान खाँ को मिल चुके थ। वह 20,000 घुड़सवारों को लेकर तत्काल लाहौर से निकल पड़ा। परंतु उस दुर्जय शत्रु का सामना करने की उसकी हिम्मत न पड़ी। उसने जालंधर दोआब में ठहर कर समाचार प्राप्त करने में ही 40 दिन व्यर्थ गँवा दिए। यह सुनकर कि मराठों ने सतलज पार कर लिया ह तथा तेज़ी से लाहौर की ओर बढ़ रहे

---

[1]मल्हार राव से संबंधित स्त्रियाँ 9 जनवरी को धार्मिक स्नान के लिए कुरुक्षेत्र आईं। अब्दुल समद खाँ के एक दस्ते ने शाहाबाद के स्थान पर उन पर आक्रमण किया। मराठा-रक्षक दल ने उन का डट कर सामना किया। बहुत से अफ़गानों को मार डाला तथा उनके घोड़े छीन लिए। राजवाड़े i, 85; सरकार, ii, 72।

[2]कागजात-ए भगवंत राय-करम सिंह 295–7।

[3]तारीख-ए-आलमगीर सानी, 311; एस० पी० डी० xxvii 220।

हैं वह भी शीघ्रतापूर्वक राजधानी की ओर लौट पड़ा। आक्रमण की उस विशाल लहर का सामना करने में असमर्थ पा उसने एकाएक अफ़गानिस्तान लौटने का निश्चय कर लिया।

9. अफगानों का पंजाब से मार भगाया जाना, अप्रैल, 1758

लाहौर की घटनाओं के समय वहाँ उपस्थित मिसकिन ने, पंजाब से अफ़गानों के मार भगाए जाने का, बहुत रोचक शब्द-चित्रण किया है। वह कहता है कि जहान खाँ ने लाहौर खाली कर देने का निश्चय कर लिया (लगभग 9 अप्रैल को)। रावी के पार शाहदरा में उसने अपना शिविर स्थापित किया तथा सबसे पहले उसने तैमूर की माता तथा अपने हरम तथा दूसरे संबंधियों को वहाँ पहुँचा दिया। दूसरे, दुर्रानी सरदारों और सैनिकों ने भी बैलगाड़ियों से अपना माल-असबाब तथा संपत्ति दिन-रात में कई फेरे डाल कर वहाँ पहुँचा दिया। इसी बीच समाचार मिला कि हमलावर व्यास पार कर चुके हैं। तथा अदीना बेग खाँ तथा मानाजी मयगुडे के अधीन उनका हरावल दल लाहौर से कोई पाँच-छः कोस की दूरी पर डेरा डाले पड़ा है। उसी दिन दोपहर के समय तैमूर ने नदी पार कर ली। उसके वज़ीर ने भी उसका अनुकरण किया उनके सैनिक जो सामान नहीं ले जा पाए उसे उन्होंने अग्नि की भेंट चढ़ा दिया। अब खोजाओं ने तैमूर तथा जहान की महिलाओं को ऊँटों तथा घोड़ों पर बनी डोलियों में बैठाया तथा सारा काफिला काबुल की ओर चल पड़ा। मिसकिन चुपचाप मुग़लानी बेगम तथा उसकी कुँआरी पुत्री को एक परदेदार बैल गाड़ी में बैठा कर लाहौर वापिस लौट आया तथा उनकी हवेली में उन्हें सकुशल पहुँचा दिया। स्वामीविहीन नगर में उस दिन बहुत गड़बड़ी तथा आतंक फैला हुआ था। नगर तथा पास-पड़ोस के चोर डाकू तथा हत्यारे असहाय लोगों की संपत्ति तथा धन-दौलत को लूटने में लगे हुए थे। शहर में चल रही अव्यवस्था को रोकने के लिए मिसकिन ने अपनी ओर से थोड़ा-बहुत प्रबंध किया। रात पड़ने पर उसने शहर के दरवाज़े बंद करवा दिए तथा सड़कों पर गश्त करता रहा।[1]

दूसरे दिन सुबह लगभग नौ बजे 500 मराठा घुड़सवार तथा ख्वाजा मिर्ज़ा के 100 मुग़लिया घुड़सवार अशर अली खाँ के अधीन लाहौर के दिल्ली दरवाज़े पर आ पहुँचे। अशर को मिसकिन भली-भाँति जानता था। उन्होंने मिसकिन को अपने सरदारों के लिखित आज्ञापत्र दिखाए। मिसकिन ने तत्काल दरवाज़े खोल दिए तथा उनकी देखरेख में शहर सौंप दिया। अगले दिन ख्वाजा मिर्ज़ा खाँ एक हज़ार मुग़लों तथा 10,000 मराठों को अपने साथ

---

[1]दे० मिसकिन, 171-8; तारीख-अए-आलमगीर सानी, 312।

लेकर आया। उसी सुबह तैमूर हज़ारों सैनिकों को मीर हज़र खाँ के अधीन चंदावल (सेना का पिछला भाग) में छोड़ कर शाहदरा से हटा था। ख्वाजा मिर्ज़ा खाँ ने रावी नदी पार की तथा मीर हज़र खाँ पर टूट पड़ा। थोड़ी देर सामना करने के बाद वह भाग खड़ा हुआ। परंतु उन्हें शीघ्र ही घेर लिया गया तथा मराठों ने उन्हें किसी ओर भी भागने नहीं दिया। मराठों ने उन्हें एक करारी शिकस्त दी तथा उनके नेता को बंदी बना लिया। इस समाचार ने तैमूर खाँ तथा जहान खाँ को चौकन्ना कर दिया तथा उन्होंने अपनी गति को तीव्र कर दिया।

जहान खाँ ने लाहौर से 36 मील उत्तर-पश्चिम में सराय काछी पर पड़ाव डाला। परंतु ख्वाजा मिर्ज़ा ने अनेक मराठा तथा सिख सैनिकों के साथ, जो कि राह में उससे आ मिले थे, उनको पीछे से आ पकड़ा। उनके पास घेरा डालने का सामान न था। इस तथ्य से जहान खाँ ने लाभ उठाया तथा वह सफलतापूर्वक रात्रि के अंधकार में सराय से खिसक गया (शुक्ल पक्ष की चौथी रात)। वे शीघ्र ही वज़ीराबाद के नीचे चिनाब पर जा पहुँचे। तैमूर, जहान खाँ तथा उनके दुर्रानी सैनिकों ने अभी मुश्किल से उस गहरी, विस्तृत अत्यधिक ठंडी तथा वेगवान धारावाली नदी को पार किया ही था कि मराठ और सिख वहाँ आ पहुँचे। उस समय सारे उज़बेक किजिलबश तथा अफ़गान सैनिक तैमूर के संपूर्ण शिविर तथा माल-असबाब के साथ नदी के पूर्वी तट पर ही थे। मराठों तथा सिखों की अनंत सेना के वे सरलता से ही शिकार हो गए।[1]

इसके बाद विजयी सेना ने शिविर में प्रवेश किया। तैमूर के अधिकांश सैनिक तलवार के घाट उतार दिए गए तथा शिविर लूट लिया गया। तैमूर ने अपने प्रशासन के समय जो विशाल साज़-सामान तथा धन-संपत्ति इकट्ठी की थी वह सब उनके हाथों में आ गई। बीस हज़ार मराठे तथा दस हज़ार सिख इस संपत्ति को कई फेरों में लाहौर वापस ले आए। जो अफ़गान जीवित बचे रहे उन्हें सिख लोग जंज़ीरों से जकड़ कर अमृतसर ले गए। वहाँ घूंसों तथा कोड़ों से मार-मार कर उनसे अहमदशाह तथा जहान खाँ द्वारा कूड़ा करकट से भरे गए सरोवर को साफ़ करवाया गया। बहुत से बंदियों को ख्वाजा मिर्ज़ा ने अपनी सेना में भी भरती कर लिया।[2]

---

[1]तारीख-ए-आलमगीर सानी, 312; मिसकिन 178–9।

[2]एस० पी० डी० xxvii, 218; मिसकिन, 179; तारीख-ए-इब्राहीम खाँ—इलियट, viii, 267; तारीख-ए-अली, 134; खज़ाना-ए-अमीरा 100–101; तारीख-ए-मुजफ्फ़री, 102 क-ख; हुसैन शाही 45; छहर गुलज़ार शुजाई, 463ख; तारीख-ए-अहमद, 10; अहमदशाह, 87 3;

मराठों तथा अदीना बेग की सेनाओं ने सिंधु नदी तक अफ़गानों का पीछा किया। इसके बाद दत्त पाटिल को एक शक्तिशाली दल के साथ अटक पर नियुक्त कर दिया गया। उसका प्रमुख कार्य यह देखना था कि अफ़गान फिर से नदी पार कर भारत में न घुस पाएँ। ऐसा प्रतीत होता है कि बाद में मराठों ने सिंधु नदी को भी पार किया तथा कुछ समय के लिए वे पेशावर में भी जमे रहे।[1]

रघुनाथ तथा अदीना बेग 11 अप्रैल को लाहौर पहुँच गए। अदीना बेग खाँ ने एक लाख रुपए खर्च करके शालीमार बाग में एक अत्यधिक सुंदर मंच का निर्माण कराया। रघुनाथ राव को उस पर आसीन करके उसका सार्वजनिक स्वागत किया गया। बाग में गुलाब जल के फव्वारे प्रवाहित किए गए तथा सारे शहर में रोशनी की गई।[2]

रघुनाथ कई कारणों से पंजाब में ठहरने तथा उसे अपने निजी रक्षण में रखने का इच्छुक नहीं था। मराठों की मातृभूमि से पंजाब बहुत दूरी पर था तथा उस समय तीव्र गति के आवागमन के साधनों के न होने के कारण उनके लिए बार-बार अपने घर जाना संभव नहीं था। वहाँ का मौसम भी अत्यधिक परिवर्तनशील था। जहाँ एक ओर झुलसा देने वाली गर्मी पड़ती वहाँ दूसरी ओर कड़कड़ाती सर्दी भी पड़ती। हिमालय की बर्फ़ के पिघलने तथा वर्षा के कारण वहाँ की नदियाँ पार करना आसान नहीं था। इसके साथ-साथ वे लोग उत्तरी भारत के विरोधी जन-समुदाय के बीच में भी पड़ गए थे। वे लोग मराठों को मैत्रीपूर्ण दृष्टि से नहीं देखते थे तथा उन्हें 'ग़नी' अर्थात् लुटेरे कह कर पुकारते थे। सीमांत सूबा होने के कारण बाहरी आक्रमणों का भी वहाँ सदैव भय बना रहता था। यदि वह वहाँ ठहरता तो उसे सदैव उनका सामना करने के लिए भी तैयार रहना पड़ता। इन सब के ऊपर जो एक और बात थी वह यह थी कि वे लोग सिखों द्वारा फैलाई गई अशांति से बहुत क्षुब्ध हो उठे थे तथा नियमित आय की उन्हें कोई आशा नहीं रही थी। इन सब परिस्थितियों को ध्यान में रख कर उन्होंने अदीना बेग खाँ को वहाँ का कार्य भार सौंपने का निश्चय कर लिया। वह एक अनुभवी तथा सधा हुआ प्रशासक था। सिखों से सफलतापूर्वक निपट सकता था। इसलिए उन्होंने अदीना बेग को नवाब की उपाधि से विभूषित किया तथा 75 लाख रुपए वार्षिक कर पर वह प्रांत उसको सौंप दिया। इसके बाद मराठे दिल्ली की ओर लौट पड़े। तारीख

शाह यूसफ, 59ख-60क; हुसैन शाही, 45; दे खें बख्तमल 81; तारीख-ए-अहमद, 10।

[1]देखें लेखक द्वारा लिखित "लेटर मुग़ल हिस्ट्री ऑफ दी पंजाब", 175–6।

[2]अली-उद्-दीन, 111क।

5 जून को वे लोग थानेसर पहुँचे तथा वहाँ उन्होंने सोमवती अमावस्या को धार्मिक स्नान किया।[1]

अदीना बेग ने पुरानी राजधानी लाहौर में रहना पसंद नहीं किया। अमृतसर के उत्तर में स्थित प्रसिद्ध बटाला नगर में जा कर बसने का वह इच्छुक था। इसी स्थान को उसने अपना मुख्य केंद्र बना लिया। उसने ख्वाजा मिर्ज़ा खाँ को जो अब उसका दामाद भी बन चुका था, लाहौर का शासक नियुक्त कर दिया तथा उसके भाई ख्वाजा सैद खाँ को उसका नायब नियुक्त कर दिया। अदीना ने अपने पुराने साथी सादिक बेग खाँ को सरहिंद का प्रशासन सौंप दिया। लाहौर में मुग़लानी बेगम की उपस्थिति को ख्वाजा मिर्ज़ा ने पसंद नहीं किया तथा उसे कहीं दूर भेजने के लिए उसने अदीना बेग खाँ से प्रार्थना की। इसका फल यह हुआ कि अदीना बेग उसे अपने साथ बटाला लेता गया।[2]

10. सन् 1758 में लाहौर में सिखों के अधिकार की किंवदंती

सिख इतिहास लिखने वाले बहुत से लेखकों ने यह कहा है कि सिखों ने तैमूरशाह तथा जहान खाँ को मार भगाया था तथा प्रांतीय राजधानी पर कब्ज़ा करके अपनी प्रभुसत्ता की घोषणा कर दी थी और यह कि उनके नेता जस्सासिंह ने अपने नाम के सिक्के ढलवाए थे।

ब्राउनी सबसे पहला लेखक है जिसने अपनी पुस्तक में इस बात का वर्णन किया है अपने इस वर्णन का आधार उसने दो पंजाबियों को माना है परंतु उनके द्वारा दी गई तिथियों को तो ब्राउनी ने खुद भी अत्यधिक अशुद्ध बताया है।

इस घटना के लगभग तीस वर्ष बाद ब्राउनी ने इंडिया ट्रैक्ट्स का संकलन किया। यह भी नहीं कहा जा सकता कि ब्राउनी को सूचना देने वाले पंजाबी मित्रों ने जिस घटना का वर्णन किया है उसे उन्होंने खुद देखा था अथवा नहीं इसलिए हम बड़ी सरलता से उनकी बात को अस्वीकार कर सकते हैं। क्योंकि

---

[1]दिल्ली क्रानीकल, 156, एस०पी०डी०, xxvii, 218; नूर-उद्-दीन 121; खजाना-ए-अमीरा, 101; सैयार, iii, 64; अह्वाल-ए-अदीना बेग खाँ, 56 क; खुशवक्त राय, 91; तारीख-ए-अहमद, 10; तारीख-ए-अली, 134; इरशाद-उल्-मुश्तकीम, 295 ख; हशेल 265-66।

[2]तारीख-ए-आलमगीर सानी, 360; मिसकिन, 179–80; हमारी सूचनाओं के प्राथमिक स्रोत मिसकिन द्वारा लाहौर की घटनाओं के बारे में किए गए वर्णन हमें इसके बाद नहीं मिलते। मिसकिन चार साल पंजाब में और रहा। इस समय में वह बटाला, जम्मू, दिल्ली, स्यालकोट तथा सरहिंद में ठहरा तथा उसने सिखों के बारे में यदा-कदा ही कुछ लिखा।

मिसकिन तथा मराठा उस घटना के समय उपस्थित थे अतएव उनका वर्णन अधिक प्रामाणिक माना जा सकता है । शेष लेखक बहुत बाद के हैं तथा वे इस बात का भी दावा नहीं करते हैं कि उनके विवरण समकालीन साक्ष्य पर आधारित हैं । परंतु इसका यह मतलब नहीं है कि सिखों ने लाहौर पर अधिकार जमाया ही नहीं तथा उनके नेता जस्सासिंह अहलूवालिया ने अपने नाम के सिक्के नहीं ढाले । असल में यह लगभग तीन वर्ष बाद हुआ, 1758 में नहीं । आगे इस संबंध में विचार करेंगे ।[1]

---

[1]ब्राउनी, ii, 19; मॉलकाम, 94-95; बख्तमल, 82; खुशवक्त राय 104; एलफिंसटन का काबुल, ii, 289; कनिंघम 105; लतीफ का पंजाब, 231; गार्डन, 61; नारंग, 148; रतनसिंह ने अपने पंथ-प्रकाश में पृष्ठ 424 पर लिखा है कि सिखों तथा मराठों की संयुक्त सेनाओं ने लाहौर पर अधिकार किया था ।

छठा अध्याय

सिखों द्वारा राज्य क्षेत्रों के अभिग्रहण का प्रारंभ

[जून, 1758—अक्तूबर, 1759]

1. अदीना बेग खाँ की सिखों से लड़ाई, जून-सितंबर, 1758

अफ़गानों के लौट जाने के बाद अदीना बेग खाँ ने देखा कि उसका भाग्य चमक उठा है। दिल्ली-सरकार बहुत कमज़ोर थी तथा उसमें उसकी सर्वोपरिता को ललकारने का दम नहीं था। पंजाब में दक्खनियों के आ जाने से उत्तर की ओर से दुर्रानी का खतरा भी दूर हो चुका था। उसके सामने तो केवल 75 लाख रुपए इकट्ठे करने का प्रश्न था। यह धनराशि उसे मराठों को देनी थी। यह विशाल धनराशि तब तक इकट्ठी नहीं की जा सकती थी जबतक कि देश में शांति स्थापित न हो जाए तथा किसान और व्यापारी अपने-अपने धंधे शांतिपूर्ण ढंग से बिना किसी छेड़छाड़ के न चलाने लगें। इसकी तब तक आशा नहीं की जा सकती थी जब तक कि सिखों की असीम महत्वाकांक्षाओं पर रोक नहीं लगाई जाती। इसलिए उसने सिखों को सलाह दी कि वे अपनी ग़ैरकानूनी हरकतों को बंद कर दें। परंतु ऐसा कुछ होने वाला नहीं था।

अदीना बेग चुपचाप नहीं बैठा रह सकता था। वह अनुशासन प्रेमी, काम करनेवाला, दृढ़चित्त तथा अपने उद्देश्य के प्रति सजग व्यक्ति था। इस प्रांत में पदा होने तथा पालन-पोषण पाने के कारण अदीना बेग इस बात को अच्छी तरह से जानता था कि उन पर कब और कैसे चोट की जानी चाहिए। उसके पास 10,000 घुड़सवारों तथा पैदलों की सेना थी। सिखों के विरुद्ध अपने को और शक्तिशाली बनाने के लिए उसने और बहुत से सैनिक इक्ट्ठे किए तथा देश से सिख अभिशाप को मिटाने तथा शांति और व्यवस्था के पुनःस्थापन के लिए प्रांत के सब प्रमुख ज़मींदारों का आह्वान किया। फल यह हुआ कि सिंध सागर दोआब के मक्खर, झंझुआ तथा घेबा ज़मींदार, चज दोआब के चौधरी रहमत खाँ वारेच, जम्मू के राजा रणजीत देव, रेचना दोआब के चौधरी पीर मुहम्मद छत्ता, इज्जत बख्त भाट्टी तथा दूसरे ज़मींदार, बारी दोआब में राजा घमंड चंद, निधान सिंह रंधावा, कादियाँ के मिर्जा मुहम्मद अनवर, कसूर तथा धौलपुर के अफ़गान, जालंधर तथा अलावलपुर के अफ़गान, कपूरथला का राय इब्राहीम, बंकाला, दसूआ, खरदुनबला तथा फगवाड़ा के राय तथा राहौं

के राजपूत लोगों को सिखों के विरुद्ध उसका साथ देने के लिए मना लिया गया ।[1]

उक्त ज़मींदारों के सहयोग से अदीना बेग की सेनाओं की सिखों से अनेक बार मुठभेड़ हुई । अपने इस पुराने मित्र किंतु नवीन शत्रु की इन गतिविधियों से सिखों को बहुत निराशा हुई । अदीना बेग को भयभीत करने के लिए उनकी एक विशाल सेना अदीना की राजधानी, अदीनानगर, के पड़ोस में आ इकट्ठी हुई । अदीना बेग खाँ ने दीवान हीरा लाल तथा जंडियाला के गुरु आकिल दास को उनके विरुद्ध भेज दिया । दोनों सेनाओं में कनडियाँ के समीप अति भयंकर लड़ाई हुई । दीवान खेत रहा तथा उसकी सेनाएँ भाग खड़ी हुईं तथा उसका सारा माल-असबाब सिखों के हाथ लगा । इस घटना से अदीना बेग को बहुत दुःख हुआ तथा उसने उनके विरुद्ध और भी अधिक कठोर कदम उठाने का निश्चय कर लिया ।[2]

उसने तत्काल लंबरदारों, ज़मींदारों तथा दूसरे मुखियों को आकर उसकी सेनाओं में मिलने की कठोर आज्ञा दी । उन्हें कसम दिलाई गई कि वे सिखों पर आक्रमण करके उन्हें मार भगाएँ तथा जहाँ कहीं भी कोई सिख मिले उसे तत्काल मौत के घाट उतार दें या बंदी बना लें । उसे यह भी पता था कि सिखों के छिपने का सबसे उत्तम स्थान मांझा में पलास के जंगल हैं । अदीना बेग ने उसे भी नष्ट करने की ओर ध्यान दिया । इस काम में अदीना बेग को बहुत सफलता भी मिली । अहमद शाह द्वारा दिए गए वर्णन से जिसे नीचे उद्धृत किया जा रहा है, यह बात सिद्ध हो जाती है :—

इच्छा न होते हुए भी पंजाब के सब ज़मींदारों ने उसकी बात मान ली तथा सिखों के उन्मूलन के लिए योजनाएँ बनानी आरंभ कीं । पंजाब के ज़मींदारों में से रंधावों ने सिखों का विनाश करने में सबसे अधिक तत्परता दिखाई । अदीना बेग ने आज्ञा दी कि किसी भी सिख को किसी भी ज़िले या परगने में न रहने दिया जाए । उनको या तो बंदी बना लिया जाए या फिर जान से मार दिया जाए । मीर अज़ीज बख्शी उसका बहुत विश्वस्त नवाब था । कई हज़ार घुड़सवारों के साथ अदीना ने उसे इस काम पर लगा दिया । जंगलों और वनों में सिख जा कर शरण लेते थे । उन्हें काटने के लिए अदीना ने उसके साथ 1,000[3] बढ़ई भी

---

[1]मिसकिन, 167; अहमद शाह, 882-3; अली-उद्-दीन 118 ख–119 क;

[2]वही, 119 क (लेखक की यह सूचना बहुत आश्चर्यजनक है कि दोनों जस्सासिंह अदीना बेग की ओर से लड़े । यह बात बिल्कुल असंभव प्रतीत होती है) ।

[3]एम० ग्रेगौर के अनुसार, 4,000 बढ़ई थे, (i), 132 ।

कर दिए। उन्हें बसूले तथा कुल्हाड़ियाँ दी गईं। इसका उद्देश्य यह था कि उन लोगों के पास छिपने की कोई जगह बाकी न बचे। सिख बहुत घबरा गए तथा उन्होंने अपनी गतिविधियाँ ढीली कर दीं। कुछ भाग खड़े हुए तथा छिप गए। परंतु उनमें से कुछ, जो दूसरों से अधिक हिम्मत वाले थे, बड़ी वीरता तथा साहस के साथ अमृतसर की ओर बढ़े। अपने गुरुओं के स्थान पर वह अपना जीवन अर्पित करने के लिए पूरी तरह तैयार थे। उन लोगों ने अमृतसर के समीप रामरौनी के गारेमिट्टी के बने दुर्ग में जा शरण ली। इस दल का नेता नंद सिंह संघानिया था। इनमें जस्सा सिंह बढ़ई अपने दो भाइयों तथा दूसरे साथियों सहित शामिल था। जयसिंह कन्हैया तथा अमर सिंह किंगरा भी अपने साथियों सहित उसी दुर्ग में छिपे हुए थे। अपनी प्रतिरक्षा के लिए उन्होंने कुछ कदम उठाए। यह सुनकर मीर अजीज़ ने दुर्ग पर घेरा डाल दिया। हताश होकर सिखों ने बड़ी बहादुरी से युद्ध किया। जयसिंह कन्हैया तथा जस्सा सिंह ने दुर्ग से बाहर आ कर धावा बोला तथा अपनी बंदूकों तथा तीरों से बहुत से विरोधियों को मौत के घाट उतार दिया। फिर वे वापिस दुर्ग में चले गए तथा दरवाज़े बंद कर लिए। जयसिंह ने एक द्रुतगामी तथा साहसी घोड़ी पर सवार होकर शत्रु सेना को चीर कर बहुत साहस का परिचय दिया। यद्यपि उसकी ओर बंदूकें तनी हुई थीं तथा उस पर चारों ओर से आक्रमण हो रहा था फिर भी कोई उसके समीप पहुँचने की हिम्मत न कर पाया तथा वह किले में वापिस पहुँच गया। मीर अजीज़ थक गया। परंतु अंत में उसे दुर्ग की एक दीवार में सुराख करने में सफलता मिल ही गई। बाद में सिख दुर्ग से बाहर निकल पड़े तथा उनमें से बहुत से मारे गए तथा बंदी बना लिए गए।[1]

2. सरहिंद के सादिक बेग खाँ के हाथों सिखों की पराजय

यह देख कर कि उनके भाग्य में दुर्दिन बदे हैं, सिख मालवा की ओर भाग खड़े हुए। यह भूभाग सरहिंद ज़िले में था तथा सादिक बेग खाँ वहाँ का सूबेदार था। जैसे ही सिखों ने सतलज पार की वैसे ही सादिक बेग खाँ ने अदीना बेग के कठोर आदेशों के अनुसार उनका विरोध करना प्रारंभ कर दिया। संधूलाल गाँव के समीप सिखों तथा उसके मध्य एक मुठभेड़ हुई। सूबेदार की छोटी तोपों ने सिखों पर भयंकर आग उगली तथा उनकी सेना को आतंकित कर दिया। उन्हें अपनी जान बचाने के लिए भागना पड़ा। उनका शिविर तथा माल-असबाब (बाहीर) शत्रु ने लूट लिया।

---

[1]अहमद शाह 981-2; देखें, सोहन लाल, परिशिष्ट, भाग i, 18–19; एम० ग्रेगौर, i, 131–2।

सादिक की सेनाओं ने बड़ी सरगर्मी से सिखों का पीछा किया। वे लोग अभी कठिनाई से ही चार या पाँच मील गए थे कि उन्हें अपने भंडारों तथा माल-असबाब की हानि का पता चला। वे अचानक मुड़ पड़े। उनका पीछा करने वाले शत्रु अपनी भारी तोपें पीछे छोड़ आए थे। इसलिए वे खालसा के क्रोध के आगे न टिक पाए तथा बहुतों का सफाया कर दिया गया। इसी बीच सादिक बेग ने अपनी सेना में व्यवस्था कायम की तथा सिखों पर फिर से तोपें दागी जाने लगीं। सिखों ने तत्परता से अपने घायल साथियों को उठाया तथा मदान से भाग खड़े हुए। वे लोग दरोली जा पहुँचे तथा अपने सह-धर्मियों को एकत्रित करने पर जुट गए।[1]

3. अदीना बेग खाँ की मृत्यु, 15 सितंबर, 1758

हम देख चुके हैं कि प्रकृति ने सदा सिखों की सहायता की है। विशेष रूप से उस समय जब उनकी दशा बहुत शोचनीय हो उठती थी तथा सरकार उनको कुचलने में सफल होने लगती थी। सदैव की भाँति इस बार भी विधाता ने उनकी सहायता की। जब उनके समूल विनाश के लिए चतुर अदीना बेग खाँ ने कदम उठाए तो उस वर्ष लोगों ने देखा कि पाँच माह के थोड़े-से समय में अदीना बेग अपनी शक्ति के शिखर पर पहुँचने के बाद अपनी कब्र में भी पहुँच चुका है। सितंबर के आरंभ में उसे अचानक शूल की बीमारी ने आ दबोचा तथा उसी महीने की 15 तारीख को वह बटाला में शांतिपूर्वक इस संसार से विदा हो गया। उसके इच्छा पत्र के अनुसार उसका शव जालंधर के समीप खानपुर में दफ़ना दिया गया।

---

[1]रतन सिंह, 425–27; ज्ञान सिंह, 734–35; शमशीर खालसा, 97।

[2]अदीना की मृत्यु के समय बटाला में उपस्थित मिसकिन (182) ने इस घटना की कोई तिथि नहीं दी है। एस०पी० डी०, ii, 96, दिनांक 7-10-1758 के एक मराठी पत्र द्वारा इस घटना की तिथि 12वीं, मुहर्रम (15 सितंबर, 1758) दी गई है। इलियट vii, 169 में फर्हातुन-नाज़िरीन ने इस घटना के लिए 11वीं मुहर्रम (14 सितंबर) निश्चित की है। खजाना-ए-अमीरा, 101, ने केवल उस माह का ही नाम अर्थात् मुहर्रम ही दिया है। तारीख-ए-आलमगीर सानी, 359 में दिल्ली के एक समकालीन लेखक के अनुसार उसकी मृत्यु 10 सफर (13 अक्तूबर, को हुई); सरकार ii, 77 ने इसी का अनुकरण किया है।

परंतु इस लेखक द्वारा दी गई तिथि बिल्कुल ग़लत दिखाई पड़ती है। यदि अदीना बेग की मृत्यु 13 अक्तूबर को हुई तो 7-10-1758 का मराठी पत्र उसका वर्णन कैसे कर सका? यह संभव तो हो सकता है कि अदीना की मृत्यु का

4. पंजाब में अराजकता, अक्तूबर, 1758—1759

पंजाब से सुप्रसिद्ध सूबेदार में से अंतिम सूबेदार अदीना बेग खाँ की मृत्यु ने, पाँच नदियों के उस मनोहर भूभाग के विघटन, दुर्व्यवस्था तथा अशांति फैलाने वाली शक्तियों को, एक बार फिर खुल कर तांडव नृत्य करने का संकेत किया। पंजाब के सूबेदार की मृत्यु का समाचार पाते ही दिल्ली के वज़ीर इमाद-उल्-मुल्क ने सैय्यद जामिल-उद्-दीन खाँ तथा अबैदुल्ला खाँ काश्मीरी को पंजाब भेज दिया। ऊपर से दिखावे के लिए तो उसका काम प्रांत की दशा को व्यवस्थित करना था, परंतु उसका वास्तविक काम मृत सूबेदार की संपत्ति तथा नक़दी को राज-कोष में ले आना था।

इसी बीच अपने घर की ओर जा रहे रघुनाथ तथा मल्हर को, जो उस समय मालवा (मध्य-भारत) में थे, अदीना की मृत्यु के समाचार मिल गए। उन्होंने तत्काल आंता जी मानकेश्वर तथा दूसरे मराठा सरदारों के साथ एक शक्तिशाली सेना उधर भेज दी; यह मराठा सेना नवंबर में दिल्ली पहुँची। आंताजी मानकेश्वर दिल्ली में ठहर गया तथा बादशाहत के सब मामलों पर अपना नियंत्रण कर लिया तथा दूसरे मराठा सरदारों ने पंजाब की राह पकड़ी। सैय्यद जामिल-उद्-दीन सोनीपत (दिल्ली से 27 मील) तक पहुँच गया था। वहाँ मराठों को लाहौर की ओर बढ़ते देख वह शीघ्रता से राजधानी वापिस लौट गया।[1]

लाहौर में ख्वाजा मिर्ज़ा खाँ सरकारी मामलों के बंदोबस्त पर लगा हुआ था। दिल्ली का एक समकालीन इतिहासकार लिखता है कि "नानक के भक्त (सिख लोग) ऐसे विद्रोही तथा डाकू थे कि सूबेदार उनसे निपटने में बिल्कुल असमर्थ था। मराठा सैनिक दस्ते लाहौर तथा उसकी बस्तियों में जा पहुँचे। चिनाब नदी के पार अफ़गानों तथा गक्खरों ने मिलजुल कर गुजरात के परगने को लूट लिया तथा चिनाब को पार करके इस ओर आ गए। ख्वाजा मिर्ज़ा खाँ नानक के भक्तों (सिखों) का एक दल लेकर लाहौर से चल पड़ा तथा नदी पर जा पहुँचा। उसने अफ़गानों से लड़कर उन्हें पराजित कर दिया। अफ़गान लोग नदी के उस पार भाग खड़े हुए। मिर्ज़ा खाँ ने नदी पार की तथा खाइयाँ खोद कर अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली। इस बार अफ़गान तथा गक्खर बड़ी संख्या में एकत्रित हुए तथा उन्होंने ख्वाजा मिर्ज़ा खाँ को पराजित कर दिया। यह समाचार

समाचार ही तारीख ए-आलमगीर के लेखक के पास 13 अक्तूबर को पहुँचा हो। उस दिन उसने अपने रोज़नामचे में उसे दर्ज किया हो।

[1]तारीख-ए-आलमगीर सानी, 359–360।

पाकर कि मराठे लाहौर पहुँच चुके हैं, अफ़गान नदी के इस पार नहीं आए (दिसंबर 1758)।[1]

अपनी खुद की मुग़लिया सेना से भी ख्वाजा मिर्ज़ा खाँ सुरक्षित नहीं था। इसका वर्णन मिसकिन ने सविस्तार किया है। "वे किजिलबाश सरदार जिनको उसने तैमूर शाह की सेना में से पकड़ लिया था, मराठों से जा मिले। उनके प्रमुख सरदार मिर्ज़ा अहमद खाँ तथा सालिह खाँ थे। इनमें से पहला बड़ी चतुराई से लाहौर का तथा दूसरा मुल्तान का सूबेदार बन बैठा। उन्होंने धोखा देने तथा चकमा देने की पद्धति अपनाई। उन्होंने मराठों को कुछ धन दिया तथा और अधिक देने की प्रतिज्ञा की तथा नवाब ख्वाजा मिर्ज़ा खाँ को कैदखाने में डाल दिया। इसके बाद उन्होंने चतुराई से अपनी सेनाएँ लाहौर शहर में भेज दीं। शहर हथिया लिया गया तथा उपरि-वर्णित मिर्ज़ा के भाई ख्वाजा सईद खाँ को भी बंदी बना लिया।" पेशवा ने एक शक्तिशाली सेना के साथ अपने योग्य सेनापति दत्ताजी सिंधिया को, शांति स्थापित करने के लिए पंजाब की ओर भेज दिया। अप्रैल के प्रारंभ में दत्ताजी सतलज के किनारे पहुँच गया तथा लगभग तीन सप्ताह तक मच्छीवाड़ा पर डेरा डाले रहा। यहीं पर अदीना बेग के बेटे ने आकर उससे भेंट की। अधीनता स्वीकार करते हुए उसने अपने पिता द्वारा देय कर के एक भाग की अदायगी भी की। दत्ताजी ने साबाजी सिंधिया को लाहौर का कार्यभार सँभालने के लिए नियुक्त कर दिया परंतु खुद वहीं ठहरा रहा।[2] ऐसा लगता है कि उसने सिखों के भय के कारण आगे बढ़ने की हिम्मत नहीं की। यह बात दिल्ली के एक इतिहासकार ने स्पष्ट की है। वह लिखता है, "यह देख कर कि लाहौर तथा उसके चारों ओर सिख बहुत शक्तिशाली हैं तथा उनके रहते पंजाब को जीतना कठिन है, दत्ताजी दिल्ली की ओर वापिस लौट गया।"[3]

साबाजी को कुछ समय के लिए देश में शांति तथा व्यवस्था बनाए रखने में सफलता मिली। दिल्ली के आस-पास ठहरी विशाल मराठा सेनाओं ने, जो कि लाहौर के सूबेदार के तनिक से इशारे पर आगे बढ़ने के लिए सदैव तैयार रहती थीं, पंजाब के रईसों तथा ज़मींदारों को उसकी आज्ञा मानने के लिए बाध्य कर दिया। सिखों की सहायता से उसने सिंधु पार करके पेशावर की ओर आने वाले जहान खाँ के आक्रमण को भी निष्फल कर दिया। अफ़गान सेनापति को

---

[1]वही, 369।

[2]मिसकिन, 194; एस० पी० डी० ii 100 सरकार, ii, 78।

[3]तारीख-ए-आलमगीर सानी 205 ख; सरकार, ii 79।

बहुत हानि उठानी पड़ी। उसका पुत्र लड़ाई में काम आया तथा अनेक सैनिक मारे गए। वह खुद भी बहुत बुरी तरह घायल हुआ।[1]

अगले अक्तूबर में एक नवीन आक्रमण की तैयारी में भारत की सीमाओं पर अफगान सैनिकों की गतिविधियाँ एक बार फिर बढ़ गईं। उसके हरावल ने, प्रधान सेनापति जहान खाँ के नेतृत्व में, सिंधु पार की। इस समय दत्ताजी सिंधिया सुकरताल के घेरे में बुरी तरह उलझा हुआ था। इस ओर ध्यान देने के लिए उसके पास न तो समय ही था और न ही पंजाब में भेजने के लिए कोई सैनिक थे। साबाजी के मराठा सैनिक प्रांत में चारों ओर दूर-दूर तक बिखरे हुए थे। उनमें से कुछ तो मुल्तान तक पहुँच गए थे। "यह देखते हुए कि जहान खाँ से लड़ना उसके लिए कठिन है वह नदी (रावी) के तट से वापिस बटाला लौट आया। बिना किसी विरोध के जहान खाँ वज़ीराबाद तक पहुँच गया तथा अपनी सेनाओं को चारों ओर (चढ़ाई करने के लिए) बिखेर दिया। लाहौर बिना शासक के था। जहान खाँ ने एक पत्र के साथ तीन-चार आदमी लाहौर के सूरत सिंह खत्री के पास भेजे। इसमें उसने लिखा था कि वह अहमदशाह दुर्रानी के बेटे तैमूर शाह के नाम से सिक्के ढलवाए तथा उसके नाम का खुतबा पढ़वाए। इसमें यह भी कहा गया था कि वह सब लोगों को एक दूसरे को न सताने की चेतावनी भी दे दे। बटाला में अपने को अरक्षित देख साबाजी जालंधर चला आया। इन घटनाओं से सरहिंद में घबराहट तथा भय की लहर फैल गई।" अदीना बेग खाँ की विधवा तथा पुत्र, तथा सरहिंद का मराठा सूबेदार सादिक बेग खाँ दिल्ली की ओर भाग खड़े हुए। लाहौर के आस-पास मंडरा रहे एक मराठा सेनापति तथा अनेक सैनिकों को दुर्रानी के हरावल ने काट कर फेंक दिया। मुल्तान से आ रही एक मराठा सेना को भी लोगों ने लूट लिया।[2]

---

[1]वही, 367; दिल्ली क्रानीकल, 165 (यह समाचार तारीख 19 सितंबर को दिल्ली पहुँचा था); राजवडे, vi, 373, ने इस विजय का सेहरा सिखों के सिर बाँधा है।

देखें, सरकार, ii, 79।

[2]तारीख-ए-आलमगीर, सानी, 397; सैयार, iii, 64; सरकार, ii, 90; एक मराठी संदेश में लिखा है "मुल्तान के पास 3,000 घुड़सवार तथा 3,000 पैदल पीछे रह गए। वे लाहौर के इस ओर सही सलामत आ गए। दोआब में (जालंधर) गँवार (ग्रामवासी) संगठित हो गए तथा पंक्तियाँ बना लीं। जब हमारे कुछ सैनिकों ने सतलज पार की तथा कुछ उधर ही रह गए तो इन लोगों ने धावा बोल दिया तथा लड़ाई के बाद 4,000 ऊँट, जिनमें से प्रत्येक 40 रुपए का था, मोहरें (सोने के सिक्के) तथा रुपये लूट कर ले गए। 500 से ऊपर आदमी, जो कमर से ऊपर वस्त्रहीन थे कल पैदल चलते हुए आए। 1000 छोटे-बड़े घोड़े

परंतु सिख अपने राष्ट्रीय कर्त्तव्य से, जिससे मराठों ने बेशर्मी से मुँह मोड़ लिया था, पीछे नहीं हटे। अपने सामने अनेक कठिनाइयों के होते हुए भी उन्होंने अब्दाली पर बिना चोट किए उसे आगे नहीं बढ़ने दिया। इस बात का साक्षी एक मराठी पत्र है इसमें लिखा है "अब्दाली लाहौर आ गया है। सिखों के साथ उसकी एक भीषण लड़ाई हुई। इसमें 2,000 अब्दाली सैनिक मारे गए तथा जहान खाँ घायल हो गया।

5. प्रादेशिक सरदारों के रूप में सिखों का जमना, अक्तूबर, 1758—अक्तूबर, 1759

अदीना बेग 15 सितंबर को मरा तथा 30 अक्तूबर को दिवाली का त्यौहार पड़ा। किसी ओर से किसी प्रकार के विरोध को न देखकर सिखों ने अपने-अपने कार्य क्षेत्र की सरदारी संभाल कर अपने अंतिम गुरु की भविष्यवाणी पूरी करने का निश्चय कर लिया। ऐसा प्रतीत होता है कि उस वर्ष दिवाली का त्यौहार उन्होंने अमृतसर में बड़ी धूम-धाम से मनाया होगा। संरक्षित राज्यों पर अपना शासन लागू करने के लिए उन्होंने अपने नवीन संगठन की घोषणा यहीं पर की होगी।

उस समय तक सिख लोग पंजाब में सबसे अधिक शक्तिशाली बन चुके थे। केवल उनकी संगठित शक्ति ही लाहौर के सूबेदार के आततायी शासन का विरोध कर सकती थी और बाहरी शत्रु से लोहा ले सकती थी। जहाँ मराठे भी असफल रहे, वहां उन्हें सफलता मिली। इसलिए यदि किसी भारतीय शक्ति को देश के इस सीमांत प्रांत पर शासन करने का नैतिक अधिकार था तो वह केवल सिखों को ही था।

कुछ वर्ष पहले उन्होंने लोगों से उनकी आय का 1/5 राखी के रूप में वसूल कर कुछ प्रदेशों को अपनी सुरक्षा में ले लिया था। फसल की कटाई के समय उनके घुड़सवार गाँव-गाँव में घूमते तथा अपना भाग प्राप्त कर लेते। यह क्रिया दुहराई जाती। प्रत्येक सरदार अपने प्रभाव क्षेत्र को पास पड़ोस के गाँवों पर अपना दावा स्थापित करके बढ़ाता था। उसे मान्यता न देने का अर्थ विनाश होता था। जो सरदार या दल किसी भूभाग पर पहले प्रवेश करता वह उसका कार्यक्षेत्र मान लिया जाता तथा उसमें दूसरों के हस्तक्षेप का विरोध किया जाता। उस समय ऐसा हस्तक्षेप प्रायः नहीं होता था।[1]

वापिस आ गए हैं। बाकी के सब लुट चुके हैं। हमारे ऊपर एक बड़ी विपदा आ पड़ी है।"

राजवड़े, i, 146।

[1]कलकत्ता रिव्य, अक्तूबर, दिसंबर।

अदीना बेग खाँ की मृत्यु से उनकी बढ़ती शक्ति की राह में से प्रमुख अड़चन दूर हो गई। अब सिख लोग शीघ्र ही सारे प्रदेश में फैल गए। उन्होंने राखी पद्धति का और अधिक विस्तार तथा विकास किया तथा पंजाब के एक बड़े भाग के स्वामी बन बैठे। जो भूभाग अब तक उनकी 'राखी' में आते थे उनके अब वे प्रादेशिक सरदार बन बैठे।[1]

जालंधर दोआब में अदीना बेग खाँ के दीवान बिशंबर दास ने सिखों का सामना किया। उसने 25,000 सैनिकों की एक शक्तिशाली सेना तैयार की तथा उरमुर-तांडा के स्थान पर सिखों से एक लड़ाई लड़ी। दीवान की नई-भर्ती की हुई सेना में शीघ्र ही भगदड़ मच गई तथा वह खुद भी लड़ाई के मैदान में मारा गया। उसका संपूर्ण शिविर संपूर्ण क़ीमती सामान के साथ सिखों के हाथों में आ गया।[2]

स्थानीय हिंदू तथा मुसलमान प्रमुख मुखियों ने या तो अपनी आय में से एक निश्चित रक़म सिखों को देनी स्वीकार करके उनकी अधीनता मान ली या कुछ दिनों तक सिखों का सामना करने के बाद नष्ट हो गए परंतु इन भूभागों को प्राप्त करते समय सिखों ने कोई धांधली नहीं मचाई। इस प्रकार का उनका यह प्रथम प्रयत्न था तथा वे प्रत्येक क़दम बहुत सावधानी से उठा रहे थे। जिनको उन्होंने अपने अधीन किया, उनके साथ उन्होंने उदार व्यवहार किया। अपने शक्तिशाली पड़ोसियों से भी वे उचित तथा सम्मानपूर्वक व्यवहार करते थे।[3]

किसी एक विशेष सरदार के साथी अपने को उसके मातहत नहीं मानते थे। प्रत्येक अभियान में वे अपने को उसके सहयोगी तथा साझीदार ही मानते थे। प्रायः ये लोग उसके नाते-रिश्तेदारों में से ही होते थे। अतः, जो भूभाग अब प्राप्त हुए उसे भी उन लोगों ने साझी-संपत्ति माना तथा उनमें से प्रत्येक ने अपने द्वारा की गई सेवाओं के बदले में अपने-अपने भाग के लिए दावा किया। इसीलिए इन संगठनों का नाम 'मिसल' पड़ा जिसका अर्थ यह हुआ— कि एक दल ने अपनी इच्छानुसार चुने गए एक विशेष मुखिए के अधीन समानता के सिद्धांत पर एक संघ का निर्माण किया है। इस तरह एक प्रकार की सामंतवादी पद्धति की स्थापना हो गई। संघों के नेताओं के अधीन छोटे-छोटे मुखिए होते। उनके अधीन अपने मातहत होते। इस तरह अंत में यह व्यवस्था साधारण सैनिक तक जा पहुँचती। संघ द्वारा विजित प्रदेश मुखियों में विभाजित कर दिया जाता, जिससे कि वे लोग अपने सैनिकों का पोषण कर सकें। बड़े मुखिया अपने भभागों को अपने अधीनस्थ

---

[1]बूटे शाह, 264।

[2]बख्तमल, 91; सोहन लाल, i, 149।

[3]बूटे शाह, 242ख-243क; रतनसिंह, 89-92; ज्ञान सिंह 750-51।

मुखियों में बाँट देते जो अपने आश्रित लोगों को उनके पोषण के लिए गाँव दे देते थे। इस पद्धति के फलस्वरूप विभिन्न प्रकार की पट्टेदारियाँ अस्तित्व में आ गईं। पट्टीदारी, मिसिलदारी, ताबादारी तथा जागीरदारी इसी पद्धति के परिणाम थे। यद्यपि प्रत्येक राज्य संघ एक-दूसरे से पूरी तरह स्वतंत्र था, तथापि उन्हें एक ही राष्ट्रमंडल के रूप में देखा समझा जाता था।[1]

इस पद्धति ने उनके सम्मान तथा शक्ति को बहुत बढ़ा दिया। जैसे ही यह पता चला कि लूटमार का पेशा कितना लाभप्रद हो सकता है मांझे के प्रत्येक सिख जाट गाँव ने अपने बलवान युवक दल को भू-स्वामित्व स्थापित करने तथा जिन उत्पीड़कों ने उन पर पहले अत्याचार किए थे, उनसे बदला लेने के लिए भेज दिया। इस प्रकार एक स्वनिर्मित अभिजात-वर्ग का निर्माण हो गया। आगे चल कर इन्हीं लोगों ने लगभग आधी सदी के लिए पंजाब में शासन किया। इस समय सिख मुखियों के अधीन जालंधर दोआब का अधिकांश भाग तथा बारी दोआब का उत्तरी भाग आया। इसका सविस्तार वर्णन परिशिष्ट I में दिया गया है।

---

[1]जालंधर डिस्ट्रिक्ट सेटलमेंट रिपोर्ट, 1892 पृ० 29-30।

सातवाँ अध्याय

आलासिंह के अधीन मालवा के सिखों की शांतिपूर्ण प्रगति

[1739—1761]

1. मालवा के सरदारों का उद्भव

यह बहुत आश्चर्य की बात है कि मालवा के सिखों ने मांझा के अपने सह-धर्मियों से बिल्कुल भिन्न कार्य-विधि अपनाई। उन्होंने सदैव कूटनीति से काम लिया। उस क्षेत्र में शासन जिसका होता, उसका वे कभी खुल्लम-खुल्ला विरोध नहीं करते थे। अपनी शक्ति उन्होंने इस प्रकार बढ़ाई कि दिल्ली की शाही सरकार को उन पर शंका करने का मौका नहीं मिला।

मांझा सिखों की भाँति मालवा के मुखियों के पूर्वज भी सीधे-सादे हिंदू किसान ही थे। जैसे-जैसे मुग़ल सरकार की केंद्रीय सत्ता कमज़ोर होती गई इन शांत प्रकृति जाटों की शक्ति बढ़ती गई। यथासमय उन्होंने अपना सामाजिक महत्व बढ़ा लिया तथा मामूली खेतिहरों से बढ़कर वे उन खेतों तथा ज़मीनों के स्वामी बन बैठे जिन्हें वे पहले जोतते थे। उन्होंने भूमि के और अधिक अनुदान प्राप्त किए तथा गाँवों की स्थापना करके वे लोग धीरे-धीरे बहुत पैसे वाले हो गए। सत्रहवीं सदी के आरंभ में इन मुखियों ने हिंदू धर्म त्याग कर सिख धर्म अपना लिया। 18वीं सदी के आरंभ के वर्षों में जो अराजकता चारों ओर फैली उसमें इन सिखों ने प्रतिदिन नवीन शक्ति तथा भूभाग प्राप्त किए।

2. आलासिंह के अधीन प्रगति

इस प्रकार सतलज पार के महान् सरदारों का उद्भव हुआ। इनमें सर्व-मान्य घराना फुलकियाँ का था, आलासिंह इसका प्रतिनिधि था। बधौर, नाभा, जींद, मलौद, बदरका, जिउंदन, दियालपुरा, लौदघरिया, रामपुर तथा कोटघूना के घराने उससे बहुत निकट का संबंध रखते थे। फरीदकोट के घराने का भी उसके साथ, चाहे कुछ दूर का ही सही संबंध था। ये सब एक ओजपूर्ण वंश की विभिन्न शाखाएँ थीं। ये सब महान् सिद्धधू-ब्रार कबीले के वंशज थे। जो जमुना तथा सतलज के बीच बसने वाले शक्तिशाली जाट थे। पटियाला घराने का संस्थापक आला सिंह सन् 1714 में अपने पिता राम के बाद कुछ गाँवों का स्वामी बना। सन् 1723 तक इन गाँवों की कुल संख्या केवल 30 थी।[1] अपने प्रदेश को बढ़ाने के लिए उसने कुछ हद तक पास-पड़ोस के भूभागों को जीतने का सहारा लिया। उसने सन्

[1] करम सिंह 87

1722 में बरनाला तथा सन् 1727 में लौंगोवाल का पुनर्निर्माण किया। इसके थोड़े दिनों बाद उसने कोट के शक्तिशाली राय कल्हा के रिश्तेदार सोंधे खाँ राजपूत के इलाके मीना को लूट कर तबाह कर दिया। इस पर राय ने आलासिंह की बढ़ती शक्ति को कुचलने के लिए एक राज्य-संघ का संगठन किया। इसमें तलवांडी के फतेह खाँ के पुत्र, हलवाड़ा का दलेल खाँ, मलसियाँ का कुतुब-उद्-दीन, फतेहपुर का मुखिया, तलवाल का नौरंग खाँ, नकोदर का सलक नकोदर, सलेरकोटला का जमाल खाँ तथा जालंधर दोआब का शाही फौज़दार सैयद अशाद अली खाँ सम्मिलित थे। उन्होंने मिलकर बरनाला के पास आलासिंह पर धावा बोल दिया। परंतु आलासिंह भी अपने शत्रुओं की गतिविधियाँ तथा उनके इरादों के प्रति अचेत नहीं था। वह इस बात को भली-भाँति समझ गया था कि यदि शत्रुओं ने मिलकर आक्रमण किया तो वह अकेला उस कठिन स्थिति का सामना करने में असमर्थ रहेगा। इसलिए वह मांझा के सिखों को भी अपनी सहायता के लिए बरनाला लेता आया था। उस स्थान पर हुई लड़ाई में शाही सेनापति मारा गया तथा मलेरकोटला तथा कोट की सेनाएँ मैदान छोड़ कर भाग खड़ी हुईं। अंत में सिखों की पूर्ण विजय हुई।[1]

इस विजय से आलासिंह की स्थिति एक स्वतंत्र मुखिए के रूप में स्थापित हो गई। देश के प्रत्येक भाग से साहसी सिख युवक उसके झंडे के नीचे आकर इकट्ठे होने लगे। अगले चौदह वर्ष पड़ोस के भाट्टी राजपूतों के साथ छुटपुट लड़ाई-झगड़ों में बीत गए। सन् 1745 में आलासिंह ने कोट के राय की शक्ति कुचलने के लिए सूबेदार अली मुहम्मद रोहिल्ला से मित्रता स्थापित की। परंतु उसे ही सुनाम के दुर्ग में बंदी बना लिया गया तथा उसकी राजधानी बरनाला लूट ली गई। इस पर उसके परिवार के लोगों ने भटिंडा में जाकर शरण ली। यदि सन् 1747 में उसका एक अनुचर, जिसका नाम कर्मा था, अपने प्राणों की आहुति चढ़ाकर होशियारी से उसको स्वतंत्र न करवाता तो हो सकता था कि कारागार में ही उसका जीवन समाप्त हो जाता।[2]

3. आलासिंह द्वारा शाही दल की सहायता

लगभग इसी समय अहमदशाह ने भारत पर आक्रमण किया। अली मुहम्मद ने औनला भागकर अपने को अपने अफ़गान भाई के साथ लड़ाई लड़ने से बचा

---

[1]करम सिंह, 95-103। यह पहला अवसर था जब मांझा के सिखों तथा आलासिंह में संबंध स्थापित हुए। सिख सहायता के प्रति आभार प्रदर्शन करते हुए आलासिंह ने मांझा के सिखों के नेता दीपसिंह के हाथों 'पहौल' ग्रहण किया तथा वह गुरु गोविंद सिंह का नियमित सिख अनुयायी बन गया। वही, 103।

[2]करम सिंह, 94, 126-32।

लिया। शाही सेनाएँ शाहज़ादे अहमदशाह के अधीन लगभग दो माह तक आलासिंह के पड़ोस में डेरा डाले पड़ी रहीं। आलासिंह ने शाही सत्ता के सम्मुख झुकने में तनिक भी देरी नहीं की तथा बादशाह के प्रति उसने तत्काल सम्मान प्रदर्शित किया। शाही झंडे के नीचे रहकर उसने सहर्ष युद्ध किया तथा दुर्रानियों को रसद पहुँचाने के रास्ते काट दिए। युवराज ने इस सेवा की बहुत सराहना की।[1]

4. आलासिंह के प्रदेशों का विस्तार

उसने अगले दस वर्ष अपने राज्य की सीमाएँ बढ़ाने तथा भाट्टियों से लड़ने में बिताए। सन् 1749 में उसने मुनक ले लिया तथा अगले ही वर्ष उसकी किलेबंदी कर डाली। उसने तोहान पर भी अपना थाना स्थापित कर दिया तथा गुरुबक्श सिंह कलेका ने सन् 1752 में 84 गाँवों के परगने सनौर को अपने अधिकार में ले लिया। पास-पड़ोस के भूभागों को नियंत्रण में रखने के लिए उसकी किलेबंदी कर ली गई। सन् 1754 में आलासिंह ने दल-खालसा के 12,000 सैनिकों की सहायता से जो संयोग से उस समय उसके प्रदेश में ही थे, बुलादा को जीत लिया। उसी वर्ष उसने खुदल की लड़ाई में मुहम्मद अमीन खाँ भाट्टी को पराजित कर दिया।

सन् 1757 में अहमदशाह अब्दाली ने अब्दुल समद खाँ को सरहिंद का सूबेदार नियुक्त किया। परंपरागत रीति पर चलते हुए आलासिंह उसके सम्मुख गया और उसने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। अब्दुल समद खाँ उस सिख मुखिए से इतना प्रभावित हुआ कि उसने उसे राज्य के महत्वपूर्ण मामलों में अपना

---

[1]मनुपुर के संग्राम में उपस्थित लाहौर के आनंदराम ने इस बारे में लिखा है :—"जब कभी शत्रु (अफ़गान) अनाज तथा घास लाने के लिए बाहर निकलते तो वे कभी भी सही सलामत वापिस न आ पाते थे। शाही सेना का साथ देनेवाले उन पर आक्रमण अवश्य करते। जब कभी उनकी सेनाओं का एक भाग अपने घोड़ों तथा ऊँटों के साथ अपने शिविर से कुछ मील दूर सामान तथा घास आदि प्राप्त करने के लिए जाता तो एक दस्ता उनकी मदद के लिए सदैव उनके पीछे रहता। सरहिंद के कुछ गाँवों का ज़मींदार आला तथा दोआब का ज़मींदार राय कल्हा बड़ी वीरता से उन पर टूट पड़ते तथा बहुतों को मार डालते, घायल कर देते या फिर अपने साथ ले जाते। भाग्य प्रायः उनका साथ देता तथा वे लोग अपने साथ ऊँटों की कतारों की कतारें ले आते। इसका फल यह होता कि उनको खिल्लत, घोड़े तथा नक़दी देकर सम्मानित किया जाता" देखें, हुसैन शाही, 26; तारीख-ए-अहमद, 7; तारीख-ए-अली, 126; जालंधर गज़ेटियर, 1904, पृ० 29।

विश्वासपात्र बना लिया। आलासिंह की इस बढ़ती हुई शक्ति को मुहम्मद अमीन खाँ सहन नहीं कर सकता था। उसने किसी तरह अब्दुल समद खाँ को उसके विरुद्ध भड़का दिया। इसका फल यह हुआ कि रामपुर के स्थान पर दोनों मुखियों में एक लड़ाई हुई। इसमें सरहिंद का सूबेदार पराजित हो गया तथा आलासिंह ने 84 गाँवों के दो परगने, जमालपुर तथा धर्मूल, पर अपना अधिकार जमा लिया।[1]

5. आलासिंह द्वारा दिल्ली सम्राट् की सहायता

दिल्ली का बादशाह आलमगीर द्वितीय तथा उसका वज़ीर इमाद-उल्-मुल्क 22 सितंबर, 1758 को झांसी पहुँचे तथा कुछ दिन वहाँ ठहरे। उस ज़िले से कर वसूल कर वे भूना की ओर बढ़ गए तथा उस पर घेरा डाल दिया। वहाँ के मूसा खाँ नामक बलौच ज़मींदार ने शाही सेनाओं का सामना किया, परंतु बादशाह को इन्हीं दिनों बेहोशी का दौरा पड़ा तथा कर के बारे में एक समझौता हो जाने के बाद घेरा उठा लिया गया। जब वे लोग सरसा तथा रानियाँ की ओर बढ़ रहे थे तो शाही सेना के मार्ग में अनेक बाधाएँ तथा अड़चनें आ खड़ी हुईं। घने जंगलों, घग्घर नदी तथा खाने-पीने के सामान की कमी के कारण उन्हें बहुत कष्ट उठाना पड़ा। इसके साथ-साथ भाट्टियों के लगातार होने वाले आक्रमणों ने उनकी कठिनाइयों को और भी बढ़ा दिया। इन सब का फल यह हुआ कि शाही सेनाओं की हालत बहुत बुरी हो गई। ऐसे समय आलासिंह बादशाह की सहायता के लिए आगे आया। वह खुद जाकर वज़ीर से मिला तथा काफ़ी बड़ी मात्रा में खाने-पीने के सामान तथा चारे आदि से उसकी सहायता की।[2]

6. पटियाला के राजा की नीति में परिवर्तन

सन् 1758 तक आलासिंह ने कभी किसी शाही दुर्ग पर हाथ नहीं डाला था। जब कभी शाही अधिकारी उसके प्रदेश में से हो कर गुज़रते तो वह सदैव उनके सामने नत मस्तक हो जाता। परंतु उस वर्ष के अंत में जब उसने यह देखा कि मांझा में रहनेवाले उसके सहधर्मी बड़ी शीघ्रता से नवीन प्रदेश हथिया रहे हैं तो उसने भी उस मौके को अपने हाथ से न जाने देना ही उचित समझा तथा दिल्ली साम्राज्य की नितांत तुच्छ स्थिति से लाभ उठाते हुए उसने भी शाही प्रदेशों को हथिया कर अपनी सीमाएँ बढ़ानी आरंभ कर दीं। इस दिशा में पहला प्रयत्न 'सुनाम' की विजय था।

---

[1]करम सिंह, 180–82।

[2]तारीख-ए-आलमगीर सानी, 351-352।

सन् 1759 में आलासिंह ने बघर की ओर अपना प्रदेश बढ़ाया तथा नखाना, कल्वाना, धमतन, धरोनही, बेलरक्खा खरल, लवान, पीपलवेह, दनौदी तथा बथूमना अपने अधिकार में ले लिए।

उसी वर्ष उसकी एक झड़प सरहिंद के सूबेदार सादिक बेग से हो गई। सूबेदार के दीवान लक्ष्मी नारायण ने अपने स्वामी के विरुद्ध आलासिंह से सहायता की प्रार्थना की थी। अपने साधनों पर विश्वास रखते हुए उस सिख मुखिए ने उसे शरण दी। इस कार्य से सरहिंद का सूबेदार तिलमिला उठा तथा उसने उसके प्रदेश पर चढ़ाई कर दी। उसे कई चकमे देने के बाद आलासिंह ने उसे झुटपुट संघर्षों में उलझा लिया। नवंबर में अहमदशाह ने फिर भारत पर हमला किया और जब वह सरहिंद की सीमा की ओर बढ़ा तो सादिक बेग अचानक घेरा उठाकर अफ़गान आक्रांता की पहुँच से एक दम बाहर भाग गया।[1]

7. आलासिंह द्वारा पानीपत में मराठों की सहायता

अहमदशाह अब्दाली को पानीपत के अभियान के दौरान मराठों को चारों ओर से वियुक्त करने में सफलता मिल गई। इसके कारण उनके शिविर में खाने-पीने की चीज़ों की बहुत कमी पड़ गई। परंतु आलासिंह ने बहुत चतुराई से किसी प्रकार अनाज के बड़े-बड़े काफिले वहाँ भिजवा दिए। इस काम के लिए उसने मराठों से काफी बड़ी धन-राशि वसूल की। इसकी सूचना शीघ्र ही दुर्रानी को दे दी गई। उसने तत्काल उस मुखिए को कुचलने के लिए एक दस्ता रवाना कर दिया। दुर्रानी की सेनाओं के पहुँचने के समय आलासिंह अपनी राजधानी से बाहर गया हुआ था। उस समय वह 'मुनक' में था तथा राजधानी उसकी पत्नी रानी की देख-रेख में थी। वह स्त्री बहुत होशियार और राजनय को भली-भाँति समझती थी।

रानी ने तत्काल भोला सिंह, काश्मीरी मल, कान्हा मल तथा बिराम-ढिल्लों आदि चार अधिकारियों को पानीपत के दुर्रानी शिविर में शांति की शर्तें तय करने के लिए रवाना कर दिया। वह खुद अपने पोते अमर सिंह को लेकर मुनक की ओर चल दी। परंतु उन चार अधिकारियों के दुर्रानी के शिविर में पहुँचने से पहले ही अफगान सेनाओं ने बरनाला में लूटमार मचा दी तथा चार लाख रुपए कर के रूप में प्राप्त करके वापिस चल दिए।[2]

---

[1]करम सिंह, 188–198।

[2]खजाना-ए-अमीरा, 107; तारीख-ए-मुजफ्फरी, 101 क; तारीख-ए-पटियाला, 55–57।

8. आलासिंह द्वारा दुर्रानी से शाही-फरमान की प्राप्ति, 21 मार्च—1761

पानीपत की लड़ाई के बाद अपने पूर्णाधिकारी नजीब-उद्-दौला को दिल्ली का तानाशाह बना कर अहमदशाह अपने घर की ओर लौट चला। उसके सरहिंद पहुँचने पर आलासिंह ने उसके सम्मुख उपस्थित होकर उसे बहुमूल्य उपहार भेंट किए तथा पाँच लाख रुपए प्रतिवर्ष कर के रूप में देने की भी प्रतिज्ञा की। आलासिंह का शानदार स्वागत हुआ तथा उसे सम्मानसूचक वस्त्रों से अलंकृत किया गया। इसके साथ ही आलासिंह की इच्छा पूर्ण करने के लिए 21 मार्च, 1761 को सरहिंद के सूबेदार के नाम अब्दाली के वजीर शाह वली खाँ के हस्ताक्षरों तथा मोहर के अधीन एक आज्ञा भी जारी की गई। इसके अनुसार उससे कहा गया कि वह आलासिंह के अधीन प्रदेशों को अपने अधिकार क्षेत्र के बाहर समझे तथा आलासिंह के दोस्तों को अपना दोस्त तथा उसके दुश्मनों को अपना दुश्मन माने। इसके साथ-साथ यह भी कहा गया कि जो कोई भी आलासिंह के प्रति वैरभाव रखेगा उसे दुर्रानी के साम्राज्य का शत्रु माना जाएगा। सरहिंद के मुखिए से भी किसी प्रकार के संघर्ष से बचने तथा सिख मुखिए से कर वसूल करने के लिए मिर्ज़ा मुहम्मद तक़ी को नियुक्त कर दिया गया।

भारत से अब्दाली के वापिस लौट जाने के बाद दल-खालसा ने आलासिंह के आचरण के विरुद्ध अपना रोष प्रकट किया। यह कहा गया कि उसने मुसलमान के सम्मुख झुक कर दसवें गुरु के धर्मादेशों का उल्लंघन किया है। जस्सा सिंह अहलूवालिया ने जो कि मालवा के मुखिए का मित्र था, आलासिंह पर जुर्माना लगा कर दल को शांत कर दिया।[1]

---

[1]करम सिंह 209-11; तारीख-ए-पटियाला, 55-57; देखें एस० पी० डी० xxi, 202, इस दस्तावेज से पता चलता है कि आलासिंह की संपदा में कुल मिला कर 726 नगर तथा गाँव थे। करम सिंह 212-213।

आठवाँ अध्याय

सिखों का लाहौर पर अधिकार तथा सिक्के चलाना

1. दुर्रानी-मराठा संघर्ष, अक्तूबर, 1759—जनवरी, 1761

इस पुस्तक का विषय दुर्रानी-मराठा संघर्ष के ब्यौरे से संबंधित नहीं है। वह तो सामान्य भारतीय इतिहास का विषय है। इसलिए हम अपने को केवल उन्हीं बातों तक सीमित रखेंगे जिनके कारण दुर्रानी भारत में डेढ़ साल तक रहने पर भी पंजाब की गतिविधियों की ओर ध्यान न दे सका। यही कारण था जिससे सिखों को बिना किसी भय के मनमानी करने का मौका मिल गया। हमारा इस युद्ध से भी संबंध है, क्योंकि इसने पंजाब को अपने अधीन रखने की मराठों की महत्वाकांक्षाओं पर पानी फेर दिया।[1]

मराठों द्वारा पंजाब से अपने पुत्र तैमूरशाह के मार भगाए जाने के कारण अहमद शाह दुर्रानी बहुत क्रोधित हो उठा था तथा उसने मराठा अभिशाप को सदैव के लिए समाप्त कर देने का निश्चय कर लिया था।[2] अपने देश में उसने विशाल पैमाने पर तैयारियाँ कीं तथा भारत में उसके परम मित्र नजीब-उद्-दौला ने उसके काम में मदद की।

अपने अपार दल-बल[3] को लेकर सन् 1759 की पतझड़ के प्रारंभ में ही अहमदशाह दुर्रानी भारत की ओर चल पड़ा। इन विशाल सेनाओं के आगे बढ़ने पर मराठे बिना तलवार उठाए ही पंजाब से भाग खड़े हुए। उसने अपने वजीर शाह वली खाँ के भतीजे ज़ारची करीम दाद खाँ को लाहौर का कार्यभार सौंप दिया। उसे हिदायत दी गई कि वह उसे अनाज, हथियार तथा गोला-बारूद आदि भेजता रहे। कांगड़ा के राजा घमंड चंद को जालंधर दोआब तथा सतलज और रावी के बीच के पहाड़ी प्रदेश का सूबेदार नियुक्त किया गया।[4]

---

[1]विस्तार तथा सजीव वर्णन के लिए देखें, सरकार, iii, पृ० 199-372।

[2]नूरूद्दीन।

[3]तिथि, 1-11-1759 के एक मराठी पत्र के अनुसार यह संख्या 55,000 थी। राजवडे, i; 139, इमाद-उस-सादत में यह संख्या 60,000 दी गई है, 116क; एस० पी० डी०, xxvii, 146 में भी यही संख्या दी गई है।

[4]अली-उद्-दीन, 119ख-120क; इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इंडिया, 1908, पंजाब, i, 357।

अहमदशाह 27 नवंबर को सरहिंद, 20 दिसंबर को अंबाला तथा 24 को तरौरी जा पहुंचा। इस स्थान पर एक मराठा दस्ते से उसकी मुठभेड़ हो गई। मराठे पराजित हुए तथा उनके 400 आदमी खेत रहे। उसके बाद अहमदशाह ने यमुना पार की तथा सहारनपुर पर नजीब खाँ भी उससे आ मिला। दिल्ली के समीप पहुँचने पर दूसरे रोहिल्ला सरदारों के आ मिलने से दुर्रानी की शक्ति और भी बढ़ गई। इन सेनाओं ने एक बार फिर दिल्ली के समीप स्थित बरारी घाट से यमुना पार की। यहाँ एक बार फिर दत्ताजी सिंधिया के अधीन मराठा सेनाओं से उसकी एक मुठभेड़ हो गई। इसमें दत्ताजी खेत रहा। अब्दाली की सेनाओं ने मराठों का पीछा जारी रखा तथा 4 मार्च को सिकंदराबाद के स्थान पर उन्हें मराठा रिसाले के योग्यतम नेता मल्हर राव के अधीन एक मराठा दस्ते को खदेड़ने में सफलता मिली। अब अब्दाली ने कोइल परगना (आधुनिक अलीगढ़) में खेमे गाड़ दिए तथा दक्षिण से आनेवाली मराठा सेनाओं की बाट देखने लगा। यहाँ पर अवध के शुजा-उद्-दौला को भी अपनी ओर करने में अहमदशाह को सफलता मिल गई। वह अपने 30,000 घुड़सवारों तथा 10,000 पैदलों सहित आकर उससे मिल गया।

इन घटनाओं के बारे में पता चलने पर पूना दरबार ने उत्तर में अपनी सर्वोपरिता को बनाए रखने के लिए विशाल स्तर पर तैयारियाँ कीं। मई माह के प्रारंभ में विशाल मराठा सेनाएँ सदाशिव भाऊ के नेतृत्व में उत्तर की ओर बढ़ चलीं। तीस वर्ष का युवक भाऊ उस समय तक युद्धकला तथा राजमर्मज्ञता में बहुत नाम कमा चुका था। परंतु उसे आरंभ से ही अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उसे मुसलमान शक्तियों के दुर्दम्य संगठन के विरुद्ध लड़ना था। मराठों के विनाश के लिए भारत के समस्त मुसलमान तथा अफ़गान सरदार अहमदशाह अब्दाली से जा मिले थे। दूसरी ओर भाऊ ने सब हिंदुओं को अपने झंडे के नीचे लाने का कोई प्रयत्न नहीं किया। एक भी राजपूत राजा उससे आकर नहीं मिला और उसने सिखों से सहायता भी नहीं माँगी।[1] यही नहीं, उस समय के सबसे अधिक बुद्धिमान तथा चतुर राजनयज्ञ सूरजमल ने भी उसकी ओर से हाथ खींच लिए। इसके साथ-साथ गंगा-यमुना दोआब के हिंदू ज़मींदार भी मराठों के विरुद्ध उठ खड़े हुए। भाऊ अपने घर से दूर, उस विरोधी

---

[1]एस० पी०-डी०, xxi, 197 में दिए गए दिनांक 27-11-1760 के एक पत्र में लिखा है कि कुंजपुरा को अपने अधीन करने के बाद सिखों को अपनी ओर करने का विचार एक बार भाऊ के मन में उठा था, परंतु अब्दाली द्वारा अचानक बाघपत के स्थान से यमुना पार करने के समाचार ने इस विचार को समाप्त कर दिया।

जनसमुदाय के बीच, जो मराठों को अपना शत्रु समझता था, युद्ध कर रहा था। मराठों के साथ-साथ रहनेवाला बेशुमार माल-असबाब, भारी तोपखाना तथा सरदारों और सैनिकों के परिवार भी उनके मार्ग में एक बड़ी बाधा थे। नदियों को पार करने के लिए नावों की कमी ने भी उनके मार्ग में अनेक बाधाएँ डालीं। इन सबसे बढ़कर जो बात थी वह यह थी कि इस अभियान के बारे में भाऊ को विस्तार सहित पूरी-पूरी जानकारी भी नहीं थी। उसे लगभग एक दिन की सूचना पर ही इस अभियान पर चल देना पड़ा था। इससे पहले वह कभी भी उत्तर की ओर नहीं गया था तथा उसे वहाँ के प्रदेशों और वहाँ के लोगों के बारे में कुछ भी जानकारी नहीं थी। यही नहीं उस घमंडी तथा गर्म-मिजाज़ नवयुवक भाऊ ने अपने अनुभवी सरदारों की मंत्रणाओं की ओर भी कोई ध्यान नहीं दिया तथा उनका खुलेआम अपमान तक किया।[1]

मई 1760 के अंत में भाऊ ने चंबल नदी पार की तथा थोड़े दिनों बाद ही वह यमुना के तट पर जा पहुँचा। वर्षा के जल्दी शुरू हो जाने के कारण उस समय यमुना में बाढ़ आई हुई थी। वह चाहता था कि नदी पार करके अब्दाली की सेनाओं पर टूट पड़े। उस समय पहाड़ों पर रहने वाले सैनिक उष्णतम मास की तपती धूप से व्याकुल थे, परंतु नावों की कमी के कारण भाऊ अपनी इच्छा पूरी न कर सका। घाट की खोज में व्यर्थ एक माह गँवा कर भाऊ दिल्ली की ओर चल पड़ा। बाईस जुलाई को शहर का पतन हो गया तथा 2 अगस्त को दुर्ग के लोगों ने जो कि उस समय एक दुर्रानी अधिकारी के कब्ज़े में था, आत्मसमर्पण कर दिया। इस सफलता ने भाऊ का सिर फेर दिया तथा शत्रु द्वारा भेजे गए सब शांति प्रस्तावों को उसने असंभव शर्तें पेश करके ठुकरा दिया। परंतु दिल्ली की विजय फलहीन सिद्ध हुई। भोजन, चारा और धन इनमें से कोई भी चीज़ उन्हें वहाँ से न मिल सकी। उसके सैनिक थोड़े-से चावलों पर और सरदार चनों पर जीवन निर्वाह कर रहे थे। भाऊ ने पेशवा से सहायता के लिए अनेक बार याचनाएँ कीं परंतु उसका भी कुछ परिणाम न हुआ। इसके बाद वह उत्तर की ओर बढ़ा तथा 17 अक्तूबर को उसने कुंजपुरा पर अधिकार कर लिया। इस स्थान से खाने-पीने के सामान का भंडार तथा बहुत-सा लूट का माल उसके हाथ लगा।

यमुना के किनारों पर स्थित घाटों को भली-भाँति सुरक्षित न करके भाऊ ने सबसे बड़ी गलती की। दिल्ली तथा कुंजपुरा पर मराठों का अधिकार

---

[1]सरकार ii, 257, मल्हार का क्रोध में आकर यह कहना कि यदि शत्रु ने इनको नीचा नहीं दिखाया तो पूना के ये घमंडी ब्राह्मण उससे तथा मराठा सरदारों से अपने गंदे कपड़े धुलवाएँगे एक ऐतिहासिक सत्य है।

हो जाने के कारण अब्दाली बहुत क्रोधित हो उठा था। उसने 23 तथा 24 अक्तूबर को बाघपत के स्थान से यमुना पार की तथा पानीपत में आ टिका। भाऊ भी पीछे हट आया तथा उसी नगर के समीप उसने अपने शिविर डाल दिए।

ऐसा प्रतीत होता है कि संपूर्ण दृष्टि से दोनों विरोधी दलों की सैनिक-संख्या लगभग बराबर थी। यदि मराठों के पास उच्चकोटि का भारी तोपखाना था तो मुसलमानों के पास उच्चकोटि की पैदल-सेना, ऊँट-बंदूकची तथा सेनापति थे। दोनों विरोधी सेनाएँ एक-दूसरे के बिल्कुल समीप तथा आमने-सामने लगभग तीन माह तक शिविर डाले पड़ी रहीं। इस समय दोनों के मध्य कई छुटपुट हमले तथा इक्की-दुक्की लड़ाइयाँ भी चलती रहीं। उनमें से प्रत्येक एक-दूसरे के रसद के सब मार्गों को बंद करने के प्रयत्न में लगा हुआ था। अंत में मराठों का सब ओर से संबंध काटने में दुर्रानी को सफलता मिल गई। भाऊ की सेना में खाने-पीने की वस्तुओं की अत्यधिक कमी पड़ गई। इसके कारण उसके शिविर में इतनी कठिनाई होने लगी कि भाऊ को इस अभियान के अंतिम संघर्ष के लिए विवश होकर तैयार होना पड़ा। यह लड़ाई 14 जनवरी, 1761 को हुई। इसमें मराठों की पराजय हुई और बहुत-से मराठे कत्ल कर दिए गए।

2. लड़ाई के परिणाम

पानीपत की उस ऐतिहासिक युद्ध भूमि में मराठों को राजनीतिक तथा नैतिक दृष्टि से बहुत अधिक हानि उठानी पड़ी। परंतु यह लड़ाई उन्हें कुचलने में सफल न हो सकी। उनकी नई पीढ़ी ने उस हानि को पूरा करने के लिए प्रयत्न किया और इसमें उन्हें बहुत सफलता भी मिली। अपनी पराजय के बाद दस वर्षों में ही वे पर्याप्त शक्तिशाली हो गए तथा एक बार फिर दिल्ली की ओर बढ़े और अंत में शाही-तख्त पर अपना मनोनीत व्यक्ति बैठाने में उन्हें सफलता मिली।

दूसरी ओर विजयी अफ़गानों के हाथ कुछ भी न लग सका। पानीपत की लड़ाई के बाद अफ़गान सैनिकों ने घर जाने के लिए विद्रोह कर दिया। डेढ़ वर्ष की उस परेशान करने वाली लड़ाई के कारण अहमदशाह भी थक चुका था। यही नहीं उसका, अपने हिंदुस्तानी मित्रों पर से, विश्वास उठता जा रहा था। इन सब बातों का फल यह हुआ कि वह मार्च, 1761 में भारत छोड़ कर अफ़गानिस्तान लौट गया।

एक दृष्टि से इस लड़ाई के परिणाम बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध हुए। अठारहवीं सदी के मध्य में प्रगतिशील मराठों तथा पतनोन्मुख मुगलों में प्रभुसत्ता के लिए बड़ा भीषण संघर्ष चल रहा था। इससे दोनों ही दलों की शक्ति तथा साधनों पर

बरा प्रभाव पड़ा और इससे दो अन्य शक्तियों के लिए मार्ग साफ़ हो गया। इनमें से एक पूर्व में तथा दूसरी पश्चिम में बड़े धैर्य के साथ शक्ति अर्जित करती जा रही थी। इस लड़ाई के चार वर्ष बाद ही क्लाइव ने बंगाल की 'दीवानी' के अधिकार प्राप्त कर लिए। फलतः अँग्रेज़ उस प्रांत के व्यापारिक रूप में स्वामी बन बैठे। दूसरी ओर लगभग इसी समय सिखों ने प्रायः संपूर्ण पंजाब अपने अधिकार में ले लिया। पानीपत की उस घटना के दस वर्ष पश्चात् जब मराठे दिल्ली वापिस आए तो उन्होंने देखा कि पाँच नदियों के प्रदेश में सिखों ने अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली है तथा उनको बाहर निकालना आसान नहीं रहा है।

दूसरी ओर मराठों के पंजाब से चले जाने के बाद अब सिखों के सामने, संघर्ष करने के लिए केवल दुर्रानी ही रह गया। युद्धपिपासा ने उनको वहशी बना दिया था। अपनी राष्ट्रीय भावना से प्रोत्साहित होकर सिखों ने सरलता से उन्हें मार भगाया। इसका फल यह हुआ कि जो लहर अभी तक बड़ी तेज़ी से इस ओर बह रही थी वह अब उतनी ही शीघ्रता से पीछे हट गई।

3. सिखों द्वारा पंजाब में अनेक दुर्गों का निर्माण

जारची करीम दाद खाँ लाहौर में लगभग चार माह (नवंबर, 1759 से मार्च, 1760) तक रहा। कुछ तो अपने उग्र स्वभाव के कारण तथा कुछ अब्दाली के नाम के आतंक के बलबूते पर, वह देश में दिखाऊ शांति तथा व्यवस्था बनाए रखने में सफल रहा। सिख यहाँ वहाँ बिखरे पड़े थे तथा दूरवर्ती स्थानों में बिना किसी रोक-टोक के लूटमार की कार्यवाइयों में व्यस्त थे।

मार्च, 1760 में अहमदशाह अब्दाली ने अपने योग्य सरदारों, जारची करीम दाद तथा जाइन खाँ को अपने पास बुला लिया तथा पंजाब का कार्य-भार सरबुलंद खाँ को सौंप दिया। इस व्यक्ति का चुनाव ठीक नहीं था। क्योंकि उसमें साहस और नया काम करने के प्रति रुचि की कमी थी। सिखों से भयभीत होने के कारण वह मार्ग में रुका रहा तथा अंत में लाहौर के पूर्व 70 मील की दूरी पर स्थित जालंधर में ठहर गया। इसी स्थान को उसने अपना केंद्र बना लिया। उसने अपने जैसे ही एक और अयोग्य अधिकारी सादत यार खाँ को प्रांतीय राजधानी का कार्य-भार सौंप दिया। रुस्तम खाँ ने छहर महाल का प्रशासन अपने हाथ में ले लिया तथा सरहिंद प्रांत का शासन, समद खाँ ने संभाला।[1]

---

[1]दिल्ली क्रानिकल, पृ० 172, तिथि 23 मार्च, 1760, ["जीवन खाँ उर्फ बुलंद खाँ शाह (अलीगढ़) से आया तथा (दिल्ली की) हवेली में चला गया। लोगों का कहना था कि उसे लाहौर का सूबेदार बना दिया गया है तथा सरहिंद का फौजदार समद खाँ भी उसके साथ गया

अहमदशाह भारत में था, परंतु अपने आंतरिक प्रशासन में फैली अव्यवस्था की उसे तनिक भी चिंता नहीं थी। उस समय उसका ध्यान अधिक महत्व के मामलों की ओर लगा हुआ था। पंजाब में उसके अधिकारी, सेनानायकों से अधिक कुछ न थे। वे अपने नागरिक तथा सैनिक प्रशासन के लिए तथा अहमद दुर्रानी की सहायता के लिए साधन जुटाने में और मालगुज़ारी तथा अन्य धनराशियाँ वसूल करने की ओर ही अपना सारा ध्यान लगा रहे थे।

पंजाब पर अफ़गानों के अपूर्ण नियंत्रण तथा उनके निर्बल सैनिक-साधनों के कारण सिख बहुत प्रसन्न थे। सिख नेताओं ने इस अवसर का स्वागत किया तथा संपूर्ण प्रांत में गारे मिट्टी के गढ़ तथा गढ़ियाँ बनाना प्रारंभ कर दिया। आमतौर से उन्होंने ये गढ़ उपजाऊ भूखंडों के केंद्रों तथा प्रमुख मार्गों पर बनाए। विशेष रूप से वे उन स्थानों में बनाए गए जहाँ सिखों की आबादी थी। आपत् काल में वे वहाँ आसानी से इकट्ठे हो सकते थे। पास की शत्रुजातियों को डराने में भी इनसे उन्हें सहायता मिलती थी।[1]

4. रुस्तम खाँ तथा मिसकिन की सिखों द्वारा गिरफ्तारी, लगभग अक्तूबर, 1760

जिस बेरहमी से सिखों ने प्रांत के अनेक ज़िलों को लूटा तथा जो अव्यवस्था उन्होंने फैलाई उसका बहुत स्पष्ट वर्णन समकालीन लेखक मिसकिन की पुस्तक में मिलता है। वह लेखक खुद भी स्यालकोट नगर के पास के गाँव पर उनके द्वारा किए गए एक आक्रमण में उनका शिकार हो गया था। छहर महाल का सूबेदार रुस्तम खाँ तथा उसका सहायक मिसकिन सिखों को दंड देने के लिए गए थे, परंतु वे उनके हाथों बंदी बन गए तथा जब तक सिखों को छुड़ाई में धन नहीं मिल गया, उन दोनों को रोके रखा गया। मिसकिन लिखता है :—"इसी बीच 150 घुड़-सवारों और पैदलों को लेकर छहर-महाल का सूबेदार सिखों से लड़ने के लिए अपने शहर (स्यालकोट) के बाहर आया। थोड़ी देर बाद जब मैंने यह सुना तो मैं भी अपना घोड़ा दौड़ाता हुआ दो कोस की दूरी पर जाकर उससे मिल गया। मैंने पूछा कि वह कहाँ जा रहा है। उसने उत्तर दिया कि नाक की सीध में। 6 कोस की दूरी पर एक गाँव में सिख (गाँव वालों से) लड़ रहे हैं। ज़मींदारों ने उसे सूचित किया था इसलिए वह उनको सज़ा देने के लिए उधर जा रहा है। मैं उसके साथ

है"] देखें अली-उद्-दीन, 120ख-121क,; शमशीर खालसा, 104; सोहन लाल, i, 149; मिसकिन, 215, 224।

[1]इन दुर्गों के ब्यौरे के लिए देखें, अहमद शाह, 889; अली-उद्-दीन, 122ख; हुगेल, 269; पंजाब चीफ्स, 305, 322, 386, 399, 426, 427, 431 तथा 441।

हो लिया। छह कोस का रास्ता तय करने पर हमने देखा कि उस गाँव पर 4,000 के करीब सिख छाए हुए हैं। इसी समय जब उन्होंने कुछ दूरी से हमें देखा तो वे गाँव छोड़ कर हमारी ओर तेज़ी से बढ़े। उस स्थान के पास ही एक टूटा-फूटा किला था। हम सबने उसी में शरण ली। लड़ाई शुरू हो गई। दोपहर की नमाज़ से लेकर आधी रात तक उन लोगों ने गाँव में मारकाट मचाए रखी।

"सारी रात हमने बड़ी फिक्र तथा द्विविधा में बिताई। सुबह होने पर मैंने देखा कि सिखों तथा ज़मींदारों के झुंड हमसे लड़ने के लिए भागे आ रहे हैं तथा प्रतिक्षण हमारे आदमी पीछे खदेड़े जा रहे हैं। उन्होंने बड़े ज़ोर से चिल्ला कर कहा, 'छहर-महाल के सूबेदार रुस्तम खाँ को हमारे हवाले कर दो।' लगभग डेढ़ घंटे तक हम भी उन पर गोलियों की बौछार करते रहे तथा उसके बाद हमारे पास गोला-बारूद की कमी हो गई। इस असहाय अवस्था में पड़ कर हमने किले पर से उन पर मिट्टी के ढेले, पत्थरों के टुकड़े, टूटे-फूटे मिट्टी के बर्तन तथा लकड़ी के कुंदे फेंके। जो कुछ हमारे हाथ लगा हमने उन पर दे मारा। दोपहर तक हम लोगों ने बड़ी बहादुरी तथा हिम्मत के साथ उन्हें रोके रखा तथा अपनी ओर न बढ़ने दिया। अंत में सिख कंगूरों पर चढ़ गए तथा दीवारें तोड़ने लगे।

"इस पर रुस्तम खाँ, मैं तथा छः और व्यक्ति अपनी-अपनी कमर में कमरबंध बाँधकर तथा तलवारें घुमाते हुए दरवाज़े के बाहर निकल आए। अचानक दरवाज़े के पास मेरा पैर फिसल गया तथा मैं गिर पड़ा। सिखों ने उसी जगह मुझे तत्काल बंदी बना लिया तथा कुछ ही कदमों की दूरी पर उन्होंने रुस्तम खाँ को भी बंदी बना लिया। हमारा एक साथी अलाहवर्दी बेग खेत रहा। उस समय तक सिखों तथा ज़मींदारों की संख्या 20,000 तक जा पहुँची थी। वे हमें उसी गाँव में ले आए जहाँ वे पहले लड़ रहे थे। रात होने पर उन्होंने मुझ से (रिहाई के लिए) एक लाख रुपयों की माँग की। आधी रात तक बातचीत चलती रही तथा अंत में 6,000 रुपयों में सौदा तय हो गया। यह समझौता हुआ कि मैं दूसरे दिन अपने गाँव जाऊँ तथा जम्मू के (किसी साहूकार) नाम उन्हें एक हुंडी दूँ। पैसा मिल जाने के बाद वे लोग मुझे जम्मू में सही-सलामत छोड़ देंगे।

"फलस्वरूप, अगले दिन सुबह-सुबह दो या तीन सिख मेरे स्थान की ओर चल पड़े। लगभग 100 दूसरे सिख भी उसी दिशा की ओर जा रहे थे। वे दो या तीन कोस तक तो मुझे घोड़े पर बैठा कर ले गए तथा बाद में उन्होंने मुझे पैदल चलने के लिए बाध्य किया। मैं सात कोस चला। मेरे पैर दुःख रहे थे तथा मैं थकावट महसूस कर रहा था। इसके बाद दो या तीन कोस की दूरी से पसरूर नगर दिखाई पड़ा। उस समय मेरे घोड़े पर बैठे सिख ने अपने गुरु का नाम लेते हुए कहा—'ओ गुरु, जो कोई सुबह-सुबह तेरा नाम लेता है, उसे किसी काम में निराशा का मुंह वहीं देखना पड़ता।' यह प्रार्थना सुन कर मैं रोने लगा। मैंने भी अल्लाह

को याद किया तथा कहा, 'हे रक्षक, मैं तेरा अदना बंदा हूँ । इस वक्त मेरी मदद कर और इन सिखों के हाथों से मुझे छुड़ा ।' यह प्रार्थना करते-करते ही मेरी निगाह सामने के ऊँचे किले पर पड़ी । उस स्थान का ज़मींदार 40 या 50 हथियारबंद सिपाहियों (बरकंदाज़) के साथ सिखों पर टूट पड़ा । उन्हें हरा कर उनकी लूट का सारा माल उनसे छीन लिया । वह मुझे भी किले में लेता गया । शाम की नमाज़ के समय जो सिख मुझे लेकर चल रहा था उसने ज़मींदार को एक संदेश भेजा कि जिस मुग़ल को उसने पकड़ रखा है उसे सिखों का सरदार 6,000 रुपए लेकर छोड़ेगा तथा वह उस राशि के लिए उत्तरदायी होगा । यह पता लगने पर मुझे कड़ी देखरेख में एक गुंबद में रख दिया गया ।"[1]

दस दिन तक मिसकिन कारागार में रहा । उसे गरीबी तथा अनेक यातनाएँ सहन करनी पड़ीं । किले का ज़मींदार उसकी हैसियत के बारे में कुछ नहीं जानता था, इसलिए उसने उसे एक मामूली मुग़ल सैनिक समझ लिया तथा उससे 200 रुपए लेकर उसे स्वतंत्र कर दिया । परंतु रुस्तम खाँ को बड़ी मुसीबत का सामना करना पड़ा । अंत में उससे 22,000 रुपए बलपूर्वक वसूल करके उसे छोड़ दिया गया ।[2]

5. सिखों का लाहौर पर आक्रमण, परंतु 30,000 रुपए लेकर उसे छोड़ देना, नवंबर, 1760

कुछ महीनों तक सादतयार खाँ लाहौर का कार्यभार संभाले रहा, परंतु उसे प्रत्येक दिन यह प्रतीत होता था कि शासन की बागडोर उसके हाथों से खिसक रही है । सिखों पर नियंत्रण नहीं किया जा सकता था तथा दूसरे ज़मींदार या तो उनके साथ सहयोग कर रहे थे या फिर उन्होंने उनकी अधीनता स्वीकार कर ली थी । सरकार पूरी तरह से असहाय तथा असमर्थ थी । इस प्रकार पंजाब में अफ़गान प्रशासन एक बार फिर नष्ट हो गया ।

सादतयार का इस्तीफा अकर्मण्य सरबुलंद खाँ को जालंधर से नहीं हिला सका और उसने प्रांत का कार्यभार अपने हाथों में नहीं लिया । अब उसने एक गैर-मुसलमान को आज़माने की सोची । लाहौर के विख्यात साहूकार सूरतसिंह को यह पद संभालने के लिए कहा गया । यह व्यक्ति स्थिति को भली-भाँति पहचानता था तथा उसने बड़ी नरमी से अपने को सिखों के साथ झगड़े में उलझने से इंकार कर दिया । उस पर दबाव डाला गया कि वह तब तक सरकार चलाए जब तक कि कोई और उचित व्यक्ति उस पद क लिए न मिल जाए । उसने ऐसा ही किया

---

[1]मिसकिन, 218-21 ।

[2]वही, 222-4 ।

तथा बाद म मीर मुहम्मद खाँ को प्रशासन का कार्यभार सौंप दिया गया । उसे सूबेदार नियुक्त किया ही गया था कि उसे सिखों के एक बहुत विशाल दल का सामना करने के लिए तैयार होना पड़ा । ये लोग नवंबर, 1760 के प्रारंभ में दीवाली मनाने के लिए अमृतसर में इकट्ठे हुए थे तथा वहाँ पर उन्होंने लाहौर पर आक्रमण करने के लिए एक गुरुमत पारित किया था ।

लगभग 10,000 सिख नगर पर टूट पड़े । मीर मुहम्मद ने दरवाज़े बंद करवा दिए तथा खुद सुरक्षा के लिए दुर्ग में चला गया । सिखों ने नगर के सब रास्ते काट दिए, आस-पास की बस्तियों को लूट लिया । गेहूँ, चने तथा सरसों की खड़ी फ़सलों को तबाह कर डाला । घरों से शहतीरों को जुदा करके उनमें आग लगा दी गई । अब उन्होंने नगर की दीवारों को तोड़ कर अंदर घुसने का प्रयत्न किया । इससे नगर में आतंक छा गया तथा प्रमुख नागरिकों ने सूबेदार पर दबाव डाला कि वह अहमदशाह अब्दाली के राजस्व में से उनके 'ग्रंथ' के 'कढ़ा' प्रसाद के लिए 30,000 रुपए की भेंट सिखों को दे । यही किया गया और सिख पीछे हट आए ।[1]

6. वापिस लौटते दुर्रानी का सिखों द्वारा तंग किया जाना, अप्रैल-मई 1761

दुर्रानी ने जब अप्रैल के प्रारंभ में सतलज पार की तो सिखों ने उसके साथ छेड़-छाड़ शुरू कर दी । दिल्ली तथा दोआब की अपार लूट से लदे होने के कारण वह उनकी ओर ध्यान नहीं दे सकता था । प्रत्येक रात्रि को अपने शिविर के चारों ओर थोड़ी-बहुत घेराबंदी करके वह अपने को बचा रहा था । ऐसा कहा जाता है कि गोंडवाल के घाट पर सिखों ने बहुत से बंदियों को आक्रांता से छुड़ा लिया तथा बाद में उन्हें अपने-अपने घरों को भेज दिया गया ।[2]

लाहौर से अहमदशाह ने सिखों पर कुछ हमले किए परंतु उनकी हलचलें कम न हो पाईं । जो थोड़े-बहुत सिख बंदी बनाए जा सके उन्हें विविध प्रकार की यातनाएँ देकर जान से मार डाला गया । परंतु 'खालसा' के लिए इस प्रकार की मौतें कुछ-एक चीटियों के कुचले जाने से बढ़कर महत्व नहीं रखती थीं ।[3]

---

[1]अली-उद्-दीन, 120 क–121 ख; देखें, सोहन लाल, i, 150; शमशीर खालसा, 104–115; कन्हैया लाल द्वारा रचित तारीख-ए-पंजाब, 83 ।

[2]ब्राउनी, ii, 22; ज्ञान सिंह 759–60; शमशीर खालसा, 105 ; सिख मारटीयर्स, 184 ।

[3]गणेश दास, 199; देखें, रतन सिंह 430; ज्ञान सिंह, 738–42; शमशीर खालसा, 98 ।

7. दुर्रानी द्वारा किए गए प्रशासनिक प्रबंध, मई, 1761

पंजाब छोड़ने से पहले अहमदशाह दुर्रानी ने मुल्तान की सूबेदारी सरबुलंद खाँ तथा लाहौर की ख्वाजा अबेद को सौंप दी। कांगड़ा के राजा घमंड चंद कटौच को जालंधर दोआब की सूबेदारी सौंपी गई तथा सादत खाँ और सादिक खाँ अफरीदी, जो कि दुर्रानी फौजदार थे, उसके नायक नियुक्त किए गए। सरहिंद का प्रांत ज़ाइन खाँ मोहमंड की देखरेख में छोड़ दिया गया।[1] उन सब को सिखों को दंडित करने के स्पष्ट आदेश दिए गए। ऐसा प्रतीत होता है कि इसी बात को ध्यान में रखते हुए अब्दाली ने लाहौर तथा जालंधर प्रांतों के लिए दो स्थानीय व्यक्तियों को सूबेदार के रूप में चुना। ये दोनों ही प्रदेश सिख धर्म के गढ़ थे।

इधर-उधर घूम रहे सिख जत्थों ने वापस जा रही अफ़गान सेना को तब तक चैन न लेने दिया जब तक कि वे सिंधु के पार न चले गए। वे "अफ़गान सेना के रास्ते के आस-पास मंडराते रहते, उनकी रसद के आने-जाने में रुकावट डालते तथा जो कुछ भी हानि पहुँचा सकते, पहुँचाते परंतु कभी सीधा हमला न करते"।[2]

8. सिखों द्वारा संपूर्ण पंजाब की तबाही

दुर्रानी को सिंधु पर छोड़ कर लगभग 40,000 सिख चिनाब के इस ओर आ गए तथा उस प्रदेश को चारों ओर से लूटने लगे। लाहौर का भूतपूर्व सूबेदार तथा उस समय छहर-महाल का मालिक नवाब ख्वाजा मिर्ज़ा खाँ 1,000 घुड़-सवारों तथा पैदलों को लेकर सिखों का सामना करने के लिए आगे बढ़ा परंतु उसकी सेना का तत्काल सफ़ाया करके उसका सर धड़ से अलग कर दिया गया।[3]

इस विजय से उत्साहित होकर वे और आगे बढ़े तथा जालंधर दोआब में घुस गए। उस स्थान के फौजदार सादत खाँ तथा सादिक खाँ अफरीदी हार गए

---

[1]"अपने अधिकार-क्षेत्रों की सुरक्षा के लिए घमंड चंद ने 4,000 व्यक्तियों की एक सेना तैयार की। इनमें अधिकतर रोहिल्ले, अफ़गान तथा राजपूत थे। ये सब दिल्ली तथा अफ़गानों की सेनाओं में से आए थे। उन्हें खूब वेतन दिया गया। प्रत्येक पैदल को 5 रुपए तथा प्रत्येक घुड़सवार को 20 रुपए प्रतिमाह के हिसाब से वेतन दिया जाता था। ट्रेवल्स ऑफ मूरक्रोफ्ट एंड ट्रेबेक, i, 127; खुशवक्त राय, 94।

[2]राजाज आफ दी पंजाब, 230; देखें फारेस्टर, i, 318; बख्तमल, 96-7; सोहन लाल, i, 153; ब्राउनी, ii, 22।

[3]मिसकिन, 237।

तथा उनको वहाँ से मार भगाया गया।[1] अब सरहिंद भी सामने ही दिखाई पड़ रहा था। अपनी हाल की विजयों से उत्साहित उन लोगों ने उसे भी छोड़ना उचित न समझा। फलस्वरूप उन्होंने लड़ाई की एक रूपरेखा तैयार की तथा सरहिंद की ओर बढ़े। उस समय ज़ाइन खाँ प्रशासनिक दौरे पर बाहर गया हुआ था परंतु सिखों के आने की बात सुन कर वह शीघ्रता से अपनी राजधानी की ओर लौटा। जब सिखों को इस बात का पता चला तो वे जस्सासिंह अहलूवालिया के नेतृत्व में शहर पर अचानक टूट पड़े। ज़ाइन खाँ के नायक को उन्होंने पराजित कर दिया तथा उस दुर्भाग्यपूर्ण नगर में तबाही मचा दी। इस नगर के प्रति उनके क्रोध का कोई ठिकाना न रहा। परंतु उन्हें नगर के एक ही भाग को लूटने में सफलता मिली क्योंकि मलेरकोटला के शासक भीखन खाँ ने शहर में उनका डट कर मुकाबला किया। इस समय तक ज़ाइन खाँ भी आ पहुँचा था। अतः सिख नगर छोड़ कर एकदम भाग गए।[2]

अफ़गान सरदार भीखन खाँ से सिख बहुत नाराज़ हो गए थे क्योंकि सरहिंद की उनकी लूट में वह उनके बीच आ खड़ा हुआ था। उन्होंने उसे दंडित करने का निश्चय किया तथा अचानक मलेरकोटला की ओर मुड़ पड़े। उस समय वह नगर बिल्कुल अरक्षित पड़ा था। वह नगर वहाँ से तीस मील की दूरी पर था। उन्होंने एक दिन में ही वह रास्ता तय कर लिया तथा उस स्थान के निवासियों पर अचानक धावा बोल दिया। उन्होंने नगर को तत्काल घेर लिया तथा उसकी रसद बंद कर दी। आस-पास की बस्तियों को जला कर राख कर दिया गया तथा नगर के बाहरी भागों को पूरी तरह लूट लिया गया। किले के लोगों ने भी शीघ्र ही आत्म-समर्पण कर दिया। शहर को पूरी तरह लूट लिया गया।[3]

इन मुखियों के पराभव के बाद लोगों के जान-माल की बिल्कुल सुरक्षा न रही। पंजाब के मैदानों की सब सड़कें बंद हो गईं तथा यात्री और व्यापारी सिवालिक की निचली पहाड़ियों में जानेवाले दुर्गम तथा कठिनाइयों से भरे किंतु सुरक्षित, पहाड़ी रास्तों से चलने लगे।[4]

---

[1]"दूध की मक्खी की तरह उन्हें निकाल बाहर किया गया" वही।

[2]ब्राउनी, ii, 23; बख्तमल, 97; अहमद शाह, 893; खालसा, 110।

[3]बख्तमल, 97; शमशीर खालसा, 100; ब्राउनी, ii, 23।

[4]मिसकिन जो कि जम्मू से सरहिंद की यात्रा कर रहा था सरल मैदानी मार्ग से जाने का साहस न कर पाया। सिखों द्वारा फैलाई गई अशांति के कारण वह मार्ग बंद हो गया था। इसीलिए वह शाहपुर, नूरपुर,

9. अब्दाली के सिपहसालार नूर-उद्-दीन की सिखों के हाथों पराजय, अगस्त, 1761 के लगभग

दिल्ली से अपनी वापसी के समय पंजाब में जो परेशानी अहमदशाह अब्दाली को सिखों के कारण उठानी पड़ी थी उसे वह न तो भूला ही था और न ही उसने उसके लिए सिखों को माफ़ किया था। अपनी सैनिक कठिनाइयों तथा अपने सैनिकों के विद्रोही रवैये को देखते हुए उस समय वह सिखों के गुरिल्ला युद्ध के विरुद्ध कठोर कदम उठाने में समर्थ न हो सका। इसलिए उसका सारा ध्यान सुरक्षित लौटने में ही लग गया तथा बदला न ले सकने के कारण वह कुढ़ता हुआ अपने देश जा पहुँचा था।[1]

अपनी वापसी को सरल बनाए रखने की बात को ध्यान में रखते हुए अब्दाली ने अपना भारी भरकम असबाब लाहौर में ही छोड़ दिया था। जमज़मा[2] नामक एक अति भयंकर तोप भी इसी सामान में थी। यह तोप एक मन (82 पौंड) भारी गोले फेंक सकने में समर्थ थी तथा सब लोग उसे एक अद्भुत चीज़ मानते थे। अफ़गानिस्तान की सुरक्षित सीमाओं में पहुँचने के बाद उसने अपने एक विश्वस्त सिपहसालार नूर-उद्-दीन खाँ की देख-रेख में सिखों के विरुद्ध अभियान की एक योजना तैयार की। पंजाब के सब सूबेदारों को उसके साथ सहयोग करने के अनुदेश भी भेज दिए गए।

नूर-उद्-दीन ने (लगभग अगस्त के प्रारंभ में) भारत में प्रवेश किया तथा खुशब के स्थान से झेलम को पार करने के बाद उस नदी के बाएँ तट के साथ-

---

ज्वालामुखी, नदौन आदि होता हुआ पहाड़ी रास्तों से आया। उसे सरहिंद पहुँचने में सोलह दिन लग गए। (मिसकिन 237–8) बाईस साल बाद फोरेस्टर ने भी उसी मार्ग से यात्रा की।

[1]सोहन लाल, ii, 6।

[2]पानीपत में मराठों के साथ हुए संघर्ष के समय (अक्तूबर, 1760—जनवरी 1761) दुर्रानी के पास तोपखाने की शक्ति उनसे कम थी। इसलिए उसने पंजाब में अपने प्रतिनिधियों को बड़े गोले फेंक सकने वाली तोपों का निर्माण करने तथा उन्हें लड़ाई के मैदान में भेजने की आज्ञा दी। इसका परिणाम यह हुआ कि शाहवली जंग की आज्ञा के अनुसार एक जैसी दो तोपें ढाली गईं। हिंदू घरों से इकट्ठे किए गए तांबे तथा पीतल के बर्तनों के एक ढेर से उनके निर्माण के लिए धातु ली गई थी। जमज़मा के निर्माण की तिथि (1175 हिज़री) उस पर अंकित एक फ़ारसी की पंक्ति से ली गई है, (पयकार-ए-अज़दहा-ए-आतिश-बर)।

साथ आग बढ़ने लगा । उसकी सेनाओं ने सब प्रकार के हिंसात्मक कार्य किए तथा लट-खसोट की और दोआब के तीन सबसे बड़े शहरों को तबाह कर दिया ।[1]

चिनाब के तट पर पहुँचते ही नर-उद्-दीन को सूकरचाकिया की मिसल के सरदार चरतसिंह से संघर्ष करना पड़ा । चरतसिंह ने इस विपदा का अनुमान लगा लिया था तथा अफ़गान सिपहसालार की प्रगति रोकने के लिए वह पहले से ही अपने केंद्र गुजराँवाला से चल पड़ा था । दूसरे मिसलदार भी उसकी सहायता के लिए आ पहुँचे थे । सब का उद्देश्य एक बन चुका था । इस प्रकार अपने प्रशिक्षित आदमियों की सेना को रक्षात्मक स्थिति में रखकर वह अफ़गानों के आक्रमण की प्रतीक्षा करने लगा । लड़ाई काफ़ी देर तक चलती रही, परंतु अंत में अफ़गानों को पीछे खदेड़ दिया गया । अपनी विजय का लाभ उठा कर सिखों ने भगोड़ी सेना का बड़े ज़ोरशोर से पीछा किया ।[1]

लगभग 12,000 अफ़गान बेतहाशा भागते हुए अंत में स्यालकोट के किले में जा छिपे । सिखों ने तत्काल नगर पर घेरा डाल दिया । उनका यह घेरा इतना कठोर था कि किले में शीघ्र ही खाने-पीने की वस्तुओं की कमी पड़ गई तथा सैनिकों के भूखों मरने की नौबत आ पहुँची । इधर नूर-उद्-दीन ने जब देखा कि उस के आदमियों के हौसले पस्त हो चुके हैं तथा वे भूखे मर रहे हैं तो वह उनको उनके ही भाग्य पर छोड़ कर एक भिखारी का वेश धारण कर वहाँ से भाग खड़ा हुआ । गारद ने तत्काल आत्मसमर्पण कर दिया तथा उन लोगों को शांतिपूर्वक बाहर चले जाने दिया गया ।

उस समय के सबसे बड़े सैनिक द्वारा भली प्रकार से प्रशिक्षित सेना को पराजित करने के कारण चरतसिंह प्रमुख सिख सरदार माना जाने लगा । इसके साथ-साथ स्यालकोट की लूट में उसे एक अच्छा खासा तोपखाना तथा माल-असबाब भी हाथ लग गया । सब कुछ समाप्त करने के बाद चरतसिंह विजय के नगाड़े बजाता हुआ अपनी राजधानी गुजराँवाला लौट आया ।[3]

10. ख्वाजा अबेद की पराजय तथा गुजराँवाला से सिखों द्वारा उसका खदेड़ा जाना, सितंबर, 1761 के लगभग

अपनी हाल की विजयों के कारण सिख इतने साहसी हो चुके थे कि उन्होंने अब लाहौर के आस-पास भी धावे बोलने आरंभ कर दिए । "उनकी हिंसात्मक

---

[1]सोहन लाल, ii, 6; इंपीयिरल गज़ेटियर ऑफ इंडिया, पंजाब ii, 127; "भेड़ा तथा मैनी नष्ट होकर एक बार फिर बसे, परंतु चक सनू की नींवों से ही उसके स्थान का पता चलता है" (वही, 128) ।

[2]सोहन लाल, ii, 6 ।

[3]वही, ii, 7; बूटे शाह, 308 ख ।

कारंवाइयाँ इतनी अधिक बढ़ गई थीं कि प्रत्येक स्थान से लगान वसूल करना बंद हो गया। इन कठिनाइयों को देखते हुए ख्वाजा अबेद खाँ ने 9 से 10 हज़ार घुड़-सवारों तथा पैदलों की एक सेना भार्ती की। उसने साहिब सिंह कोबस्त के अधीन 4 या 5 सौ सिख भी भर्ती किए। इसके बाद उसने मक्का मनका गाँव के भीमसिंह तथा सरूप सिंह को, जो कि लाहौर के आस-पास ही मुख्यरूप से लूटमार किया करते थे, दंड देने की इच्छा प्रकट की। उसके बाद वह गुजराँवाला के सरदार चरतसिंह को दंडित करना चाहता था जिसने सराय कंबोह के समीप एक गढ़ी का निर्माण कर लिया था तथा वहीं से वह लूटमार के लिए निकलता था।[1]

ख्वाजा के दरबारियों तथा मित्रों ने उसे सलाह दी कि वह इस प्रकार के निरर्थक अभियान को अपने हाथों में न ले। परंतु इस अनुभवहीन व्यक्ति ने आक्रमण करने का आग्रह किया।

अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए उसने जालंधर दोआब से 1,000 सिख और भर्ती किए। यह संख्या उनके अतिरिक्त थी जो उस समय उसकी सेना में थी। अपने साथ दस-बारह तोपें लेकर वह लाहौर से चल पड़ा। शारकपुर तथा दूसरे स्थानों से लगान वसूल करता हुआ वह गुजराँवाला के निकट जा पहुँचा।[2]

शत्रु का सामना करने के लिए चरतसिंह तैयार था। उसने एक विशाल सेना एकत्रित करके अपनी गढ़ी को शक्तिशाली बना लिया था। पहले तो ख्वाजा ने अमीनाबाद पर किलेबंदी की परंतु बाद में उसने गुजराँवाला के सम्मुख एक सुरक्षित स्थान पर अपने डेरे डाल दिए। अपने पीछे एक शक्तिशाली गारद छोड़ कर चरतसिंह ने आगे बढ़ कर आक्रमण शुरू कर दिया। बाहरी चौकियों पर लड़ाई शुरू हो गई। सिखों के साहसिक शौर्य ने शत्रु को अपनी खाइयों में शरण लेने के लिए खदेड़ दिया।[3]

इसी बीच गुजराँवाला के दुर्ग के घेरे का समाचार दूर-दूर तक फैल चुका था। चरतसिंह की सहायता के लिए जस्सासिंह अहलूवालिया, हरीसिंह भंगी, झंडासिंह, गूजरसिंह, जयसिंह कन्हैया, लहना सिंह तथा सेमासिंह आदि सिख सरदार सेना तैयार करने में लग गए। वे गुजराँवाला आए तथा चार मील की दूरी पर ठहर गए।

---

[1]गुजराँवाला की यह गढ़ी सन् 1758 में बनाई गई थी। खुशवक्त राय, 188; अली-उद्-दीन, 122 ख-133 क।

[2]अहमद शाह 890; खुशवक्त राय ने उसकी संपूर्ण शक्ति को 20,000 कूता है, 188; मिसकिन 237; अली-उद्-दीन, 123 क।

[3]सोहन लाल, ii, 7।

इस तरह ख्वाजा अबेद खुद घिर गया। जिन सिखों को उसने अभी हाल ही में इस अवसर के लिए भरती किया था, अब उनके सहधर्मियों द्वारा फोड़ लिए गए। उन्होंने ख्वाजा का साथ छोड़ने का निश्चय कर लिया। ख्वाजा की सेना पर रात के समय सम्मिलित रूप से आक्रमण करने का सिखों ने प्रस्ताव रखा। इसका पता अबेद खाँ को लग गया। इस समाचार से वह इतना अधिक आतंकित हुआ कि वह रात्रि पड़ने पर बिना लड़े ही वहाँ से भाग खड़ा हुआ। सिख भी सूबेदार की गतिविधियों के प्रति अचेत नहीं थे। वे अचानक उसकी सेना पर टूट पड़े। सूबेदार की सेनाएँ सब कुछ लड़ाई के मैदान में ही छोड़ कर तितर-बितर हो गईं। विजेताओं के हाथ बहुत-सा लूट का माल लगा। इसमें अनेक छोटी-बड़ी तोपें, घोड़े, ऊँट, खाने-पीने का सामान, बरतन तथा शिविर का माल-असबाब था।[1]

ख्वाजा अबेद खाँ अपने कुछ अनुचरों के साथ रात्रि में जौकालियाँन भाग गया। इसके बाद वह चौधरी मियाँ खाँ छत्ता तथा इस्माइल खाँ खरल के 500 घुड़-सवारों तथा पैदलों के साथ शरकपुर पहुँचा। यहाँ से जमाल अरान तथा उस स्थान के दूसरे जमींदारों के साथ उसे लाहौर भेज दिया गया।

इस शानदार विजय ने चरतसिंह की शान में चार चाँद लगा दिए। उसके पास अब समय और साधन दोनों थे इसलिए उसने अपने स्थान का पुनर्निर्माण तथा किलेबंदी करनी आरंभ कर दी। अपने दुर्ग की प्राचीरों पर उसने अनेक तोपें चढ़ा दीं तथा अपने बारूद-भंडार को गोले-बारूद से भर लिया।[2]

11. सिखों का राजधानी पर अधिकार तथा सिक्के चलाना, लगभग नवंबर, 1761

अहमदशाह के प्रस्थान के बाद चार महीनों के अल्प समय में जिस वेग से सिखों ने एक के बाद एक विजय प्राप्त की उसने लगभग संपूर्ण पंजाब को उनके अधीन कर दिया। इसके लिए उन्होंने 22 अक्तूबर, 1761 को पड़ने वाली दिवाली के शुभ अवसर पर अमृतसर में उत्सव मनाया तथा ईश्वर को धन्यवाद दिया। वहाँ उन्होंने एक आम सभा का आयोजन किया। उसमें एक गुरुमत पारित किया गया। इसके अनुसार निश्चय किया गया कि जंडियाला के अपने कट्टर शत्रु गुरु आकिल दास को दंडित कर उन्हें लाहौर पर अधिकार करना चाहिए। बिना उस पर कब्जा जमाए वे पाँच नदियों की भूमि पर अपनी सत्ता को सर्वोच्च नहीं मान सकते थे।[3]

---

[1]खुशवक्त राय, 94–104; अहमद शाह, 890–91; सोहन लाल, ii 8; अली-उद्-दीन, 123क, बख्तमल, 82; मिसकिन 237।

[2]सोहन लाल, ii, 8; बूटे शाह, 308ख।

[3]मिसकिन, 237; खुशवक्त राय, 94; अली-उद्-दीन 123 ख।

इसके फलस्वरूप दल-खालसा अपने मुख्य नेता के अधीन एक दल लेकर लाहौर की ओर चल पड़ा। नगर को घेर कर आने-जाने के सब रास्ते काट दिए गए। शहर में न तो कोई जा सकता था और न ही वहाँ से बाहर आ सकता था। ख्वाजा अबेद ने अपने को किले में बंद कर लिया तथा उनका सामना करने के लिए उसने कोई कदम नहीं उठाया। सूबेदार की कमज़ोरी को जानते हुए प्रमुख नागरिकों ने जस्सासिंह के साथ बातचीत प्रारंभ कर दी तथा नगर के द्वार खोल दिए। इस प्रकार उन्होंने नगर को तहस-नहस होने से बचा लिया। अब एक ही स्थान के दो शासक थे। शहर में सिख तथा किले में ख्वाजा अबेद। परंतु जैसा कि खज़ाना-ए-अमीरा के लेखक से हमें पता चलता है, सूबेदार इस घटना के बाद शीघ्र ही काल-ग्रसित हो गया। उत्साह तथा प्रसन्नता से परिपूर्ण हो जस्सासिंह अहलूवालिया को बादशाह घोषित करके सिखों ने अपने स्वर्गीय तथा पूज्य नेता नवाब कपूरसिंह की इच्छाओं की पूर्ति कर दी। इसके बाद उन्होंने शाही टकसाल पर अधिकार जमाकर प्रथम सिख-रुपया ढाला। उस रुपए पर निम्नलिखित लेख अंकित था :—

'सिक्का ज़द दर जहान बफज़ल-ए-अकाल, मुल्क-ए-अहमद गरिफ्त जस्सा कलाल।' (जस्सासिंह द्वारा विजित अहमद के देश में ईश्वर की कृपा से ढाला गया सिक्का)।[1]

प्रांतीय राजधानी की विजय तथा रुपया ढालने की घटना सिख शक्ति के विकास में सबसे महत्वपूर्ण घटनाएँ हैं, यद्यपि उनकी यह स्थिति स्थायी नहीं रही। पंजाब के लोग अब इस बात को समझ गए थे कि यदि खालसा को लाहौर से निकाल कर बाहर भी कर दिया गया तो भी वे कभी न कभी इसके भाग्य विधाता बन कर ही रहेंगे। परंतु चक्र ही कुछ ऐसा चल रहा था कि अपनी इस सर्वश्रेष्ठ उत्कर्ष-बेला के केवल तीन मास बाद ही सिखों को ऐसा कठोर आघात सहना पड़ा जैसा कि बंदा की मृत्यु के बाद उन्हें अब तक नहीं सहन करना पड़ा था।

12. तिथि तथा घटना की जाँच

इस स्थान पर इस सिक्के की तिथि के बारे में कुछ कहना आवश्यक प्रतीत होता है। सिख इतिहास के अधिकांश लेखकों ने यह कहा है कि तैमूरशाह तथा जहान खाँ को सिखों ने अकेले ही लाहौर से मार भगाया था। उन्होंने प्रांतीय राजधानी को

---

[1]अहमद शाह, 889; ज्ञानसिंह, 809–10; खज़ाना-ए-अमीरा, 113–4; सैयार, iii, 74; तारीख-ए-मुजफ्फ़री 121 ख, 122 क; सोहन लाल, i, 46-7; तारीख-ए-सलातीन-ए-अफ़गानान, 173।

जीत कर उस पर अपनी प्रभुसत्ता की घोषणा की थी तथा उनके नेता जस्सासिंह ने अपने नाम से सन् 1758 में सिक्के ढाले थे।[1]

ब्राउनी सबसे पहला लेखक है जिसने अपनी पुस्तक में इस बात का वर्णन किया है। वह कहता है :—'अपने सरदारों के अधीन चारों ओर से आकर इकट्ठे होने के बाद सिखों ने लाहौर शहर को घेर लिया। उन्होंने आस-पास के संपूर्ण प्रदेश से अपने लिए लगान वसूल किया। शहज़ादा उनसे भिड़ने के लिए जहान खाँ के साथ आगे बढ़ा परंतु अनेक मुठभेड़ों के बाद, सिखों की विशाल संख्या को देखते हुए उसने लड़ते रहना बेकार समझा तथा कंधार की ओर वापिस लौट गया। इस अवसर पर जस्सासिंह कलाल ने, जो कि उस समय दल का सेनापति था, अपने नाम पर लाहौर की शाही टकसाल से निम्नलिखित लेख के साथ रुपया ढलवाया :—

"जस्सा कलाल ने अहमद के देश को विजित किया तथा ईश्वर की कृपा से यह सिक्का ढाला।"

अपने इस कथन को ब्राउनी ने दो पंजाबियों के प्रमाण पर आधारित किया है जिनके द्वारा दी गई तिथियों को खुद ब्राउनी ने अत्यधिक त्रुटिपूर्ण माना है। पृष्ठ iii-iv पर प्रस्तावना में वह लिखता है :—"दो काफ़ी विद्वान हिंदुओं से, जो लाहौर निवासी थे और जहाँ उन्होंने अपने जीवन का अधिकांश समय व्यतीत किया था तथा जिनके पास नागरी लिपि में सिखों के उत्थान तथा प्रगति का हाल लिखा था मिलकर, मैंने उन्हें फारसी भाषा में उसका अनुवाद करने के लिए प्रोत्साहित किया। उनसे कहा गया था कि वे आवश्यक तथ्यों को छोड़े बगैर कम-से-कम शब्दों में यह अनुवाद कर दें। अनुवाद हो चुकने पर मुझे पता चला कि तिथियों के बारे में वे अत्यधिक त्रुटिपूर्ण हैं तथा इसलिए उनके वर्णन को इतिहास का नाम नहीं दिया जा सकता।"

इस सिक्के को ढालने की संभव तिथि हमने नवंबर, 1761 मानी है। मिसकिन तीन वर्ष पहले ही लाहौर छोड़ चुका था। इसलिए इस संबंध में उसकी सहायता नहीं मिलती, परंतु खज़ाना-ए-अमीरा का समकालीन लेखक, जुलाई, 1762 से जुलाई, 1763 के बीच अपने लेखनकार्य का संकलन करते हुए कहता है कि सिखों ने लाहौर के दुर्रानी सूबेदार को जान से मार डाला, राजधानी पर कब्ज़ा कर लिया तथा यह सिक्का चलाया। वह आगे लिखता है कि सिखों की इन्हीं करतूतों की वजह

---

[1]देखें, ब्राउनी, ii, 19; मालकाम, 94–5; बख्तमल 82; खुशवक्त राय, 104; एलफिंस्टन द्वारा लिखित काबुल, ii, 289; कनिंघम 105; लतिफ द्वारा लिखित पंजाब, 231; गॉरडन, 61; नारंग, 148।

से अहमदशाह ने सन् 1762 में भारत पर हमला किया, सिखों को बुरी तरह पराजित किया तथा लगभग 12,000 सिखों को मौत के घाट उतार दिया।[1]

खजाना-ए-अमीरा के लेखक का कथन असंभाव्य प्रतीत नहीं होता। उस समय अहमदशाह भारत पर हमला करने की तैयारी तो कर रहा था।[2] और जब उसे यह समाचार मिला तो वह एकदम चल पड़ा तथा 5 फरवरी, 1762 को उसने कूप के स्थान पर सिखों को पराजित कर दिया। दूसरी ओर इस समय सिखों द्वारा लाहौर विजय कोई बहुत अधिक असंभव बात भी प्रतीत नहीं होती क्योंकि जैसा पहले बताया जा चुका है, सिखों को अल्प समय में कई बार विजय भी प्राप्त हुई थी।[3]

---

[1] खजाना-ए-अमीरा, 114 :—पंजाब के सिख शुरू से ही अशांति फैलाते रहे हैं तथा राजद्रोह करते रहे हैं तथा मुसलमानों के कट्टर शत्रु रहे हैं। इस तथ्य को जानते हुए भी कि शाह कई बार भारत को पददलित कर चुका है उन्होंने बिना किसी दूरदृष्टि के विद्रोह के झंडे खड़े कर दिए तथा लाहौर स्थित उसके सूबेदार को मौत के घाट उतार दिया है। उन्होंने अपने में से जस्सासिंह नामक एक व्यक्ति को बादशाह पद तक पहुँचा दिया तथा एक शैतान की तरह उसे जमशीद के सिंहासन पर बैठा दिया। सिक्के पर उसका नाम अंकित करके उन्होंने उसे कलुषित कर डाला। लाहौर के नगर तथा उसके आस-पास की बस्तियों पर अधिकार जमाकर उन्होंने आमतौर से खुदा के सब बंदों तथा मुसलमानों से खासतौर से छेड़-छाड़ की। यह खबर सुनकर, पूर्णरूप से स्थापित प्रथा के अनुसार शाह दुर्रानी एक बार फिर भारत की ओर चल पड़ा।"

[2] दिनांक, 27 अक्तूबर, 1761 के एक मराठी पत्र से विदित होता है कि दुर्रानी का हरावल दस्ता अटक तक बढ़ आया था। (सिलेक्शन्स फ्रॉम पेशवाज़ दफ्तर, xxix 16)।

[3] दिनांक 17-11-61 के एक मराठी पत्र में लिखा है कि सिख लाहौर में गड़बड़ी मचा रहे थे। एस० पी० डी०, xxix, 24। प्रसिद्ध सिख इतिहास लेखक सर लेपेल ग्रिफन्स यह लिखते समय सच्चाई के अधिक निकट था कि ये सिक्के न तो सन् 1762 से पहले ही ढाले गए, और न ही 1757-8 में जैसा कि कनिंघम ने कहा है। इस बात में भी संदेह है कि वे बड़ी संख्या में ढाले गए थे। कपूरथला के राजा के पास उनमें से एक भी नहीं है और न ही मैं ऐसे किसी व्यक्ति को जानता हूँ जिसने उन्हें देखा हो। "राजाज़ ऑफ दि पंजाब, फुटनोट, पृ० 461।

यह बड़े महत्व की बात है कि ज्ञानसिंह ने इस सिक्के की सही तिथि दी है। देखें, राज खालसा, 374।

कुछ आधुनिक सिख इस बात पर संदेह करते हैं कि क्या ये सिक्के कभी ढाले भी गए थे क्योंकि केवल ज्ञानसिंह को छोड़कर किसी और सिख लेखक ने इस बात की चर्चा अपने ग्रंथ में नहीं की है।[1] वे संभवतया नीचे लिखी आपत्तियाँ उठा सकते हैं, जिनकी हम यहाँ विस्तार से चर्चा करेंगे :—

1. एक सिख के लिए यह अपमानजनक है कि उसे 'सिंह' के बिना संबोधित किया जाए।

2. एक सिख किसी कार्य का श्रेय खुद न लेगा, अपितु श्रेय सदैव गुरु को देगा। अपनी राजसत्ता स्थापित करने के बाद रणजीतसिंह ने भी अपने नाम का सिक्का नहीं चलाया था।

3. यह सिक्का कहीं भी उपलब्ध नहीं है तथा किसी इतिहासकार ने यह दावा नहीं किया है कि उसने वह सिक्का देखा है।

4. जस्सासिंह अपने नाम का सिक्का नहीं चला सकता था क्योंकि इससे वह अपने साथियों का विश्वास खो बैठता।

5. 'कलाल' (शराब बनाने वाला) की उपाधि का प्रयोग वह न करता।

6. गणेशदास ने बिल्कुल स्पष्ट लिखा है कि इस प्रकार के लेख से अंकित सिक्के लाहौर के कहर मुल्लाओं ने ढाले थे तथा सिखों से बदला लेने के लिए और अहमदशाह को उत्तेजित करने के लिए उन्हें काबुल भेजा था।

इन धारणाओं के विरुद्ध आवश्यक प्रमाण प्रस्तुत करने से पहले हमें यह बात जान लेनी चाहिए कि प्रांतीय राजधानी का हस्तगत किया जाना सिखों के लिए उस सदी की सबसे बड़ी सफलता थी। इसने उनके उत्साह तथा प्रसन्नता की भावनाओं को इतना अधिक उभार दिया कि कुछ समय के लिए वे उन सब भावनाओं को भूल गए जो शांत वातावरण में विचार करते समय उनकी होतीं। पचास साल के कठोर संघर्ष के बाद प्राप्त की गई उस गौरवपूर्ण वेला में वे अपनी सफलता के उत्साह में झूमते हुए विजय-गर्व के मद में सब कुछ भुला बैठे। अपनी उसी तरंग में उन्होंने विवेक को पीछे छोड़ दिया तथा जिस योद्धा ने पिछले बारह सालों से उन्हें अनेक बार विजय श्री दिलाई थी उसे सम्मान के सर्वश्रेष्ठ पद पर जा बैठाया। इसमें भी कोई संदेह नहीं कि स्वस्थ, अनुत्तेजित तथा शांतिपूर्ण क्षणों में, उन्हें उत्तेजना की घड़ियों में की गई ग़लतियों का आभास हो गया था।

---

[1] डा० सिन्हा ने इस संदर्भ में ऊपर उद्धृत की हुई किसी भी पुस्तक को बिना पढ़े एकदम यह निष्कर्ष निकाल लिया कि ये सिक्के कभी ढाले ही नहीं गए थे। अपने कथन की पुष्टि में उन्होंने किसी प्रमाण का भी हवाला नहीं दिया है। देख, राइज़ ऑफ दी सिख पावर।

जहाँ तक पहली आपत्ति का प्रश्न है खुशवक्त राय अपनी 'किताब-ए-तारीख-ए-पंजाब' के पन्ने 104 पर कहता है :—

'लेकिन वह सिक्का थोड़े ही दिन तक चल पाया । क्योंकि इस पर आधा नाम (जस्सा) खुदा था इसका चलन शीघ्र ही बंद कर दिया गया ।'

दूसरी आपत्ति के बारे में चर्चा करते हुए अहमद यादगार नामक मुसलमान इतिहासकार हमें बताता है कि अपनी विजय का श्रेय गुरु को न देकर एक सिख को देने के कारण सिखों को बहुत दुःख हुआ । इसलिए उन्होंने इस सिक्के का चलन रोक दिया तथा उसके स्थान पर गुरु के नाम से दूसरा सिक्का ढाला ।[1]

'दुर्रानी शाह के अंतिम अमीलों को खदेड़ने के कुछ दिनों बाद ही सिखों ने अमृतसर में एक दरबार किया । इसमें निश्चित किया गया कि जस्सा कलाल के नाम के सिक्कों को वापिस कर लिया जाए तथा उसके स्थान पर गुरुओं के नाम पर दूसरे सिक्के ढाले जाएँ तथा उन पर यह लेख अंकित हो 'गुरु गोविंद सिंह ने नानक से देग, तेग, तथा फतह प्राप्त की' । यह सिक्का सारे प्रदेश में आज भी प्रचलित है ।[2]

तीसरी आपत्ति का, जिसका बहुतों[3] ने समर्थन किया है, उत्तर ऊपर दिए गए उद्धरण से मिल जाता है ।

जहाँ तक चौथी आपत्ति का प्रश्न है यह संभव प्रतीत होता है कि जस्सासिंह ने अपने सहधर्मियों पर अपनी सत्ता थोपने का प्रयत्न कभी भी नहीं किया । परंतु इसके विपरीत ऐसा प्रतीत होता है कि उन लोगों ने प्रचलित प्रथा[4] के अनुसार शासन करने वाले व्यक्ति जस्सासिंह के नाम को सिक्कों पर अंकित करने पर ज़ोर डाला था । इसका एक यह भी कारण था कि उन लोगों ने उसे 'बादशाह' के नाम से तो पुकारना भी शुरू कर दिया था ।[5]

---

[1]तारीख-ए-सलातीन-ए-अफ़गानान, 173 ।

[2]इंडिया ट्रेक्टस्, ii, 27, इस घटना के लगभग 25 वर्ष बाद लिखते हुए जेम्स ब्राउनी कहता है:—'इनमें से बहुत से रुपए मेरे कब्ज़े में हैं' । फुटनोट ।

[3]देखें, लेपेल ग्रिफिन्स द्वारा लिखित राजाज़ ऑफ दि पंजाब, फुटनोट पृष्ठ 461; एसियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, भाग, 54, 1885; अंक i, 67–76 में सी-टी रोजर्स, इंडियन एंटीक्यूरि, भाग xviii, 1889, पृ० 321 ।

[4]"भारत के सिक्के ढालना राजा का एक परमाधिकार रहा है । जब भी कोई व्यक्ति सिंहासन पर बैठता था तो वह इसका प्रयोग किया करता था" जे० ए० एस० बी० भाग 54, 1885, पृ० 67 में सी० टी० रोजर्स ।

[5]देखें, खुशवक्त राय, 102; रतनसिंह, 265–66; ज्ञान सिंह, 571; प्रिंसेप, 30; एम० ग्रेगोर, i,-147; पंजाब चीफ्स 172 । यह भी कहा जाता है

जहाँ तक पाँचवीं बात का सवाल है हमें यह कहने में तनिक भी हिचकिचाहट नहीं है उन दिनों के सिखों में बलिदान-भावना, अटूट विश्वास तथा सादगी और सरल प्रकृति की कोई कमी न थी। उन्होंने कभी यह छिपाने का प्रयत्न नहीं किया कि वे किस वंश के हैं। उनका सब से बड़ा मुखिया भी अपने अनुयायियों को अपने पहरावे, खान-पान या रहन-सहन द्वारा अपना बड़प्पन नहीं दिखाता था। इस सादगी तथा दिलेरी का एक और उदाहरण हमें दल-खालसा के सबसे शक्तिशाली दल 'भंगी मिसल' से मिलता है। 'भंगी' शब्द भी कलाल शब्द से किसी प्रकार अच्छा नहीं है। परंतु उस मिसल का सबसे शक्तिशाली सरदार भी अपने नाम के साथ 'भंगी' का उपनाम लगाने में गर्व का अनुभव करता था। इसलिए अपने को कलाल कहने में जस्सासिंह को तनिक भी संकोच नहीं हुआ होगा। विशेष रूप से जबकि सिक्के पर लिखी गई पंक्ति में तुकबंदी का प्रश्न था।[1]

जहाँ तक गणेश दास के कथन का प्रश्न है यह कहा जा सकता है कि उन्होंने अपने कथन की पुष्टि में कोई हवाला नहीं दिया है तथा न ही उसका किसी पहले या बाद के इतिहासकार ने समर्थन किया है। उन्होंने इस घटना के लगभग एक सौ साल बाद अर्थात् सन् 1849 में अपना ग्रंथ संकलित किया था। इसीलिए केवल इनके प्रमाण को ऐतिहासिक प्रयोजनों के लिए स्वीकार नहीं किया जा सकता। यही नहीं, वे तो इस घटना को सन् 1765 में हुई बताते हैं। स्पष्ट है कि उनका मतलब इस बर्ष के किसी और सिक्के से था।[2]

कि बाद में एक और अवसर पर सिखों ने जस्सासिंह को दिल्ली के शाहीतख्त पर बैठाया था। देखें, राज खालसा 378।

[1] भंगी का अर्थ भाँग खाने के अभ्यस्त व्यक्ति से है। गहरे हरे रंग की यह एक नशीली चीज़ है। भाँग नामक एक जंगली पौधे की पत्तियों को पीस कर यह तैयार की जाती है। यह पौधा आमतौर से नदी के किनारों पर पाया जाता है।

[2] रिसाल-ए-साहिब नामा, 210; ग्रिफिन्स ने "बैत" (दोहा) को बिस्त (बीस) समझते हुए उसका अनुवाद भी अशुद्ध कर दिया है। राजाज़ ऑफ दि पंजाब, फुटनोट, 461।

नवाँ अध्याय

घल्लूघारा तथा उसके बाद की घटनाएँ, 1762

1. सिखों द्वारा जंडिआला का घेरा, जनवरी, 1762 के लगभग

लाहौर में अपनी स्थिति सुरक्षित करने के बाद जंडिआला के गुरु अकिलदास द्वारा सिखों पर की गई ज्यादतियों का बदला चुकाने के लिए सिख उस ओर बढ़ गए। जैसा कि पहले भी संकेत किया जा चुका है यह गुरु सदैव से सिखों के विरुद्ध पंजाब के सूबेदारों की सहायता करता रहा था तथा उसने अहमदशाह दुर्रानी की अधीनता स्वीकार कर ली थी। सिखों द्वारा उसको दंडित करने की इच्छा का आभास अकिलदास को हो गया था। इस विपत्ति के भय से उसने अहमदशाह अब्दाली के पास गुप्त रूप से अपने विशेष संवाद-वाहक भेज दिए। अपनी पिछली निजी सेवाओं की याद दिलाते हुए उसने दुर्रानी से आसन्न खतरे में सहायता देने की प्रार्थना की। तब तक अब्दाली भारत के लिए चल चुका था। इन दूतों से उसने रोहतास के स्थान पर भेंट की। उनकी दुःखभरी गाथा सुनकर उसने अपनी गति तेज़ कर दी तथा बिना कहीं विश्राम किए वह चार दिन में लाहौर आ पहुँचा। इस बीच सिखों ने जंडिआला के प्राचीरयुक्त नगर को घेर लिया तथा अकिलदास के संपूर्ण प्रदेश को उजाड़ कर रख दिया। हुसैन शाही का लेखक हमें बताता है कि किले की दीवारों पर गो मांस के लोथड़े लटका कर यदि सिखों के प्रयत्नों को विफल न कर दिया गया होता तो वे उस स्थान पर अवश्य कब्ज़ा कर लेते। अपनी धार्मिक भावनाओं के वशीभूत होकर सिखों ने घेरा उठा लिया तथा सरहिंद के सूबेदार ज़ाइन खां के प्रदेश की ओर चले गए।[1]

2. घल्लूघारा (खूनी नरसंहार), 5 फरवरी, 1762

अकिलदास से सूचना पाते ही अब्दाली[2] जंडिआला जा पहुँचा। परंतु वहाँ उसे पता चला कि सिख वह स्थान पहले ही छोड़ चुके हैं। उनका पीछा करने के

---

[1]अली-उद्-दीन; 123 ख; हुसैन शाही, 77; तारीख-ए-अहमद, 16–7; तारीख-ए-अली, 145।

[2]भारत पर अब्दाली के हमले का आतंक इतना गहरा था कि इससे संपूर्ण देश में भय फैल गया। पंजाब में अब्दाली की उपस्थिति से बिहार में अँग्रेज़ों का पिट्ठू मीर कासिम भी भयभीत हो गया था। उसने फोर्ट विलियम के गवर्नर से इस बारे में सलाह माँगी थी। सी०पी०सी०, i, 1444।

दृढ़ निश्चय के साथ वह लाहौर वापिस लौट गया तथा उनके बारे में सूचना प्राप्त करने के लिए उसने अपने गुप्तचर रवाना कर दिए। दो दिन के बाद उसके पास सूचना पहुँची कि सिख मलेरकोटला के समीप ज़ाइन खाँ से लड़ाई में उलझे हुए हैं।

यह सूचना पाकर अहमदशाह अपने साथ एक छोटा रिसाला लेकर निकल पड़ा। तेज़ धावों के लिए वह सुप्रसिद्ध था ही। इस बार तेज़ धावा कर उसने 150 मील का मार्ग तथा दो नदियाँ दो दिन से भी कम समय में पार कर डालीं। वह 5 फरवरी, 1762[1] की सुबह मलेरकोटला के पास जा पहुँचा। उधर उसके दरबारियों ने 4–5 फरवरी की रात में ज़ाइन खाँ को शाह के आगमन की सूचना भी दे दी। दुर्रानी ने शीघ्रतापूर्वक सारी स्थिति की टोह ली तथा अपनी कार्यविधि का निश्चय कर लिया। उसने अपनी सेना को दो भागों में विभाजित कर दिया। एक को उसने अपने अधीन रखा तथा दूसरे को उसने अपने वज़ीर शाह वली खाँ के अधीन कर दिया। वज़ीर की देख-रेख वाले प्रभाग को ज़ाइन खाँ से जाकर मिलने के आदेश दिए गए। इसके बाद उन दोनों को मिलकर सिख सेना के एक पार्श्व पर छा जाना था। शाह ने सिखों के दूसरे पार्श्व पर छा जाने का भार स्वयं लिया। इस प्रकार सिखों पर चारों ओर से आक्रमण किया जाने वाला था।

सिखों की स्थिति इस प्रकार थी। उनका संपूर्ण दल जिसमें लगभग 50,000 गैर-लड़ाकू भी सम्मिलित थे, कूप गाँव में डेरा डाले पड़ा था।[2] उन्होंने अपने प्रमुख दल से केवल चार मील की दूरी पर स्थित 'पिंड गरमा' नामक गाँव में माल असबाब से भरी गाड़ियाँ (बहीर) जिनमें शिविर का सामान, हथियार, गोला-बारूद, खाने-पीने का सामान, रसोई का सामान, नौकर-चाकर, स्त्रियाँ तथा बच्चे आदि थे, रखी थीं। सामान्यतया उसकी रक्षा के लिए अनुभवी अधिकारियों तथा वीर सैनिकों का एक शक्तिशाली दल तैनात किया जाता था। उन दिनों की ऊबड़-खाबड़ सड़कों के कारण समाचार बड़ी देर से पहुँच पाते थे। इसलिए सिखों को शाह के आगमन का उसी समय पता चल पाया

---

[1]तारीख-ए-अहमद, 16; खजाना-ए-अमीरा, 114; अली-उद्-दीन, 124क; देखें, राजवडे, vi, 465; उस युद्ध के समय वहाँ उपस्थित मिसकिन उस लड़ाई की तिथि के बारे म चुप है। फोरेस्टर, i, 319; ने केवल महीने का नाम दिया है। मैंने खज़ाना-ए-अमीरा का अनुकरण किया है। उसने दुर्रानी-सिख-लड़ाई के लिए 5 फरवरी की तिथि दी है। सरकार, ii, 415।

[2] मलेरकोटला से 6 मील उत्तर में लुधियाना-धुरी रेलवे लाइन पर 'कूप' एक रेलवे स्टेशन है।

जबकि वह मलेरकोटला तक जा पहुँचा था। सिख तत्काल अपने घोड़ों पर सवार हो, अपने बहीर की ओर भाग चले। उनके पलायन को रोकने के लिए लगभग आधा कोस तक ज़ाइन खाँ ने उनका पीछा किया। इस पर सिख भागते-भागते अचानक रुक गए तथा उन्होंने डट कर सामना किया। ज़ाइन खाँ का हरावल दस्ता जो कि कासिम खाँ (पट्टी का वीर) के अधीन था सिखों की भयंकर मार के सामने न ठहर सका तथा बहुत अधिक हानि उठा कर वह मलेरकोटला की ओर भाग खड़ा हुआ। मुर्तज़ा खाँ नाम का एक दूसरा सरदार अपने 500 घुड़सवारों तथा पैदलों को लेकर एक ऊँचे-से टीले पर डटा रहा। इसके बाद सिख दृष्टि से ओझल होकर 'पिंड गरमा' की ओर चले गए।[1]

लगभग उसी समय उदित हो रहे सूर्य की लाल चमक तथा दुर्रानियों की लाल रंगवाली वर्दियों से आकाश चमक उठा। सिख गाँव में प्रवेश करने वाले ही थे कि अफ़गानों ने उनका पीछा किया तथा उन पर टूट पड़े। सिखों में आतंक छा गया। जमकर लड़ने को वे अच्छा नहीं समझते थे तथा उसे 'अद्धी लड़ाई' के नाम से पुकारते थे। वे 'धाई-फट' (भागना तथा लड़ना) नामक पद्धति को युद्ध करने का सबसे उत्तम तरीक़ा समझते थे।[2]

इसी के अनुसार सिखों ने अपने चार सरदारों[3] को बरनाला की ओर माल-असबाब की गाड़ियों (बहीर) की सहायता करने तथा उनका पथ-प्रदर्शन करने के लिए भेज दिया तथा अपने को एक सुदृढ़ वर्ग के रूप में संगठित कर लिया। इस व्यूह का प्रत्येक पार्श्व दो-दो सरदारों की कमान के अधीन था। इस प्रकार उन्होंने लड़ाई शुरू कर दी तथा धीरे-धीरे बरनाला की ओर बढ़ना शुरू कर दिया। इस प्रकार वे अभी तीन कोस भी न जा पाए थे कि उन्हें पता चला कि उनका 'बहीर' 8,000 अफ़गान सेना के एक दस्ते का शिकार हो गया है। यह दस्ता शाह वली खाँ के अधीन था। जस्सासिंह अहलूवालिया ने तत्काल एक दस्ता 'बहीर' के बचाव के लिए रवाना कर दिया तथा उनका प्रमुख दल दुर्रानियों के आक्रमण का सामना बड़ी वीरता से करता रहा। अपने अरक्षित बाजुओं तथा खुले चंडावल के होते हुए भी जिन सिखों ने उनका सामना किया उनकी दुर्दम्य वीरता, दृढ़ता तथा अपराजेय उत्साह का कोई पार नहीं पा सका। शत्रु की जिज़ारिस तथा गर्जिकाओं से आने वाली विनाशकारी गोलियों की सीधी बौछार का उत्तर उन्होंने

---

[1]मिसकिन, 241–2।

[2]रतनसिंह, 380; ज्ञानसिंह, 679; अहमद शाह, 885।

[3]जस्सूवाला का संधूसिंह, कोटकल का आलासिंह, हंबलवाल के शेखूसिंह तथा बुड्ढासिंह। रतनसिंह 445–7; ज्ञानसिंह, 817; करमसिंह, 220; फुलवाड़ी, सितंबर, 1928, पृ० 925; मिसकिन 242।

अपनी तोड़ेदार बंदूकों तथा कृपाणों से दिया। परंतु अब्दाली के सैन्य संचालन के साथ सिखों का कोई मुकाबला न था। उसने नवीन आक्रमण करने के लिए जहान खाँ के अधीन एक शक्तिशाली दस्ता आगे बढ़ाया। इससे सिखों के प्रमुख दल में कुछ अव्यवस्था मच गई। इसी घबराहट में वे लोग अपने घोड़ों को लेकर आगे बढ़ गए। सजग दुर्रानी ने इस थोड़ी-सी अव्यवस्था का पूरा-पूरा लाभ उठाया तथा बहुत से सिखों को मौत के घाट उतार दिया गया। इसके बाद उसने सिखों के प्रमुख दल तथा उनके बहीर के बीच में घुसने का निश्चय किया। उसने छटे हुए सैनिकों के चार दस्ते अपने साथ लिए तथा अचानक सिखों के उस भाग पर चढ़ दौड़ा। इस स्थान पर फिर एक भयंकर लड़ाई हुई। सिख सरदार, विशेष रूप से जस्सासिंह अहलूवालिया तथा चरतसिंह सूकरचाकिया अपने-अपने घोड़ों को एड़ लगाते तथा मरे हुए घोड़ों तथा मनुष्यों को लांघते हुए विपदा में पड़े अपने साथियों की सहायता के लिए जा पहुँचे। दुर्रानी के इस सबसे अधिक भयंकर आक्रमण का उत्तर देने के लिए सिख सरदारों ने अपनी-अपनी तलवारें निकाल लीं तथा अपने शत्रुओं को काटते, उनसे अपना बचाव करते, उन पर चोट करते, उनमें अपनी कटारें घुसेड़ते, उनकी धज्जियाँ उड़ाते तथा उन्हें फाड़ते हुए वे एड़ लगा कर उस स्थान पर जा पहुँचते जहाँ उनके साथियों को उनकी सहायता की आवश्यकता होती थी। इस प्रकार उन्होंने लड़ाई के अग्रभाग में पहुँच कर बार-बार अपने पौरुष का प्रदर्शन किया। उन्होंने अपने मद में उन घृणित लुटेरों के झुंड की तनिक भी चिंता नहीं की। परंतु अंत में दुर्रानी सफल रहे तथा उनको अपने बहीर से अलग कर दिया गया। अब अफ़गानों ने उस बहीर के आदमियों को बेरहमी से कत्ल कर दिया।[1]

उस समय तक सिख गहल गाँव जा पहुँचे थे। वहाँ बहीर से बचे-खुचे लोग शरण लेना चाहते थे। परंतु दुर्रानी के डर से लोगों ने अपने-अपने द्वार बंद कर लिए तथा उन्हें कोई शरण नहीं दी। इसका फल यह हुआ कि कुछ सिख कंडों तथा चारे के ढेरों, गेहूँ, चने और सरसों के खेतों तथा लाशों के बीच में जा छिपे। सिखों का प्रमुख दल पीछे हटता रहा। अब उनके पास माल असबाब की गाड़ियाँ आदि नहीं थीं। इसलिए वे और भी तेज़ी से पीछे हट रहे थे। सायंकाल से पहले वे कुतबा नामक गाँव में जा पहुँचे। वहाँ एक तालाब था। दुर्रानी सैनिक उस ओर अपनी प्यास बुझाने के लिए पहुँचे। कुछ सिखों ने भी पानी पिया तथा फिर उस

---

[1] रतनसिंह, 448–53, इस लड़ाई के दौरान जस्सासिंह तथा चरतसिंह के अनेक घोड़े मारे गए थे। एक अवसर पर तो जस्सासिंह को गुरुमुखसिंह ने बचाया। उसने अपना घोड़ा उसे दे दिया तथा खुद पैदल लड़ता रहा। वही 451, 453।

अवसर का लाभ उठाते हुए वे लोग बड़ी तेज़ गति से बरनाला की ओर बढ़ गए ।[1]

अफ़गानों तथा सिखों में झड़प चलती रही । अहमदशाह कूप से बरनाला तक 25 मील की दूरी तक स्वयं उनका पीछा करता रहा । उस स्थान पर उसने अपने डेरे डाल लिए । कई कारणों से और आगे पीछा नहीं किया गया । उनके बरनाला पहुँचने तक सूर्यास्त हो चुका था । उसके सैनिक 150 मील का मार्ग केवल 36 घंटे में तय करने के कारण पहले से ही थक चुके थे और अब सिखों के साथ हुए भयंकर युद्ध ने उन्हें चूर-चूर कर दिया था । उस लड़ाई में अहमदशाह ने जो हानि उठाई थी वह शायद इतनी अधिक थी कि वह और पीछा नहीं कर सकता था । इसके अलावा उस समय तक सिख भी अफ़गानों से काफ़ी दूर पहुँच चुके थे तथा उनकी पुरानी चालों को मद्देनज़र रखते हुए उनका और पीछा करने से पहले अब्दाली को कई बार सोचना आवश्यक था । पानी की कमी तथा रेतीली धरती भी इसमें बाधक थी । इसके साथ-साथ अब्दाली ने सोचा कि उनकी एक बड़ी संख्या को मौत के घाट उतार देने के कारण उसकी शक्ति का सिक्का जम चुका है तथा वे अब फिर न उठ पाएँगे । इक्के-दुक्के सिखों को छोड़कर बाकी सब खतरे के क्षेत्र से बाहर हो चुके थे । अब उन्होंने अपने को वीरान मरुभूमि में पाया ।

इस लड़ाई को, सिखों ने, घल्लूघारा अर्थात् खूनी-नरसंहार का नाम दिया है । इसमें लगभग 12,000 सिखों को अपनी जान से हाथ धोने पड़े थे ।[2]

---

[1]रतनसिंह, 454–5 ।

[2]सिखों द्वारा उठाई गई हानि का लोगों ने विभिन्न अंदाजा लगाया है :— मिसकिन, 243, (25,000); खजाना-ए-अमीरा, 114, (29,000); सैयार, iii, 74, (20,000;) तारीख-ए-मुजफ़री, 122क । (22,000); हुसैन शाही, 83, (30,000); फारेस्टर, i, 319, (25,000); मालकाम, 98, (20,000 से ऊपर); तारीख-ए-अहमद, 17, (30,000); तारीख-ए-अली, 146, (20,000); अहमद शाह, 885, (17,000); प्रिन्सेप, 24, (25 से 30,000); एम० ग्रेगौर, i, 132, (17,000); कनिंघम, 109, (12 से 25,000); हूगेल, 271, (20 से 30,000); गणेश दास, 200, (30,000); अली-उद्-दीन, 124क (30,000); रतन सिंह 457, लोगों के कथनानुसार (50,000) तथा अपने पिता तथा चाचा के कथनानुसार (30,000) ये दोनों युद्ध में उपस्थित थे । ज्ञानसिंह, 327, (13,000); शमशीर खालसा, 112, (10 से 12,000); करमसिंह, 221, (15 से20 00); सरकार, ii, 486, (10,000) ।

3. आलासिंह की गिरफ्तारी

यहाँ यह बता देना ठीक प्रतीत होता है कि पटियाला के आलासिंह के प्रदेश में स्थित बरनाला एक किलेबंदी किया गया स्थान था। पीछे हटते हुए सिख मालवा के सिखों से सहायता पाने की आशा से ही बरनाला गए थे। परंतु आलासिंह ने इस अवसर पर भी तटस्थता की अपनी नीति कायम रखी। उस समय तक वह पटियाला के अपने प्रमुख-केंद्र को छोड़कर धुंडाधुरा (पटियाला से 17 मील दक्षिण में स्थित धंडधौता) चला गया था।

अहमदशाह दुर्रानी उस समय बरनाला में ठहरा हुआ था। वह स्वाभाविक रूप से ही इस बात की आशा कर रहा था कि आलासिंह उसके सामने उपस्थित होकर उसकी अधीनता स्वीकार करेगा। परंतु आलासिंह के एक ओर यदि कुआँ था तो दूसरी ओर खाई। यदि वह दुर्रानी के, जिसने उसके अनेक सहधर्म वालों को मौत के घाट उतार दिया था सम्मुख उपस्थित होता तो वह अपने समाज के सब लोगों का कोपभाजन बनता' और दूसरी ओर यदि वह शाह के सामने उपस्थित न होता तो यह निश्चित था कि उसका अधिपति उससे नाराज़ हो उठता। परंतु उसने दूसरा मार्ग ही चुना तथा अब्दाली ने भी इस मामले पर सहानुभूतिपूर्वक विचार किया।

आलासिंह की अनुपस्थिति से लाभ उठाते हुए उसके प्रतिद्वंद्वियों ने शाह के कान भरने शुरू कर दिए। उसकी बढ़ती शक्ति के कारण उसके पड़ोसी स्वाभाविक रूप से ही उसके प्रति डाह रखने लगे थे। मलेरकोटला का नवाब, रायकोट का राय तथा ज़ाइन खाँ का दीवान लक्ष्मी नारायण उनमें से प्रमुख थे। उन्होंने यह कह कर कि आलासिंह ने विभिन्न अवसरों पर सदैव से ही मांझा के सिखों को गुप्त रूप से सहायता दी है, शाह के प्रति उसके रुख को ग़लत रूप से उपस्थित किया।[1]

इस लड़ाई के बीस दिन बाद शामली से लिखे गए एक मराठी पत्र में, जो भाग vi, 465 पर राजवड में उद्धृत किया गया है, यह कहा गया है कि 5 से 7 हज़ार तक सिख मारे गए थे। सही संख्या का पता नहीं लगाया जा सकता है क्योंकि उनकी नामावलियाँ नहीं थीं तथा सिख दस्तों की रचना नियमित नहीं थी।

कहा जाता है कि दमदमा साहब तथा अमृतसर के 'ग्रंथ साहब' के दो खंड इस लड़ाई के बीच कहीं खो गए। देखें ज्ञान सिंह, 826 और करमसिंह सितंबर, 1928 की फुलवाड़ी के पृष्ठ 927 पर।

[1]बूटे शाह, 277ख–278क; तारीख-ए-सिद्ध, 76; राज खालसा, 385।

इन ग़लत बयानों का तथा आलासिंह की गिरफ्तारी की स्थिति में उससे 50 लाख रुपए छुड़ाई के रूप में मिलने के लोभ[1] का अब्दाली पर उपयुक्त प्रभाव पड़ा और वह बरनाला के दुर्ग पर चढ़ दौड़ा। उसने उस स्थान को भस्म कर दिया तथा आस-पास के प्रदेशों को उजाड़ डाला। इसके बाद वह उसके धुंडाधुरा दुर्ग की ओर बढ़ा परंतु आलासिंह बड़ी चतुराई से उसे चकमा देकर वहाँ से खिसक गया। परंतु आलासिंह ने और अधिक पीछे हटने में कुछ अधिक लाभ न देखा तथा उसने शाह के सम्मुख उपस्थित होने के लिए नजीब-उद्-दौला से हस्तक्षेप करने की प्रार्थना की। उसे बंदी बना लिया गया तथा आज्ञा दी गई कि वह अपने बाल कटवा दे। आलासिंह तनिक भी हतोत्साह नहीं हुआ तथा उसने अपने बाल खरीदने के लिए पेशकश पेश की। अहमदशाह ने कीमत पूछी। आलासिंह ने एक लाख रुपए देने के लिए कहा। ऐसा लगता है कि अंत में सवा लाख पर सौदा तय हो गया। इसके सिवा 5 लाख रुपए और इकट्ठे किए गए तथा उस पर वार्षिक कर भी नियत कर दिया गया। इसके बाद शाहबली खाँ की सिफ़ारिश पर उसे स्वतंत्र तो कर दिया गया परंतु उसे उसने अपने साथ ही रखा। अहमदशाह 15 फरवरी को सरहिंद छोड़कर लाहौर के लिए चल पड़ा।[2]

4. अमृतसर में सिखों के पवित्र स्थानों का नष्ट किया जाना

सिखों के हाथों जो परेशानियाँ अब्दाली को उठानी पड़ी थीं, कुछ हद तक तो उनके कारण तथा कुछ हद तक प्रत्येक क़ाफिर के प्रति अपनी धार्मिक कट्टरता के कारण अहमदशाह अब्दाली सरहिंद से लाहौर तक की अपनी यात्रा को चिरस्मरणीय बनाना चाहता था। वह अपने साथ लड़ाई में मारे गए सिखों के सिरों से भरी बैलगाड़ियाँ तथा बहुत-से बंदी भी ले गया।[3] अमृतसर में उसने सिखों के पवित्र भवन गिरा दिए। उसने हरिमंदिर की नीवों के नीचे बारूद से भरी पेटियाँ रखवा कर उसकी एक-एक ईंट उड़वा दी। बाकी सामान भी अग्नि की भेंट चढ़ा दिया

---

[1]सरहिंद का राजा लक्ष्मीनारायण, जो कि हमारी सरकार में पहले एक नौकर था, ज़ाइन खाँ का दीवान तथा शाह का कारिंदा तथा फौजदार है। उसने 50 लाख रुपए पेशकश के रूप में शाह को देने का वचन दिया है तथा उसे आला जाट की गढ़ी तक पहुँचाने की एक योजना बनाई है।" राजवडे, vi, 465।

[2]तारीख-ए-सलातीन-ए-अफ़गानान, 171–2; अली-उद्-दीन, 124ख; मिसकिन, 244; राजवड़े, vi, 382; दिल्ली क्रानिकल, 190।

[3]खुशवक्त राय, 95, गोशा-ए-पंजाब, 44।

गया। उसके आस पास के मकानों को भी गिरा दिया गया। पवित्र सरोवर को पहले तो नष्ट किया गया फिर उसे मलवे तथा कचरे से भरवा दिया गया। इसके बाद गायों का वध करके उनके खून तथा अंतड़ियों को चारों ओर बिखेर कर उसे अपवित्र कर दिया गया।[1]

अहमदशाह 3 मार्च को लाहौर जा पहुँचा। नगर की दीवारों तथा दरवाज़ों पर सिखों के सिरों से ऊँची-ऊँची मीनारें खड़ी कर दी गईं। यही नहीं उसने सिखों द्वारा अपवित्र की गई प्रमुख मस्जिदों को उनके खून से धुलवाया। उसके द्वारा वह मोहम्मद के धर्म के प्रति किए गए अपमान तथा गंदगी को धो डालना चाहता था।"[2]

5. अब्दाली का पंजाब में रुकना, मार्च-दिसंबर, 1762

अब्दाली नौ माह—मार्च से दिसंबर तक—लाहौर में रुका रहा कि यदि सिख फिर से सिर उठाएँ तो उन्हें कुचला जा सके। एक ही तीर से दो शिकार करने के उद्देश्य से उसने सारे भारतीय नरेशों को अपने दूत भेजने के लिए आमंत्रित किया। इसके द्वारा वह हिंदुस्तान के शासन को नियमित करना तथा अपनी वित्तीय स्थिति को फिर से संगठित करना चाहता था। दिल्ली के बादशाह के प्रतिनिधि के रूप में नजीब तथा याकूब अली खाँ उस समय उसी के पास थे। दिल्ली स्थित मराठों के राजदूत, बापू तथा पुरुषोत्तम महादेव हिंगने को लाहौर आने के लिए तीन-चार पत्र भेजे गए। मार्च के मध्य तथा बापू पेशवा से मंजूरी प्राप्त करने के बाद मई मास में पुरुषोत्तम उससे जा मिले। उसके वज़ीर शाहवली खाँ ने दुर्रानी को सलाह दी कि वह पेशवा से दोस्ताना शर्तों पर बातचीत चलाए। इसके चिह्नस्वरूप उसने उसके दूतों के द्वारा (उनके साथ अपना भी एक राजदूत भेज कर) पेशवा के पास, "राज्याभिषेक का टीका, केशर में डुबाकर लगाई गई हथेली की छाप

---

[1]नूर-उद्-दीन, 57क; फोरेस्टर, i, 320, मालकाम, 98; खुशवक्त राय, 95; रतनसिंह, 442; अहमदशाह, 888; तारीख-ए-सलातीन-ए-अफ़-गानान, 172; बूटे शाह, 15 क; रतनचंद, 33; गणेशदास, 200-201; गुलज़ार-ए-शाही, 525; (सोहन लाल, i, 155 तथा ज्ञानसिंह ने पृष्ठ 828–9 पर लिखा है कि इस अवसर पर हरिमंदिर से गिरी एक ईंट ने अहमदशाह की नाक को घायल कर दिया तथा यही घाव आगे चल कर कैंसर में बदल गया था।)

[2]खज़ाना-ए-अमीरा, 114; तारीख-ए-मुजफ़्फ़री, 122क; खुशवक्त राय, 95; फोरेस्टर, i, 320।

(केशा-ए-पंजा), परिधान, जवाहरात, घोड़े तथा हाथी भेजने के लिए उसे तैयार कर लिया।" (जून, 1762)[1]

शाहआलम को बादशाह के तथा शुजा-उद्-दौला को वज़ीर के पद पर पक्का करने की सनदों के साथ नजीब-उद्-दौला तथा रज़ा-कुली खाँ (मुनीर-उद्-दौला) को पहले ही भेजा जा चुका था। इसके बाद उसने पंजाब के विभिन्न मुखियों तथा जमींदारों को लाहौर में एकत्रित होने के लिए बुलाया। उन्होंने वैसा ही किया। अब्दाली ने सिखों का समूल नाश करने के लिए उनसे सहायता माँगी तथा भविष्य की योजनाएँ तय कीं।[2]

6. अब्दाली ने काश्मीर को फिर जीता

जून मास तक अब्दाली इन कार्यों से छुट्टी पा चुका था। पंजाब की भीषण गर्मी तथा वर्षा-ऋतु के पास आ जाने के कारण भारत के विभिन्न भागों से आए प्रतिनिधि अहमदशाह से छुट्टी लेकर जा चुके थे। दुर्रानी ने निश्चय किया कि इस अंतरकाल का उपयोग काश्मीर पर फिर से विजय पाने के लिए किया जाए जहाँ उसके सूबेदार सुखजीवन मल ने उसके प्रति अपनी निष्ठा खो दी थी। उसने जम्मू के राजा रणजीत देव को लाहौर बुलाया तथा उसे अपने निजी संरक्षण में काश्मीर पर चढ़ाई करने के लिए उकसाया। उसके साथ तीन-चार हज़ार दुर्रानी सैनिक भी कर दिए। रणजीत देव जून मास में चला परंतु उसने देखा कि सुखजीवन मल ने सारे दर्रे बंद कर दिए हैं। इसका फल यह हुआ कि वह घबरा कर वापिस आ गया।

बाद में और भी अधिक बड़े पैमाने पर अभियान आरंभ किया गया। यह अभियान शायद सितंबर माह में आरंभ किया गया होगा क्योंकि जुलाई तथा अगस्त माह में घनघोर वर्षा होती है तथा काश्मीर घाटी तक सरलता से नहीं पहुँचा जा सकता। जम्मू से वहाँ तक (200 मील) के मार्ग में अनेक नाले तथा चिनाब और झेलम नदियाँ पड़ती हैं जिनमें बाढ़ आ जाती है। इससे संपूर्ण मार्ग में रुकावटें पड़ जाती हैं। यह अभियान नूर-उद्-दीन की देखरेख में किया गया था। उसने रणजीत देव की सक्रिय सहायता से सुखजीवन को पराजित करके उसे बंदी बना लिया। इसके बाद काश्मीर को दुर्रानी साम्राज्य में मिला लिया गया तथा नवाब सरबुलंद खाँ को वहाँ का सूबेदार बनाया गया।[3]

---

[1]सी०पी०सी० i, 1532; राजवडे, vi, 382, 384, 423, 425; सरकार, ii, 488।

[2]नूर-उद्-दीन, 57क; अहमद शाह, 886।

[3]राजवड, vi, 384, (परिशिष्ट); खुशवक्त राय, 155; खजाना-ए-अमीरा, 155–6; सैयार, iii, 74-5; तारीख-ए-मुजफ़्फ़री, 122क-ख; अहमद शाह, 886; गणेश दास, 162-4।

7. कलानौर में अब्दाली का ग्रीष्म-शिविर, लगभग जुलाई-अगस्त, 1762

काश्मीर की ओर प्रथम अभियान के लिए सेना रवाना करने के बाद अहमदशाह अब्दाली ने लाहौर में ठहरे रहना ठीक न समझा क्योंकि उस स्थान की गर्मी उसकी बर्दाश्त से बाहर होती जा रही थी। फलस्वरूप वह बारी-दोआब के उत्तरी भागों की ओर चल दिया। वहाँ की जलवायु कुछ शीतल थी तथा वहाँ अनाज, घास-दाना तथा शिकार की कोई कमी न थी। उसने कलानौर में अपना ग्रीष्मऋतु का प्रधान केंद्र स्थापित किया। यह वही स्थान था जहाँ सन् 1556 में अकबर तख्त पर आसीन हुआ था।[1]

8. सिखों का मालवा की ओर भागना तथा वहाँ के ब्रार जाटों द्वारा उनके साथ किया गया दुर्व्यवहार, फरवरी-अप्रैल, 1762 के लगभग

अब्दाली को कलानौर में ही छोड़ कर, अब हमें सिखों की ओर ध्यान देना चाहिए। 5 फरवरी को अपनी पराजय के बाद कूप से बरनाला तक भागते-भागते रात्रि में वे रोही के रेगिस्तानी प्रदेश की ओर चले गए थे। छोटे-छोटे दलों में विभाजित होकर उन्होंने जायतो, अब्लूवहम्मे, भगतू, बल्लू, कवौनी, दौरमाटी, चरक छावरे, घोरिए, फरीदकोट तथा कंगर आदि स्थानों में शरण ली थी। जो लोग लड़ाई के मैदान से बच गए थे वे भी बुरी तरह से घायल हो चुके थे। रतनसिंह के अनुसार, "एक भी सिख ऐसा न बचा था जिसके घाव न लगे हों। प्रत्येक के शरीर पर थोड़े बहुत घावों के निशान थे। उनमें से बहुत-से अपने घोड़ों तथा ऊँटों को खो चुके थे। किसी को अपने परिवार वालों की सुरक्षा का भरोसा न था क्योंकि वे इधर-उधर बिखर चुके थे।

मालवा के मरुस्थल में रहने वाले ब्रार जाटों की सुरक्षा में जाने का सिखों को अभ्यास पड़ चुका था, उन्होंने इस अवसर पर सिखों से बड़ा क्रूरतापूर्ण

---

[1]अहमदशाह, 888; अली-उद्-दीन, 125 ख; मुग़ल बादशाहों की यह प्रसिद्ध शिकार-गाह थी। उस भूभाग की प्राकृतिक छटा से अदीना बेग इतना मुग्ध हो गया था कि उसने अदीना नगर पर अपनी नवीन राजधानी बनाई। बाद में महाराजा रणजीतसिंह तथा शेरसिंह ने इस प्रदेश के बीचों-बीच स्थित बटाला में अपनी ग्रीष्म कालीन राजधानी स्थापित की।

व्यवहार किया । शायद वे लोग अब्दाली की शत्रुता मोल न लेना चाहते थे, इसलिए उन लोगों ने अपने गाँवों से सिखों को खदेड़ दिया ।[1]

9. सिख भावना : मिलावट दूर हुई तथा विशुद्ध खालसा बच रहा

ब्रार लोगों के गाँव छोड़कर सिख भटिंडा, कोटकपूरा तथा फरीदकोट के पास-पड़ोस में जा बसे । अत्याचार के सम्मुख कायरतापूर्वक सिर झुका देना उनकी प्रकृति में नहीं था । दुर्रानी द्वारा किए गए क्रूर कत्लेआम ने उनके उत्साह तथा हिम्मत को कम करने के स्थान पर और बढ़ा दिया । इसी का यह परिणाम था कि अपनी हाल की विपत्तियों के बाद जब वे पहली बार दरबार के रूप में इकट्ठे हुए तो उनमें से एक सिख ने अपनी बुलंद आवाज़ में घोषित किया कि घल्लूघारा ने मिलावट को दूर कर दिया है तथा गुरु के काम को आगे बढ़ाने के लिए अब केवल शुद्ध खालसा ही बच रहा है ।[2]

दिखता तो यह था कि सिख हार चुके हैं, परंतु कुछ परिस्थितियों में हार भी कई बार विजय के समान ही सम्मानपूर्ण हो जाती है और इस अवसर पर सिखों ने शत्रुओं के बीच फँसकर भी बड़ी बहादुरी के साथ उसका सामना किया । वे इसलिए नहीं हारे कि वे अच्छे सैनिक नहीं थे या उनके पास अच्छे नेता नहीं थे । वे तो इसलिए हारे कि उनके शत्रु के पास बहुत अच्छा तोपखाना था जो कि उनके पास नहीं था । फिर उन पर हमला भी अचनाक ही हुआ था । अपने बहीर के कारण, जिसमें उनके बाल-बच्चे तथा स्त्रियाँ थीं, वे लोग पूरी तरह कुछ कर सकने में असमर्थ थे ।

परंतु ये विपत्तियाँ भी उन्हें हतोत्साहित नहीं कर पाईं । प्रत्येक सफलता या असफलता उनमें नव-जीवन फूंक देती थी तथा उनमें नई शक्ति तथा उत्साह का संचार करती थी । इस बारे में मालकाम लिखता है, "सिख जाति अपने पूरे प्रारंभिक इतिहास में सदैव एक ज्वाला की भाँति प्रतीत हुई । उसे दबाने का जितना प्रयत्न किया गया, वह ऐसे प्रत्येक प्रयास में और भी अधिक जगमगाहट के साथ प्रज्वलित

---

[1]रतनसिंह, 457-60, इस बारे में प्राचीन पंथप्रकाश के लेखक रतनसिंह हमें यह भी बताते हैं कि ब्रार लोगों ने प्रत्येक संभव तरीके से सिखों से छेड़-छाड़ की । इसका विस्तारपूर्वक वर्णन 459 से 464 पृष्ठों पर किया गया है । ब्रार के जाट मूलरूप से भाट्टी राजपूत थे । पुराने समय में वे लोग जंगली तथा अनुशासनविहीन जाति के थे । पशु चराना तथा डाके डालना उनका प्रमुख पेशा था । राजाज़ ऑफ दी पंजाब, 547 ।

[2]करमसिंह, फुलवाड़ी, सितंबर, 1928, पृ० 927 ।

हो गई। जब-जब वे पीड़ित किए गए तब-तब वे दृढ़ साहस तथा प्रतिरोध की अजेय भावना के कारण अपराजेय बनते गए।[1]

10. ज़ाइन खाँ पर सिखों का आक्रमण, मई, 1762

मई मास में सिखों ने ज़ाइन खाँ से दो-दो हाथ करने का निश्चय किया। एक बड़ी संख्या में इकट्ठे होकर वे सरहिंद जा धमके।[2] वहाँ पर जो लड़ाई हुई उसमें उन्होंने ज़ाइन खाँ को हरा दिया तथा उस पर भारी कर लगा दिया। लाहौर से, बापू द्वारा, जो कि उस समय अहमदशाह अब्दाली के साथ था, दादा को लिखे गए जून, 1762 के एक मराठी पत्र द्वारा उस अभियान के बारे में हमें निम्न सूचना मिलती है, "मैंने सूचना दी थी कि सिखों ने सरहिंद के ज़िले में उत्पात मचा रखा है। अभी हाल में वहाँ के फौजदार ज़ाइन खाँ ने उन्हें 50,000 रुपए देकर उनके साथ शांति स्थापित कर ली है। जब सिख 10 या 12 कोस की दूरी तक वापिस चले गए तो ज़ाइन खाँ ने धोखे से उनके चंदावल के माल-असबाब को लूट लिया। उस पर सिख वापिस मुड़ गए तथा ज़ाइन खाँ के माल-असबाब को लूट लिया। उन्होंने उसके दीवान लक्ष्मीनारायण को भी लूट लिया। बाद में जम कर लड़ाई होने लगी। दोनों दल सरहिंद से 15 कोस की दूरी पर हरनूलगढ़[3] में लड़ रहे हैं। यह सबसे नया समाचार है।"[4]

11. सिखों का अमृतसर-दर्शन के लिए जाना, अगस्त, 1762 के लगभग

ज़ाइन खाँ की पराजय ने सिखों को और भी निर्भीक बना दिया। नदियों में बाढ़ आई थी तथा मौसम गर्म था इस कारण अब्दाली अपने सरदार की सहायता के लिए न आ सका था। इसलिए वे और भी उत्साहित थे। सबसे अधिक गर्मी तथा वर्षावाले जुलाई-अगस्त के महीनों का लाभ उठाने का उन्होंने निश्चय कर लिया तथा उन्होंने अपनी लूट-खसोट की हरकतें बढ़ा दीं और उस प्रदेश में अराजकता तथा अशांति फैला दी। सिखों का पीछा करने में अहमदशाह के घुड़सवार बेबस हो चुके थे। पंजाब के ज़मींदारों के दस्ते या तो सिखों के साथ आमने-सामने होकर लड़े ही नहीं और यदि कहीं कोई मुठभेड़ हुई भी तो सिखों ने उन्हें सरलता से ही पराजित करके मार भगाया। इस भाँति चारों ओर से सिख निडर हो गए,

---

[1]मालकाम, 102-3, देखें फोरेस्टर, i, 320।

[2]सरकार, ii, 490।

[3]शायद यह स्थान बहादुरगढ़ है। यह स्थान सरहिंद से 20 मील दक्षिण में तथा पटियाला से 5 मील पूर्व में है।

[4]राजवडे, vi, 384।

अतः, उन्होंने दिन-दहाड़े लगभग एक-एक हज़ार के दलों में अमृतसर के दर्शनों के लिए जाने का साहस किया। वे लाहौर के आस-पास भी मंडराने लगे। उसके चारों ओर के प्रदेश को उन लोगों ने तबाह कर दिया।[1]

12. सिखों ने दुर्रानी को चक्कर में डाल दिया

सिखों की इस प्रकार की साहसिक हरकतों से दुर्रानी इतना अधिक चिढ़ उठा कि वह खुद उनके विरुद्ध अभियान पर निकल पड़ा। परंतु सिख तत्काल अमृतसर के समीप के घने जंगलों में जाकर ओझल हो गए। इन चालों ने दुर्रानी को चक्कर में डाल दिया तथा उसने उनका पीछा करने के लिए सब दिशाओं में अपने अफ़गान सरदार भेज दिए। परंतु सिखों द्वारा फैलाई गई अव्यवस्था को रोकने में यह दस्ते बुरी तरह असमर्थ रहे। इन अभियानों के बीच यदि कोई सिख बंदी बन जाता तथा उसे निःशस्त्र होने की आज्ञा दी जाती तो वह बड़े साहस से वैसा करने से इंकार कर देता था। वह बड़े ज़ोर से सरेआम चिल्ला कर कहता कि वे तो उसके धर्म के एक अंग हैं। अब्दाली को और अधिक कष्ट पहुँचाने तथा अब्दाली द्वारा अमृतसर में उनके पवित्र भवनों के अपवित्र तथा नष्ट किए जाने के कुकृत्य पर अपना क्रोध प्रकट करने के लिए उन्होंने मुसलमानों की कब्रों तथा मकबरों को गिरा दिया। मस्जिदों का अस्तबल के रूप में प्रयोग किया तथा मुसलमानों और दुर्रानी को अपशब्द कहे।[2]

13. सिखों ने देश में अव्यवस्था फैला दी, अगस्त, 1762 के लगभग

उनके बिखरे दलों द्वारा किए गए हमले में चारों ओर समान सफलता प्राप्त करने के बाद जस्सासिंह अहलूवालिया ने संपूर्ण दल-खालसा को जालंधर-दोआब में ले जाने का निश्चय किया। वे उन गाँवों पर टूट पड़े जिन्होंने उनके प्रति शत्रुतापूर्ण रवैया अपनाया था। उन्होंने वहाँ के लोगों को लूट कर उनके घरों में आग लगा दी। रुपए-पैसे, घोड़ों, माल-असबाब तथा अनाज के रूप में बहुत अधिक माल लूट कर वे मालवा के रेगिस्तान की ओर चल दिए।

---

[1]शायद जुलाई में मिसकिन ने सरहिंद से सियालकोट और वहाँ से सरहिंद की वापिस यात्रा की थी। वह कहता है कि सिख बलवान बनते जा रहे थे। अफ़गान देश को तबाह करने पर जुटे हुए थे। आटा सब स्थानों पर बहुत महँगा हो चुका था। मिसकिन, 246–7; अहमद शाह, 887–88, तथा 983; सोहन लाल, भाग i का परिशिष्ट, 19।

[2]गणेश दास 201, 202।

मिसकिन जिसने यह घटना अपनी आँखों से देखी थी कहता है कि, "इस वर्ष के प्रथमार्ध (फरवरी-जून) में सब मार्ग फिर से खुल गए थे। डाकुओं तथा बटमारों का खतरा पूरी तरह समाप्त हो गया था। यह सब अहमदशाह के लाहौर में ठहरने के कारण हुआ था।" परंतु जुलाई के बाद संपूर्ण प्रांत में फिर अराजकता फैल गई। इसका फल यह हुआ कि सब प्रकार के यातायात तथा व्यापार के मार्ग रुक गए तथा शाह के अधीन जो भूभाग थे उनमें अव्यवस्था फैल गई।[1]

14. करनाल के समीप सिखों का शक्तिशाली दल के रूप में एकत्रित होना, 25 अस्गत से 24 सितंबर, 1762 तक

यह संभव प्रतीत होता है कि सिख शीघ्रतापूर्वक जालंधर दोआब में पीछे इसलिए हट गए कि अब्दाली समीप ही शिविर डाले पड़ा था। सतलज पार कर मालवा होते हुए वे करनाल तथा पानीपत के पास इक्ट्ठे हो गए जहाँ वे लोग 25 अगस्त से 24 सितंबर, 1762 तक एक माह शिविर डाले पड़े रहे।[2] अहमदशाह अब्दाली ने उत्तर भारत के शक्तिशाली लोगों के कारिंदों को एक-बार फिर लाहौर आमंत्रित किया। निमंत्रण पाकर दिल्ली के बादशाह के दूतों के रूप में नवाब याकूब अली खाँ तथा मुनीर-उद्-दौला दिल्ली से लगभग सितंबर माह के मध्य में चल पड़े। वे पानीपत तक गए थे कि उन्हें पता चला कि सिख सेनाएँ पास ही इक्ट्ठी हो गई हैं। इसका फल यह हुआ कि वे सोनीपत लौट गए।[3]

15. अमृतसर से सिखों को खदेड़ने में अब्दाली की असफलता, 17 अक्तूबर, 1762

चौबीस सितंबर को करनाल से हट कर सिख लाहौर की ओर चल दिए। स्पष्ट था कि वे दिवाली का त्यौहार अमृतसर में मनाना चाहते थे। उस समय तक अहमदशाह अब्दाली वापिस लाहौर आ गया था। ऐसा संभव प्रतीत होता है कि अक्तूबर के प्रारंभ में सिख लाहौर के आस-पास पहुँच गए थे। वे लोग वहाँ शाह द्वारा उनका पीछा करने के लिए भेजी गई सैनिक टुकड़ियों को लगातार परेशान कर रहे थे। बटाला का अहमद शाह हमें बताता है कि सिख लोग इतने निडर हो चुके थे कि वे अफ़गान सेना से 4 या 5 मील की दूरी पर उसके पार्श्व में मंडराते रहते थे।

---

[1]सोहन लाल, i, 158–9; मिसकिन, 244–7; सरकार, ii, 490–1।

[2]दिल्ली क्रानिकल, 192।

[3]वही 192–3; देखें रोहतक गज़ेटियर, 18।

सिखों ने अब कूप की अपनी पराजय के कलंक को धो डालने का निश्चय कर लिया। उस वर्ष दिवाली 17 अक्तूबर, 1762 को पड़ने वाली थी। उनका यह सबसे बड़ा त्यौहार था। यह नहीं उस दिन पूर्ण सूर्यग्रहण (खग्रास) भी था। शत्रु से लड़ कर अपनी जाति का सम्मान बनाए रखने के लिए तथा पंथ की सेवा में अपने प्राणों की आहुति चढ़ाने के लिए इससे और अधिक उपयुक्त अवसर की आशा नहीं की जा सकती थी। उनके पवित्र मंदिर के खंडहरों तथा अपवित्र किए गए सरोवर के दृश्य ने उन्हें अपनी जाति के लिए अधिकतम प्रयास करने तथा अपना जीवन बलिदान करने के लिए उत्तेजित कर दिया। मानव की श्रेष्ठ तथा हीनतम भावनाएँ अर्थात् सम्मान बनाए रखने तथा बदला लेने की भावनाएँ इस अवसर पर एक-दूसरे में बहुत मिल गई थीं। इन सबसे बड़ी बात यह थी कि हाल ही में प्रथम बार जमकर लड़ी गई लड़ाई में उन्हें जो अनुभव प्राप्त हुआ था उससे उन्हें मालूम हो गया था कि उनके अंदर कौन-से गुण हैं। इन सब के कारण उनका निश्चय बहुत दृढ़ हो चुका था। वे अब 60,000 के शक्तिशाली दल के रूप में अमृतसर की ओर चल पड़े। उनमें बहुतों के शरीरों पर हाल ही की लड़ाई में लगे घावों के निशान थे। वे लोग त्यौहार के केवल एक दिन पहले अमृतसर पहुँचे, "तथा उन्होंने शपथ ली कि वे शाह की सेना को काट फेंकने का हर प्रयत्न करेंगे" यदि उसने उन पर आक्रमण किया।[1]

उस समय अहमदशाह, अमृतसर से 30 मील दक्षिण में स्थित लाहौर में था। इस समय उसके पास विशाल सेना नहीं थी। इसका कारण कुछ सीमा तक तो यह था कि सिखों को छोड़कर उसे किसी अन्य भीषण शत्रु से भय नहीं था और सिखों को वह अधिक महत्व नहीं देता था। दूसरा कारण यह भी था कि पिछले वर्ष मराठों पर उसकी महान् विजय के कारण उसका सम्मान अपने शिखर तक पहुँच चुका था तथा सिखों के हृदयों को आतंकित करने के लिए वह इसे काफ़ी समझ रहा था और फिर आवश्यकता पड़ने पर वह अपने भारतीय मित्रों को, विशेषरूप से रोहिल्लों को, सिखों के विरुद्ध की गई किसी भी कार्रवाई में सहायता के लिए बिना किसी हिचकिचाहट के बुला सकता था।

परंतु इस अवसर पर अहमदशाह एकाएक चक्कर में आ गया। वह स्वप्न में भी यह नहीं सोच सकता था कि जिन सिखों को उसने हाल ही में कूप की लड़ाई में बुरी तरह हराया था, वे इतनी शीघ्रता से संभल जाएँगे तथा उसके पंजाब में रहते हुए भी, निकटवर्ती स्थानों में उसके विरुद्ध विद्रोह का झंडा खड़ा कर देंगे। अचानक उसे सिखों के एक शक्तिशाली दल का सामना करने के लिए

---

[1]ब्राउनी, ii, 25; (60,000 सिख सैनिकों की यह संख्या हमें फोरेस्टर, i, पृ० 322 से प्राप्त हुई है)।

तैयार होना पड़ा, और वह भी उस समय जब उसका कोई भारतीय साथी उसके साथ न था। वर्षा-ऋतु से पहले ही वे सब उसके पास से जा चुके थे। उसके सैनिकों की संख्या भी कम हो चुकी थी। उनमें से बहुत से तो कूप की लड़ाई में ही काम आ चुके थे तथा जो बच रहे थे उनमें से एक बड़ा दल काश्मीर की ओर गया हुआ था। और फिर सिखों की इच्छाओं का पता लगने के बाद उसे इतना कम समय मिला कि वह सरहिंद, मुल्तान तथा पंजाब के दूसरे भागों से अपने सरदारों को बुला भी नहीं सकता था। इस प्रकार अपने सीमित साधनों के साथ सिखों की उस भयंकर विपत्ति का सामना करने के लिए अहमदशाह अकेला पड़ गया।

शाह अपनी स्थिति की शिथिलता समझता था तथा इसीलिए उसने इस विपत्ति को राजनय के सहारे टालने का विचार किया। फलस्वरूप उसने शांति की बातचीत चलाने के लिए सिखों के पास अपना एक राजदूत भेजा। "परंतु इस व्यक्ति के सिखों के शिविर में पहुँचने पर उसके प्रस्ताव सुनने के स्थान पर सिखों ने उसे तथा उसके साथियों को लूटकर मार भगाया।" यह देख कर कि सिखों के साथ शांतिपूर्ण करार की कोई आशा नहीं है अहमदशाह तत्काल अमृतसर की ओर रवाना हो गया। सोलह अक्तूबर की शाम को उसने नगर के समीप अपना डेरा डाल दिया।

दूसरे दिन बहुत सवेरे ही सिखों ने अपनी सेनाएँ इकट्ठी कीं तथा अपने प्राणों की तनिक भी चिंता किए बिना उन्होंने शत्रु पर बहुत ज़ोर से चढ़ाई कर दी। अफ़गान भी उसी वीरता तथा उत्साह से लड़े तथा अपने समय के एशिया के सबसे बड़े सेनानायक के नेतृत्व में अद्भुत सैन्यसंचालन का परिचय दिया। परंतु बलिदान की धार्मिक भावनाओं द्वारा जाग्रत उत्साह के आगे किसी प्रकार की भी युद्ध चालें तथा सैनिक विज्ञान न टिक पाया। उषाकाल से काफ़ी रात तक भयंकर युद्ध चलता रहा। अंत में सिखों की आश्चर्यजनक गतिविधियों तथा उनके अटूट उत्साह के सामने अफ़गानों की हिम्मत तथा हौसले पस्त होने लगे। शशि विहीन अंधेरी रात्रि की भयंकर कालिमा के कारण युद्ध रोक देना पड़ा। दोनों सेनाएँ रात्रि में विश्राम के लिए अपने-अपने शिविरों की ओर लौट गईं। परंतु सुबह होने पर पता चला कि रात्रि के अंधकार से लाभ उठाकर शाह लाहौर भाग खड़ा हुआ है।[1]

---

[1]फ रेस्टर ने अपनी पुस्तक (ए जरनी फ्राम बँगाल टू इंग्लैंड) के भाग i, में पृष्ठ 321-22 पर लिखा है "सिखों ने अपने अभिलेखों में अफ़गानों के साथ हुए युद्ध का वर्णन किया है।" उस बात का वर्णन उसने इन शब्दों में किया है, "कहा जाता है कि यह घटना अक्तूबर, 1762 में हुई थी। उस समय अपना कोई त्यौहार मनाने के लिए 60,000 सिख घुड़सवार सैनिकों का एक दल अमृतसर

16. सिखों के विरुद्ध लक्खी-जंगल की ओर अहमदशाह का अभियान, नवंबर, 1762 के लगभग

सिखों ने अमृतसर की लड़ाई में अपना काम पूरा कर लिया तथा अपना उद्देश्य भी प्राप्त कर लिया था। उन्होंने अपने जातीय सम्मान तथा प्रतिष्ठा

के भग्नावशेषों में इकट्ठा हुआ था। आक्रमण की आशा में उन्होंने तय किया था कि यदि लड़ाई लड़नी पड़ी तो वे सब कुछ होम कर देंगे। उस समय लाहौर में टिका हुआ अहमदशाह एक शक्तिशाली दल लेकर अमृतसर की ओर बढ़ आया तथा उसने तत्काल सिखों के साथ लड़ाई शुरू कर दी। वे लोग बदले की आग से भड़के हुए थे। उनके धर्म के संस्थापकों की पवित्र भूमि उनके सामने थी। जिस शत्रु से उन्हें लड़ना था उसी ने वहाँ के स्मारकों को नष्ट कर दिया था। अतएव जो रक्तपात वहाँ सुबह से शाम तक हुआ उसमें सिखों ने भयंकर साहस तथा उत्साह का परिचय दिया। इसके कारण अंत में अहमदशाह को अपनी सेनाएँ पीछे हटानी पड़ीं तथा वह बिना कहीं रुके एकाएक लाहौर भाग गया। (देखें ब्राउनी, i., 25-6; अली-उद्-दीन, 125-6; हिस्ट्री आफ़ दी सिख्स, डी रोज़ारियों एंड कंपनी, 98)।

परंतु इस घटना के बारे में फारेस्टर और आगे लिखते हुए शंका भी प्रकट करता है :

"इस प्रकार की घटना को केवल तभी संभव माना जा सकता है जब यह मान लिया जाए कि इस घटना के घटित होने के पहले अहमदशाह की सेना विशेषरूप से कम हो गई थी। (कहा जाता है कि लड़ाई के दिन पूर्ण सूर्यग्रहण (खग्रास) लगा था।) पृ० 323।

मालकाम, 100–101 तथा सरकार, ii, 491, फुटनोट, इस अभिलेख की सच्चाई में विश्वास करने में हिचकिचाहते हैं। परंतु यदि सामान्य रूप से उस समय के सिख इतिहास की प्रमुख धारा का तथा विशेषरूप से घल्लूघारा के बाद की घटनाओं का अध्ययन किया जाए तथा यह ध्यान में रखा जाए कि इस अवसर पर अब्दाली की स्थिति कमज़ोर थी तो पाठक को विश्वास हो जाएगा कि इस प्रकार की सफलता की प्राप्ति सिखों की पहुँच के बाहर नहीं थी। आखिरकार, विश्व-इतिहास में ऐसे बहुत से उदाहरण मिलते हैं जिनमें अत्यधिक प्रतिकूल परिस्थितियों के होते हुए भी मानव इच्छाशक्ति ने चमत्कारपूर्ण कार्य कर दिखाए हैं। क्या हम इस भाँति के शक्तिशाली तथ्य को विस्मृत कर सकते हैं। जेम्स ब्राउनी ने इस घटना के लिए एक बाद की तिथि दी है पर हम फारेस्टर के आप्तवचन को स्वीकार करते हैं। उसने पंजाब का भ्रमण पहले किया था तथा उसके द्वारा किया हुआ सिखों का वर्णन भी ब्राउनी की अपेक्षा अधिक विस्तृत और आलोचनात्मक है।

के हनन का पूरा-पूरा बदला ले लिया था। अब्दाली को वापिस लाहौर भगाने के बाद वे लोग अब अफ़गानों के नवीन आक्रमण के भय से खुद भी लक्खी जंगलों की ओर भाग खड़े हुए।

काश्मीर पर दुर्रानी का अभियान सफल रहा था तथा उसका दल विजय के झंडे फहराते हुए वापिस आ गया (लगभग नवंबर)। शरद् झतु के प्रारंभ होते ही भारतीय मित्रों के प्रतिनिधि भी लाहौर पहुँचने लगे थे तथा नवंबर माह तक वे सब प्रांतीय राजधानी में एकत्रित हो गए थे। अब्दाली खुद भी अपने हाल ही के अति विश्वास तथा जल्दबाज़ी के कारण पछता रहा था। वह अपने धर्म तथा साम्राज्य के शत्रुओं को और बुरी तरह पराजित करने का अवसर खोज रहा था। अतः, उनका पीछा करने के लिए उसने एक और अभियान की तैयारी की। अहमद यादगार द्वारा किया गया उसका वर्णन यहाँ उद्धृत किया जा रहा है :—

"एक दिन शहंशाह शिकार के लिए लक्खी जंगल तथा मांझा के रेगिस्तान की ओर चले। उसने हुक्म दिया कि हर एक हिंदू को, जिसके सर पर बाल हों, जो कि सिखों की खास निशानी है, कत्ल कर दिया जाए। यह खबर सुनकर सिख भाग खड़े हुए तथा इधर-उधर छिप गए। विजयी सेनाएँ उनकी ओर भेजी गईं। एक दिन शिकारगाह पर सिखों का एक दल दिखाई पड़ा। एक दस्ता उन्हें बंदी बनाने के लिए नियुक्त किया गया। अचानक दूसरी ओर से (सिखों का) दूसरा दल आ धमका तथा शाह की सेनाओं से लड़ाई शुरू कर दी। बादशाह दुर्रानी हुक्का पी रहा था। ये बदमाश अंधाधुंध उसकी ओर बढ़े। कुछ पास पहुँचने पर एक सिख घुड़सवार अपने घोड़े पर शाह की ओर तेज़ी से झपटा। वीर बादशाह ने एक तीर अपनी कमान पर चढ़ाई तथा उस पर इस भाँति चलाया कि वह उसका सीना छेदता हुआ दूसरी ओर जा गिरा। दूसरे लोग उसके अनुचरों, खोजों तथा करावालों द्वारा मार डाले गए। बाकी भाग खड़े हुए।[1]

17. अहमदशाह का अफ़गानिस्तान के लिए प्रस्थान, 12 दिसंबर, 1762

शरद् के प्रारंभ में अहमदशाह की इच्छा पर दिल्ली से नाजिब-उद्-दौला तथा याकूब अली खाँ और शाहआलम द्वितीय के शिविर से मुनीर-उद्-दौला, आग़ा रज़ा तथा अब्दुल अहमद उसके पास पहुँच गए थे। खद दुर्रानी ने शाह-आलम को दिल्ली का बादशाह स्वीकार कर लिया तथा बादशाह की ओर से नाजिब तथा मुनीर-उद्-दौला से 40 लाख रुपए वार्षिक कर में प्राप्त करने

[1]तारीख-ए-सलातीन-ए-अफ़गानान, 172-3।

के बदले उसने वचन दिया कि वह बिना किसी प्रकार की सैन्य सहायता दिए बादशाह की सत्ता को भारतीय नरेशों द्वारा स्वीकार करने में अपने नाम का पूरा-पूरा सहयोग देगा।[1]

यह बंदोबस्त करने के बाद उसने पंजाब की गतिविधियों पर ध्यान दिया। सरहिंद प्रांत पर ज़ाइन खाँ को बनाए रखा गया। कांगड़ा के घमंडचंद को राजा की उपाधि से अलंकृत किया गया तथा व्यास और सतलज के बीच के पहाड़ी भूभागों पर उसके प्रशासन को पक्का कर दिया गया। जालंधर-दोआब सादत यार खाँ को दे दिया गया। अपर-बारी-दोआब की सरकार पर मुराद खाँ को नियुक्त किया गया। जहान खाँ की सत्ता उसके प्रांत पेशावर के अतिरिक्त सिंधु नदी से लेकर रावी तक बढ़ा दी गई। इसके साथ-साथ ही संपूर्ण प्रांत की सर्वोच्च कमान राजा काबुलीमल को सौंपी गई।[2]

अहमदशाह 12 दिसंबर, 1762 को लाहौर से अपने घर की ओर चल दिया[3] क्योंकि अफ़गानिस्तान में उसके राज्य में कुछ झगड़े उठ खड़े हुए थे और वहाँ उसकी उपस्थिति तत्काल आवश्यक थी।

रावी पार करते समय अहमदशाह के मार्ग में बहुत-सी रुकावटें डाली गईं। सिखों ने इतने समीप से उस पर आक्रमण किया कि "उसे, उनके दुस्साहस पर आश्चर्य हुआ तथा उसने उनकी ओर चकित होकर देखा।" अब्दाली अभी बहुत दूर नहीं गया था कि सिखों ने काबुलीमल को भयभीत कर दिया तथा लाहौर में अपनी सैनिक चौकी फिर से स्थापित कर दी।[4]

---

[1]बख्तमल, 99; सोहनलाल, i, 159; खुशवक्त राय, 195; काबुलीमल काबुल से आया एक ब्राह्मण था; हूगेल, 271; परंतु अहवाल-ए-अदीना बेग खाँ के लेखक के अनुसार वह कपूरखत्री था, 60 ख।

-फारेस्टर, i, 320, देहली क्रानिकल, 194।

[3]अहमद शाह, 895-6।

[4]देहली क्रानिकल, 194; सरकार, ii, 489।

दसवाँ अध्याय

सरहिंद प्रांत की विजय

[जनवरी, 1763—जनवरी, 1764]

1. सिखों की सैनिक सफलताएँ, जनवरी-मार्च, 1763 के लगभग

पंजाब से अब्दाली के चले जाने के बाद सिख लक्खी के पंजाब के जंगल से बाहर निकल आए तथा चारों ओर अशांति फैला दी। संपूर्ण दल-खालसा दो भागों में बँट गया। एक प्रभाग, जिसे 'बुड्ढा दल' (वरिष्ठ दल) कहते थे सुप्रसिद्ध जस्सा सिंह अहलूवालिया के अधीन था। इसमें अहलूवालिया, सिंह पुरिया, दल्लेवालिया करोड़ासिंधिया, निशानवाला तथा शहीदी नामक छः मिसलें थी। इस दल के लोग संपूर्ण प्रदेश में घूमते हुए अपने शत्रुओं को दंडित करने लगे। अपने भंडारों को भरने लगे तथा लोगों के हृदयों में आतंक का संचार करने लगे ताकि भविष्य में कोई भी उनका विरोध करने का साहस न करे। दूसरा प्रभाग जिसे तरुण दल (युवकदल) कहते थे हरिसिंह भंगी के नेतृत्व में था। इसमें रामगढ़िया, कन्हैया, सूकरचाकिया, भंगी, तथा नकाई की पाँच मिसलें थीं। ये लोग अमृतसर में टिके हुए थे। इन लोगों के सुपुर्द अमृत-सरोवर की खुदाई तथा सफ़ाई और पवित्र भवनों की मरम्मत का काम किया गया था।[1]

ऐसा प्रतीत होता है कि इसके बाद बुड्ढे दल ने लाहौर पर हमला किया ताकि अफ़ग़ानों और दूसरे उन मुसलमानों को दंड दिया जा सके जिन्होंने उनके कत्लेआम तथा उत्पीड़न में अहमदशाह का साथ दिया था। उन्होंने प्रांत की राजधानी में जो कुछ किया उसका वर्णन हम फारेस्टर के शब्दों में, जो इस घटना के बीस वर्ष पश्चात् लाहौर गए थे, यहाँ उद्धृत करते हैं :— 'अहमदशाह के प्रस्थान के शीघ्र बाद ही यह देखा गया कि सिख पंजाब के अपने विभिन्न अड्डों से बाहर निकल आए। उन्होंने शीघ्र ही चारों ओर तबाही मचा दी। कई विनाशकारी लड़ाइयाँ हुईं जिनमें अफ़गानों की पराजय हुई। उन्होंने लाहौर को घेर लिया तथा, यद्यपि यह आश्चर्यजनक लगता है, उन्होंने लाहौर नगर को अपने अधिकार में कर लिया। अपनी जाति के शत्रुओं के प्रति जिस वैरभाव की ज्वाला उनके हृदयों में निरंतर धधक रही थी उसके वशीभूत होकर उन्होंने

[1]मिसकिन, 247; रतनसिंह, 473।

हिंसात्मक कार्य किए। जिन मस्जिदों का पुनर्निर्माण कर लिया गया था या मुसलमानों द्वारा जिनको फिर से उपयोगी बना लिया गया था, उन सबका पूर्ण तिरस्कार तथा रोष के साथ विनाश कर दिया गया। ज़ंजीरों में बँधे अफ़ग़ानों के हाथों से सुअर के खून द्वारा उनकी नींवों को धुलवाया गया। पिछले वर्ष अमृतसर के जिस सरोवर को उन्होंने पाट दिया था, उसे उन्हीं से खुदवाया गया। यद्यपि सिख रोष से प्रेरित थे फिर भी उन्होंने अपने बदले की भावना को सीमित रखा था। यद्यपि अफ़ग़ानों द्वारा किए गए कत्लेआम तथा उत्पीड़न का उनके मन पर गहरा प्रभाव था फिर भी, यह कहा जा सकता है कि उन्होंने एक भी बंदी की निर्मम हत्या नहीं की।[1]

2. कसूर की लूट, मई, 1763 के लगभग

संपूर्ण सिख-दल 10 अप्रैल, 1763 को पड़नेवाले बैसाखी उत्सव को मनाने के लिए अमृतसर में इकट्ठा हुआ। अमृतसर में कसूर के कुछ ब्राह्मणों ने आकर हिंदुओं के प्रति कसूर के अफ़गानों के व्यवहार की बड़े कठोर शब्दों में शिकायत की। इसमें उसमान खाँ का विशेष रूप से ज़िक्र किया गया था। इस व्यक्ति ने उनमें से किसी एक की सुंदर पत्नी को उड़ा कर उसे इस्लाम धर्म में दीक्षित कर लिया था।[2]

'तरुण दल' का मुखिया हरिसिंह भंगी ब्राह्मणों की सहायता करने के लिए तत्काल तैयार हो गया। दूसरे लोगों ने विभिन्न कारणों से उसकी बातों का विरोध किया। पठान लोग बहुत शक्तिशाली थे। उनके बारह दुर्गों[3] में हथियार तथा

---

[1]फोरेस्टर, i, 321, प्रतिष्ठित शाह की वापसी पर वह प्रगतिशील जाति जंगलों तथा पहाड़ों से बाहर आ गई तथा मुसलमानों की संपत्ति को लूटने पर जुट गई। उन्होंने उनकी मस्जिदों तथा मकबरों को अपने घोड़ों के अस्तबलों में परिवर्तित कर दिया तथा मुसलमान गाँवों में अज़ान आदि की इस्लामी चलन को रोक दिया तथा उन्हें यातनाएँ दी गईं, तारीख-ए-सलातीन-ए-अफ़ग़ानान, 173।

[2]बूटे शाह, 223क; रतनसिंह, 473-4; ज्ञान सिंह 797-8।

[3]कसूर का नगर किलेबंदी से मुक्त गाँवों का एक मिलाजुला स्वरूप था। उनमें से प्रत्येक का अपना एक अलग कोट अर्थात् किला था। उन सबका अलग-अलग नाम था :—

1. कोट ख्वाजा हुसैन खाँ 2. कोट ख्वाजा गुलाम मुही-उद्-दीन-खाँ, 3. कोट उसमान खाँ, 4. कोट बदर-उद्-दीन खाँ, 5. पीर-दा-कोट, 6. कोट मुराद खाँ, 7. कोट गढ़ी, 8. कच्चा कोट, 9. कोट रूकान-उद्-दीन-खाँ, 10. कोट हलीम खाँ, 11. कोट आज़म खाँ, 12. ब्रह्म-उद्-दीन खाँ, (पंजाब

गोला-बारूद भरे पड़े थे। यह बात भी पक्की थी कि दूसरे अफ़गान उनकी सहायता में आ जुटेंगे। परंतु हरिसिंह दृढ़ था। कुछ समय बाद चरतसिंह ने भी उसका समर्थन किया, परंतु उसने इस बारे में पवित्र 'ग्रंथ' से शकुन लेने का प्रस्ताव भी रखा। पुस्तक यों ही खोल दी गई तथा ऊपर की पंक्तियाँ पढ़ी गईं। उनमें कहा गया था कि प्रत्येक को अपने वचनों पर रहना चाहिए।[1]

इसके फलस्वरूप तरुण दल अमृतसर से चल पड़ा। प्रत्येक पड़ाव पर नए-नए सैनिक उसमें आकर भरती होते गए। अंत में जब वे कसूर पहुँचे तो उनकी संख्या 24,000 तक जा पहुँची थी। सिखों के कुछ गुप्तचर दुकानदारों तथा व्यापारियों के भेष में कसूर पहुँच गए थे। उन्होंने समाचार दिया कि सिखों की हरकतों तथा इच्छाओं से पूरा का पूरा शहर बेखबर है। उन्होंने यह भी सूचित किया कि अत्यधिक गर्मी के कारण अफ़गान सारा दिन तलघरों में व्यतीत करते हैं। इसलिए सिखों ने भरी दोपहरी में नगर में प्रवेश किया तथा लोगों पर अचानक हमला किया। नगर के दरवाज़ों पर सिखों ने अपने पहरेदार तैनात कर दिए तथा उन्हें बंद कर दिया। संचार के सब साधन पूरी तरह काट दिए गए तथा सिखों ने नगर में लूट-मार मचा दी। उसमान खाँ अपने 500 साथियों के साथ जान से मार डाला गया तथा वह ब्राह्मण महिला अपने असली पति को सौंप दी गई। पठान मुखियों का सरदार गुलाम मुही-उद्-दीन-खाँ लड़ता-लड़ता मारा गया। उसका भतीजा हामिद खाँ सरदार झंडासिंह के पैरों पर गिर पड़ा तथा चार लाख रुपए देकर प्राणों की भीख माँगने लगा। संपूर्ण नगर को लूटकर जला दिया गया। सोने, चाँदी, गहनों, जवाहरों तथा मोतियों के इतने अधिक भंडार उनके हाथों लगे कि वे सब अमीर बन बैठे।[2]

नोट्स एँड क्वैरीज़, मई 1884, पृ० 91; अक्तूबर 1885, पृ० 8 लाहौर डिस्ट्रिक्ट गजेटियर पृ० 196 में दिए गए नामों तथा इनमें थोड़ा-सा अंतर है)।

[1]रतनसिंह, 476, ज्ञान सिंह, 802।

[2]बूटे शाह, 223 क; अहमद शाह, 491-92, यह कहा जाता है कि जस्सासिंह रामगढ़िया को इतना अधिक सोना, जेवरात, जवाहरात तथा मोती मिले थे कि उनको चार बलवान पुरुष एक बहुत बड़े पलंग पर रख कर ले जा सके थे। यह खजाना उसने अमृतसर के पास के जंगल में गाड़ दिया था। परंतु बाद में वह उस स्थान को भूल गया तथा सदैव के लिए वह उसके हाथों से जाता रहा।

रामगढ़िया तथा कन्हैया की मिसलें आपस में मिलकर काम करती थीं, तथा लूट का माल बराबर-बराबर बाँट लेती थीं। परंतु इस अवसर पर जस्सासिंह अकेला ही सारी लूट डकार गया। इसके फलस्वरूप दोनों मुखियों में मनमुटाव हो गया। रतनसिंह, 483; ज्ञान सिंह, 805।

3. जालंधर दोआब का रौंदा जाना, जून, 1763 के लगभग

हम यह बता चुके हैं कि केवल पाँच मिसलें ही, जिन्हें तरुण दल के नाम से जाना जाता है, कसूर आई थीं। दूसरी छः मिसलें (बुड्ढा दल) जस्सासिंह अहलूवालिया के नेतृत्व में पूर्व की ओर बढ़ गईं तथा व्यास नदी को पार करके वे लोग जालंधर दोआब में घुस गए। उस समय सादत यार खाँ वहाँ का सूबेदार था। वह इतना अधिक आतंकित हो उठा था कि वह अपनी राजधानी से हिला तक नहीं, यद्यपि सिखों ने जालंधर के आस-पास के भूभागों को वीरान कर दिया था। लोग अपने गाँवों तथा नगरों की दीवारों में बंद हो गए। अब सिखों ने अपने पुराने स्थानों पर कब्ज़ा जमा लिया तथा चौमासा (जून से सितंबर के वर्षाकालीन चार मास) उन्होंने अपने प्रदेशों का संगठन करने तथा पास-पड़ोस में और अधिक भूभाग प्राप्त करने में लगाया।[1]

4. चिनाब के तट पर जहान खाँ की पराजय, नवंबर, 1763 के मध्य में

दिवाली का त्यौहार समीप आने पर (नवंबर 4) सिख देश के हर भाग से अमृतसर आने लगे। उन्होंने सरोवर साफ़ कर लिया था जिसमें अब वे स्नान कर सकते थे। परंतु अहमदशाह दुर्रानी के आसन्न आक्रमण को ध्यान में रखकर उन्होंने हरिमंदिर के निर्माण को स्थगित कर दिया था।

जब वे अपना त्यौहार मनाने में मग्न थे तो समाचार मिला कि अहमद-शाह दुर्रानी का सिपहसालार जहान खाँ पेशावर से चल पड़ा है तथा अटक के स्थान से सिंधु नदी को पार कर रहा है। आक्रांता का सामना करने के लिए सिख तैयार हो गए तथा मार्ग में ही उससे भिड़ने के लिए वे आगे चल पड़े। अभी जहान खाँ ने वज़ीराबाद के स्थान से चिनाब को पार किया ही था कि सिख उस पर टूट पड़े तथा उसे बुरी तरह हरा दिया। यह घटना नवंबर, 1763 के मध्य के लगभग की है।

वह सियालकोट की ओर भाग खड़ा हुआ तथा वहाँ के दुर्ग में पहुँच कर उसने उसके द्वार बंद कर लिए। सिखों ने उस स्थान को जा घेरा। अब छुटपुट लड़ाई आरंभ हो गई। एक दिन लड़ते समय जहान खाँ का घोड़ा गोली का शिकार हुआ तथा उसका सवार ज़मीन पर आ गिरा। सब सिख अपने गुरु का नाम लेकर एक साथ चिल्ला उठे, 'हमने जहाना (जहान खाँ) को मार गिराया है।' इसके बाद उन्होंने अपनी-अपनी म्यानों से तलवारें निकाल लीं तथा शत्रु पर जा टूटे। अफ़गानों के पाँव उखड़ गए। जहान खाँ पेशावर की ओर भाग खड़ा हुआ। उधर उसकी सेना के अनेक वीर मौत के घाट उतार दिए गए। जहान खाँ का संपूर्ण शिविर

---

[1]बख्त मल, 99; सोहन लाल, i, 160; शमशीर खालसा, 107।

विजेताओं के हाथों में आ गया और चूँकि उन दिनों के सिख महिला वर्ग से पूरी तरह दूर रहते थे, उन्होंने उसके परिवार के सदस्यों को सुरक्षित जम्मू[1] पहुँचवा दिया।

5. मलेरकोटला का विध्वंस, दिसंबर, 1763 के लगभग

नवंबर के अंत तक सिख वापस अमृतसर पहुँच गए तथा धन्यवाद की धार्मिक रस्में पूरी करने के लिए कुछ दिन वहीं ठहरे रहे। इस अवसर पर उनके कुछ सहधर्मी मालवा से उनके पास यह प्रस्ताव लेकर आए कि खालसा के प्रति नवाब के विश्वासघात के कारण उन्हें मलेरकोटला पर आक्रमण करना चाहिए। इस प्रस्ताव पर सविस्तार वाद-विवाद किया गया। अंत में प्रस्ताव के पक्ष में 'गुरुमत' पारित कर दिया गया।[2]

जस्सासिंह अहलूवालिया के नेतृत्व में सिखों का एक शक्तिशाली दल मालवा के भूभाग की ओर चल दिया। वे लोग अचानक मलेरकोटला की चहारदिवारी के बाहर प्रकट हुए तथा उस स्थान को उन्होंने घेर लिया। भीखन खाँ बड़ी बहादुरी से अपने कुछ घुड़सवारों तथा पैदलों को लेकर किले के बाहर आया तथा सिखों पर टूट पड़ा। एक गोली आकर उसके सीने पर लगी तथा वह तत्काल उसी स्थान पर धराशायी हो गया। अब मलेर को दूसरी बार लूटा गया। सारा शहर भूमिसात् कर दिया गया तथा बहुत-सा लूट का माल विजेताओं के हाथ लगा।

6. मोरांडा की लूट तथा कत्लेआम, जनवरी, 1764 के लगभग

मलेरकोटला के विनाश के बाद सिख और शिकार ढूँढ़ने लगे। उनमें से किसी ने सुझाव दिया कि खेरी के गंगू ब्राह्मण तथा मोरांडा के जानी तथा मानी रंघड़ों[3] को उनके विश्वासघात के कारण दंड देना चाहिए। उन्होंने गुरु गोविंद सिंह

---

[1]रतनसिंह, 467।

[2]बख्तमल, 99-100 देखें गोश-ए-पंजाब, 80; ब्राउनी, ii, 24; सोहन लाल, i, 160-1।

[3]राजपूत माताओं तथा मुसलमान पिताओं की मूल संतान को रंघड़ का नाम दिया गया था। ये आपस में विवाह करते हैं। परंतु यदि कोई रंघड़ अपनी जाति के बाहर विवाह करता है तो वह उप-रंघड़ बन जाता है। हिंदू रंघड़े भी होते हैं जो कि मूल रूप से राजपूत पिताओं तथा मुसलमान माताओं की संतान थे। इनके उप-रंघड़ भी उसी तरह बनते हैं। पंजाब नोट्स तथा क्वैरीज़, मई, 1884, पृ० 90।

की माँ माता गूजरी तथा उसके दो छोटे बच्चों को सरहिंद के सूबेदार के हवाले किया था। इसका फैसला करने के लिए मुखियों की एक सभा बुलवाई गई। घरूण गाँव के दलसिंह तथा रणसिंह और सालौंडो गाँव के सिखों ने अत्याचारियों को दंड देने के लिए दल पर ज़ोर डाला। जस्सासिंह अहलूवालिया इस प्रकार के प्रस्तावों को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं था। उसे भय था कि सरहिंद का ज़ाइन खाँ, जिसके प्रदेश में वे गाँव बसे हुए थे, अपनी प्रजा की सहायता के लिए आएगा तथा उस स्थिति में हो सकता है वे अपने उद्देश्य को प्राप्त न कर सकें। परंतु बहुमत अभियान के पक्ष में था, इसीलिए जस्सासिंह ने उसके सामने अपना शीश नवा दिया।

वे लोग पहले खेरी गाँव की ओर बढ़े। गाँव घेर लिया गया तथा गंगू ब्राह्मण व उसके परिवार की खोज की गई। एक-एक करके उन सब को तलवार से काट कर फेंक दिया गया। इसके बाद उन्होंने मोरंडा की ओर ध्यान दिया (इस स्थान को बघानवाला भी कहते थे)। कुछ एक भेदिए आगे-आगे भेजे गए। जब ये सिख गाँव के समीप पहुँचे तो रंघड़ों ने उनका बहुत अनादर किया। उनका मजाक उड़ाया गया तथा उन पर अनेक प्रकार से फबतियाँ कसी गईं।[1]

परंतु जब उन्हें पता चला कि उनके पीछे-पीछे संपूर्ण खालसा दल चला आ रहा है तो उनके होश-हवास उड़ गए तथा वे लोग शीघ्रता से अपने शहर में घुस गए। नगर के द्वार बंद कर लिए गए तथा उन्होंने खाई तथा दीवारों के पीछे जाकर शरण ली।

चरतसिंह ने सरहिंद की ओर जाने वाले मार्ग पर अपनी सेना तैनात कर दी। इस प्रकार वे उधर से आनेवाली सहायता पर रोक लगाना चाहते थे। इधर दूसरे सिख खाई में उतर गए तथा फिर दीवारों पर जा चढ़े। उनमें से बहुत-से जो कि तारासिंह की मिसल से संबंधित थे नगर में प्रवेश कर गए तथा द्वार रक्षकों को काट फेंकने के बाद उन्होंने द्वार खोल दिए। अब बाकी बचा दल भी आ पहुँचा। घरुण गाँव के सिखों ने आक्रमण की अगुआई की। वे लोग वहाँ के गली-कूचों तथा लोगों से भली-भाँति परिचित थे। वे लोग सीधे जानी खाँ तथा मनी खाँ के घरों की ओर बढ़ गए तथा उन्हें उनके परिवार के और सदस्यों के साथ मौत के घाट उतार दिया। इसके बाद वहाँ के निवासियों का कत्लेआम शुरू हुआ। महिलाओं, बच्चों, बूढ़ों और हिंदुओं को छोड़कर किसी को भी न छोड़ा गया।

इसके बाद पास ही बसे कोरली नामक गाँव पर धावा बोला गया। इस गाँव में मोरंडा के निवासियों के रिश्तेदार रहते थे। यही नहीं, ज़ाइन खाँ का

---

[1]विस्तार के लिए कृपया देखें, रतनसिंह, 467-8; ज्ञानसिंह, 832।

दीवान लक्ष्मीनारायण जो लगान वसूल करने के लिए निकला था, कोरली में ही ठहरा था। इसलिए सिख उस गाँव पर टूट पड़े तथा दीवान के संपूर्ण खज़ाने को लूट लिया।

ज़ाइन खाँ अपनी राजधानी में ही था। सिखों की लूटमार तथा मारकाट के समाचार उस तक पहुँच चुके थे। परंतु वह इतना अधिक आतंकित हो उठा था कि वह अपने स्थान से हिला तक नहीं। यह अनुभव करते हुए कि अंत में सिख उसकी राजधानी पर भी आक्रमण करेंगे उसने पटियाला के आलासिंह से बातचीत प्रारंभ कर दी। उसने उससे कहा कि वह सिखों को इस बात के लिए मनाए कि वे शानोशौकत से जीने के लिए उससे जागीरें लेकर उसके प्रदेश से हट जाएँ। आलासिंह ने अपने कारिंदे नानू सिंह गरेवाल को सिख सरदारों के पास भेजा। परंतु उन्होंने शांति की प्रत्येक शर्त को ठुकराते हुए कहा, 'हम सिंह हैं तथा ज़ाइन खाँ एक तुर्क है, दोनों के लिए एक होकर रहना असंभव है। खुद सत्गुरु ने हमें साम्राज्य प्रदान किया है तथा हम उसे अपने शीशों का बलिदान चढ़ा कर जीत रहे हैं।[1]

7. सरहिंद का पतन, 14 जनवरी, 1764

मांझा के जाटों में से लगभग प्रत्येक ने सिख धर्म स्वीकार कर लिया था। अब मालवा के जाटों की बारी आई थी। लूटमार के लालच से सरहिंद प्रांत के हज़ारों जाट किसानों ने सिख धर्म स्वीकार कर लिया था। आलासिंह भी अपने फुलकियाँ दल के साथ इस अभियान में मांझा सिखों का साथ देने के लिए सहमत हो गया। सरहिंद के घेरे के समय दल-खालसा की संपूर्ण शक्ति लगभग 50,000[2] थी। दूसरी ओर पिछले कुछ समय से ज़ाइन खाँ थिति लगातार गिरती जा रही थी। दूसरी ओर अफ़गानों की ही तरह उसमें न तो प्रशासन की योग्यता थी और न ही सच्चरित्रता। इस संबंध में समकालीन लेखक मिसकिन ने, जिसने केवल एक वर्ष पहले ही उसकी नौकरी छोड़ी थी, लिखा है:— 'सरदार ज़ाइन खाँ की सरकार के तौर-तरीके बदल चुके थे। वह अपने चरित्र तथा आचरण के नियमों को त्याग चुका था। उसने अपने राजस्व-अधिकारियों तथा सैनिकों को वेतन देना बंद कर दिया था। उसने अपने प्रांत के गाँवों को अंधाधुंध लूटना प्रारंभ कर दिया। इसी लूट के माल में से एक भाग वह अपने नौकरों को उनके बकाया वेतन की अदायगी के रूप में दे देता था। यह भाग उनके हक का एक चौथाई भी नहीं हुआ करता था। पहाड़ी राजाओं की साँठ-गाँठ में वह बेशुमार

---

[1]रतनसिंह, 467-73; ज्ञानसिंह, 832-4।

[2]ज्ञानसिंह, 841।

दौलत इकट्ठी करने की फिक्र में था। इस कुशासन का फल यह हुआ कि भूखे-मरते उसके सेनानायकों तथा सैनिकों ने उसकी नौकरी छोड़-छोड़कर रोटी की तलाश में गंगा दोआब में नाजिब-उद्-दौला की सेवा में जाना आरंभ कर दिया। ज़ाइन खाँ के लालच तथा कुप्रशासन से मिसकिन इतना अधिक निराश हो चुका था कि वह सन् 1763 के प्रारंभ में ही उसे छोड़कर चल दिया। कासिम खाँ तथा मुर्तजा खाँ मारीच नामक उसके दो और अधिकारियों ने भी यही मार्ग अपनाया।[1]

ज़ाइन खाँ ने यह महसूस कर लिया था कि सिखों के साथ अंतिम संघर्ष का समय आ पहुँचा है। वह घबराया हुआ था क्योंकि उसे किसी ओर से भी किसी भाँति की सहायता की आशा न थी। अहमदशाह दुर्रानी कंधार में था तथा उसे इतनी शीघ्रता से नहीं बुलाया जा सकता था। उसका मित्र तथा मलेरकोटला का नवाब उस समय तक मर चुका था। जालंधर दोआब में सादत यार खाँ के पास किसी प्रकार की भी अच्छी सेना नहीं थी। उसके अत्याचार के कारण स्थानीय प्रमुख सरदार भी उसके विरोधी बन चुके थे। लाहौर का सूबेदार काबुलीमल पर-कटे पक्षी के समान था क्योंकि उसके साधन बहुत कम थे। जाइन खाँ को अपने सीमित साधनों पर निर्भर रहकर निर्भय, साहसी तथा उत्साहित सिखों का सामना अकेले करना था। सिखों की संख्या भी अधिक थी।

सिख तीन प्रभागों में बँटकर अपने-अपने शिविरों में पड़े हुए थे। जस्सासिंह के नेतृत्व में बुड्ढे दल की छः मिसलें भगनपुर में टिकी हुई थीं। तरुण दल की पाँचों मिसलें पंजा में थीं। फुलकियाँ मिसलें अभी पटियाला में ही ठहरी हुई थीं। इस स्थिति की ज़ाइन खाँ को सूचना दी गई तथा उसने उनकी बिखरी स्थिति से लाभ उठाने का निश्चय कर लिया। एक रात वह अचानक सरहिंद के बाहर आ गया तथा पीर ज़ाइन खाँ मुनैरा नामक एक गाँव के पास (सरहिंद से 7 मील पूर्व में) उसने तरुण दल पर धावा बोल दिया।

सौभाग्य से सिखों ने पिछली रात ही सरहिंद पर संगठित रूप से चढ़ाई करने का निश्चय किया था। उस समय तक उनके तीनों प्रभाग अपने-अपने शिविरों से चल भी चुके थे। जाइन खाँ के आक्रमण के समाचार तत्काल दोनों दूसरे दलों तक पहुँचा दिए गए। थोड़े ही समय में उन्होंने आकर ज़ाइन खाँ को चारों ओर से घेर लिया तथा भाग निकलने के उसके सब मार्ग बंद कर दिए। इस प्रकार ज़ाइन खाँ उनके चंगुल में फँस गया। दो साल पहले सिख भी इसी भाँति फँसे थे।

---

[1]मिसकिन, 250, 263; सरकार, ii, 491-2।

ज़ाइन खाँ लड़ने के लिए मजबूर हो गया। उसने यह भी देखा कि स्थिति का सामना करना उसके बस के बाहर की बात है। रात भर तो वह किसी प्रकार अपनी स्थिति जमाए रहा। सुबह होते ही उसने भाग निकलने के लिए एक युक्ति अपनाई। तोपें, जंबूरके तथा तोड़ेदार बंदूकें देकर उसने अपने दस्ते सिखों की ओर भेजने शुरू किए। इस युक्ति द्वारा वह सिखों का ध्यान दूसरी ओर लगा कर नौ-दो ग्यारह हो जाना चाहता था। उसे अपनी इस योजना में कुछ अंशों तक सफलता भी मिली। तरुण दल तो सचमुच माल-असबाब पर टूट पड़ा तथा लूटपाट में लग गया। परंतु जस्सासिंह के नेतृत्व में काम कर रहे बुड्ढे दल ने उसे थोड़ी दूर जाने के बाद ही जा घेरा।[1]

कुछ देर तक तो घेरा डालने वालों को ज़ाइन खाँ चकमा देता रहा परंतु निकलने के प्रयत्न में ही गोली लगने से मारा गया। उसके अफ़गान सैनिक आतंकित होकर चारों दिशाओं में भाग खड़े हुए। उनका बड़ी सरगर्मी के साथ पीछा किया गया। उन्हें अंधाधुंध काट-काट कर फेंक दिया गया। इस प्रकार सिखों को यह महान् सफलता बिल्कुल अप्रत्याशित रूप से हाथ लगी। वे इस ओर इस उद्देश्य से नहीं आए थे। कहा जाता है कि यह बात 4 माघ, संवत्, 1820 (14 जनवरी, 1764) के दिन घटी थी।[2]

इसके बाद सिखों ने सरहिंद नगर पर धावा बोल दिया। नागरिकों के थोड़े से प्रतिरोध के बाद सिखों ने उसे अपने अधिकार में कर लिया। अब उन्होंने द्वार बंद कर दिए तथा भाग निकलने के सब मार्ग रोक दिए। बहुत-से सिखों ने वहाँ के प्रत्येक घर पर कब्ज़ा जमा लिया। लोगों से नगदी, सोना, चाँदी, तथा गहने आदि छीन लिए गए। गुप्त खज़ानों की खोज में घरों के फर्श उखाड़ डाले गए तथा छतें तोड़ डाली गईं। बच्चों, बूढ़ों तथा हिंदुओं को छोड़कर प्रत्येक पुरुष को तलवार के घाट उतार दिया गया। नगर के एक भाग में आग लगा दी गई तथा बहुत से मकानों को धूल में मिला दिया गया।

इसके बाद वे लोग किले की ओर बढ़े। जिन दीवारों में गुरु के पुत्रों को जिंदा चुन दिया गया था उन सब को भूमिसात् कर दिया गया। उस विशेष

---

[1]रतनसिंह, 482-5।

[2]पंजाब का इतिहास लिखने वाले सभी आधुनिक इतिहासकार सरहिंद के पतन का समय दिसंबर, 1763 निर्धारित करते हैं। किसी भी समकालीन लेखक के अभाव के कारण मैंने रतनसिंह का अनुकरण किया है। उसका पिता उस अवसर पर उपस्थित था। उसके द्वारा दिया गया तिथि-क्रम आमतौर से ठीक ही होता है। प्राचीन पंथ परकाश, 501।

स्थान पर उन्होंने एक चबूतरा बनाया तथा वहाँ ग्रंथ साहब का पाठ करने के लिए एक ग्रंथी को नियुक्त कर दिया। इसके बाद उस स्थान पर एक गुरुद्वारे का निर्माण किया गया तथा उसे फतेहगढ़ का नाम दिया।[1]

8. सरहिंद के राज्यक्षेत्र का विभाजन, जनवरी-फरवरी, 1764

ज़ाइन खाँ के पतन के बाद सरहिंद का 200 मील लंबा तथा 160 मील चौड़ा मैदानी इलाका सिखों के हाथ में आ गया। यह भूभाग पूर्व में सिरमूर की पहाड़ियों तथा यमुना से लेकर पश्चिम में भावलपुर की रियासत तक तथा उत्तर में सतलज नदी से लेकर दक्षिण में हरियाना तथा रोहतक तक फैला हुआ था। इसकी वार्षिक मालगुज़ारी लगभग साठ लाख रुपयों की थी। एक मिसलदार के अधीन रहनेवाले प्रमुख सिख सरदार जो कि उप-दलों का नेतृत्व करते थे, विभिन्न दिशाओं में तत्काल बिखर गए। इन लोगों ने अपनी शक्तिभर जो कुछ भी उनके हाथ लग सका उसे हथिया लिया। ये लोग, गाँव के मुखिया से अधीनता स्वीकार करने के चिह्न के रूप में कुछ धन या गुड़-शक्कर या फिर रोटियों की माँग करते थे। प्रत्येक गाँव में अपने अनुचर या अनुचरों के पास इनमें से कुछ चिह्न रखकर वे शीघ्रता से अगले गाँव की ओर बढ़ जाते थे। परंपरा से चली आ रही यह बात अभी भी सुनने में आती है कि लड़ाई जीतने के बाद सिख किस भाँति बिखर गए थे। विभिन्न गाँवों पर यह चिह्न अंकित करने के लिए कि वे उसके हो गए हैं, प्रत्येक घुड़सवार दिन-रात सफ़र करके विभिन्न गाँवों में निशान के रूप में अपनी पेटी, म्यान, कपड़े तथा दूसरा साज़-सामान छोड़ कर आगे

---

[1]मिसकिन, 263; चहर गुलज़ार शुजाई, 531 ख; ब्राउनी, ii, 24; बख्तमल; 100; सोहन लाल, i, 161; रतनसिंह, 499-506; अली-उद्-दीन, 126 क; ज्ञानसिंह, 841-52।

उन लोगों में अभी भी प्रचलित एक प्रथा को देखते हुए उस नगर के प्रति सिखों की घृणा का अंदाज़ा लगाया जा सकता है। एक सिख के लिए यह बड़े गौरव की बात मानी जाती है कि वह वहाँ अभी भी खड़ी किसी विच्छिन्न दीवार से तीन ईंटें निकाल कर उन्हें सतलज या यमुना में प्रवाहित कर दे। इस प्रकार अंतिम गुरु की यह भविष्यवाणी पूरी करे कि सरहिंद का नगर अपनी नींवों सहित उजड़ जाएगा तथा उसकी ईंटें सतलज में जा गिरेंगी। पटियाला के महाराजा ने सन् 1867 में सरहिंद का मलवा नार्थ वेस्टर्न रेलवे कम्पनी को बेच दिया था इसके फलस्वरूप वहाँ की ईंटें सतलज के पार ले जाई गई थीं तथा उनका प्रयोग सड़क बनाने के काम में किया गया था। ज्ञानसिंह, 850; हिस्ट्री ऑफ दी पंजाब, अज्ञात, i, 221; हूगेल 271।

बढ़ता चला जाता था। ऐसा वह तब तक करता चला जाता जब तक कि वह लगभग नग्न न हो जाता था।[1]

इस बात को समझने के लिए कि ज़ाइन खाँ की हार के पश्चात् कैसे यह संपूर्ण भूभाग बिना तलवार उठाए ही सिखों के हाथों में चला गया दो महत्त्वपूर्ण तथ्यों को समझ लेना चाहिए। पहली बात तो भौगोलिक स्थिति से संबंधित है। एक ओर पर्वतमालाओं के फैले होने तथा दूसरी ओर राजपूताना मरुस्थल के सीमावर्ती विशाल जंगल होने के कारण सरहिंद ज़िला ऐसा केंद्रीय स्थान था, जिसमें से होकर प्रत्येक ऐसे हमलावर को भारत की युद्धस्थली पानीपत तक पहुँचने के लिए, गुज़रना पड़ता था जिसका अंतिम लक्ष्य दिल्ली होता था। इस प्रकार उत्तरी भारत पर होनेवाले प्रत्येक महत्त्वपूर्ण अभियान का प्रभाव इस क्षेत्र पर पड़ता था। अतः, इस भूखंड के लोग, विशेष रूप से वे लोग जो हमलावरों के मार्ग में ही पड़ते थे, इतने अधिक निरुत्साहित हो चुके थे कि वे कठिनाई में प्रतिरोध करने की शक्ति खो चुके थे तथा अवश्यंभावी के सामने सिर नवा लेने का रवैया तो अब उन्हें विरासत में ही मिल चुका था।[2]

दूसरी ओर इस प्रदेश के लोगों के चित्त को सिखों ने आंदोलित कर दिया था। इस प्रदेश के निवासियों को सबसे पहला प्रत्यक्ष अनुभव गुरु तेग़बहादुर के समय हुआ था। वे सतलज के कुछ मील उत्तर में होशियारपुर ज़िले में स्थित मक्खोवाल के अपने प्रधान केंद्र से चल कर इस प्रदेश में अपने चेले बनाने के लिए प्रायः भ्रमण किया करते थे। उनके पुत्र तथा उत्तराधिकारी गुरु गोविंद सिंह ने पहाड़ियों की तराई में किलों की एक लड़ी स्थापित कर उस ज़िले के संपूर्ण पूर्वी भाग पर अपना सिक्का जमा लिया। गुरु गोविंद सिंह ने पहाड़ी राजाओं तथा मुग़लों से लड़ाइयाँ लड़ीं तथा अपनी विजयों द्वारा उन्होंने लोगों के दिल दहला दिए। इसके थोड़े दिनों पश्चात् इसी भूभाग में बंदा ने अपने वीरतापूर्ण कारनामे दिखाए। उसने सधौरा के निकट ही लोहगढ़ का दुर्ग बनवाया। उसने अपनी शानदार और लगातार विजयों द्वारा लोगों को इतना दबा दिया था कि यदि उसकी सेना का एक मेहतर भी बंदा के प्राधिकार-पत्र के साथ अपने गाँव में आ पहुँचता तो बिना किसी प्रतिरोध के वे उसका स्वागत एक शासक के रूप में करते थे। अब हम समझ सकते हैं कि क्यों इतनी सरलता से इस प्रदेश पर उनका

---

[1]अली-उद्-दीन 126क, 179ख; रतन चंद, 34-35; कनिंघम 110; चहर गुलज़ार शुजाई, 499ख; अहमद शाह, 896; तारीख-ए-सिध्दु, 128।

[2]दे० चीफ्स ऐंड फेमिलीज़ ऑफ़ नोट, 1892, पृ० 208; इम्पीरियल गज़ेटियर ऑफ़ इंडिया, 1908, पंजाब, i, 321।

कब्ज़ा हो गया तथा वे इस स्थिति में हो गए कि सरहिंद के पतन के एक माह बाद ही यमुना पार कर वे सहारनपुर ज़िले पर धावा बोल सकें।

9. प्रदेशों का वितरण

यह ध्यान में रखना चाहिए कि केवल आठ मिसलों ने ही इस विभाजन में भाग लिया था। इनके नाम थे अहलूवालिया, सिंहपुरिया, भंगी, दल्लेवालिया, शहीद, करोड़ा सिंघिया, निशानवालिया, तथा फुलकियाँ बाकी अर्थात् सूकरचाकिया, नकाई, कन्हैया, तथा रामगढ़िया की मिसलों ने अपने को इन कब्ज़ों से विलग ही रखा। इसका सीधा-साधा कारण यह था कि इन लोगों की आँखें जालंधर, बारी, रेचना, छज तथा सिंध सागर व दोआब की ओर लगी हुई थीं। इस समय भंगी मिसल सब मिसलों से अधिक शक्तिशाली थी। इसमें इतने ही बड़े-बड़े सरदार थे जितने शेष सिख मिसलों में थे। जैसा कि अब हम देखेंगे इसके सरदारों ने देश के जिस किसी भाग में भी संभव हुआ, भूप्रदेश प्राप्त करने का प्रयत्न किया।

1. भाई बुद्धसिंह : भाई बुद्धसिंह झंबोवाल का एक जाना-माना सिख सरदार था। शरबत खालसा (संपूर्ण सिखदल) ने सर्व सम्मति से उसे सरहिंद का नगर तथा उसके आस-पास का प्रदेश प्रदान कर दिया। परंतु इस नगर को लेने के लिए आलासिंह बहुत ही उत्सुक था क्योंकि यह उसकी राजधानी पटियाला के बहुत समीप था। यही नहीं, उस प्राचीन तथा प्रसिद्ध नगर पर अधिकार हो जाने से उसका सम्मान भी बहुत अधिक बढ़ सकता था। फलस्वरूप उसने नवाब कपूरसिंह के एक भतीजे गुरबख्श सिंह की सहायता से बुधसिंह से बातचीत प्रारंभ की। उसने बुधसिंह को इस बात के लिए राज़ी कर लिया कि वह आदमपुर तथा सात और उपजाऊ गाँवों के बदले अपने नवीन अर्जित भूभाग दे-दे। आलासिंह[1] ने 25,000 रुपए सिखों को 'कड़ा परशाद' के लिए भी दिए। बुद्धसिंह ने अभोर के इलाके में 28 गाँव और हथिया लिए। उनके वंशज अभी भी वहाँ रहते हैं।[2]

2. नोध सिंह निशानवाला : चुनिया सिंह अमृतसर ज़िले के अजनाला गाँव का एक जाट था। उसके इन्द्रसेन, चंद्रसेन, भीमसेन तथा मस्त सिंह नाम से चार पुत्र थे। सरदार इंद्रसेन ने 'चदरंदाज़ी' पद्धति से माई धर्मा नामक एक स्त्री

---

[1]सरहिंद की विजय के एक माह बाद अर्थात् 12 फरवरी, 1764 को आलासिंह ने पटियाला की अपनी राजधानी में अपने किले की नींव रखी थी। वह उसे सरहिंद जैसा भव्य तथा सुंदर बनाना चाहता था (करम सिंह, 228)।

[2]अलो-उद्-दीन, 126 क; रतनसिंह, 506; सरूप लाल द्वारा लिखित तारीख-ए-सिक्खान, 3-4; दस्तूर-उल्-अमल, 249-50, 253; गोश-ए-पंजाब 45; चीफ्स एण्ड फैमिलीज़ ऑफ नोट, 280-2।

से विवाह कर लिया। इस स्त्री ने एक पुत्र को जन्म दिया। इस बालक का नाम नोध सिंह रखा गया। सरहिंद की लड़ाई में नोध सिंह उपस्थित था। वह एक गोली लगने से घायल हो गया था। चूंकि वह दूर नहीं जा सकता था, उसने सरहिंद के समीप स्थित लुधियाना ज़िले के सबसे अधिक समृद्ध परगना खेरी को हथिया लिया। इसका वार्षिक मूल्य 25,000 रुपए था। उसने वहीं एक छोटा-सा दुर्ग बना लिया तथा उसी में रहने लगा।[1]

3. धर्म सिंह : धर्म सिंह सुप्रसिद्ध तारासिंह घाइबा का चचेरा भाई था। उसने गाँवों का एक समूह का समूह अपने अधिकार में ले लिया तथा उनके मध्य में उसने धर्मसिंहवाला की स्थापना की। बाद में वह यहीं बस गया। उसके परिवार के लोग अब तक उस स्थान पर रह रहे हैं।[2]

4. सुध सिंह बजवा : सुध सिंह बजवा ने मच्छीवाड़ा तथा उतालन परगना के पूर्वी भाग हथिया लिए।[3]

5. राय सिंह : अमृतसर के एक कांग जाट राय सिंह ने लुधियाना ज़िले की समराला तहसील में स्थित खन्ना के दक्षिण-पश्चिम में सोलह गाँवों पर अपना अधिकार कर लिया। उसके वंशज आज भी धीरूमजरा तथा झाबुमजरा की जागीरें सम्हाले हुए हैं।[4]

6. रायसिंह करोड़ा सिंघिया : यह रायसिंह उस सुप्रसिद्ध महताब सिंह का पुत्र था जिसने कि अमृतसर के सूबेदार मास्सा रंघड़ को बड़ी वीरता से मार गिराया था। वह करोड़ा सिंघिया मिस्ल का एक सदस्य था। उसने अपने नेता श्याम सिंह को इतना अधिक प्रभावित किया कि उसने अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ कर दिया। उसने भी समराला तहसील में गाँवों के एक समूह को हथिया लिया। उसके वंशज आज भी भारी, तथा कोटला बादला में रह रहे हैं। 'पंथ परकाश' का लेखक रतन सिंह जिसका हमारे लिए बहुत महत्त्व है, इसी का पुत्र था।[5]

7. सुजान सिंह दल्लेवालिया : सुजान सिंह, मानसिंह तथा दान सिंह एक बड़ेचा जाट अमरीक सिंह के पुत्र थे। वह अमृतसर ज़िले के ध्यानपुर गाँव का

---

[1]गोशा-ए-पंजाब, 24-6।

[2]चीफ्स एंड फैमिलीज़ ऑफ नोट 280-2।

[3]लुधियाना सेटलमेंट रिपोर्ट, 1878, पृ० 27 तथा लुधियाना गज़ेटियर, 1888, पृ० 24।

[4]चीफ्स एण्ड फैमिलीज़ आफ नोट, 257; लुधियाना गज़ेटियर, 1888-9, पृ० 109।

[5]चीफ्स एण्ड फ़ैमिलीज़ ऑफ नोट, 262-3।

रहनेवाला था तथा बाद में वह काँग में जा बसा था। ये लोग दल्लेवालिया मिसल के सदस्य थे तथा इन्होंने सतलज के दक्षिण में स्थित धरमकोट, मरी तथा तिहाड़ के परगने हथिया लिए थे। सुजान सिंह तथा दानसिंह के वंशजों के पास आज भी शाहकोट में जागीरें हैं। मानसिंह के वंशजों के पास धोंडोवाल में जागीरें हैं।[1]

8. कौरसिंह दल्लेवालिया : काँग के कौरसिंह तथा धर्म सिंह जाट दल्लेवालिया-मिसल के तारा सिंह घाइबा के चचेरे भाई थे। कौरसिंह ने काँग के आस-पास के अनेक गाँवों पर अधिकार जमा लिया। उसके भाई के हिस्से में लोहियाँ आया। कौरसिंह के परिवार के लोग आज भी काँग में रह रहे हैं।[2]

9. जस्सासिंह अहलूवालिया : 'दल-खालसा' के मुख्य नेता तथा कपूरथला की रियासत के संस्थापक जस्सासिंह अहलूवालिया के अधीन उस समय 10,000 घुड़सवारों का उसका अपना दस्ता भी था। उसने जगराओं, भारौगा, फ़तह गढ़ तथा नारायणगढ़ के दो लाख वार्षिक मूल्य[3] के भूभागों पर अधिकार जमा लिया। मिर्ज़ा सिंह अमृतसर के समीप के गाँव सुलतान विंद का रहनेवाला था। वह सरदार जस्सासिंह का एक सेवक था। दसौंधा सिंह तथा हकूमत सिंह को भारौग (103 गाँव), मिर्ज़ा सिंह को फतेहगढ़ तथा दसौंधा सिंह को नारायणगढ़ का थानेदार नियुक्त कर दिया।[4]

10. सौंदा सिंह दल्लेवालिया : सौंदा सिंह अमृतसर के निकट नारोवाल का एक जाट था। वह दल्लेवालिया मिसल का सदस्य था उसने लुधियाना ज़िले में खन्ना की संपदा प्राप्त कर ली जिसका मूल्य 30,000 रुपए था।[5]

11. दसौंधा सिंह निशानवाला : दसौंधा सिंह एक 'गिल' जाट था। वह फ़ीरोज़पुर ज़िले के मंसूर गाँव के चौधरी साहब राय का पुत्र था। वह निशानवाला मिसल का मुख्य नेता था तथा उसके अधीन 12,000 घुड़सवार थे। उसने सिंघाँवाला, सानीवाल, सराय लशकरी खाँ, दोराह, सोंती, अमलोह, ज़ीरा, लूधर तथा अंबाला के इलाक़ों पर अपना कब्ज़ा जमा लिया। इनमें से

---

[1]वही 304-5।

[2]वही 306-7।

[3]अली-उद्-दीन, 126 ख; दस्तूर-उल्-अमल, 45-6; राज खालसा, 375।

[4]पंजाब सरकार के रिकार्ड्स, केप्टन जी बिर्च की नोटबुक से चुना एक अंश, 1818-1821, भाग ix, नं० 17, पृ० 129।

[5]तारीख-ए-सिक्खान, सरूपलाल, 147; जालंधर सैटलमैंट रिपोर्ट, 1892, पृ० 37।

अंतिम को उसने अपना प्रधान केंद्र बनाया। उसकी मृत्यु पर उसका छोटा भाई संगत सिंह उसका उत्तराधिकारी बना।[1]

12. जयसिंह निशानवाला : जयसिंह अटारी के समीप करंके घिर्के गाँव का एक गुर्म जाट था। वह निशानवाला मिसल का एक सदस्य था। उसने लिधरान परगना के सत्ताईस तथा खरार के सात गाँवों पर अधिकार जमा लिया। इनकी वार्षिक माल गुज़ारी लगभग 60,000 रुपए थी।[2]

13. नाहर सिंह तथा सुरजन सिंह : नाहर सिंह सोधी तथा सुरजन सिंह सोधी ने तीन लाख रुपए वार्षिक मालगुज़ारी के इलाके आनंदपुर तथा मक्खोवाल प्राप्त कर लिए।[3]

14. हरि सिंह दल्लेवालिया : हरि सिंह कसूर के निकट कलेकी गाँव का एक बिर्क जाट था। दल्लेवालिया मिसल का वह एक सुप्रसिद्ध सदस्य था। उसने रोपड़, सियालबा, आवान कोट, सिसवान तथा कोराली के प्रदेशों पर अपना अधिकार जमा लिया। उसने चौधरी टेकचंद द्वारा निर्मित खिजरा बाद के दुर्ग पर भी अधिकार जमा लिया।[4]

15. खुशहाल सिंह सिंघपुरिया : खुशहालसिंह सिंघपुरिया सिंघपुरिया मिसल के संस्थापक तथा फैजुल्लाहपुर के सुप्रसिद्ध नवाब कपूर सिंह का भतीजा था। सन् 1753 में नवाब की मृत्यु पर वह संघ की मुखियागिरी के पद पर आसीन हुआ। उसके पास पहले से ही तीन लाख रुपए वार्षिक की मालगुज़ारी के भूभाग थे। इस अवसर पर उसने छत, बनूर, मनौली, घनौली, भरतगढ़, कंडौला, बुंगा भरेली तथा चूने मछली के परगने भी अपने अधिकार में ले लिए। इनकी वार्षिक आमदनी 1,50,000 (डेढ़ लाख) रुपए की थी।[5]

---

[1]राजखालसा, 50-1; तारीख-ए-सिक्खान, सरूप लाल, 51; गणेशदास, 206; बूटेशाह, 266 ख-267 क तथा 274 ख- 275-क।

[2]राजाज़ ऑफ दी पंजाब, 45; लुधियाना गज़ेटियर, 1888-89, पृ० 108; चीफ्स एण्ड फैमिलीज़ ऑफ़ नोट, 251।

[3]तारीख-ए-सिक्खान, सरूप लाल, 150।

[4]खुशवक्त राय, 187; अली-उद्-दीन 126 क; सरूप लाल, 32-35; दस्तूर-उल्-अमल 96; जालंधर सैटलमैंट रिपोर्ट, 1892, 37-8; (यही हरी सिंह फगवाड़ा के चौधरी छहरलाल की विधवा साली राजन को ले भागा था। अभी हाल ही तक इस साहसिक घटना को लोकगीतों में गाया जाता था। बूटेशाह, 250 ख)।

[5]राज खालसा, 48; सरूप लाल, 7, 409; अली-उद्-दीन 126 ख। (उसके पड़ोस में गरीब दास नामक एक हिंदू मुखिया ने मनीमजरा तथा मुल्लानपुर

16. काँग गांव के जय सिंह, राम सिंह, सरधा सिंह, साहिब सिंह, बख्त सिंह, कंवर सिंह तथा मयान सिंह ने पचपन गाँववाले कमाऊँ परगने पर कब्ज़ा कर लिया। ये सब दल्लेवाल मिसल के ही सदस्य थे। ये सातों सरदार 126 सैनिकों के एक दस्ते का नेतृत्व करते थे। उस परगना को तीन भागों में बाँट कर वे स्वतंत्र सरदार बन बैठे।[1]

17. करम सिंह शहीद : करम सिंह लाहौर के पश्चिम में 12 कोस पर बसे महराका गाँव का एक सिंधु जाट था। उसने अंबाला ज़िले के शाहज़ादपुर तथा केसरी परगनों के बहुत से गाँवों पर कब्ज़ा जमा लिया। इनकी वार्षिक आय लगभग एक लाख थी। उसने रनियाँ, दमदमा साहब, खारीबंद तथा ज़रौली के आस-पास के भी कुछ भूभागों पर अधिकार जमा लिया। उसके परिवार के वंशज आज भी शाहज़ादपुर में हैं।[2] शाहज़ादपुर से लगा हुआ मजरी का भूभाग है। इस पर आनंद पुर के सूरत सिंह अकाली ने अधिकार कर लिया।[3]

18. देसू सिंह दल्लेवालिया : देसू सिंह अमृतसर के दक्षिण में सात कोस की दूरी पर बसे तरनतारन के समीप अलावलपुर का रहनेवाला था। वह भी दल्लेवालिया मिसल का एक सदस्य था। उसने जगाधरी तहसील में मुस्तफ़ाबाद या अंबाला तहसील में डेरा तथा ठंडवाला के परगने प्राप्त किए।[4] उसने अरनौली, सिंधवाल, बंगर, अमलु तथा कुलरखारयाल पर भी अपना अधिकार जमा लिया।[5]

के परगनों के 84 गाँवों को हथिया लिया। उसका पिता गंगा राम वहाँ का राजस्व अधिकारी था। मनीमजला इस नए राज्य की राजधानी बन गया। उसने पिंजौर के किले को जीतकर अपने राज्य को बढ़ाया सिवालिक की पहाड़ियों की तराई में स्थित पिंजौर एक सुंदर उद्यान में बसा हुआ था। आगे चलकर पिंजौर भारत के गवर्नर जनरल के शिमला जाते तथा आते समय एक शिविर का काम देता था। यह क्रम 1827 से लेकर कालका-शिमला रेलवे लाइन के बन जाने तक चलता रहा था। दस्तूर उल्-अमल 302; अंबाला गज़ेटियर, 18)।

[1]बूटे शाह, 258 ख।

[2]राजाज़ ऑफ दी पंजाब, 44; सरूप लाल, 71; चीफ्स एण्ड फ़ैमिलीज़ ऑफ नोट, 229।

[3]खुशवक्त राय, 185, बूटे शाह, 194।

[4]चीफ्स एण्ड फैमिलीज़ ऑफ नोट, 223; सरूप लाल, 41-2; बूटे शाह, 263 ख-264क।

[5]ज्ञानसिंह 852।

19. राय सिंह भंगी : लखमीर, चौंक गाँव का एक जाट था। यह गाँव अमृतसर के दक्षिण की ओर 28 मील की दूरी पर बसा हुआ है। उसके चार बेटे थे। उनका नाम बाघसिंह, बाज़ सिंह, राय सिंह तथा प्रजा सिंह था। अहमदशाह दुर्रानी के एक आक्रमण के समय प्रजा सिंह को बंदी बना कर इस्लाम धर्म में दीक्षित कर दिया गया था। वह एक लंबे समय के बाद घर तो आया परंतु मुसलमान ही बना रहा। बाकी के तीनों भाइयों ने भंगी मुखिया के हाथों पहौल ग्रहण किया तथा झंडा सिंह के दल में जा मिले। अब उन्होंने लूटमार तथा डाकाज़नी का जीवन प्रारंभ कर दिया।

इस अवसर पर बाकी के तीनों भाई अमृतसर के निकट बसे झावलमंडन के एक जाट नानू सिंह से जा मिले। इन लोगों ने बूरिया, जगाधरी, दमला तथा आस-पास के 204 गाँवों पर अधिकार जमा लिया।[1]

20. गुरबख्श सिंह करोड़सिंघिया : लाहौर ज़िले की कसूर तहसील में कलसिया गाँव का रहनेवाला गुरबख्श सिंह एक सिंधू जाट था। करोड़सिंघिया मिसल का वह प्रमुख सदस्य था। उसने अंबाला ज़िले में बसी, छछरौली तथा चरक परगनों पर अपना अधिकार जमा लिया।[2] उसका परिवार आज भी छछरौली में रहता है। कलसिया गाँव के ही एक दूसरे निवासी करम सिंह ने जगाधरी तहसील के बिलासपुर परगने पर अपना कब्ज़ा जमा लिया था। इसी गाँव के दयाल सिंह तथा नोध सिंह ने क्रमशः कोट तथा धर्मकोट के परगनों को हथिया लिया।[3]

21. दीवान सिंह दल्लेवालिया : दीवान सिंह लाँडा अमृतसर के निकट बसी ग्राम का एक कलाल था। वह दल्लेवालिया मिसल का एक सदस्य था

---

[1]खुशवक्त राय, 186; चीफ्स एण्ड फैमिलीज़ ऑफ नोट, 215, 227-8; राजाज़ ऑफ दी पंजाब, 46; अली-उद्-दीन, 126 ख; बूटेशाह, 217 क; सरूप लाल, 65-6।

इन लोगों ने बूरिया के समीप एक दुर्ग बनवाया तथा उसका नाम दयाल गढ़ रख कर उसे अपना प्रमुख केंद्र बना लिया। (चीफ्स एण्ड फैमिलीज़ ऑफ नोट 227) नादिर शाह ने जगाधरी को पूरी तरह नष्ट कर दिया था परंतु राय सिंह ने इसका पुनः निर्माण करवाया। उसने व्यापारी तथा कारीगरी तबके के लोगों को वहाँ बसने के लिए प्रोत्साहन दिया। अंबाला गज़ेटियर, 69।

[2]गोशा-ए-पंजाब, 29-30; इंपीरियल गज़ेटियर ऑफ इंडिया 1908; पंजाब, ii, 366; चीफ्स एण्ड फैमिलीज़ ऑफ नोट, 83।

[3]गोशा-ए-पंजाब, 29।

तथा उसने अंबाला ज़िले में सिकंदरा, सूरन, अकलगढ़ तथा ग्रारा के परगनों पर अपना कब्ज़ा जमा लिया था ।[1]

22. मेहर सिंह निर्मल : निशान वाला मिसल के सिंधुगोत से संबंधित मेहर सिंह ने अंबाला के दक्षिण में 16 मील की दूरी पर ग्रांड ट्रंक रोड पर स्थित करनाल ज़िले के शाहबाद तथा इस्माइलाबाद के परगनों पर अपना अधिकार जमा लिया ।[2]

23. गुरबख्श सिंह शहीद : अमृतसर ज़िले की तरनतारन तहसील के गंगुबाहा गाँव का रहने वाला गुरबक्श सिंह शहीद मिसल का एक नेता था । उसने मरकंडा नदी के बेत क्षेत्र म अनेक गाँवों पर अपना अधिकार जमा कर तंगौर के स्थान पर अपना प्रधान केंद्र स्थापित कर लिया । आज भी उसके परिवार वाले वहाँ रहते हैं ।[3]

24. नोध सिंह करोड़सिंघिया : कलसिया गाँव का निवासी नोध सिंह, करोड़सिंघिया मिसल का एक प्रभावशाली नेता था । उसके पास घुड़सवारों का एक दस्ता था उसने लेडा परगना पर अपना अधिकार जमाया था । आज भी वहाँ उसके वंश के लोग रहते हैं ।[4]

25. साहिब सिंह तथा गुरुदत्त सिंह दल्लेवालिया : अमृतसर के समीप रहने वाले तथा दल्लेवालिया मिसल के सदस्य साहिब सिंह तथा गुरुदत्त नामक दो सांसी जाट भाइयों ने करनाल के आस-पास के लाडवा, इंद्री, बबैन तथा शामगढ़ प्रदेश के 117 गाँवों पर अपना अधिकार जमा लिया ।[5]

26. मीत सिंह दल्लेवालिया : पट्टी के समीप सिरहाली के निवासी भाई मीत सिंह तथा उसके दोनों भतीजे भंगासिंह तथा भाग सिंह दल्लेवालिया मिसल के थे ।[6] उन्होंने पिहोआ तथा थानेसर की 6 बस्तियों को हथिया

---

[1]बूटेशाह, 262 ख, 263 क; सरूप लाल, 39; जालंधर सैटलमैंट रिपोर्ट, 1892, पृ० 37।

[2]अली-उद्-दीन, 126 क; बूटेशाह, 272 ख, 274 क; खुशवक्त राय, 185; चीफ्स एण्ड फैमिलीज़ ऑफ नोट, 216; सरूप लाल, 58, 147।

[3]चीफ्स एण्ड फैमिलीज ऑफ नोट 217-19।

[4]गोशा-ए-पंजाब, 29; चीफ्स, एण्ड फैमिलीज़ ऑफ नोट 225-6।

[5]बूटे शाह; 254 ख-255 क; खुशवक्त राय, 184; अली-उद्-दीन, 126 क; करनाल गज़ेटियर, 33; (बाद में यह रजवाड़ा 178 गाँवों वाला तथा ढाई लाख वार्षिक की मालगुज़ारी वाला बन गया था । कलकत्ता रिव्यू भाग ii, अक्तूबर-दिसंबर, 1844, पृ० 198)।

[6]मीत सिंह तारासिंह घाइबा का एक निजी सेवक (गड़वाबरदार)

लिया । कहौद पर उन्होंने एक मज़बूत दुर्ग बना कर उसे अपना प्रधान केंद्र बना लिया ।[1]

27. **बघेल सिंह करोड़ासिंघिया** : बघेल सिंह ने खुरदियाँ, किनौरी, जमैतगढ़ तथा छलोंदी के (उसका प्रधान केंद्र) इलाक़ हथिया लिए । इन सबकी वार्षिक आय तीन लाख रुपयों की थी ।[2]

28. **फुलकियाँ राजाओं द्वारा प्राप्त किए गए क्षेत्र** : आला सिंह ने पैल, बसी, लतबरा तथा इसरू के क्षेत्र हथिया लिए ।[3] नाभा के हमीर सिंह ने बहरसों, अमलोह, विरो, तथा भगसु के परगनों पर अधिकार जमा लिया ।[4] मान सिंह ने मलौद[5] तथा गजपत सिंह[6] ने सफैदूँ, पानीपत, करनाल, रोहतक तथा बाज़िदपुर[7] अपने कब्ज़े में ले लिए ।

29. **जीवन मल** : जीवन मल एक सोधी खत्री था । वह चौथे गुरु राम दास का वंशज था तथा वंश परंपरा में उसका स्थान सातवाँ था । फ़िरोज़पुर ज़िले की मुक्तसर तहसील में आकर उसने बेकार पड़ी बहुत सी भूमि पर अपना अधिकार जमा लिया । वहाँ उसने अनेक गाँव बसाए । इस इलाके का

था । वह उसके लिए पानी तथा पीने के बरतन लाया ले जाया करता था ।

[1]अली-उद्-दीन, 126 क; राजाज़ ऑफ दी पंजाब, 56; चीफ्स एण्ड फैमिलीज़ ऑफ नोट, 183; गोशा-ए-पंजाब, 24-6; बूटे शाह, 252 ख-253 क; जालंधर सैटलमैंट रिपोर्ट 1892, पृ० 37 ।

[2]राज खालसा, 331 (लड़वा के राजा तथा थानेश्वर के भूभाग मूलतः दिल्ली सूबे के भाग थे । आज के नरबाना तथा जींद के ताल्लुके पहले हिसार सरकार के परगने थे । सफीदों पहले दिल्ली सरकार का परगना था । इंद्री पहले सहारनपुर सरकार में आता था तथा यमुना तक फैला हुआ था जो पहले नहर के पश्चिमी ऊँचे तट के नीच बहती थी । समाना तथा सुनाम की भाँति थानेश्वर तथा शाहबाद सरहिंद सरकार के शाही परगनों में आते थे । करनाल गज़ेटियर, 40) ।

[3]ज्ञान सिंह, 852 ।

[4]वही 852; राज खालसा 466 ।

[5]ज्ञान सिंह, 852 ।

[6]खुशवक्त राय, 175 ।

[7]ज्ञान सिंह, 852; करनाल गज़ेटियर, 33; इंपीरियल गज़ेटियर ऑफ इंडिया, पंजाब, i, 316 ।

नाम उसने अपने बड़े पुत्र गुरु हर सहाय के नाम पर रखा । अब भी उस इलाके में उसके वंशजों के पास जागीर है ।[1]

30. सावन सिंह : सावन सिंह निशानवाला मिसल के सुप्रसिद्ध दसौंधा सिंह तथा संगत सिंह का चचेरा भाई था । उसने सोंती के पास-पड़ोस के अनेक गाँवों पर अपना अधिकार जमा लिया तथा फिर वहीं बस गया । आज भी उसके वंशज फिरोजपुर ज़िले के मंसूरवाल में रहते हैं ।[2]

31. गूजर सिंह भंगी : गूजर सिंह भंगी ने अपने भाई नुसबाहा सिंह तथा दो भतीजों गुरबक्श सिंह तथा मस्तान सिंह के साथ मिलकर फ़िरोज़पुर पर कब्ज़ा कर लिया । जय सिंह घरिया ने उसी ओर के एक और दल की सहायता से फ़िरोजपुर के निकटवर्ती खाई, बान तथा वाजिदपुर पर अधिकार जमा करके उन्हें अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को दे दिया । उस समय फ़िरोज़पुर के प्रदेश में सैंतीस गाँव आते थे ।[3]

32. तारा सिंह घाइबा : दल्लेवालिया मिसल के एक प्रमुख नेता तारा सिंह घाइबा ने मोगा तहसील के रामुवाला तथा मरी के प्रदेशों में अपनी सत्ता स्थापित कर ली । इन दोनों स्थानों पर उसने दुर्ग भी बनाए ।

10. गैर-सिख व्यक्तियों के अधिकार क्षेत्र

सिखों के इन इलाक़ों के बीच यहाँ-वहाँ कुछ-एक मुसलमानों तथा राजपूतों के प्रदेश भी थे । इन स्थानों के स्वामियों ने अपने पड़ोस के शक्तिशाली सिख नेताओं से मेल कर तथा उनको कर देकर अपनी रक्षा की थी ।[4] रायकोट के राय कल्हा तृतीय ने लुधियाना तथा जगराओं तहसीलों तथा फ़िरोज़पुर ज़िले के विशाल भू-भागों को अपने पास ही बनाए रखा ।[5] अफगान बस्ती कुंजपुरा ने जिसमें 53 गाँव थे तथा जिसकी वार्षिक आय, 50,000 रुपए थी अपनी स्वतंत्रता बनाए रखी । इसी प्रकार एक लाख रुपए की आय तथा 96 गाँवों वाले मलेरकोटला,[6] ममदौत तथा कोटला निहंग (रोपड़ के निकट) ने भी अपनी-अपनी स्वतंत्रता बनाए रखी ।[7]

---

[1]चीफ्स एण्ड फैमिलीज़ ऑफ नोट, 273-4 ।

[2]वही 286 ।

[3]फ़िरोजपुर गज़ेटियर, 16 ।

[4]रतन सिंह, 509 ।

[5]लुधियाना गज़ेटियर, 1888-89, पृ० 112; इंपीरियल गज़ेटियर ऑफ इंडिया, पंजाब, i, पृ० 426 ।

[6]कलकत्ता रिव्यू, भाग, ii, अक्तूबर-दिसंबर, 1844; पृ० 200 ।

[7]सरूप लाल, 129, 134, 135, 136 । अली-उद्-दीन, 126क ।

ग्यारहवाँ अध्याय

पंजाब तथा गंग दोआब में सिखों के उपद्रव

[फरवरी, 1764—जनवरी, 1765]

सिखों का गंग दोआब पर धावा, फरवरी, 1764

सिखों ने 14 जनवरी के दिन सरहिंद जीता तथा लगभग एक माह उन्होंने उनके भू-भागों पर अधिकार जमाने में लगाया। इसके बाद वे बूरिया घाट से यमुना पार कर फरवरी, 1764 के मध्य में गंग-दोआब में घुस गए। यह काम बुड्ढा दल का था क्योंकि सरहिंद के पतन के तुरंत बाद ही तरुण दल पंजाब वापिस चला गया था।

अपने नेता जस्सासिंह अहलूवालिया के नेतृत्व में 40,000 सिख घुड़सवारों ने यमुना पार की। खुशालसिंह, बघेलसिंह, करोड़ासिंह, शाम सिंह, तारासिंह घाइबा, गुरबक्श सिंह, भंगासिंह, करमसिंह तथा रायसिंह आदि दूसरे सिख मुखिए भी इनके साथ थे। इन लोगों ने सहारनपुर (20 फरवरी, 1764) शामली, कांडलाह, अंबली, मीरनपुर, देवबंद, मुज़फ्फ़रनगर, ज्वालापुर, कनखल, लंडौरा, नजीबाबाद, नगीना, मुरादाबाद, चंदौसी, अनूपशहर तथा गढ़मुक्तेश्वर में लूटपाट की।[1]

यह सर्वप्रथम अवसर था जब सिखों ने यमुना पार की तथा बराह के गाँवों में लूटखसोट की। यहाँ बहुत समय से, प्रतिष्ठित व्यक्ति तथा पुराने सैयद घराने के व्यक्ति रहते थे। सिखों ने उस स्थान से बेशुमार सिक्के, सोना तथा हीरे जवाहरात आदि प्राप्त किए। उन्होंने देश को जला कर राख कर दिया तथा बहुत से व्यक्तियों को बंदी बना कर ले गए। (छुड़ाई में धन वसूल करने के लिए)। इन समाचारों से व्याकुल होकर नजीब-उद्-दौला (उस ज़िले के स्वामी) ने तत्काल सिखों की ओर प्रस्थान कर दिया तथा शीघ्र ही वह उनके निकट जा पहुँचा।

---

[1]मिसकिन, 263; ब्राउनी, ii, 24; रतनसिंह 507; बख्तमल, 103; ज्ञानसिंह 854–7; शमशीर खालसा 114; जी० आर० सी०, विलियम्स का कलकत्ता रिव्यू में लेख, भाग lx, जनवरी, 1875, पृ० 26; एस०पी०-डी० xxix, 85।

नजीब-उद्-दौला ने अभी हाल ही में सूरजमल को पराजित करके कत्ल कर दिया था। उसे आशंका थी कि उसका पुत्र जवाहरसिंह तथा संपूर्ण जाट राष्ट्र उससे इसका पूरा-पूरा बदला लेगा। जाट इस ओर पूरे ज़ोर-शोर से तैयारियाँ भी कर रहे थे। इन कठिनाइयों को देखते हुए सिखों के इस धावे से वह बहुत अधिक विचलित हो उठा। उसने सिखों को ग्यारह लाख रुपए की घूंस देकर उनसे अपना पीछा छुड़ाने का निश्चय किया। उधर अहमद-शाह अब्दाली उस समय तक एकबार फिर पंजाब में पहुँच चुका था। इसलिए सिखों ने भी यह रिश्वत स्वीकार कर ली तथा मार्च के प्रारंभ में ही वे लोग अपने प्रदेश में लौट गए। परंतु यह उन नवीन प्रदेशों में उनके वार्षिक धावों का आरंभ ही था।[1]

2. लाहौर के सूबेदार काबुलीमल का सिखों द्वारा अभित्रस्त किया जाना, फरवरी, 1764 के लगभग

सरहिंद अभियान के बाद तरुण दल, जिसमें सूकरचाकिया, नकाई, कन्हैया, रामगढ़िया तथा भंगी की मिस्लें सम्मिलित थीं, पश्चिम में विजय प्राप्त करने की इच्छा से पंजाब वापिस आ गया। उसके समीप आ जाने पर जालंधर का अफ़ग़ान सूबेदार जो कि ज़ाइन खाँ की हार तथा मृत्यु के कारण पहले ही अत्यधिक आतंकित हो उठा था, अब भाग खड़ा हुआ। सिखों ने कुछ स्थान लूटे, कुछ नए स्थानों पर कब्ज़ा जमाया तथा फिर वे लोग लाहौर की ओर बढ़ गए।

---

[1]नूर-उद्-दीन, 72 क-ख; एस० पी० डी०, xxix, 55, इन अभियानों के साथ तमाश-खाँ-मिसकिन जो कि नजीब-उद्-दौला की सेना की ओर से सिखों के विरुद्ध खड़ा था, लिखता है: "सरहिंद सूबे की विजय तथा उसका बंदोबस्त करने के बाद सिख एक वर्ष के भीतर ही और आगे बढ़ चले उस वर्ष उनके 40,000 घुड़सवारों ने यमुना पार करके सहारनपुर तथा मेरठ के ज़िलों में गड़बड़ी तथा लूटमार की। नवाब नजीब खाँ एक-दो महीनों तक जहाँ कहीं भी सिखों के बारे में सुनता उनका पीछा करता रहा। इस भाँति वह देश की रक्षा कर रहा था। उसने अनेक लड़ाइयाँ लड़ीं तथा आमतौर से उनको पराजित किया। क्योंकि उन्होंने कहीं भी जमकर युद्ध नहीं किया इसलिए उसे उनके पीछे दौड़ते रहना पड़ा परंतु उन लोगों ने अपनी सियार-चालें नहीं छोड़ीं।" मिसकिन, 266; देखें, सरकार ii, 395।

उन्होंने आस-पास के प्रदेश पर कब्ज़ा कर लिया । नगर पर हमला किया तथा रसद बंद कर दी । उन्होंने माँग की कि नगर में गाय मारनेवाले सब कसाइयों को तत्काल मौत के घाट उतार दिया जाए तथा भविष्य में सदैव के लिए इस प्रथा को रोक दिया जाए । काबुलीमल ने माफ़ी माँगते हुए कहा, "मैं एक मुस्लिम बादशाह का सेवक हूँ। इस प्रकार की कार्यवाही से मैं शाह का कोपभाजन बनूंगा ।" भयभीत हो उठने के कारण उसने आने जाने के लिए केवल दो दरवाज़ों को छोड़कर नगर के और सब दरवाज़ों में ईंटें चुनवा कर उन्हें बंद करवा दिया । सिखों ने दिल्ली दरवाज़े को तोड़ कर नगर में प्रवेश किया तथा नगर को लूटने लगे । अपने को और नगर को खतरे में जानकर काबुलीमल ने घुटने टेक दिए । कुछ कसाइयों के नाक, कान और हाथ काट कर उन्हें नगर के बाहर कर दिया गया । सिखों को उसने दस लाख रुपया भेंट-स्वरूप दिया और इस प्रकार अपने नगर की रक्षा की ।[1] हरीसिंह भंगी ने टेकचंद को लाहौर दरबार में अपना प्रतिनिधि बनाकर छोड़ा । प्रशासन के लगभग प्रत्येक मामले में वह काबुलीमल को निदेश देता था । उसे दस रुपए प्रतिदिन के हिसाब से शाही कोष से भत्ता मिलता था । यह घटना फरवरी, 1764 की है ।

इस समय तक सोभासिंह ने भी परगना न्याज़ बेग (लाहौर के दक्षिण में आठ मील) में अपनी स्थिति सुरक्षित कर ली थी । घर में आने जानेवाले माल को वह लूटा करता था । काबुलीमल ने व्यापारियों को बचाने का प्रयत्न किया । उसने सोभासिंह के एक कारिंदे को आमंत्रित किया तथा उसे शाहलमी दरवाज़े के बाहर चुंगी दफ्तर में बैठकर मुल्तान की ओर से आनेवाले प्रत्येक माल पर चुंगी लेने के लिए कहा ।[2]

3. चरत सिंह का रोहतास पर अधिकार

तरुण दल का दो प्रमुख नेताओं के नेतृत्व में उप-विभाजन किया गया । चरतसिंह पश्चिम-उत्तर की ओर तथा हरीसिंह भंगी मुलतान की ओर चल दिया । रेचना तथा छज दोआबों को रौंदने के बाद चरतसिंह सूकरचाकिया ने रोहतास के प्रसिद्ध दुर्ग को जा घेरा । यह दुर्ग अहमदशाह दुर्रानी के सिपहसालार सरफराज़ खाँ,[3] के अधिकार में था । सूबेदार ने किले के द्वार

[1]अली-उद्-दीन, 126 ख ।

[2]अली-उद्-दीन, 127 क, 160 क; कन्हैया लाल, 87; शमशीर खालसा, 115; सरकार, ii, 494 ।

[3]इस सूबेदार ने पहले गुजरात ज़िले के एक प्रमुख अधिकारी चौधरी रहमत खाँ वरैच तथा उनके दीवान शिवनाथ को कत्ल करवा दिया था ।

बंद कर दिए तथा उनकी दीवारों पर तोपें चढ़ा कर उसने सिखों पर गोले बरसाने शुरू कर दिए । सिखों ने हिम्मत न हारी; वे घेरा डाले रहे ।

सीधे हमले द्वारा दुर्ग पर अधिकार जमाने में असफल होकर सिखों ने कूटचाल अपनाई । उन्होंने अचानक घेरा उठा कर पीछे हटना शुरू कर दिया । पीछे हटती हुई इस सेना का पीछा करने के लिए अफ़ग़ान सैनिक दुर्ग से निकल कर उन पर टूट पड़े । अपने एक सैनिक दल के साथ पीछे घूम कर चरतसिंह ने किले के एक भाग पर अधिकार जमा लिया । थोड़ी ही देर बाद और कुमुक आ गई तथा अफ़ग़ान सेना के बचे-खुचे भाग को भी खदेड़ कर भगा दिया गया । सरफराज़ खाँ को अपने कुछ अनुचरों के साथ बिना किसी छेड़-छाड़ के दुर्ग छोड़ने दिया गया ।[1]

4. सरबुलंद खाँ को बंदी बनाया जाना

रोहतास के सिपहसालार ने काश्मीर के सूबेदार नवाब सरबुलंद खाँ को सहायता के लिए आमंत्रित किया था । रोहतास के पतन के बाद सरबुलंद खाँ अटक के समीप सिंधु तट पर पंजाब में आ पहुँचा । पहाड़ी इलाका होने के कारण उसे पहुँचने में देर हो गई थी । उस समय चरतसिंह रोहतास ज़िले में शांति व्यवस्था को पुनः स्थापित करने के काम पर लगा हुआ था । सरबुलंद खाँ के आगमन का समाचार सुनकर वह बड़ी तत्परता से उसका स्वागत करने के लिए आगे बढ़ा ।

सरबुलंद खाँ के पास 12,000 घुड़सवारों तथा पैदलों की एक शक्तिशाली सेना थी, परंतु चरतसिंह ने बड़ी निडरता से अफ़ग़ानों पर चढ़ाई कर दी तथा उनमें से बहुतों को मारकर उनके माल-असबाब को लूट लिया । अफ़गान घबड़ा कर भाग खड़े हुए तथा उनके सिपहसालार सरबुलंद खाँ को बंदी बना लिया गया । उसे रोहतास के दुर्ग में बंद कर दिया गया । परंतु दो लाख रुपया छुड़ाई में देकर नवाब ने अपनी स्वतंत्रता पुनः प्राप्त कर ली ।[2]

इसके बाद चरतसिंह ने आस-पास के विद्रोही मुखियों तथा ज़मींदारों को दबाया तथा धन्नी, पोथोहर, चकवाल, जलालपुर तथा सैयदपुर के परगनों पर अधिकार जमा लिया । इसके बाद संपूर्ण ज़िलों ने उसके सामने आत्मसमर्पण कर दिया । इसके बाद वह पिंड दादन खाँ में आया, वहाँ की जलवायु से वह इतना प्रसन्न हुआ कि उसने वहीं रहने की इच्छा की । इसीलिए उसने ज़िले

उन पर आरोप लगाया गया था कि उन्होंने सिखों को वहाँ बुलवाया था । गणेश दास, पृ० 211 ।

[1]सोहन लाल, ii, 11–2, रतन सिंह 496–8; तारीख-ए-सलातीन-ए-अफ़ग़ानान, 174; रतन चंद, 38-39 ।

[2]सोहन लाल, ii,12; गणेश दास, 211–3; बूटेशाह, 309 क ।

के मुखिया साहिब खाँ गक्खर से एक संधि कर ली तथा अनेक दुर्गों का निर्माण कर उसने अपनी सेनाएँ उनमें ठहरा दीं । इनका नेतृत्व बुधसिंह तथा कँवर सिंह को सौंप दिया । इस प्रकार जसे ही चरतसिंह के पाँव उस ज़िले में कुछ दृढ़ हुए उसने तत्काल नमक की पहाड़ियों के एक भाग को हथिया लिया । उसने मियानी से बदल कर रामनगर को नमक की मंडी बना दिया । इससे उसके राजस्व में बहुत वृद्धि हो गई । उसने प्रत्येक स्थान पर अपने फौज़दार नियुक्त कर दिए । उन्होंने उन स्थानों पर दुर्ग बनाकर उनमें अपने सैनिक बैठा दिए । इस भाँति चरतसिंह ने एक ओर सिंधु से झेलम तथा दूसरी ओर तराई से लेकर नमक की पहाड़ियों के दक्षिणी भागों तक के विस्तृत भूभाग पर अपना अधिकार जमा लिया ।[1]

5. दक्षिण-पश्चिम पंजाब की सिखों द्वारा लूट, लगभग अप्रैल-जून, 1764

हरीसिंह भंगी तथा हरीसिंह नकाई के नेतृत्व में सिखों का दूसरा भाग भी दक्षिण-पश्चिम पंजाब में उतना ही सफल रहा । उन्होंने लम्मा तथा नक्का के प्रदेश हथिया लिए । यह नकई मिसल ने ले लिए । इसके बाद हरीसिंह ने मुल्तान की ओर कूच किया तथा उसे जीत कर लूट लिया । इसके बाद उसने सिंधु को पार किया तथा डेराजट के प्रदेश को तहस-नहस करके रख दिया ।[2]

---

[1]इज्जतसिंह को धन्नी दश का कार्यभार सौंपा गया था । उसने लगातार लड़ाइयाँ लड़ते हुए बड़ी कठिनाई से उसे अपने अधिकार में रखा । पंजाब चीफ्स, 92; रतन चंद 40–1; सोहन लाल ii, 9-10 ।

[1]ज्ञानसिंह, 890; सन् 1764 में मुल्तान पर हुए सिख आक्रमण को अब तक किसी भी पंजाब के इतिहासकार ने स्वीकार नहीं किया है । परंतु जंगनामा का लेखक नूर मुहम्मद इस बारे में बिल्कुल स्पष्ट है । इसके इस अनोखे तथा अमूल्य ग्रंथ में अहमदशाह के 7वें (1765) आक्रमण का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है । वह अहमदशाह की सेना के साथ-साथ चल रहा था तथा उसने आँखों देखा हाल लिखा है (पृ० 41) ।

आगे चल कर नूर मुहम्मद फिर कहता है "उन्होंने मुल्तान पर चढ़ाई की तथा शहर को लूट लिया । वहाँ से ये कुत्ते बहुत-सा लूट का माल लेकर आए । जो कुछ इन कुत्तों ने वहाँ किया उसको (कहने के लिए) मेरा मन नहीं करता । आस्तिको ! मुल्तान में जो कहर ढाया गया उसकी मिसाल पाक आदम के समय से लेकर आज तक कहीं किसी ने नहीं देखी-सुनी । परंतु

इसके बाद सिख झंग प्रदेश के सियालों को परास्त करने के लिए बढ़े। इन लोगों ने सिखों का डटकर सामना किया परंतु अंत में वे पराजित हो गए। उनके प्रदेश झंग, खुशब तथा चिनिऔत भंगियों ने हथिया लिए। ये सब झंडा सिंह के भाग में आए।[1]

लगभग छः महीने बाद लाहौर जाते हुए नूर मुहम्मद चिनिऔत भी गया। वह लिखता है : "सिखों की नृशंसता ने नगर को उजाड़ दिया था, नगर के सभी लोग मुसीबत तथा विपत्ति में पड़ गए थे। अंदर से नगर तथा उसके आस-पास की सब बस्तियाँ उजड़ी पड़ी थीं। उसके भवन गिरा दिए गए थे, तथा सब मस्जिदें वीरान पड़ी थीं। उनमें घोड़ों का चारा तथा लीद भरकर उन्हें खराब कर दिया गया था। नगर के विद्वान, सामंत तथा सैय्यद दुखी जीवन व्यतीत कर रहे थे। जब उन कुत्तों (सिखों) ने भूमि का विभाजन किया तो वह शहर दुष्ट झंडा (सिंह भंगी) की जागीर बन गया। उन लोगों ने सरहिंद, लाहौर, पंजाब, मुल्तान, झंग, खुशब तथा चिनाब के संपूर्ण देश को आपस में बाँट लिया।[2]

6. यमुना के पार सिखों का द्वितीय हमला, नवंबर-दिसंबर, 1764

नजीब-उद्-दौला के साथ हुई एक लड़ाई में 25 दिसंबर 1763 को भरतपुर के जाट राजाओं में से सबसे अधिक प्रसिद्ध तथा महान् शासक सूरजमल की अकस्मात् मृत्यु हो गई। उसके युवक पुत्र जवाहरसिंह तथा संपूर्ण जाट राष्ट्र ने अपने नेता के हत्यारे से बदला लेने का निश्चय किया। अगले वर्ष जवाहरसिंह बड़े पैमाने पर तैयारियाँ करता रहा। इस काम के लिए उसने पैसा देकर मराठों तथा सिखों की सेवाएँ प्राप्त कीं।

युवक जाट राजा की इन तैयारियों से नजीब भयभीत हो उठा। यह देखते हुए कि उसको यह तूफ़ान अवश्य घेरेगा नजीब ने अपने दूत मेघराज को कंधार में अहमदशाह के पास सहायता तथा संरक्षण प्रदान करने की प्रार्थना के साथ भेजा। चूँकि लाहौर से होकर जाने वाले सीधे मार्ग को सिखों ने बंद कर

चूँकि खुदा की यही मर्जी थी, हम सब को उसके सामने सिर झुका लेना चाहिए। जंगनामा, 38।

[1]इस प्रदेश का प्रशासन एक भंगी सरदार करमसिंह के सुपुर्द कर दिया गया। इंपीरियल गज़ेटियर ऑफ इंडिया पंजाब, ii, 208।

[2]जंगनामा, 72; ("अट्ठारवीं सदी के अंतिम आधे भाग के दौरान दुर्रानी के आक्रमणों के कारण भी चिनिऔत को अनेक मुसीबतें झेलनी पड़ी थीं।"। इंपीरियल गज़ेटियर ऑफ इंडिया, पंजाब, ii, 217)।

रखा था[1] मेघराज सितंबर-अक्तूबर में पंजाब से निकला तथा पहाड़ियों की तलहटी में से होता हुआ जम्मू के मार्ग से आगे बढ़ा। इधर नजीब ने जवाहर-सिंह को शांत करने का प्रयत्न भी किया। परंतु उसके लिए तो यह मान-मर्यादा का प्रश्न था। इसलिए वह अपने निश्चय पर जमा रहा। नवंबर के प्रारंभ में वह दिल्ली की ओर बढ़ा तथा नजीब-उद्-दौला को उसने नगर में जा घेरा। सिखों को इससे एक अवसर मिल गया। अब सहारनपुर, मेरठ, बिजनौर आदि की नजीब की संपदाएँ बिल्कुल अरक्षित पड़ी थीं। जस्सासिंह अहलूवालिया के नेतृत्व में बुड्ढा दल ने बूरिया घाट से यमुना को पार किया तथा वे लोग गंग-दोआब में प्रवेश कर गए।

उन्होंने इस समृद्धिशाली प्रदेश के एक बड़े भाग को छान डाला। लूट-खसोट में उन्होंने बड़ी होशियारी का परिचय दिया। उन लोगों ने पहाड़ की तराई में बसे दूर-दूर के गाँवों को भी नहीं छोड़ा। नजीब तो दिल्ली में घिरा हुआ था परंतु हाफ़िज रहमत खाँ ने 6,000 सैनिकों के एक दस्ते को लेकर उन अतिक्रमण करने वालों का नाममात्र के लिए ही सामना किया। फिर चुप-चाप पीछे हट गया। इस अभागे प्रदेश पर आई विपदाओं में सिखों के इस हमले की गिनती सबसे अधिक भयंकर विपदाओं में की जाती है।[1]

7. नजीब उद्-दौला के विरुद्ध सिख-जाट मैत्री, जनवरी, 1765

जवाहरसिंह ने नवंबर, 1764 के प्रारंभ में ही नजीब-उद्-दौला को दिल्ली में घेर लिया था। परंतु जवाहर के साथी मल्हर राव में उत्साह की कमी के कारण यह घेरा लंबा खिंचता चला गया। इस कारण जवाहरसिंह को दूसरों की सहायता माँगनी पड़ी। उसने सिखों को, जो गंग-दोआब में लूट-खसोट कर रहे थे, दिल्ली आने के लिए निमंत्रण भेजा। उसने उन्हें एक बड़ी धनराशि देने तथा 12,000 से 15,000 सिखों को अपनी सेवा में लेने का वायदा किया।[2] सिख लोग नगर से 7 कोस की दूरी पर स्थित बरारी घाट पर आए (जनवरी, 1765 के प्रारंभ में)। उस ओर से नदी को पार किया जा सकता था। जवाहरसिंह उसे पार कर सिखों से भेंट करने के लिए गया। परंतु वहाँ उसके संबंध सिखों के साथ मैत्रीपूर्ण न बन पाए। जिस हाथी पर जवाहर-सिंह बैठा था उसके महावत को, उन लोगों ने, भेंटस्थली तक हाथी लाने में रुकावट पहुँचाई। योजना के अनुसार सौ से भी अधिक सरदारों ने (उससे)

[1]एस० पी० डी०; xxix, 73।

[2]देखें, जी० आर० सी०, विलियम्स, कलकत्ता रिव्यू, भाग lx, जनवरी, 1875, पृ० 26-7; गुलइस्ताँ-ए-रहमत 84-5।

[3]मुन्नालाल, 93; फादर वेंडेल, 97; लेकिन मिसकिन पृ० 264 के अनसार 20,000।

भेंट की । सम्मेलन की बैठक एक प्रार्थना के साथ प्रारंभ हुई । उनकी शब्दावली में इसे 'अरदास' का नाम दिया जाता है । इसमें उन्होंने कहा: "सूरजमल का पुत्र जवाहरसिंह खालसा जी की शरण में आया है तथा नानक का एक सिख बन गया है । वह अपने पिता के खून का बदला चुकाना चाहता है ।" जवाहर सिंह ने यह बर्ताव पसंद नहीं किया उन्होंने जवाहरसिंह के हुक्काबरदार को बड़ी बेइज्जती के साथ गालियाँ देकर बाहर निकाल दिया । परंतु उसे सहायता (सिख-सहायता) की अत्यधिक आवश्यकता थी तथा उसने यह सब सहन किया। यह निश्चय किया गया कि सिख लड़ने की तैयारियाँ करेंगे तथा जिधर से वे लोग आए हैं अर्थात् नगर के उत्तर की ओर खाइयाँ बनाएँगे । सूबेदार (मल्हर) तथा जवाहरसिंह पहले जैसे ही पूर्व की ओर से लड़ते रहेंगे । सिख घुड़सवार प्रदेश के पश्चिमी भाग पर निगाह रखेंगे तथा नगर में खाद्य-सामग्री के आवागमन को पूरी तरह रोक देंगे । इस तरह बीस दिनों तक लड़ाई चलती रही ।[1]

8. दिल्ली के बाहर सिख-रुहेल्ला संघर्ष

जिस तरह से सिखों तथा नजीब-उद्-दौला के बीच यह लड़ाई चली उसका आँखों देखा सजीव वर्णन नूर-उद्-दौला ने किया। हम उसे यहाँ उद्धृत कर रहे हैं ।

"प्रति दिन सिखों के घुड़सवार बाहर निकलते तथा नदी तट पर याकूब अली खाँ के बगीचे के पास, उजाड़ पड़े पुराने मकानों में घुस जाते । उदाहरण-स्वरूप ये लोग नामकीन तथा हाफिज़-उद्-दीन खाँ के भवनों, बादलपुरा तथा और मुहल्लों में घुसकर नगर-परकोटे की ओर आना चाहते थे । नदी के समीप विभिन्न स्थानों पर खाइयों में अपने आदमी तैनात कर नजीब अपने साथ घुड़सवारों, पैदलों के एक दल तथा हाथियों पर बैठे नगाड़े वालों को लेकर लाहौरी दरवाज़े से बाहर आया । उसने अपने आदमियों को टूटे-फूटे घरों तथा गलियों की ओट में खड़ा कर दिया तथा खुद एक पत्थर पर जा बैठा । रुहेल्लों ने सिखों पर गोलियाँ चलाईं। बंदूकों की यह लड़ाई बड़ी सरगर्मी से साथ दो घड़ी रात तक चलती रही । नजीब के एक रिसालदार मियाँ निआज़ गुल को एक गोली ने घायल कर दिया । रुहेल्लों की पैदल सेना ने अपनी बंदूकों का प्रयोग बड़ी योग्यता से किया । नजीब ने अपने आदमियों से कहा कि जहाँ कहीं भी सिख घुड़सवार इकट्ठे हों, वे लोग वहीं गोली चलाएँ

[1]यह बात बड़े आश्चर्य की है कि इस अवसर पर आलासिंह के लगभग 1,000 सैनिक भोलासिंह के नेतृत्व में नजीब-उद् दौला की ओर से लड़ रहे थे । करमसिंह 232; नूर-उद्-दीन 82 ख-83 क ।

इससे वे लोग बिखर जाएँगे । कुछ स्थानों पर लड़ाई भी हुई तथा बहुत-से सिख घायल हो गए । सूर्यास्त होने के साथ चाँदी का कवच पहने कोई सिख अपने घोड़े से धराशायी हो गया । सिख उसका शव ले जाना चाहते थे । इधर रुहेल्ले उसकी संपत्ति को हथियाना चाहते थे । इसलिए उन्होंने लाश को रोके रखने का प्रयत्न किया । वहाँ घमासान लड़ाई हुई । उसमें तीन रुहेल्ले खेत रहे तथा सात घायल हो गए । उधर अनेक सिख भी घायल हो गए । अंत में नंगी तलवारों के बल से रुहेल्ले लाश को घसीट कर ले गए । उसकी पेटी में एक बटुआ मिला जिसमें 1000 रुपए के मूल्य के सोने के सिक्के थ । इस प्रकार लगभग एक माह तक सिखों के साथ लड़ाई चलती रही । नजीब-उद्-दौला दिन के तीसरे पहर को शहर के बाहर आया करता था । उधर सिख भी जवाहरसिंह द्वारा उनकी सहायता के लिए भेजे गए कुछ सैनिकों के साथ वहीं आ धमकते । सूर्यास्त होने तक वे लड़ते रहते । सूर्यास्त होने पर प्रत्येक दल अपने शिविर की ओर लौट जाता था ।[1]

नजीब तथा जाटों की सहायता प्राप्त सिखों में दूसरी बड़ी लड़ाई 25 जनवरी, 1765 को नक्खास (बछड़ों का बाजार) तथा सब्जी मंडी के पास की पहाड़ी पर हुई । इसमें बहुत से आदमी हताहत हुए परंतु हमेशा की तरह परिणाम निर्णायक न हो सका ।[2]

9. सिखों का अचानक दिल्ली से पीछे हटना, फरवरी, 1765

जब दिल्ली में इस प्रकार की लड़ाई चल रही थी तो सिखों के पास खबर पहुँची कि अब्दाली ने सिंधु पार कर ली है तथा वह बड़ी शीघ्रता से लाहौर की ओर बढ़ रहा है । इसके फलस्वरूप सिख, जवाहरसिंह से विदा लिए बगैर अचानक पंजाब की ओर वापिस चल दिए । इस आक्रमण का सविस्तार वर्णन अगले अध्याय में किया गया है ।

---

[1]नूर-उद्-दीन, 84ख-85ख ।

"जनवरी 9, 1765 दिल्ली से प्राप्त समाचार । जवाहरसिंह के हाथों हार कर नजीब-उद्-दौला किले में वापिस चला गया है । नगर जवाहरसिंह के हाथों में आ गया है । नजीब-उद्-दौला मराठों की सहायता से अपने देश जाने के लिए उत्सुक है ।" (सी० पी० सी० i, 2533 ए) ।

[2]दिल्ली क्रानिकल 20; नूर-उद्-दीन, 92 ।

बारहवाँ अध्याय

अहमदशाह दुर्रानी के सातवें आक्रमण के समय सिखों की उसके साथ छेड़-छाड़, दिसंबर 1764--मार्च, 1765

1. अहमदशाह दुर्रानी का लाहौर पहुंचना दिसम्बर, 1764 के लगभग

धैर्य, दूरदर्शिता, लगन तथा दृढ़ संकल्प से परिपूर्ण दिलेर अहमदशाह अब्दाली एक बार फिर 18,000 अफ़ग़ानों को अपने साथ लेकर भारत पर चढ़ आया। वह शीघ्र ही अमीनाबाद जा पहुँचा। यहाँ नासिर खाँ बलौच अपने 12,000 सैनिकों के साथ उससे आ मिला।[1] यह संयुक्त सेना अब लाहौर की ओर बढ़ी। यहाँ पता लगाया गया कि सिख कहाँ हैं। दुर्रानी को समाचार मिला कि सिख लाहौर से लगभग 150 मील की दूरी पर स्थित लक्खी जंगल की ओर चले गए हैं। लक्खी जंगल में यात्रा करने में जो-जो खतरे थे उनसे दुर्रानी भली-भाँति परिचित था परंतु उसने फिर भी उस ओर उनका पीछा करने का निर्णय कर लिया।

अहमदशाह जब लाहौर में ही था, तब सिखों ने अफ़ग़ान सेना के एक दल पर, जो सैन्य गतिविधि का समाचार लाने भेजा गया था, एक सुबह धावा बोल दिया।[2] सिखों की इस अचानक लड़ाई का समाचार शाह को दिया गया उसने तत्काल अपने सैनिकों को, नासिर खाँ के नेतृत्व में उस दल की सहायता

---

[1]इस अभियान का ब्यौरा नूर-मुहम्मद द्वारा लिखित 'जंग-नामा' पर आधारित है। इस दुर्लभ पांडुलिपि का बहुत अधिक महत्व है। इस का लेखक दुर्रानी आक्रांता की सेना के साथ आया था। वह उसके कारनामों की टिप्पणियाँ लेता जाता था जो उसके निजी अनुभवों पर आधारित होती थीं। उसी वर्ष उसने फारसी में उसे पद्यबद्ध किया। इस पुस्तक की एक मात्र प्रति कलात (बलोचिस्तान) के खान के पुस्तकालय में विद्यमान है। सन् 1906 में स्वर्गवासी करम सिंह ने उसकी नकल तैयार की थी। इसका हाल ही में खालसा कालेज अमृतसर ने प्रकाशन करवाया है। ऐतिहासिक योजनों के लिए इस सामग्री का पहली बार यहाँ उपयोग किया गया है।

नासिर खाँ का अपने घर से लेकर अमीनाबाद तक के मार्ग का वर्णन जो कि जंग-नामा के 77 पृष्ठों में दिया गया है, जानबूझ कर यहाँ नहीं दिया गया है।

[2]जंग-नामा, 77–83।

के लिए जाने की आज्ञा दी । अफ़ग़ानों ने सिखों पर भयंकर रूप से आक्रमण किया परंतु सिखों ने भी बराबरी की टक्कर ली । नासिर खाँ का सामना चरतसिंह सूकरचाकिया ने किया । इसी बीच खान का घोड़ा गोली लगने से धराशायी हो गया। इससे उसकी सेना में कुछ खलबली मच गई। आधी रात तक लड़ाई चलती रही तथा उसके बाद दोनों दल आराम करने के लिए पीछे हट गए । नूर मुहम्मद ने, जो कि लड़ाई के समय वहीं उपस्थित था तथा जो सिखों के आक्रमण से बाल-बाल बचा था, इस लड़ाई का बहुत विस्तार-पूर्वक वर्णन किया है ।[1]

2. अहमदशाह द्वारा अमृतसर का विनाश

लाहौर से पीछ हटकर सिख लोग सीधे गुरुचक (अमृतसर) की ओर चल दिए । जब शाह को इसका पता चला तो उसने कहा "मैं तत्काल वहाँ जाऊँगा तथा सिखों को कत्ल करूँगा । मैं चक की नींवों को ज़मीन से मिला दूँगा ।" इसके परिणामस्वरूप उसने उस स्थान पर चढ़ाई करने की तैयारियाँ कीं । इस स्थान को वह पहले भी कई बार नष्ट कर चुका था परंतु सिख भी हर बार उसका नवनिर्माण करते आए थे । शाह ने अपना माल-असबाब तथा खेमें लाहौर में ही छोड़ दिए तथा चुने हुए घुड़सवारों का एक दल लेकर वह इस स्थान पर जा पहुँचा ।[2] सिखों को उसकी हलचलों का पूरा-पूरा पता था तथा वे लोग उस समय तक गुरुचक से भाग चुके थे । जब शाह वहाँ पहुँचा तो उसे कोई भी काफिर न मिला । बस दुर्ग (रामगढ़) में कुछ एक आदमी थे तथा वे भी मृत्यु का आलिंगन करने के लिए पूरी तरह तैयार थे । उनके जीवन का बस एक ही उद्देश्य था । वे अपने गुरु के लिए अपने प्राण न्यौछावर करना चाहते थे । जब उन्होंने शाह की सेना को देखा तो वे लोग धर्म के नाम पर अपने जीवन की आहुति चढ़ाने के लिए बिना किसी भय के किले से बाहर आ गए । वे गिनती में केवल तीस थे तथा परिणाम की उन्हें तनिक भी चिंता नहीं थी । उन्हें मृत्यु का कोई भय नहीं था । वे गाज़ियों के साथ उलझ पड़े तथा सब के सब मारे गए । मुसलमान दाएँ-बाएं

---

[1]वही, 87–103 ।

[2]यह वही अहमदशाह है जो फरवरी, 1762 में 150 मील की दूरी तथा मार्गस्थ दो नदियाँ पार कर लाहौर से कूप तक 36 घटे में पहुँचा था। अब वह चार दिनों में (केवल 32 मील) अमृतसर पहुँचा । यह सब सिखों के भय के कारण ही हुआ था।

घोड़ों पर घूमने लगे परंतु उन्हें और कोई सिख नज़र न आया । दुर्रानी, उनके भवन नष्ट कर, लाहौर वापिस चला आया ।[1]

3. अहमदशाह का अदीना नगर की ओर कूच

अहमदशाह दुर्रानी, जो कि सिखों के भाग खड़े होने के कारण उनसे जम कर लड़ने का अवसर न पा सका था अब अत्यधिक क्रुद्ध हो उठा था । आगे की कार्य-पद्धति पर विचार-विमर्श करने के लिए उसने एक युद्ध-परिषद् बुलवाई । अंत में यह तय किया गया कि वे अब सरहिंद की ओर कूच करें। अहमदशाह दुर्रानी ने अपर बारी तथा जालंधर दोआब का चक्कर लगाते हुए वहाँ जाने का निर्णय किया । इसका कारण यह था कि देश का यह भाग सिखों का गढ़ था । सिखों के मकानों तथा फ़सलों को नष्ट करने के साथ-साथ शाह के सैनिक उस समृद्ध तथा उपजाऊ भू-भाग से होकर इसलिए जाना चाहते थे कि सिखों के मकानों तथा फ़सलों को नष्ट करने के साथ वे उस क्षेत्र में अपनी उदरपूर्ति भली-भाँति कर सकें ।

आराम से कूच करते हुए, अब्दाली जंडियाला की ओर बढ़ा । यहाँ उसका सहायक गुरु अकिल दास रहा करता था । सिख, अफ़गान सेना के चंदावल पर मँडराते थे तथा जहाँ तक हो सकता वे जम कर लड़ने के अवसरों को जानबूझ कर टालते हुए गुरिल्ला युद्ध करना चाहते थे । "जब अफ़गान सेना जंडियाला के निकट पहुँची तो सिख एक दल बनाकर उसका सामना करने के लिए आ गए । यहाँ एक लड़ाई हुई । इसमें अफ़गान हार गए तथा रहीम खाँ बक्शी खेत रहा ।"[2]

इसके बाद अहमदशाह बटाला की ओर बढ़ा तथा लाहौर से चलने के पंद्रहवें दिन वहाँ जा पहुँचा । यहाँ सिखों से एक और झड़प हुई तथा उसमें सरबुलंद खाँ घायल हो गया तथा दुर्रानियों को पराजित कर दिया गया ।

इसके बाद दुर्रानी शहंशाह, अदीना नगर की ओर बढ़ा । सिख लगातार उसके चंदावल को परेशान करते रहे । अदीना नगर में दुर्रानियों पर सिखों ने फिर आक्रमण कर दिया । वह कठिनाई से उन्हें खदेड़ सका ।[3]

अहमदशाह की अनुज्ञा से उसके सैनिकों ने संपूर्ण देश को तबाह कर दिया तथा उस समय उन्होंने सिखों तथा गैर-सिखों में कोई भेद नहीं किया ।

---

[1]जंग नामा, 106-7 ।

[2]शमशीर खालसा, 120; खुशवक्त राय, 96 ।

[3]अहमद शाह, 894; खुशवक्त राय, 97; सोहन लाल i, 162–73; शमशीर खालसा, 120 ।

रीयारकी कहे जानेवाले इस भूखंड में चीनी, गन्ना तथा तिल बड़ी मात्रा में उत्पन्न किया जाता था । इन चीज़ों के साथ गो-माँस के मिल जाने पर उनके लिए वह अति स्वादिष्ट खाद्य-सामग्री बन जाती थी । इसका उन्होंने पूरी तरह उपयोग किया ।[1]

4. जालंधर दोआब की लड़ाई

इसके बाद अफ़गानों ने ब्यास[2] पार करके जालंधर दोआब में प्रवेश किया । वहाँ के लोग इतने अधिक आतंकित थे कि वे या तो उत्तर की पहाड़ियों में भाग गए या फिर सतलज के दक्षिण में रेगिस्तान में चले गए। कुछ लोग नदी के किनारों की दलदल भूमि में लगी ऊँची घास में या 'धोलबाह' की गुफाओं तथा कंदराओं में जा छिपे। उन्होंने अपना माल तथा संपत्ति तो छोड़ दी परंतु अपनी औरतों तथा बच्चों को गुलामी से बचा लिया ।

एक दिन फिर सिख अफ़गानों के सामने आ धमके । उनके सर गर्व से भरे हुए थे तथा उनके दिलों में बदले की भावना ज़ोर मार रही थी । उन्होंने आते ही हरावल की प्रगति रोक दी । "इसके नायक ने तत्काल शाह को खबर दी कि बद-सूरत, नापाक, गंदे तथा सूअर के स्वभाव वाले असभ्य कुत्ते आ गए हैं ।"

उस दिन सेना की कमान जहान खाँ ने अपने हाथों में ली क्योंकि वह सिखों से पहले भी अनेक बार लड़ चुका था तथा उसे उनका तथा उनकी चालों का काफ़ी अच्छा अनुभव था । वह अपनी जगह पर जमा रहा और तिल-भर भी इधर-उधर नहीं हिला । वह और कुमुक आने की प्रतीक्षा कर रहा था । "वे नराधम (सिख लोग) लड़ाई के मैदान में घोड़ों पर इधर-उधर सरपट दौड़-दौड़ कर आतंक मचा रहे थे । उनके हाथों में बंदूकें तथा

---

[1]जंग नामा, असली पन्ना 108; परंतु पाँडुलिपि में इसे अशुद्ध रूप से पृ० 109 दिया गया है । पृ० 110-111 भी; अहमद शाह, 493; अली-उद्-दीन, 18 क ।

[2]ऐसा प्रतीत होता है कि गो-माँस, खाँड तथा तिल खाने में काज़ी नूर मुहम्मद इतना अधिक लीन रहा कि वह यह लिखना भूल गया कि कब और किस प्रकार उन लोगों ने ब्यास पार की । उसने उस लड़ाई का वर्णन किया जो जालंधर दोआब में हुई थी, क्योंकि आगे के वर्णन से पता चलता है कि वे तीसरे दिन सतलज पर पहुँच गए थे ।

मशालें थीं । वे हमारे घुड़सवारों पर गोली चला रहे थे । वे लोग लड़ाई के मैदान में कभी दाएँ तथा कभी बाएँ दौड़ रहे थे ।"[1]

इसके बाद नूर मुहम्मद ने अपनी विशेष शैली में उस आमने-सामने की लड़ाई का वर्णन किया है जो वहाँ उस दिन लड़ी गई थी ।

5. अहमदशाह का पिंजौर होकर कुंजपुरा की ओर बढ़ना

उस दिन की लड़ाई के समाप्त होने पर अफ़गान आगे बढ़ गए तथा तीसरे दिन वे सतलज के किनारे जा पहुँचे । शायद उन्होंने रोपड़-घाट से उसे पार किया । जब असबाब की गाड़ियाँ पार हो गईं तो सिखों ने उस पर धावा बोल दिया । परंतु शाह की आज्ञा इतनी कठोर थी कि प्रत्येक व्यक्ति अपने स्थान पर ही जमा रहा तथा कुछ घंटों के बाद सिख निराश होकर पीछे हट गए तथा उनके हाथ कुछ नहीं लगा । रात्रि को अब्दाली सतलज के दूसरे तट पर ठहरा । दूसरे दिन उषा वेला में ही वह सीधा पिंजौर की ओर चल दिया । इस स्थान पर उसने मोरनी की पहाड़ियों की सुप्रसिद्ध शिकारगाह म शेर का शिकार खेला । आराम से यात्रा करता हुआ वह गढ़ी कोटा पहुँचा तथा फिर धीरे-धीरे दो महीने की यात्रा के बाद वह कुंजपुरा जा पहुँचा । इन दिनों उसने कभी भी छः मील से अधिक की यात्रा नहीं की ।[2]

6. सिखों का नाश करने की योजनाओं का त्याग

अहमदशाह फरवरी के अंत तक कुंजपुरा पहुँच गया था । वह कुछ दिनों तक वहाँ ठहरा रहा तथा सिखों को कुचलने के लिए उठाए जाने वाले कदमों पर विचार-विमर्श करता रहा । भारत की गर्मी तथा वर्षा से दुर्रानी अधिकारी डरते थे । उन्होंने, अपने स्वामी से यह कहकर कि अगली शरद ऋतु में फिर

---

[1]जंग नामा, 111-12 ।

[2]वही, 117–24 ।

यह इस बात का हमें स्पष्ट संकेत देता है कि अहमदशाह सिखों को दंडित नहीं कर रहा है परंतु वह प्रत्यक्ष रूप से मनोरंजन कर रहा है । जब कभी उससे लड़ने के लिए सिख सामने आते तो वह कभी भी अपनी ओर से आगे बढ़कर हमला नहीं करता परंतु अपना बचाव ही करता रहता । ऐसा लगता है कि वह सिखों से इतना अधिक आतंकित हो उठा है कि उनके प्रदेश में से सीधे होकर जाने के स्थान पर वह पहाड़ियों की तराई के साथ-साथ ही चल रहा है ।

आया जाए, वापिस घर चलने की इच्छा व्यक्त की। इसके फलस्वरूप अहमदशाह ने वापिस जाने का निश्चय कर लिया।

7. दुर्रानी के सामने आला सिंह का आत्मसमर्पण

कुंजपुरा से अहमदशाह चार पड़ाव डालने के बाद सरहिंद जा पहुँचा। जो शहर कभी खूब फलफूल रहा था वह अब खंडहरों में बदल चुका था। इसे देखकर अफ़गानों को बहुत धक्का लगा। इस स्थान पर दुर्रानी बादशाह के सम्मुख आलासिंह बहुत से कीमती उपहार[1] लेकर उपस्थित हुआ। शाह ने उससे पूछा कि सरहिंद कैसे उजाड़ा गया था। आलासिंह ने उत्तर दिया : "उस देश को सिखों ने बरबाद कर दिया है। मैं कई बार उनसे लड़ा तथा मैंने उन्हें दंडित किया। यद्यपि वे मुझ से कई बार हार खा चुके हैं परंतु फिर भी वे किसी बात की फिक्र नहीं करते। लोग बड़ी संख्या में सिख बन जाते हैं। जहाँ कहीं भी एक सिख मरता है उसका स्थान भरने के लिए तत्काल दो और आ खड़े होते हैं। इसका कारण यह है कि उनके गुरु ने वरदान दे रखा है कि एक सिख के स्थान पर दो खड़े हो जाएँगे। यदि

[8]जंगनामा, 131–3।

नूर मुहम्मद ने आलासिंह का रोचक वर्णन किया है : "सरहिंद के सूबे में एक जमींदार रहता था जो एक सैनिक सिपहसालार था। वह उस स्थान का शासक था। यद्यपि वह जनेऊ पहनने वाला तथा मूर्ति-पूजक था तो भी वह बादशाह का बहुत आज्ञाकारी था। उसका नाम आला या आला जाट था। मुझे यह नहीं मालूम है कि जाट उसकी उपाधि थी या कि जाति। जब बादशाह उसके देश से होकर निकला तो किसी ने उसे बादशाह के सम्मुख तत्काल उपस्थित होने तथा उसकी इच्छाओं को पूरा करने के लिए समाचार भेज दिया। ऐसा न करने की स्थिति में उसके देश में लूटमार तथा तबाही मचाने की धमकी भी दी गई। यह सुन कर आला जाट उपहार लेकर बादशाह के सामने आ उपस्थित हुआ। उन्हें स्वीकार कर लिया गया। पंजाब, लाहौर तथा सरहिंद में उसे छोड़ कर और कोई ऐसा नहीं है जिसका बादशाह पर उसके समान प्रभाव हो। दूसरे हिंदुस्तानियों की अपेक्षा वह बादशाह का अधिक आज्ञाकारी है। यद्यपि वह हिंदू तथा मूर्ति-पूजक है फिर भी वह अन्य हिंदुओं से अच्छा है। वह हमेशा सिखों से लड़ा है। यद्यपि वह उनसे सांसारिक वस्तुओं के लिए लड़ा है धर्म के लिए नहीं। सिख उससे दो हाथ दूर ही रहते हैं तथा लड़ाई में वे उसके सामने नहीं टिक पाते। उसके सेवकों में हिंदू तथा मुसलमान समान रूप से हैं। वह बादशाह की उपस्थिति तथा अनुपस्थिति में समान रूप से उसकी सेवा करता है तथा उसकी आज्ञाओं को पूरा करने में कोई कसर नहीं रखता है।"

महामहिम सरहिंद का इलाका मुझे सौंप दें तो मैं उसे पहले से कहीं अच्छी तरह बसा दूँगा । परंतु इसके लिए एक साल की मालगुज़ारी से मुझे माफ़ कर दिया जाए ।"[1]

अहमदशाह इस बात को भली-भाँति जानता था कि किसी अन्य सूबेदार का वही अंत होगा जो जाइन खाँ का हुआ था । आलासिंह आज्ञाकारी, वीर तथा बुद्धिमान था । कर के रूप में वह उसे, वही रकम देने को तैयार था जो कि उसका कोई और सूबेदार उसे देता । दुर्रानी को यह पता था कि आलासिंह एक सिख है तथा सरहिंद प्रांत की सूबेदारी पर उसकी नियुक्ति या तो दूसरे सिख मुखियों को उसका आधिपत्य स्वीकार करने के लिए प्रेरित करेगी नहीं तो वह माँझा तथा मालवा के सिखों में फूट पैदा कर अंत में उन्हें कमज़ोर बना देगी । इस लिए अहमदशाह ने आलासिंह को एक उपाधि से विभूषित कर उसे एक खिल्लत, नक्कारे तथा पताकाएँ प्रदान कर दीं । साढ़े-तीन लाख रुपए वार्षिक राशि के बदले में उसे सरहिंद प्रांत का स्वतंत्र रूप से मुखिया बना दिया गया ।[2]

8. सिखों द्वारा जमकर लड़ाइयाँ लड़ने का प्रारंभ, मार्च 1765 के लगभग

पिछले पृष्ठों में हमने देखा है कि लाहौर के मुगल सूबेदारों तथा अहमदशाह दुर्रानी के साथ हुई अपनी लड़ाइयों में सिखों ने सदैव गुरिल्ला चालों का ही सहारा लिया । ऐसा प्रतीत होता है कि वे लोग अब तक अपने को अपने शत्रु की बराबरी का नहीं समझते थे तथा जमकर लड़ने वाली लड़ाई को टालते रहते थे । परंतु पिछले दो सालों की लगातार होने वाली विजयों ने उनमें अपार उत्साह भर दिया तथा अब उन्होंने अपने शत्रु से जमकर लोहा लेने की ठान ली । अहमदशाह की वापसी यात्रा तक बुड्ढा दल दिल्ली से वापिस आ चुका था तथा तरुण दल से मिल गया था । अब उन्हें अहमदशाह अब्दाली से जमकर लड़ने में तनिक भी भय नहीं लग रहा था । इन लड़ाइयों में उन्होंने

---

[1]जंगनामा, 139 ।

[2]यह कूटनीतिक चाल सफल रही । अब्दाली के लौट जाने के बाद हरीसिंह भंगी के नेतृत्व में दल-खालसा ने आलासिंह पर हमला किया क्योंकि उसने अहमदशाह की अधीनता स्वीकार कर ली थी । लंघालायले गाँव में जो लड़ाई हुई उसमें हरीसिंह खेत रहा । इसके बाद जस्सासिंह अहलूवालिया ने, जो आलासिंह की ओर झुकाव रखता था, दल-खालसा को गृह युद्ध की भयंकरता से दूर रहने के लिए मना लिया । करम सिंह, 247; जंगनामा, 140 ।

अपनी सेना को नियमित रूप से संगठित किया तथा उनका केंद्रीय, दाएँ तथा बाएँ स्कंधों में वर्गीकरण किया। नूर मुहम्मद द्वारा दिए गए वर्णन से हमें इस बात का स्पष्ट पता चल जाता है।

9. सतलज की लड़ाई

कुछ दिन सरहिंद में ठहरने के बाद अहमदशाह सतलज पार कर अपने घर की ओर बढ़ने लगा। शायद इस बार भी उसने रोपड़ के स्थान से सतलज पार की।[1] एक सुबह जबकि वे नदी के दूसरे तट से लगभग एक कोस की दूरी तक ही गए थे कि उनके हरावल पर सिखों ने हमला बोल दिया। अफ़गान तत्काल लड़ने के लिए तैयार हो गए। सेना के केंद्र में अहमदशाह था तथा 12,000 सैनिकों के साथ शाहवली खाँ, जहान खाँ, शाह पसंद खाँ, अंजला खाँ आदि दाईं ओर थे। नासिर खाँ अपने 12,000 बलोच सैनिकों के साथ बाईं ओर था। सिखों ने भी नियमित रूप से अपनी व्यूह रचना की थी। केंद्र में जस्सासिंह कलाल पर्वत की भाँति निडर होकर खड़ा हुआ था। उसके पास ही दूसरा जस्सा (सिंह) थोका बब्बर शेर की मूर्ति बना खड़ा था। इसके साथ ही केंद्र में और दूसरे बहुत से सरदार अपनी-अपनी जगहों पर खड़े हुए थे। दाएँ भाग में चरतसिंह, जिसे निरादृत चरतू कहा जा सकता है, खड़ा था। झंडा (सिंह), महना (सिंह) तथा यजसिंह भी उसके साथ थे। हरी सिंह भंगी, राम दास, गुलाब (सिंह) तथा गूजर (सिंह) बाईं ओर थे।[2]

अहमदशाह ने अपने सरदारों को अपने स्थानों से आगे न बढ़ने के कड़े अनुदेश दे रखे थे। बड़ी घमासान लड़ाई होने लगी तथा सिख दाएँ स्कंध पर छा गए। इसके बाद दुर्रानी ने नासिर खाँ को बुलवाया तथा उससे कहा: "अब तक सिखों ने दाएँ स्कंध को लगभग दबा दिया है क्योंकि हमारे बहादुरों ने उनका पीछा किया था तथा वे दूर तक चले गए थे इसलिए यह स्कंध खाली हो गया है तथा वापिस आकर सिखों ने उसे हथिया लिया है। तुम देख रहे हो कि इस ओर वे शक्तिशाली होते जा रहे हैं। ये काफिर तातारों की भाँति तीर तथा गोलियाँ बरसा रहे हैं। कभी दाएँ तथा कभी बाएँ स्कंध पर आक्रमण कर देते हैं तथा मैं उनकी दिलेरी देख कर चकित हूँ। तुम उस ओर जाओ तथा उनका सामना करो। परंतु याद रखो अपने स्थान से

---

[1]करम सिंह 242।

[2]जंग-नामा, 147। नूर मुहम्मद के वर्णन से यह स्पष्ट पता चल जाता है कि उस समय भंगी मिसल सबसे अधिक शक्तिशाली संघ था। उसने जिन नौ नेताओं का उल्लेख किया उनमें पाँच भंगी मिसल के थे।

आगे न बढ़ना । शत्रु अपने आप तुम्हारे पास आएगा तथा तुम उसके पास मत जाना ।"

इसके बाद नासिर खाँ दाएँ स्कंध की ओर चल दिया । परंतु जैसे ही वह वहाँ पहुँचा उस पर चरतसिंह ने तेज़ी से हमला किया ।[1] बलौच सरदार भी अपने स्थान पर जमा रहा । अफ़गान पंक्तियों को भेदने में असफल होने के कारण सिखों ने अपनी पुरानी चाल अपनाई तथा लड़ाई के मैदान से वे लोग भाग खड़े हुए । नासिर खाँ सरलता से चकमे में आ गया तथा वह उनका पीछा करने के लिए दौड़ा । खान को मुख्य दल से दूर आ गया देखकर सिख अचानक रुक गए । अब पीछे घूमकर वे लोग उस पर बाज़ की भाँति झपट पड़े । अफ़गान अपने घोड़ों से उतर गए तथा अपनी जान बचाने के लिए कठोर संघर्ष करने लगे । कई घंटों तक कड़ा मुकाबला करने के बाद वे अपने मुख्य दल में पहुँच पाए ।[2] ठीक इसी समय सिखों के एक नवीन दल ने उन पर फिर आक्रमण कर दिया । भयंकर लड़ाई शुरू हो गई जो काफ़ी रात तक होती रही । उसके बाद दोनों दल आराम करने के लिए पीछे हट गए ।

10. सिखों के साथ दूसरे दिन की लड़ाई

दूसरे दिन सुबह अफ़गान सेना सूर्योदय होने पर आगे बढ़ने लगीं । परंतु वे अभी केवल तीन मील ही जा पाए थे कि उन्हें सामने सिख सेना दिखाई पड़ने लगी । उन्होंने अफ़गानों पर तीन ओर से अर्थात् सामने दाईं तथा बाईं ओर से हमला कर दिया ।[3] इस दिन उन्होंने अपना संगठन क्रम बदल दिया था । उनकी दाईं ओर की सेना बाईं ओर, तथा बाईं ओर की सेना दाईं ओर कर दी गई थी । पिछले दिन से उनकी संख्या भी कहीं अधिक हो चुकी थी । दुर्रानी ने तत्काल अपनी सेना को रुक जाने की आज्ञा दी तथा पिछले दिन की भाँति उसने अपनी सेना की व्यूह रचना कर ली । जब अफ़गान धावा बोलने के लिए तैयार हुए तो सिख अचानक भाग खड़े हुए तथा आँखों से ओझल हो गए । जब अफ़गान आगे बढ़ने के लिए तैयार हुए तो सिख उनके चंदावल की ओर दिखाई पड़ने लगे । इन बातों से अहमदशाह बहुत चिड़ गया तथा उसने अपनी सेना को संबोधित करते हुए कहा : "कोई आगे न जाए तथा कोई भी अपने स्थान से न हिले । प्रतीक्षा

[1]इस स्थान पर मूल पाँडुलिपि में पृष्ठ 153-4 नहीं हैं । इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि चरत सिंह ने किस भाँति नासिर खाँ से लड़ाई लड़ी थी ।

[2]जंगनामा, 148-58 ।

[3]वही, 178 । उन्होंने पीछे की ओर ध्यान नहीं दिया, इससे पता चलता है कि अब सिख पीछे की ओर से आक्रमण करने को कायरता समझने लगे थे ।

करो, यह शैतान शत्रु अपने आप तुम्हारे पास आएगा । अपनी-अपनी पंक्तियों से बाहर मत निकलो तथा काकेसस पर्वत की भाँति अपने-अपने स्थानों पर जमे रहो । जब तुम देखो कि कुत्ते तुम्हारे पास आ पहुँचे हैं तो उनके सिरों पर टूट पड़ो ।" इसके बाद कुछ समय तक लड़ाई चलती रही तथा बहुत से सिख अपनी जान से हाथ धो बैठे ।[1]

11. सिखों के साथ तीसरे दिन की लड़ाई

तीसरे दिन सूर्योदय होने पर सब अफ़गान अपने-अपने घोड़ों पर सवार हो आगे बढ़े । "वे लोग अभी छः मील ही जा पाए थे कि वे काले कुत्ते आज भी पिछले दिन की भाँति सामने दिखाई देने लगे । वे आज भी कल की ही तरह लड़े । उन्होंने वही पुरानी चालें अपनाईं तथा जिस रास्ते से आए थे उसी से वापिस भाग खड़े हुए ।[2] वे लोग शेर की भाँति आए तथा गीदड़ की भाँति भाग खड़े हुए । पहले दिन की भाँति ही ये नराधम हर रोज़ लड़ाई में आते रहे । ये पागल काफिर आते थे तथा वापिस चले जाते थे । वे भागते नहीं थे परंतु लड़ाई को लंबा खींचते चले जाते थे । भागने में उन्हें शर्म नहीं आती थी । लड़ाई के मैदान में वे लड़ते नहीं थे । वे आते तथा थोड़ी दूरी से अपनी-अपनी बंदूकें खाली करके लड़ाई के मैदान से भाग खड़े होते । वे आते तथा तत्काल वापिस हट जाते । उनके दिलों में शालीनता तथा आँखों में शर्म नहीं थी । बात यह है कि शालीनता धर्म से ही आती है और वह केवल एक मुसलमान के ही पास होता है । जनेऊ पहनने वाले इन काफ़िर कुत्तों से किसी भी प्रकार के 'ईमान' की आशा नहीं की जा सकती । संक्षेप में बात यह है कि ये कुत्ते इसी भाँति सात दिन तक लड़ते रहे । जब कभी भी विश्वविजयी शाह घोड़े पर सवार होता, ये जनेऊ-धारी मूर्ति-पूजक सामने आ जाते । उन कमीने कुत्तों ने सदैव इस्लाम के शाह का पीछा किया तथा जब कभी वह धर्म-रक्षक-शाह रुकता ये कलमुंहे कुत्ते उससे लड़ते ।[3]

12. ब्यास की लड़ाई

सातवें दिन वे लोग दिन निकलने पर अपनी-अगली यात्रा के लिए चल पड़े तथा शीघ्र ही ब्यास के घाट पर पहुँचे । शाह किनारे पर खड़ा हो गया तथा उसने

[1]जंग-नामा, 178-81 ।

[2]शायद यह लड़ाई नूर महल के स्थान पर हुई थी । यह जालंधर से 16 मील दक्षिण में स्थित है । (देखें शमशीर खालसा, 120) ।

[3]जंगनामा, 182-3 । इनमें से एक लड़ाई कपूरथला के निकट भी हुई थी । इसमें दुर्रानियों को बुरी तरह मुँह की खानी पड़ी थी तथा उन्हें बहुत-से आदमियों तथा जानवरों से हाथ धोना पड़ा था । खुशवक्त राय, 96 ।

आज्ञा दी कि सारे ऊँटों को चाहे वे सोने से लदे हों चाहे लकड़ी से तथा दुकानदारों, कारीगरों, सौदागरों, व्यापारियों, घर-बार वालों, औरतों, बच्चों, लड़कों, बैल गाड़ियों तथा गदहों को पहले नदी पार पहुँचा दिया जाए । जब सब पार हो गए तो शाह खुद तट पर आया । ठीक इसी समय उसे सूचना दी गई कि लगभग 30,000 नराधम कुत्ते—वीर लड़ाके—सशस्त्र लड़ाई के लिए नदी के दक्षिणी तट पर प्रतीक्षा कर रहे हैं ।[1]

सदैव की भाँति शाह ने अपने प्रत्येक सरदार को अपने सैनिकों के सामने अपने-अपने स्थान पर जम जाने की आज्ञा दी । बहुत समय नहीं बीता था जब उन कुत्तों ने अपनी पुरानी आदत के अनुसार दोनों स्कंधों पर चीख पुकार मचा दी तथा लड़ाई शरू कर दी । मुसलमानों ने जब देखा कि वे नराधम क्रोध में आकर चारों ओर मारकाट मचा रहे हैं तो खान सब से पहले अपने घोड़े को आगे बढ़ाता हुआ उनकी पंक्तियों के बीच में जा पहुँचा । वे बदज़ात कुत्ते शेरों के सामने से भाग खड़े हुए तथा उन्होंने अपने सिर पर कलंक का टीका लगा लिया । वे कुत्ते छः मील तक भागते चले गए । खानों, अफ़गानों, अमीरों तथा वज़ीरों ने इस बीच उनका पीछा बड़ी सरगरमी के साथ किया तथा अंत में वे कुत्ते लड़ाई के मैदान से भाग खड़े हुए । इस भागादौड़ी में उनके बहुत से आदमी मारे गए । सूअर का माँस खाने वाले वे सब नराधम कुत्ते जब मुसलमानों की आँखों से दूर हो गए तो वे मैदान से लौट आए तथा नदी के किनारे आ खड़े हुए ।

संपूर्ण शिविर ने सुरक्षित रूप से नदी पार कर ली । तत्पश्चात् शाह ने नदी पार की । सबके बाद दल बना-बना कर बलौच भी आ गए । "कुत्तों की यह अंतिम लड़ाई थी तथा उनके संघर्ष का अंतिम दिन । उनकी मक्कारी तथा चालें उनके कुछ काम न आईं । वे चिंतित तथा निराश हो चुके थे । दोआब की यह दूसरी नदी थी तथा संपूर्ण विश्व में उसी नाम से जानी जाती है । धर्म-रक्षक-शाह अपनी पूरी सजधज, गोरव तथा विजय के साथ इस स्थान से चल पड़ा तथा आराम से मार्ग तय करता हुआ रावी के तट पर जा पहुँचा । इसे, अपने संपूर्ण माल असबाब तथा सेनाओं के साथ, पार करने के बाद वह आराम से सफ़र करता हुआ चिनाव नदी पर जा पहुँचा ।[2]

---

[1]वही, 183-4 ।

[2]जंगनामा, 183-6 ।

यह संभव प्रतीत होता है कि वैसाखी का उत्सव निकट आया देख सिखों ने अहमदशाह का पीछा छोड़ दिया था । उस वर्ष यह त्यौहार 10 अप्रैल 1765 को पड़ा था ।

13. अहमदशाह का भारत से प्रस्थान, मार्च, 1765 के अंतिम दिनों में

चिनाब नदी को पार करने के बाद, जहाँ अहमदशाह को बहुत अधिक हानि उठानी पड़ी उसने दूसरे तट पर खेमे गड़वा दिए। यहाँ से उसने, झेलम पर नावों का पुल बनवाने का इंतजाम करने के लिए, जहान खाँ को आगे भेज दिया। यहाँ से शाह एक दिन में छः मील का फासला तय करता हुआ आराम से यात्रा करने लगा। इससे उसके सैनिकों को भी पूरा-पूरा आराम मिल गया। नावों के पुल के सहारे दो दिनों में झेलम को सकुशल पार कर लिया गया तथा वे लोग रोहतास के किले में जा टिके। यहाँ शाह ने नासिर खाँ को उसकी बहुमूल्य सहायता के लिए धन्यवाद दिया तथा उसकी ही प्रार्थना पर उसे क्वेटा का इलाका प्रदान कर दिया। इसके साथ ही साथ और भी अनेक प्रकार की कृपाएँ की गईं जिन्हें खान ने बड़े आदर भाव के साथ ग्रहण किया। इसके बाद अहमदशाह ने बड़ी उदारता के साथ उसे डेरे, मुल्तान, तथा चिनाब के पश्चिम का संपूर्ण प्रदेश देना चाहा। परंतु अपने सलाहकारों की राय पर उसने बड़ी नम्रता से यह भेंट स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। ऐसा शायद उसने सिखों के भय के कारण किया।[1]

यहाँ से दुर्रानी, कटक तथा पेशावर के मार्ग से होता हुआ, काबुल चला गया। नासिर खाँ ने भी, इस्माइल खाँ द्वारा तैयार किए एक नावों के पुल की सहायता से, डेरा इस्माइल खाँ के स्थान से सिंधु को पार किया तथा डेरा गाज़ी खाँ से होता हुआ वह कलात जा पहुँचा।[2]

14. सिख सरदारों के अधिकार-क्षेत्र

इस अभियान के विस्तारपूर्वक वर्णन के साथ-साथ नूर मुहम्मद ने पंजाब के उन क्षेत्रों का भी वर्णन किया है जो सिख सरदारों के अधिकार में थे। "चीनीओत, झंडा (सिंह) की जागीर में है। वह कलमुँहा कुत्ता वहाँ खूब चमक रहा है। चत्ताहों तथा झंग का संपूर्ण इलाक़ा हरीसिंह भंगी के अधीन है। विरपाल (रतन

---

[1]नूर मुहम्मद ने पृष्ठ 186–90 में अहमदशाह द्वारा चिनाब पार किए जाने का बड़ा रोचक तथा पूर्ण वर्णन किया है।

[2]जंग नामा, 190—210।

(खान की अनुमति प्राप्त करके गंजबा के निवासी काज़ी अब्दुल्ला उर्फ़ कलवार के पुत्र काज़ी नूर मुहम्मद ने उसी वर्ष अर्थात् 1178 हिज़री (सन् 1765) में ही उस अभियान का वर्णन लिखा तथा उसे नासिर खाँ को भेंट कर दिया। वही, 219-25)।

सिंह के अनुसार नमक की खानें, 496) पर करम सिंह का अधिकार है, तथा परौल पर नराधम जयसिंह का कब्ज़ा है। जस्सा (सिंह) कलाल[1] कलानौर पर शासन करता है। यह दुष्ट-बुद्धि दोआब (जालंधर) पर भी शासन करता है। जालंधर जस्सा (सिंह) बढ़ई (कलाल) के अधीन है। ये दोनों जस्से मिल जुलकर सब काम करते हैं तथा बटाला पर दोनों का मिला जुला अधिकार है।[2] उनकी पताकाएँ तथा नगाड़े एक जैसे हैं। गूजर सिंह तथा लहना (सिंह) के पास वानीकी है तथा वे वहीं से अपनी आय जुटाते हैं। औघड़ सिंह तथा साँवल सिंह की जागीर सैय्यदों के गाँव (पिंडी सैयदान) तक फैली हुई हैं। चमयारी का इलाका भी उन्हीं का है। दोनों कुत्ते वहाँ अमीर बन बैठे हैं। सूबा (शोभा) सिंह का क्षेत्र नदी तट तक फैला है। वसावा (सिंह) उसका मित्र है तथा सुविख्यात अदीना नगर पर अधिकार जमाए हुए है। इन कुत्तों का इलाका अमीनाबाद के भी परे नदी तट (चिनाब) तक फैला हुआ है। चरतू (चरत सिंह सूकरचाकिया) के पास जागीर के रूप में रोहतास है तथा उसके ही प्रयत्नों से उस स्थान ने एक नगर का रूप ले लिया है। नत्था (सिंह) दीपालपुर पर शासन करता है। यह स्थान उसके इलाके के मध्य में है।

"जस्सा (सिंह) का भाई तथा करम सिंह उसके साझेदार हैं।। इनके अलावा इनमें से और भी बहुत से कुत्ते प्रसिद्ध हैं तथा इनकी जागीरों में अन्य इलाके हैं। सरहिंद से लेकर लाहौर, मुल्तान तथा डेराजट तक के संपूर्ण देश को इन नराधम कुत्तों ने आपस में बाँट रखा है। वे इसका भोग करते हैं तथा किसी से भय नहीं खाते।[3]

---

[1]इसका पूरा नाम जस्सा सिंह रामगढ़िया था।

[2]यह स्पष्ट रूप से अशुद्ध है। घर बैठ कर अपनी पुस्तक का संकलन करते समय नूरू मुहम्मद ने, यात्रा के समय लिखी गई टिप्पणियों को अशुद्ध क्रम में लगा कर पढ़ा होगा। जस्सा सिंह रामगढ़िया तथा जयसिंह कन्हैया मिलकर काम करते थे तथा बटाला पर उन दोनों का मिला जुला अधिकार था।

[3]जंगनामा, 176–8, यद्यपि सफ़ेद दाढ़ी वाले काज़ी ने सिखों को अनेक प्रकार के घृणित नामों से पुकारा है परंतु फिर भी उसने अपनी पुस्तक का पूरा एक अध्याय उनकी वीरता तथा चारित्रिक सद्गुणों का वर्णन करने में लगाया है। उसका अनुवाद सोलहवें अध्याय में किया गया है।

तेरहवाँ अध्याय

प्रभुसत्ता ग्रहण, अप्रैल-सितंबर, 1765

1. सिखों का लाहौर पर अधिकार तथा सिक्कों का चलाना, 16 मई, 1765

अहमदशाह अब्दाली का पीछा छोड़ने के बाद, सिख बैसाखी का उत्सव मनाने के लिए अमृतसर की ओर वापिस चले गए। उस वर्ष यह त्यौहार 10 अप्रैल को पड़ने वाला था। हाल ही के दुर्रानी अभियान में आक्रांता के साथ उनकी प्रत्येक लड़ाई में सिखों की शक्ति दुर्रानी से अधिक रही थी। अब उन्हें विश्वास हो गया था कि या तो अहमदशाह फिर और आक्रमण करने की हिम्मत ही नहीं करेगा और यदि उसने ऐसा किया भी तो वह उनके अधिकार क्षेत्रों पर आक्रमण न करेगा। यदि उसने उनके विरुद्ध लड़ाई छेड़ी तो वे उससे अधिक शक्तिशाली सेना लेकर उससे मोर्चा लेंगे तथा हर क़ीमत पर उसे पराजित करेंगे। अपनी उच्चता के प्रति इस सजग भावना ने उन्हें अपनी स्वतंत्रता की घोषणा तथा प्रभु-सत्ता ग्रहण करने के लिए तैयार कर दिया। उन्होंने सरोवर, मंदिर तथा दूसरे भवनों का जीर्णोद्धार किया तथा उन्हें फिर से बना लिया। इस काम के लिए उन्होंने बड़ी-बड़ी रकमें खर्च कीं। प्रतिदिन ग्रंथ साहब का पाठ करने के लिए नियमित रूप से ग्रंथियों की नियुक्ति कर दी गई। "बारह मिसलों में से, जिनमें उनका राष्ट्रमंडल बँटा हुआ था, छः ने मंदिर में अपने-अपने प्रतिनिधियों की नियुक्ति कर दी। उन्होंने एक सिब्बंदी की स्थापना की तथा अनेक प्रकार की धार्मिक सेवाओं को फिर से चालू कर दिया। वे आज तक चली आ रही हैं।[1]

सिखों ने लगभग एक माह त्यौहार मनाने तथा धन्यवाद देने में बिताया। इसके बाद उन्होंने अपने पुराने इलाकों को वापिस लेने तथा यथासंभव नवीन भूभागों पर अधिकार करने का निश्चय किया।

जब सिख अपने-अपने इलाकों को चले गए तो भंगी मिसल के लहना सिंह तथा गूजर सिंह लाहौर के निकट रंघरौनी के अपने प्रधान केंद्र में आ गए। उनके लिए यह बात बहुत असह्य थी कि पंजाब की राजधानी अहमदशाह के सूबेदार के ही हाथों में पड़ी रहे। यह बात तो उन्हें और भी अधिक बुरी लगती थी कि वह स्थान उनकी धार्मिक राजधानी के बिल्कुल निकट था। उस समय काबुली मल अपने मालिक की सेना के साथ दूर गया हुआ था तथा उसका भतीजा अमीर सिंह, जो कि एक अनुभवहीन युवक था, अपने चाचा के स्थान पर काम कर रहा

---

[1]बूटेशाह, 15 क; हिस्ट्री ऑफ दी हरि मंदिर, 8।

था। इस अवसर का लाभ उठाते हुए उन्होंने एक रात अपने 2000 सैनिक साथ लेकर बाघबानपुरा पर जा कर डेरा जमा लिया। यहाँ से उन्होंने किले में नौकर रखे गए पुरबियों से बातचीत शुरू की परंतु उन्होंने ग़द्दारी करने से साफ़ मना कर दिया। इसके बाद सिख सरदारों ने नक़रा जाट, मेहर सुल्तान, गुलाम रसूल, अशरफ, चुन्नुन तथा बकर को अपनी ओर फोड़ लिया। ये सब बाघबानपुरा के अरेन थे तथा किले में मालियों का काम करते थे। उन्होंने किले की दीवार में ऐसे स्थान पर सेंध लगाकर, जहाँ से भय फैलने की आशंका कम थी, सिखों को किले के अंदर ले जाने का भार, अपने ऊपर ले लिया।

पहले गूजर सिंह अपने 50 चुने हुए साथियों को लेकर किले में घुसा।[1] लहना सिंह को बुलाने के लिए पहले से निश्चित संकेत के अनुसार उसने अहमदशाह के लकड़ी के मंडप में आग लगा दी। लहना सिंह शीघ्रता से गूजर सिंह की ओर बढ़ चला। अमीर सिंह को बंदी बना लिया गया[2] तथा मोजंग में रोक दिया गया। इसके बाद लाहौर का किला बिना किसी महत्वपूर्ण प्रतिरोध के सिखों के हाथों में आ गया। दूसरे दिन सुबह-सुबह ही नियाज़बेग का शोभा सिंह अपने 200 सैनिकों के साथ आ कर भंगी सरदारों में मिल गया। उसने दीवान लखपत राय के भतीजे मेघराज खत्री की हवेली में अपना डेरा जमा लिया। नगर में प्रवेश करने के बाद तीनों सरदारों के सैनिकों ने लूटमार प्रारंभ कर दी। पास-पड़ोस के गाँवों के ज़मींदारों ने भी नगर को लूटना आरंभ कर दिया। चौधरी रूपा, दीवान सूरत सिंह के पौत्र लाला बिशन सिंह तथा महाराज सिंह, मीर नत्थू शाह, हाफिज़ कादिर बख्श तथा मियाँ मुहम्मद आशिक तथा नगर के दूसरे प्रतिष्ठित नागरिक एक शिष्ट-मंडल बना कर किले में गए तथा सरदार गूजर सिंह तथा लहना सिंह के साथ अपनी एक मुलाकात में उन्होंने उससे कहा, "यह नगर गुरु का पालना कहलाता है[3]। यदि आप इसकी देखभाल करेंगे तो आपकी समृद्धि होगी परंतु यदि आप इसे उजाड़ कर तबाह कर देंगे तो आपको हाथ कुछ न लगेगा तथा न कुछ लाभ होगा।"

तदनुसार उन सरदारों ने नगर के सब द्वार बंद कर दिए तथा घोषणा की कि जो कोई भी नागरिकों को सताएगा उसे दंड दिया जाएगा। इसके बाद दोनों

---

[1]पंजाब चीफ्स, i, के पृष्ठ 338 पर लिखा है कि गूजर सिंह ने एक मोरी में से होकर किले में प्रवेश किया था।

[2]सोहन लाल i, 163 लिखता है कि अमरसिंह जब बंदी बनाया गया तब वह नर्तकियों का नाच देखने में मस्त था।

[3]चौथे गुरु राम दास का जन्म तथा पालन-पोषण लाहौर में ही हुआ था। ये बाद के सब गुरुओं के पूर्वज थे।

सरदार अपने हाथों में लाठियाँ लेकर तथा घोड़ों पर सवार होकर नगर में निकल पड़े तथा जिस किसी गली-कूचे में उन्हें लुटेरे मिले उन्होंने मार-मार कर खदेड़ भगाया। इसके बाद उन्होंने एक-तिहाई नगर की पेशकश करते हुए शोभा सिंह से नगर की सुरक्षा में सहयोग देने की प्रार्थना की। सारी बात तो यह है कि तीनों सरदारों ने शांति स्थापित करने में कुछ भी न उठा रखा तथा वे लोग प्रशासन कार्यों में पूरी तरह लग गए।[1]

इसके बाद तीनों सरदारों ने नगर तथा उसके आस-पास के इलाकों को आपस में बाँट लिया। नगर से लेकर आठ मील की दूरी पर रावी के तट पर बसे नियाज़ बेग तक का लाहौर का दक्षिणी भाग शोभा सिंह के हिस्से में आ गया। इसमें मोजंग, कोट अब्दुल्ला शाह, इच्चरा तथा चौबुर्जी के इलाके भी सम्मिलित थे। इस सरदार ने जेबिंदा बेगम (औरंगजेब की सुसंस्कृत तथा सुयोग्य पुत्री ज़ेब-उन्-निसा) के बगीचे को अपना गढ़ बना रखा था। बाद में उसने इस स्थान को एक किले का रूप देकर उसका नाम नवांकोट रख दिया। यह मुल्तान की ओर जानेवाली, प्रमुख सड़क पर लाहौर तथा नियाज़बेग के बीचों बीच स्थित था। गूजर सिंह को काबुली मल की हवेली से लेकर शालामार बगीचे तक नगर का पूर्वी भाग दिया गया। इसके बीच में उसने बिना परकोटे के एक किले का निर्माण किया तथा उसे किला गूजर सिंह का नाम दिया। आज भी वह स्थान इसी नाम से पुकारा जाता है। नगर के मध्य का भाग लहनासिंह को मिला। इसमें किला तथा रोशनाई, काश्मीरी, खिज़री तथा मस्ती के दरवाज़े भी सम्मिलित थे।[2]

जैसे ही चरत सिंह सूकरचाकिया को लाहौर पतन के समाचार मिले वह नगर में चला आया तथा उसने लूट में से अपने भाग की माँग की। वे तीनों सरदार इतने शक्तिशाली मुखिया को अपना शत्रु नहीं बनाना चाहते थे। इसलिए उन्होंने उसे चालाकी से मार देने के इरादे से उसके सामने ज़मजमा तोप की बड़ी प्रसन्नता से पेशकश कर दी। उस समय यह तोप लाहौर के पश्चिम में शाहबुर्ज पर रखी हुई थी। उन्होंने कहा कि लूट का यह सब से उत्तम भाग है। उन्हें विश्वास था कि बैलों के अभाव के कारण वह उसे न ले जा पाएगा। परंतु चरत सिंह ने, यह देख कर कि अब उसके हाथ और कुछ न लगेगा, अपने 2,000 सैनिकों को बुलाया तथा पहले उसे खींचकर वह अपने शिविर में ले गया तथा फिर वहाँ से उसे रावी पार भेज कर गुजराँवाला के अपने दुर्ग में लेता गया।[3]

---

[1]अली-उद्-दीन, 128ख-129 ख; सोहन लाल, i, 163-4।

[2]सोहन लाल, i, 163; खुशवक्त राय, 129।

[3]वही ii, 12; बूटेशाह, 309 क-ख।

सूबे का प्रभुत्व संभालने तथा सिख धर्म के संस्थापक, गुरु नानक और खालसा भाई-चारे के संस्थापक, गुरु गोविंद सिंह की स्मृति में उन्होंने लाहौर में सिख रुपए ढाले। ये "गोविंद शाही" कहलाने लगे। "नानक शाही" नहीं जैसा कि ग्रिफिन महाशय ने कहा है। दूसरे शब्द का प्रयोग आगे चलकर होने लग गया था।

उस सिक्के पर निम्नलिखित लेख था:—

सीधा पार्श्व

देग तेग़ फतेह नुसरत बेदरंग

यफ्त अज़ नानक गुरु गोविंद सिंह।

पतीला (अर्थात् ज़रूरतमंद की भूख शांत करना), तलवार (अर्थात् अपनी, कमज़ोर तथा असहायों की रक्षा करने की शक्ति), विजय तथा तत्काल सहायता पहुँचाने की शक्ति नानक तथा गुरु गोविंद सिंह से मिली है।[1]

---

[1]गणेश दास, 210।

सिख रुपए पर अंकित 'देग' शब्द का प्रायः गलत अर्थ लगाया गया है। ब्राउनी ने अपनी पुस्तक 'इंडिया ट्रेक्ट्स' ii, प्रस्तावना vii में 'देग' शब्द को कोई महत्व न देते हुए उसे अर्थहीन ही समझ कर छोड़ दिया। कर्नल स्लीमन (रेम्बल्स ऑफ एन इंडिया आफिशल ii, 223, एफ०एन०) ने इसका अनुवाद "दी पॉट विक्टरी" अर्थात् 'बरतन विजय' किया है। यह अनुवाद हास्यास्पद है तथा इसका कुछ अर्थ ही नहीं निकलता। कनिंघम, 104 तथा नारंग, 159 ने इसका अनुवाद "भव्यता" किया है। यह अपर्याप्त है 'देग' का शब्दशः अर्थ होता है एक बहुत बड़ा पतीला। सिख लोग इस बर्तन का प्रयोग 'खालसा लंगर' (जहाँ निःशुल्क भोजन मिलता है) में करते हैं। ये लंगर गरीबों, ज़रूरतमंदों, तथा परदेसियों को, उनकी जाति, धर्म अथवा सांसारिक स्थिति का भेद-भाव किए बिना भोजन कराने के लिए सिखों द्वारा चलाए जाते हैं। सिखों की नित्य प्रार्थना का भी यह एक भाग है। गुरुओं ने उनके सामने जो आदर्श रखा वह इन तीन शब्दों:—'देग', 'तेग़', 'फतह' में निहित है तथा ये शब्द प्रार्थना में दुहराए जाते हैं। 'देग' के प्रयोग का अर्थ था निःशुल्क भोजन कराना। इसे गुरु नानक ने प्रत्येक सिख के धार्मिक जीवन का आवश्यक अंग माना है तथा उन्होंने लंगर चलाने का अनुदेश दिया है। यह स्पष्ट है कि इसके द्वारा वे अपने अनुयायियों के मन में आतिथ्य, दान, तथा सेवा के सद्गुणों को जागृत करना चाहते थे।

उन दिनों व्यावहारिक रूप से प्रत्येक सिख मुखिया न केवल अपना 'लंगर' ही चलाया करता था परंतु वह वहाँ अपने हाथों से सेवा करने को सद्कार्य समझता था। यह संस्था अभी भी कई स्थानों पर पाई जाती है। विशेष रूप से ये लंगर गुरुद्वारों अर्थात् सिखों के मंदिरों से संलग्न होते हैं। व्यक्तिगत रूप से सिखों ने

उल्टा पार्श्व

सन् 1765 में राजधानी लाहौर में ढाला गया ।

2. सिखों द्वारा अपने इलाकों का विस्तार, मई-जुलाई—1765

देश का प्रभुत्व सँभालने के बाद सिख सरदार पंजाब में चारों ओर फैल गए तथा स्थायी रूप से उसके स्वामी बन बैठे। प्रत्येक नेता ने अपनी शक्ति तथा सामर्थ्य के अनुसार जो कुछ उसके हाथ लग सका उसे हड़प कर लिया। प्रत्येक मुखिया ने अपने दल के सदस्यों को उतने गाँव तथा नगरों पर अधिकार जमा लेने दिया जितने वे आसानी से सँभाल सकते थे। यह काम इतना शीघ्रता से किया गया कि थोड़े ही समय के बाद देश के कुछ ही भूभाग बिना किसी सिख शासक के रह पाए।

दुर्रानी बादशाह की शक्ति को चुनौती देता हुआ प्रत्येक सरदार खुद शासन करने लगा। वह न तो किसी के प्रभुत्व को ही स्वीकार करता था न ही किसी के नियंत्रण में रहता था। "भगवान ही उनका सहायक था तथा वही उनका न्याय-कर्त्ता था, धर्म तथा उद्देश्य की एकता उनको प्रेरणा देने वाला सिद्धांत था। व्यूह रचना तथा गोविंद की खड़ग के प्रति भक्ति ही उनके भौतिक साधन थे।"[1]

उनके अधिकार-क्षेत्रों में जो महत्वपूर्ण विस्तार हुए हैं उनके बारे में अब हम जानकारी प्राप्त करेंगे।

(i) बारी दोआब

चार सिख मिसलों ने अमृतसर का ज़िला आपस में बाँट लिया। अमृतसर के आस-पास के इलाके तथा दक्षिण में तरनतारन के परगने पर भंगी मिसल का कब्ज़ा था। जस्सा सिंह अहलूवालिया की संपत्ति का प्रमुख भाग जालंधर दोआब में था। फतहबाद तथा गोइंडवाल के आस-पास ब्यास के तट पर बसे कुछ एक कस्बों पर भी उसका अधिकार था। कन्हैया मिसल के अधिकार में बटाला तथा फ़तहगढ़ के आस-पास के इलाके तथा रामगढ़िया मिसल के अधिकार में श्री हरगोविंदपुर तथा कादियाँ के आस-पास के प्रदेश थे। इस भूभाग को रियारकी के नाम से भी पुकारा जाता है। परंतु इन सब के अपने-अपने अलग-अलग कटरे (मोहल्ले)

इसका पालन करना छोड़ दिया है क्योंकि लोगों में आजकल गरीबी है। परंतु सिख जाति आज भी संपूर्ण भारत में अपने आतिथ्य तथा सेवा भाव के लिए प्रसिद्ध हैं। इसका श्रेय इसी पद्धति को दिया जा सकता है।

इस त्रिसूत्री आदर्श का प्रथम शब्द गुरु नानक का, दूसरा गुरु हरगोबिंद का तथा तीसरा गुरु गोविंद सिंह का हो सकता है।

1अहमद शाह, 898; कनिंघम, 104।

अमृतसर में भी थे। इस नगर पर संपूर्ण सिख जाति (शरबत खालसा) का समान रूप से अधिकार माना जाता था तथा यहाँ वे सब, सिख त्यौहारों को मनाने के लिए एकत्रित हुआ करते थे।[1]

उनके अधिकार-क्षेत्रों के निम्नलिखित उप-खंड थे :—

जंडियाला, बटाला, साथियाला, बोनडाला, तथा महताबकोट जो अमृतसर के परगने के दक्षिणी आधे भाग में आते थे तथा जलालाबाद, वैरोबाल और कोट मुहम्मद खाँ, तरनतारन परगने में आते थे। इन पर जस्सा सिंह अहलूवालिया ने अपना अधिकार जमा लिया था।

गुरदासपुर की सीमा पर स्थित मत्तेवाल पर जस्सा सिंह रामगढ़िया का अधिकार था।

अमृतसर परगने में गिलवाली तथा सौरियाँ परगने के थोबा तथा पंचघड़ियाँ जयसिंह कन्हैया की संपदा के भाग बन गए थे।

भंगियों के पास तरनतारन, सिंघपुरियों के पास खापरखेरी, जोधसिंह के पास सौरियाँ, जगदेव, घोनेवाला तथा करमसिंह भंगी के पास छिनाह तथा दीवान सिंह के पास सैंसरा के इलाके थे।[2]

(ii) **रचना दोआब**

इस दोआब का एक अच्छा खासा बड़ा भाग चरतसिंह सूकरचाकिया ने जीत लिया था। उसने वज़ीराबाद की कमान गुरबख्श सिंह वरैच के हाथों में सौंप दी तथा वर्तमान हफ़ीज़ाबाद के अन्य भाग, शेखूपुरा तथा नौशहरा के परगना सरदार भागसिंह वीरक को दे दिए। वर्तमान गुजरांवाला ज़िले के पश्चिमी भागों में भाट्टियों तथा तातार जाटों ने अपनी स्वतंत्रता को बड़ी शान के साथ बनाए रखा। रामनगर परगना में छत्ता कबीले, जाटों की एक उपजाति, जो अपना मूल राजपूतों से मानती है, के गुलाम मुहम्मद ने अपनी स्थिति एक शक्तिशाली सरदार के रूप में स्थापित कर ली। वह चरतसिंह सूकर-चाकिया से प्रायः लड़ता रहता था तथा उसकी बढ़ती शक्ति तथा नाम के होते हुए भी उसने अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाए रखा।[3]

चरतसिंह के एक अनुचर मन्नासिंह ने अपने स्वामी के साथ मिल कर चट्ठाओं से लड़ाई की। इसके लिए उसे 4,000 रुपए की एक जागीर इनाम में मिली।

धन्नासिंह, सरदार नोधसिंह का एक साथी था तथा उसकी मृत्यु के बाद उसने उसके पुत्र चरतसिंह की सेवा की। अपने पीछे दीवान सिंह तथा हीरासिंह

---

[1]अमृतसर गज़ेटियर, 10-11।

[2]अमृतसर गज़ेटियर 1892-93 व 21-2।

[3]गुजरांवाला गज़ेटियर 15–6।

नामक दो पुत्रों को छोड़ कर वह सन् 1765 में स्वर्ग सिधार गया। वे सूकरचाकिया मुखिया की सेवा करते रहे। जब सरदार चरतसिंह ने गुजरांवाला ज़िले के एक बड़े भाग पर अधिकार जमा लिया तो वे उस लूट में हाथ बँटाने के लिए आगे आए। उन्हें बटाला, पहलादपुर, कलसियाँ तथा दूसरे गाँव मिल गए।

सहाय सिंह तथा साहिब सिंह दो भाई थे। पिछली चार पीढ़ियों से उनके पूर्वज वर्तमान शेखूपुरा ज़िले में लगभग 30 गाँवों के चौधरी थे। दोनों भाई अमृतसर गए। वहाँ पहोल ग्रहण करके वे सिख बन गए। कुछ धन पास होने के कारण उन्हें पास-पड़ोस के इलाकों को लूटने के लिए एक अपना दल बनाने में कुछ कठिनाई नहीं हुई। लगभग इसी समय उन्होंने शेखूपुरा के विरुद्ध एक अभियान भी किया जो उस समय लबाना कबीले के पास था। इसे उन्होंने सरलता से विजित कर अपना प्रधान केंद्र बना लिया। उनके प्रतिद्वंद्वी खर्रालों ने उन्हें इस नए स्थान पर आराम से नहीं रहने दिया।

हरी सिंह भंगी ने कालावाला, अल्लर, पानवाना, चौबारा, भूसंपत्तियाँ तथा सियालकोट और अमृतसर ज़िलों के अन्य स्थानों पर कब्ज़ा कर लिया।[1]

तारा सिंह, साहिब सिंह तथा जीवन सिंह भंगी मिसल के मुखिया थे। अफ़गान सूबेदार को मार भगाने के बाद उन लोगों ने सियालकोट ज़िले पर कब्ज़ा जमा कर सियालकोट के किले को भी अधिकार में कर लिया। इस संपूर्ण भूभाग से उन्हें 60,000 रुपए वार्षिक की मालगुज़ारी मिला करती थी।

करमसिंह भंगी ने सियालकोट ज़िले के फिरोज़की, कलेकी, रुड़की तथा बाजरा के गाँवों पर अधिकार जमा लिया। इसके साथ-साथ उसके पास छिनाह तथा उसके पास-पड़ोस के गाँव भी थे। यह व्यक्ति अमृतसर ज़िले के राजा सांसी स्थान से लगभग 5 मील की दूरी पर बसे छिनाह गाँव के गिल कबीले का एक जाट था।[2]

(iii) चज दोआब

मुकर्रब खाँ एक प्रसिद्ध गक्खर मुखिया था। सन् 1741 से 1765 तक वह चज दोआब का सर्वेसर्वा रहा। यह व्यक्ति अहमदशाह दुर्रानी के प्रति निष्ठा रखता था। सरदार गूजर सिंह भंगी अपने साथ एक बड़ी सेना लेकर गक्खर मुखिया की जागीरों पर अधिकार जमाने के लिए लाहौर से निकल पड़ा। सरदार चरतसिंह सूकरचाकिया भी उससे आ मिला। मुकर्रब खाँ ने सिख सेनाओं का कड़ा मुकाबला किया। परंतु खुले युद्ध में हार खा[3] जाने के बाद वह अपनी राजधानी

---

[1]पंजाब चीफ्स, 98, 151, 368, 441।

[2]खुशवक्त राय, 133-4; बूटे शाह, 220 ख; गणेश दास, 207; पंजाब चीफ्स, 373।

[3]गणेश दास, 208।

गुजरात शहर में वापिस चला गया तथा वह किले में बंद होकर बैठ गया। उसे तत्काल घेर लिया गया। उसकी रसद पूरी तरह काट दी गई। परंतु इससे मुकर्रब खाँ निराश नहीं हुआ। उसने सिख सेना को काट कर अपना मार्ग बनाना चाहा। परंतु अपने भारी भरकम असबाब तथा औरतों के कारण वह शीघ्रता से नहीं भाग पाया। उसको शीघ्र ही रोक लिया गया। उसकी सेनाओं को घेर लिया गया तथा उसे हरा दिया गया। मुकर्रब खाँ एक हाथी पर सवार होकर बच निकला तथा उसे उस जानवर की पीठ पर बैठकर एक गहरी तथा चौड़ी खाई में उतरते हुए देखा गया। वह हाथी दूसरी ओर देखा गया परंतु उसका सवार उसकी पीठ पर न था। फिर वह कभी नहीं दिखाई दिया तथा वह कहाँ गया यह बात एक रहस्य[1] ही बनी रही। सिखों ने नगर पर अधिकार जमाकर उसे पूरी तरह लूट लिया। उन्होंने वहाँ की किलेबंदियों को ठीक-ठाक किया। वहाँ की दीवारों को और सुदृढ़ करके गूजरसिंह ने उस स्थान को अपनी राजधानी बना लिया। इसके बाद संपूर्ण जिला बिना किसी संघर्ष के विजेताओं के हाथ में आ गया। दोनों सिख सरदारों ने उसे आपस में आधा-आधा बाँट लिया। गुजरात तथा वरैच का ताल्लुका गूजरसिंह के हिस्से में आया तथा चरतसिंह ने कुंजह परगने पर अधिकार जमा लिया। यह मियानी की सीमाओं तक फैला था तथा इसका विस्तार झेलम नदी तक था।[2]

नमक की संपूर्ण पहाड़ियाँ तथा उसके आस-पास का इलाका चरतसिंह के भाग में आ गया। भंगियों ने लगभग साहीवाल तक उन पहाड़ियों तथा चिनाब के बीच के भूखंड पर अपना अधिकार जमा लिया। क़दिराबाद के अधीन क्षेत्र मिध तथा मूसाचूहा, भंगी मिसल के नेता गंडा सिंह तथा झंडा सिंह के भाग में ही बने रहे।

मियानी का इलाका तारासिंह भंगी के अधिकार में आया तथा अहमदाबाद सहित 'भेरा' पर मानसिंह का कब्ज़ा हो गया।

---

[1]परंतु इस बारे में ग्रिफन्स कहता है कि मुकर्रब खाँ झेलम के पार पहुँचने में सफल हो गया था। वहाँ दोमेली के मुखिया तथा उसके प्रतिद्वंद्वी हिम्मत खाँ ने उसे धोखे से बंदी बनाकर मौत के घाट उतार दिया। पंजाब चीफ्स, 580।

[2]गणेश दास, 208-9; खुशवक्त राय, 130-1; रतन चंद, 36-8; ईलियट का गुजरात क्रानिकल, 19-20; गुजरात गज़ेटियर, 16; इंपीरियल गज़ेटियर ऑफ इंडिया, पंजाब, ii, 112, 122, 162; चीफ्स एंड फैमिलीज़ ऑफ नोट, ii, 320; पंजाब चीफ्स, 580।

यद्यपि साहीवाल मीट्ठा, तिवाना तथा खुशब के मुसलमान शासकों को बहुत दबाया गया परंतु उन्होंने फिर भी अपने नवीन सिख पड़ोसियों के अतिक्रमण को रोके रखा। परंतु झेलम के दक्षिण में भंगियों ने फिर भी साहीवाल के मुहम्मद खाँ के इलाके के एक बड़े भूभाग पर अपना अधिकार जमा ही लिया। इस प्रकार अब शाहपुर से पूर्व के संपूर्ण दोआब पर उनका अधिकार हो गया। उस स्थान से निहंग तक के पश्चिमी भूभाग पर साहीवाल के मुखिया का ही अधिकार बना रहा परंतु शाहपुर खास में गुलाम शाह के अधीन सैय्यदों ने एक अर्ध-स्वतंत्र-सत्ता वाली बस्ती की स्थापना कर ली। आस-पास के अधिक शक्तिशाली मुसलमान शासकों ने उनसे कोई छेड़छाड़ भी नहीं की। इसका कारण यह था कि ये लोग उस महान संत के वंशज समझे जाते थे जिसका वे सब बहुत आदर करते थे। दोनों नदियों के संगम तक के बाकी दोआब पर झंग के सियाल मुखियों में से एक शक्तिशाली ज़मींदार इज्ज़त बक्श रेहान का कब्ज़ा था।[1]

(iv) सिंध सागर दोआब

घेबा लोग सिंधु तथा सोहन नदियों के बीच के पहाड़ी तथा बीहड़ भूभाग में बसे हुए थे। आज यह भूभाग फ़तेहझंग तथा पिंडी घेब परगने के नाम से जाना जाता है। अब तक उन्होंने अपने को अपने शक्तिशाली पड़ोसी, अवानों, गक्खरों तथा जोडरों से सफलतापूर्वक बचाए रखा था। अफगान आक्रांता भी इन लोगों को न दबा सके थे। क्योंकि वे शाही मार्ग से दूर दुर्गम स्थानों में रहते थे तथा वे निकट से जानेवाले अक्रांता को एक घोड़ा या कुछ जानवर कर के रूप में भेंट कर उसे संतुष्ट कर देते थे तथा उसकी सद्भावना प्राप्त कर लेते थे। गूजरसिंह भंगी भी इन लोगों पर कोई महत्वपूर्ण प्रभाव न डाल पाया। चरतसिंह सूकरचाकिया ने रावलपिंडी के दक्षिणवर्ती भूभागों को रौंद डाला तथा राय जलाल को कर देने के लिए बाध्य कर दिया। भूमि पर उसके पुश्तैनी अधिकारों को देखते हुए राजस्व में से एक-चौथाई (चहराम) राय को अपने पास रख लेने दिया गया। परंतु पश्चिमी घेबाओं से वह भी कुछ अधिक न प्राप्त कर सका तथा इस प्रदेश पर उसका प्रभुत्व भी केवल नाम के लिए ही था। परंतु सिख मुखियों ने प्रयत्न जारी रखा तथा वे दोआब के एक अच्छे खासे बड़े भाग पर अधिकार जमाने में सफल हुए।[2]

---

[1]शाहपुर गज़ेटियर 17-8।

[2]पंजाब चीफ्स, 535-6; झेलम गज़ेटियर, 45; तारीख 19-12-1765 के एक मराठी पत्र में लिखा है कि सिख लाहौर में प्रमुख हैं तथा सरहिंद तक उनका अति उत्तम प्रशासन है। एस० पी० डी०, xxix, 102।

नजीब-उद्-दौला की जीवनी के लेखक नूर-उद्-दीन ने इस लड़ाई का सुंदर शब्दों में अति-उत्तम चित्र प्रस्तुत किया है। हम यहाँ उसे संक्षेप में उद्धृत कर रहे हैं। हर दिन दोनों दलों में छोटी-मोटी झड़पें हुआ करती थीं। एक दिन भयंकर लड़ाई हुई। यह पूरे दिन चलती रही। रात पड़ने के लगभग चार घड़ी बाद सिखों ने समीप के गन्ने के खेतों में शरण ली तथा वहीं से उन्होंने अपनी बंदूकों से गोला-बारी चालू कर दी। रुक-रुक कर वे लोग वहाँ से बाहर आते तथा उनके दल के दल अपनी-अपनी बंदूकें खाली करके वापिस भाग जाते। इस प्रकार की लड़ाई एक पहर रात गए तक चलती रही। इसके बाद सिख आराम करने के स्थानों में चले गए।

दूसरे दिन सुबह जल्दी उठकर नजीब संगठित रूप से दल बाँध कर सिखों की ओर चल पड़ा। उसका दायाँ स्कंध उसके सगे भाई सुल्तान खाँ के अधीन था। बायाँ स्कंध उसके पुत्र जबोटा खाँ के नेतृत्व में था। हरवाल का भार करम खाँ रज्जर तथा चंदावल का भार उसके भाई अफ़जल खाँ के कंधों पर था। उसके तोपखाने का मुखिया ज़ाइन खाँ छोटी तोपें लेकर उसके साथ-साथ चला। अभी नजीब दूर नहीं गया था कि सिखों ने आकर उसे चारों ओर से घेर लिया। उषाकाल से दो घड़ी बाद लड़ाई होने लगी। दोपहर तक जमकर लड़ाई हुई। इसके बाद उनके मार्ग में एक सूखा नाला आ गया तथा नजीब की कुछ भरी गाड़ियों के लिए उसे पार कर सकना कठिन प्रतीत होने लगा। ठीक इसी समय सिख भागते हुए आए तथा एक आम के बगीचे में ज़बीटा खाँ के दल के साथ लड़ते हुए उन्होंने 'बेरकंदाज़ी' (निशाने बाज़ी) का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत किया। दोनों ओर के अनेक व्यक्ति घायल हो गए। सिख लोग उस समय घटनाचक्र को इस भाँति चलाना चाहते थे जिससे कि वे रोहिल्लों को लड़ाई में उलझाए रख कर उन्हें आगे बढ़ने से रोके रखें तथा उस समय से लाभ उठा कर अपने शिविर को हटा कर नदी की ओर ले जाएँ। परंतु नजीब आगे बढ़ता गया। इसका फल यह हुआ कि ज़बीटा खाँ के दल के बहुत से लोग मारे गए।

एक पहर दिन बाकी रहने तक लड़ाई भयंकर रूप से चलती रही। यमुना का वह तट जहाँ सिखों ने अपना माल असबाब रखा था, अब समीप आ चला था। सिख किसी भी तरीक़े से कुछ समय निकालना चाहते थे जिससे कि वे अपने शिविर को सरलता से नदी के पार पहुँचा दें। उस स्थिति में उनका माल-असबाब तथा संपत्ति लूट से बच सकती थी। वे चंदावल पर टूट पड़े। बुरी तरह दब जाने के कारण नजीब के सैनिकों ने उससे एक बार पूरे ज़ोर से उन पर अपने घोड़े लेकर चढ़ जाने की आज्ञा चाही। उनका कहना था कि यदि ऐसा न किया गया तो वे चुपचाप सिखों द्वारा मारे जाएँगे। नजीब ने उत्तर दिया। "सिखों के रुकने का स्थान अब बिल्कुल समीप है। थोड़ी देर के लिए सब्र करो और फिर हम उनके शिविर में

पहुँच जाएँगे। इसके बाद हमारे हाथों में बेशुमार लूट का माल आ जाएगा। एक बार उनके शिविर को समाप्त कर देने के बाद वे लोग फिर दुबारा प्रदेश में न फैल सकेंगे तथा जिन लुटेरों ने उनका साथ दिया है वे मुसीबत में पड़ जाएँगे और अपने-अपने घरों को लौट जाएँगे।"

सिखों तथा नजीब के चंदावल में भयंकर संघर्ष चल पड़ा। सिखों के कारण रोहिल्लों को अनेक मुसीबतों का सामना करना पड़ा। हर बार नवीन उत्साह के साथ सिख उन पर टूट पड़ते थे। शोर मचाते तथा "वाह वाह गुरु" की ध्वनि करते हुए वे उन पर बार-बार चढ़ दौड़ते थे। अब नजीब खुद जंबूरकों तथा निजी दस्ते के साथ अपने चंदावल की रक्षा के लिए आगे बढ़ा। नजीब का झंडा देखकर सिख दूर चले गए तथा एक टीले पर चढ़ कर वहाँ से अपनी बंदूकों से आग उगलने लगे। नजीब-उद्-दौला ने वहीं उन पर हमला किया तथा उन्हें उस पहाड़ी से खदेड़ दिया। इस समय तक रात्रि का भी आगमन हो चुका था। नजीब जहाँ का तहाँ रुक गया। उधर सिखों ने अंधकार में अपने पूरे माल-असबाब तथा शिविर के साथ यमुना को पार कर लिया। सुबह उनमें से एक भी घुड़सवार वहाँ न बचा।[1]

3. जाट-प्रदेश, रेवाड़ी तथा जयपुर की लूट, जनवरी-फरवरी—1766

शामली की लड़ाई के बाद तरुण-दल दिल्ली की ओर बढ़ गया तथा खरखौदा के समीप बुड्ढा दल से जा मिला। यह स्थान रोहतक से 20 मील पूर्व में है तथा दिल्ली से एक दिन के पड़ाव पर स्थित है।

नजीब-उद्-दौला ने बड़ी सरगर्मी के साथ उनका पीछा किया। जब वे बुवाना के पड़ोस में रुके तो उसने भी सराय सीताराम में अपना शिविर डाल लिया। चूँकि नजीब के आदमी चौकन्ने थे तथा लड़ाई के लिए भी तैयार थे, सिख दिल्ली से थोड़ी दूर दक्षिण में जाट राजा के प्रदेशों में लूट-मार तथा तबाही मचाते हुए आगे की ओर बढ़ गए।[2]

भरतपुर का जाट राजा जवाहर सिंह पहले से ही मराठों से त्रस्त था। इसीलिए वह सिखों के इस आक्रमण का सामना नहीं कर सका। फलस्वरूप उसने अपने वकील राम किशोर अहीर की सहायता से उनके साथ शांति-वार्ता प्रारंभ कर दी। उनकी लूटमार की हरकतों को रोकने के लिए उसने उन्हें 7 लाख रुपए कर-स्वरूप दिए तथा अपनी ओर से, मराठों से लड़ने के लिए, उनके 25,000 घुड़सवार किराए पर लिए। जस्सासिंह, तारासिंह, शाम सिंह तथा दूसरे दो

---

[1]नूर-उद्-दीन, 100 ख-106क; देखें, एस० पी० डी० xxix, 102, दिनांक, 19 दिसंबर, 1765।

[2]एस० पी० डी०, xxix 102; नूर-उद्-दीन, 106 ख

सरदार यहीं रहे, परंतु दूसरे लोग नजीब-उद्-दौला के प्रदेश में फैल गए तथा मियाँ दोआब के गाँवों में उन लोगों ने एक बार फिर तबाही मचा दी। नज़ीब ने सोनीपत ज़िले तक उन का पीछा किया। इसके बाद सिख अपने घरों की ओर लौट गए।[1]

जवाहर सिंह तथा सिखों ने एक कार्य योजना तैयार की। ऐसा प्रतीत होता है कि उन लोगों ने निश्चय किया कि मराठों के साथी जयपुर के राजा माधो सिंह पर आक्रमण करके मराठों का ध्यान जाट राज्य की सीमाओं से विमुख कर दिया जाए। फलस्वरूप सिख उस ओर चल दिए तथा मार्ग में पड़ने वाले रेवाड़ी के समृद्ध नगर को लूटने का भी उन्होंने निश्चय कर लिया। नीचे हम नूर-उद्-दीन के शब्दों में ही रेवाड़ी की लूट का मनोरंजक वर्णन दे रहे हैं। "सिख रात्रि के समय तेज़ी से मार्ग तय करते हुए अपने स्थान से 48 कोस की दूरी पर स्थित रेवाड़ी पर छा गए। यह स्थान दिल्ली से 30 कोस तथा मेवात के पास ही बसा हुआ है। उन्होंने इसे लूट कर जला डाला तथा लोगों को बंदी बना लिया (छुड़ाई में धन वसूल करने के लिए)। यह स्थान बहुत समय से खूब समृद्ध हो रहा था तथा बादशाह के एक उच्च असैनिक अधिकारी राजा नागर मल खत्री की जागीर में आता था। राजा नागर मल की ओर से उस स्थान पर नियुक्त अमील बिल्कुल बेखबर था। अब उसने अपने को एक हवेली में बंद कर लिया तथा कुछ सौ पैदल सैनिकों की सहायता से जो उसके पास थे, वह सारा दिन लड़ता रहा। उस भूभाग की उसे जानकारी थी इस-लिए वह रात्रि में वहाँ से भाग खड़ा हुआ—यद्यपि उसकी दुर्दशा हो गई थी। वह जाट राजा के प्रदेश में चला गया, जहाँ नागर मल स्वयं था। रेवाड़ी की जनता को पूरी तरह लूटा गया। केवल वही लोग सुरक्षित रह पाए जो गोकुल गढ़ (एक गढ़ी)

---

[1]एस० पी० डी०, xxix, 121, 177 तथा 197। इस बारे में एक समकालीन इतिहासकार वैनडल लिखता है:—"उसका अपना देश शत्रुओं (मराठों) का शिकार हो रहा है। वे उसका लगातार पीछा कर रहे हैं। अब उसे या तो उनके साथ गौरव-हीन संधि करनी होगी या फिर उस नए युद्ध में अपने सर्वस्व की बाज़ी लगानी होगी। दुराग्रह में उसने दूसरे मार्ग का चुनाव किया है। बहुत खर्चा उठा कर उसने 20-25,000 सिखों को रख लिया है। ये वही लोग हैं जो उस समय उसके ही भूभागों को लूटने के लिए आए थे। राजा का अंध दुराग्रह। पहले भी उसे इन जंगली साथियों को 7 लाख रुपए देने पड़े थे। उन लोगों ने उसके दो प्रांत संपूर्ण रूप से लूट लिए थे। यह अभियान अंत में उसे उनसे बिल्कुल अलग कर देगा। और इसका फल यह होगा कि सिख और साथ ही राजपूत उस पर चढ़ दौड़ेंगे। इस प्रकार उसके पिता का खजाना लुट रहा है।" हिस्ट्री ऑफ दी जाट्स, 108 ख (फ्रेंच पाँडुलिपि)।

पहुँच पाए थे। इसका निर्माण वहाँ के ज़मींदार ने किया था तथा वह रेवाड़ी से आधे कोस की दूरी पर था।[1]

इसके बाद सिख जयपुर के राजा माधोसिंह के प्रदेश में घुस गए। जवाहर सिंह की सेनाओं के आ मिलने के बाद उन्होंने बेरोक-टोक वहाँ के गाँवों तथा नगरों को लूटना आरंभ कर दिया। कोट-पुतली को तो जी भर कर लूटा। दूलेराय (बक्शी) तथा जय चंद (खान-ए-सामान) उस समय जयपुर के विद्रोही सरदार रतन सिंह खंगरौट के दुर्ग कनौद पर घेरा डालने के लिए जयपुर से दूर गए हुए थे। सिखों ने सात या आठ कोस की दूरी पर शिविर लगा लिए। सिखों की सेना बहुत विशाल थी तथा माधोसिंह ने निस्सहाय होकर मराठों को सहायता के लिए पुकारा। उनका खर्चा उठाने के लिए उसने उन्हें 5,000 रुपए प्रतिदिन देने की प्रतिज्ञा की। जवाहर सिंह के विरुद्ध सिंधिया का एक दस्ता तुरंत भेज दिया गया। उधर जयपुर के राजा ने सिखों को धन दे कर अपनी ओर कर लिया। जवाहर सिंह ने भी माधो सिंह से एक संधि-कर ली तथा सिखों को अपने साथ लेकर अपने प्रदेश को लौट गया।[2]

4. धौलपुर के समीप सिखों की मराठों के साथ मुठभेड़, 13-14 मार्च, 1766

धौलपुर को अपना केंद्र बनाकर, मल्हार के नेतृत्व में मराठे, जाट प्रदेश में बहुत छापे मार रहे थे। उधर सिख भी समय पर धन की अदायगी न होने के कारण विद्रोही होते जा रहे थे तथा उन लोगों ने भी उस प्रदेश को तबाह करना आरंभ कर दिया था। उनकी सहायता के बिना जवाहर सिंह कुछ भी न कर सकता था। इसलिए उसने पहले उन सात-आठ हज़ार सिखों को प्रसन्न किया जो उसके यहाँ सेवायुक्त थे। फिर शाहगढ़ के अपने शिविर को छोड़ जवाहर सिंह छोटे दस्ते तथा कुछ एक तोपों के साथ मराठों का सामना करने के उद्देश्य से आगे बढ़ा। धौलपुर से लगभग 7-8 कोस की दूरी पर मराठों के साथ 13 तथा 14 मार्च को झड़प हुई। पहले सिख आगे बढ़े परंतु मराठों ने उन्हें परास्त कर दिया तथा उनके 50-100 सैनिक मार डाले। इस पर सिख वापिस मुड़कर जवाहर सिंह के समीप पहुँच गए। उधर उत्साहित मराठों ने यह "समझकर कि शत्रु भाग खड़ा हुआ है" उनका पीछा किया। इससे वे लोग जाट तोपों की मार में आ गए। उधर सिखों ने भी अपने को जाट सेना के स्कंधों की ओर संगठित कर लिया तथा एक दल बनाकर वे आग उगलते हुए आगे बढ़ने लगे। मराठों ने अनुभव किया कि वे अपनी मूर्खता के कारण चतुर सिखों के जाल में बड़ी सरलता से फँस गए हैं। अतः,

[1]नूर-उद्-दीन, 106 ख-107 क, तथा एस० पी० डी०, xxix, 121

[2]खुशवक्त राय, 104; एस० पी० डी०, xxix 99, 102, 121, 127

शाम होते-होते वे पीछे हटने लगे। ठीक इसी समय सिखों तथा जाटों ने उन पर धावा बोल दिया। अनेक मराठा सैनिक खेत रहे तथा चंबल की घाटियों में बिखरे हुए उनके सैकड़ों घोड़े पकड़ लिए गए। पराजित होने के बाद मराठा सेनापतियों ने धौलपुर में जाकर शरण ली। युद्ध-भूमि में घायल पड़े एक प्रमुख मराठा सरदार सुल्तानजी को बंदी बना लिया गया। अपनी इस विजय का लाभ उठाते हुए जवाहर सिंह ने धौलपुर को अपने अधिकार में करके संपूर्ण मराठा सरदारों को बंदी बना लिया।[1]

5. सिखों द्वारा नजीब के प्रदेश में लूट मार तथा उसके हाथों उनकी पराजय, 16-20 अप्रैल, 1766

धौलपुर पर मराठों की पराजय के पश्चात्, जवाहर सिंह मल्हार राव होल्कर पर धावा बोलना चाहता था। उस समय मल्हार चंबल के पार पड़ा अपनी अंतिम घड़ियाँ गिन रहा था। यदि उसके साथी सिखों ने झुलसा देने वाली धूप तथा घास-रहित और जल विहीन भूखंड में से होकर आगे बढ़ने से बिल्कुल इन्कार न कर दिया होता तो हो सकता था कि जवाहर सिंह ने होल्कर को भी पराजित कर दिया होता। फलस्वरूप सिख अपने देश को वापिस चल दिए। जवाहर सिंह उनके साथ-साथ सराय ख्वाजा तक गया। घाट तिलपट से सिखों को अपनी सीमाओं के पार पहुँचाने के बाद वह पलवल वापिस चला आया। वापिस आने में उसका केवल यही उद्देश्य था कि वह वापिस हो रहे सिख सैनिकों की लूटमार से अपने राज्य को बचाए। उसने सेना के सामने के भाग में सिखों को रखा। एक स्कंध पर गोसाइयों को तथा दूसरे स्कंध पर समरू तथा मौसियों रेने मेडेक तथा दूसरों को रखा। सेना के चंदावल में वह खुद रहा तथा सिखों के आगे-आगे भी कुछ सरदार नियुक्त कर दिए गए। इस प्रकार जवाहर सिंह ने उनको बीच में ले लिया तथा इसी व्यवस्था पर चलते हुए वह सिखों को अपने राज्य की सीमाओं से परे ले गया। इसके बाद वे दिल्ली की ओर बढ़े और नजीब की जागीर को लूटने लगे। शाही राजधानी के समीप उनके आ पहुँचने पर वहाँ रह रहे नजीब-उद्-दौला के दिल्ली स्थित कारिंदे अफजल खाँ ने 17 अप्रैल को ढिंढोरा पिटवा कर ऐलान करवा दिया कि कोई भी नगर के बाहर कालका देवी के मंदिर में दर्शन के लिए न जाए। दूसरे दिन बहुत सुबह से ही वह नगर के सुरक्षा साधनों को मज़बूत करने के काम पर लग गया। उसने शत्रु की गतिविधियों की खोज-खबर लेने के लिए अपने जासूस भी बाहर भेज दिए। याकूब अली खाँ के साथ वह खुद नगर के दिल्ली दरवाज़े पर जम कर बैठ गया। अप्रैल 17 को यह पता चला कि सिखों ने ओखला घाट से आगे बढ़ कर

---

[1]एस० पी० डी०, xxix, 126, 127।

पटपड़गंज के बाजार में चावल तथा शक्कर लूटने के बाद मासुरी में डेरा डाला हुआ है। कुछ सिख घुड़सवार तो शेख मुहम्मद के बैन तक बढ़ गए तथा कुछ ऊँटों तथा बैलों को लूट लिया। उन पर अफजल खाँ के घुड़सवारों ने हमला किया तथा उनमें से एक सिख का सिर उसके धड़ से अगल कर दिया। बाक़ी बचे सिख भाग खड़े हुए।[1]

इसके बाद सिखों ने यमुना के पूर्वी तट की ओर जाकर कुताना, झंझना तथा बुढ़ाना पर हमला किया। इस बीच नजीब-उद्-दौला भी दिल्ली के समीप पहुँच चुका था। यह जानकर कि सिख लूटमार में मशगूल हैं, उसने कहा, "अब सिखों को अच्छी खासी मार पड़ेगी। मल्हार राव से लड़ाई में (उन्हें) काफ़ी लूट का माल हाथ लगा है। जवाहर सिंह से भी उन्हें काफ़ी बड़ी-बड़ी रक़में मिली हैं। अब वे सामान आदि से काफ़ी लदे हुए हैं। हमें उनका रास्ता एक बार फिर रोकना चाहिए और एक शानदार काम करना चाहिए।"

"तदनुसार रात में नजीब ने घाट कुताना से नदी पार करली तथा सुबह होने पर उसे पता चला कि उस स्थान से 5 कोस की दूरी पर सिख लोग ठहरे हुए हैं। अपने शिविर तथा माल-असबाब को वहीं छोड़कर वह उनका पीछा करने के लिए निकल पड़ा। वह दो कोस भी नहीं गया था कि सिख दिखाई देने लगे तथा लड़ाई शुरू हो गई। नजीब के आगे बढ़ आने के बारे में ज्ञान न होने के कारण सिख अपने शिविर से निकल कर (आस-पास) के गाँवों में लूटमार करने के लिए गए हुए थे। जब घोड़ों की टापों तथा नगाड़ों की आवाज़ उनके पास पहुँची तो उनमें से प्रत्येक घबराकर अपने शिविर की ओर लपका। नजीब भी तेज़ी से बढ़ता हुआ आ धमका। सिख तेज़ी से आगे बढ़े। परंतु रोहिल्ले उनके शिविर के बिल्कुल पास आ गए। सिखों को लकवा मार गया और वे कुछ न कर पाए। नजीब के आदमियों के हाथों बेशुमार लूट का माल लगा। इसमें अच्छे-अच्छे माल तथा धन-दौलत से लदे अनेक ऊँट, घोड़े तथा खच्चर आदि थे। नजीब ने सिखों को मारते हुए कंधाला (पानीपत से 18 मील दक्षिण-पूर्व में) के पड़ोस में दस मील तक खदेड़ कर भगा दिया। बहुत से आदमी घायल हो गए। एक तीर आकर प्रसिद्ध जमादार सरबुलंद खाँ खानाज़ाद की गर्दन में लगा तथा उसके कंठ की ओर निकल आया, मगर वह जिंदा रहा। बहुत से सिख मारे गए। बहुत समय के बाद लूट का बहुत सा माल, सिखों के हाथों से, रोहिल्ला सेना के हाथों में आया। अंत में सिखों ने यमुना पार की तथा अपने राज्य के समीप के स्थानों की ओर चले गए।[2]

---

[1]दिल्ली क्रानिकल, 207; नूर-उद्-दीन, 108 क।

[2]नूर-उद्-दीन, 108 ख-109 ख; दिल्ली क्रॉनिकल, 208 इस लड़ाई का समाचार दिल्ली में 22 अप्रैल को पहुँचा था।

यमुना के इस ओर के, नजीब-उद्-दौला के ज़िलों में, सिखों ने फिर लूटमार आरंभ कर दी। नजीब ने बड़ी सरगर्मी के साथ उनका पीछा किया परंतु सिखों ने उसे बुरी तरह परेशान किया। इन झड़पों में पटियाला के अमर सिंह ने सिखों के विरुद्ध नजीब-उद्-दौला की खूब डट कर सहायता की थी। इसलिए सिखों ने उस राजा को परेशान किया, उससे लड़ाई लड़ी तथा उसे बुरी तरह सताया।[1]

---

[1]एस० पी० डी०, xxix, 133, 134।

पंद्रहवां अध्याय

सिखों का अंत में विजयी होना, जून, 1766–दिसबंर, 1768

1. सिखों द्वारा अपने अधिकार-क्षेत्रों का एकीकरण तथा विस्तार, जून-दिसंबर, 1766

यमुना पार के अभियान से अपने स्थानों को लौट आने के बाद सिखों ने कुछ समय तक विश्राम किया। ऐसा प्रतीत होता है कि यह समय उन्होंने अपने अधिकार-क्षेत्रों को एकीकृत करने में लगाया। लगभग इसी समय दो महत्वपूर्ण अभियान किए गए जिनका वर्णन हमें मिलता है। इनमें से एक का नेतृत्व हीरा सिंह नकाई ने, पाकपट्टन के विरुद्ध किया था। दूसरा अभियान मुल्तान के विरुद्ध भंगी सरदारों ने किया था। हीरा सिंह ने पहले हानों के साथ मित्रता की। हान एक प्रसिद्ध मुसलमान कबीला था तथा उस समय आज के मौंटगुमरी जिले में अपने प्रसिद्ध नेता मुहम्मद अज़ीम के नेतृत्व में शक्तिशाली बन रहा था। पाकपट्टन के दीवान को वत्तू कबीले का समर्थन प्राप्त था। पुराने सोहग पर भूमनशाह अथवा कुट्टेवाला नामक स्थान पर एक लड़ाई हुई। सिख तथा हान, जो कि शायद कम संख्या में थे, हार गए तथा उनमें से अनेक नदी में डूब मरे। हीरा सिंह मारा गया तथा उसके पुत्र नाहर सिंह ने उसका स्थान ग्रहण किर लिया। उसने कुछ समय के लिए लड़ाई स्थगित कर दी। इसके बाद अपने सुप्रसिद्ध नेता झंडा सिंह तथा गेंडा सिंह के नेतृत्व में भंगी सिख भी उसी दिशा में बढ़ चले। उन्होंने सरलता से ही मुहम्मद अज़ीम हान को हरा दिया तथा उसके प्रदेश को तथा पाकपट्टन को अपने अधिकार में ले लिया। इसके बाद वे मुल्तान की ओर बढ़े। वहाँ एक घोर संघर्ष हुआ जिसम हार-जीत का फसला नहीं हुआ अंत में सिख तथा अफ़गान राज्यों के बीच पाकपट्टन को सीमा रेखा मान लिया गया।[1]

2. अहमदशाह अब्दाली का भारत पर हमला, दिसंबर, 1766

दिलेर अहमदशाह दुर्रानी, नवंबर, 1766 में एक बार फिर भारत आया। उसने दिसंबर, 1766 के प्रारंभ में अटक के स्थान से सिंधु को पार किया। झेलम के दूसरे तट पर रोहतास से लगभग 10 कोस की दूरी पर स्थित बेहगी (ताराकी?)

---

1. मौंटगुमरी गज़ेटियर 31-2; मुल्तान गज़ेटियर, 27

M6CHDte/64—16

के स्थान पर उसकी सिखों से एक मुठभेड़ हुई। "बल्लम सिंह तथा दूसरे, सरदार जिन्होंने उस प्रदेश में अनेक दुर्ग तथा शक्तिशाली चौकियाँ स्थापित की थीं, 7,000 या 8,000 घुड़सवारों के साथ वहाँ तैनात कर दिए गए। मुसलमान सेना ने उन पर बड़े ज़ोरशोर से हमला किया तथा बहुतों को काट कर फेंक दिया। उन मरे हुए लोगों में सिख मुखिया भी था। बहुत से कैदी बना लिए गए तथा अनेक झेलम नदी में डूब मरे।[1]

अहमदशाह का उद्देश्य सिखों से बिना लड़े जल्दी से जल्दी दिल्ली पहुँचने का था। वह अपनी वापसी यात्रा के दौरान सिखों को दंड देना चाहता था। परंतु दुर्भाग्यवश उसके भाग्य में शाही राजधानी के दर्शन करना नहीं बदा था।

जब वह रोहतास से आगे बढ़ने लगा तो पास-पड़ोस के मुसलमान शासक आकर अफ़गान आक्रांता से मिलने लगे, गुजरात का शाह दौल्हा भी 14 दिसंबर की रात को उसके शिविर में आ पहुँचा।

अब्दाली के अग्रदल ने झेलम को पार कर लिया। झेलम के उस ओर सिख सरदारों ने पराजित दल के बचे खुचे लोगों को झेलम के उस ओर एकत्रित करके एक और प्रयत्न किया परंतु उन्हें फिर पराजित होना पड़ा। दुर्रानी सियालकोट आ पहुँचा। यहाँ से वह 10 दिसंबर को आगे बढ़ा। उसने घुइंकी। (डास्का की ओर जानेवाली सड़क पर सियालकोट से 8 मील दक्षिण-पश्चिम की ओर) पर डेरा डाला तथा वहाँ चार दिनों तक रुका रहा। यहाँ उसने औरंगाबाद, पसरूर, गुजरात तथा सियालकोट के ज़मींदारों से भेंट की। उसने उनके ऊपर 1½ लाख रुपए का चंदा थोप दिया क्योंकि पास-पड़ोस के गाँवों में अनेक सिख छिपे पड़े थे।[2]

---

[1]सी० पी० सी०, ii, 16 क। यह हमारा सौभाग्य है कि अहमदशाह के इस हमले का हमारे पास सविस्तार वर्णन मौजूद है। जो उच्च अधिकारी तथा समाचार-वाहक कलकत्ता में स्थित ब्रिटिश सरकार को अब्दाली की प्रगति की सूचनाएँ दिया करते थे उनके द्वारा लिखित अनेक पत्र तथा टिप्पणियाँ आज भी उस कहानी को भली-भाँति कह रही हैं। बिहार तथा बंगाल के भूतपूर्व नवाब मीर कासिम का वकील भी रोहतास में दुर्रानी से जाकर मिला था। शायद उसने अँग्रेज़ों के विरुद्ध अपने स्वामी की सहायता की भी माँग की थी। यद्यपि अब्दाली के प्रधान मंत्री, शाह वली खाँ ने अपने 8 अप्रैल, 1767 के एक पत्र में, लार्ड क्लाइव को आश्वासन देते हुए लिखा था कि उन्होंने यह अभियान, "बदज़ात सिखों के विनाश के लिए ही किया है।" वही, 12 क०, 16 क, 284।

[2]सादत खाँ उस प्रदेश से भली-भाँति परिचित था तथा शाह की ओर से होने वाले प्रत्येक काम में उससे पूरी सहायता ली जाती थी। इसी ने शाह को सुझाव दिया था कि ज़मींदारों से चंदा वसूल किया जाए। इसीलिए ज़मींदारों को आदेश

धुइंकी से, अहमदशाह 15 दिसंबर को चल कर डास्का पर आ रुका। यहाँ पीर मुहम्मद नूरक का पुत्र शाह से मिलने के लिए आया परंतु और दूसरे ज़मींदार डर के मारे भाग खड़े हुए। अब्दाली के घुड़सवारों ने उनका पीछा किया तथा उन्हें कैदी बना कर वापिस ले आए।[1]

डास्का में दो दिन रुकने के बाद अब्दाली अमीनाबाद की ओर चल पड़ा। तारीख 21 को उसने अपनी यात्रा जारी रखी तथा वह फ़जीलाबाद तक जा पहुँचा। यह स्थान अमीनाबाद से लगभग 12 कोस तथा दूसरी ओर लाहौर से 6 कोस की दूरी पर है। अपने 8,000 घुड़सवारों के साथ लाहौर में रह रहे सोभा सिंह, लहना सिंह, गूजर सिंह, हीरा सिंह तथा अजीब सिंह, आदि, शाह के समीप पहुँचने पर, किले तथा शहर को छोड़ कर वहाँ से तत्काल भाग खड़े हुए। गूजर सिंह तथा लहना सिंह तो कसूर की ओर चल दिए तथा हीरा सिंह, अजीब सिंह तथा सोभा सिंह आदि बाबा फरीद की ओर भाग खड़े हुए। जहान खाँ, बरखुरदार खाँ अर्ज़बेगी तथा दरवेश अली खाँ हज़ाराह ने राज़ी घाट से रावी नदी को पार करते हुए लाहौर नगर को अपने कब्ज़े में ले लिया।[2]

3. लाहौर में अहमदशाह

अहमदशाह 22 दिसंबर को लाहौर पहुँच गया। यहाँ नगर के सम्मानित व्यक्तियों का एक शिष्टमंडल आकर उससे मिला। उन्होंने कहा कि लहना सिंह

दिया गया कि वे जमा करें तथा ऐसे प्रत्येक व्यक्ति को, जिस पर कोई भी सिख निशान दिखाई पड़े पकड़ें तथा कठोरता से दंडित करें। इसी के अनुसार उन्होंने वचन दिया कि वे किसी सिख को सुरक्षा न देंगे तथा यदि कोई सिख उनके हाथों में पड़ जाएगा तो वे शाह के पास उचित दंड के लिए भेज देंगे।

[1]वज़ीर, शाह वली खाँ ने उनसे भाग खड़े होने का कारण पूछा। उन्होंने उत्तर दिया कि भागने की उनकी मंशा नहीं थीं। उन्होंने कहा नासिर खाँ की सेनाएँ उनके प्रदेश में से होकर गुज़र रहीं थीं। क्योंकि वह भूभाग बिल्कुल अरक्षित था, इसलिए उन्होंने उसे छोड़ दिया। परंतु अब शाह आ गए हैं इसलिए उनके हौसले फिर बढ़ गए हैं। सादत खाँ ने निवेदन किया है कि यदि शाह ने उनमें से किसी एक ज़मींदार को भी मौत के घाट उतार दिया तो भविष्य में उनमें से कोई भी उसके पास न आएगा। इसलिए बुद्धिमत्ता इसी में है कि उनके भय को दूर करके उन्हें मुक्त कर दिया जाए। इस मंत्रणा के फलस्वरूप पीर मुहम्मद तथा दूसरे ज़मींदारों पर रहम किया गया तथा उन पर केवल तीन लाख रुपए का ही चंदा लगाया गया।

[2]अली-उद्-दीन, 130 क।

एक अच्छा तथा सहानुभूतिपूर्ण शासक था। सत्ता होने पर भी इसने हिन्दुओं तथा मुसलमानों में कोई भेदभाव नहीं किया। ईद-उल्-जुहा के त्यौहार पर वह काज़ियों, मुफ्तियों तथा मस्जिदों के इमामों को पगड़ियाँ देता था तथा प्रत्येक नागरिक का पूरा-पूरा सम्मान किया करता था। अहमदशाह ने दुःख प्रकट किया तथा इस बात को समझते हुए कि सिखों को जितना कम छेड़ा जाएगा वे उतने ही कम परेशान करने वाले सिद्ध होंगे, उसने लाहौर की सूबेदारी की पेशकश करते हुए लहना सिंह को एक पत्र भेजा। इसी के साथ-साथ काबुल के सूखे मेवों का उपहार भी उसके पास भेजा। लहना सिंह ने मोदह गाँव के रहमतुल्ला बेग को शाह के पास भेजा। उसने शाह का निमंत्रण इस आधार पर अस्वीकार किया कि शाह की आज्ञा मानने पर वह अपने सहधर्मियों की नज़रों में गिर जाएगा। लहना सिंह ने उसके मेवे भी लौटा दिए तथा अपनी ओर से उसने थोड़ा मोटा अनाज भेजते हुए कहा कि फल तो शाहों का भोजन है। वह तो केवल नमूने के तौर पर भेजे गए मोटे अनाज पर ही जीवित रहता है। अहमदशाह लाहौर में लगभग एक सप्ताह तक रहा। इसके बाद मौलवी अब्दुला के भाई दादन खाँ को तथा उसके सहायक के रूप में रहमत खाँ रोहिल्ला को, 1,500 घुड़सवारों तथा पैदलों का मुखिया बना कर वह सरहिंद की ओर चल दिया।[1]

"जसंत (चरत सिंह), बड़ा जस्सा सिंह (जस्सा सिंह कलाल) तथा हीला (हीरा ?) सिंह, 20,000 घुड़सवारों के एक दल के साथ कालसा गाँव में रुके हुए थे। यह स्थान लाहौर से लगभग 35 कोस की दूरी पर है तथा ब्यास से भी उतनी ही दूरी पर है। तारा सिंह तथा खुशहाल सिंह अपने 6,000 घुड़सवारों के साथ तारागढ़ में थे। यह स्थान निल्ला से लगभग 4 कोस तथा शाह के शिविर से 14 कोस की दूरी पर था। अहमदशाह ने हुक्म दिया कि सिखों का सफाया करने के लिए घुड़सवारों का एक दस्ता 8 दिन के खाने-पीने आदि के सामान के साथ तैयार हो जाए। सक्रिय सेवा के अयोग्य व्यक्तियों तथा अपने संपूर्ण भारी भरकम माल-असबाब को पीछे छोड़कर वह 50,000 घुड़सवारों के चुने हुए दल को लेकर आगे बढ़ा। तोपखाना तथा 7,000 जिज़ारिस भी उसके साथ थीं। आगे बढ़ता हुआ वह लाहौर के इस ओर 12 कोस की दूरी पर स्थित (स्थान के नाम का उल्लेख नहीं है) तक पहुँच गया। दिसंबर को अपने शिविर से लगभग चार कोस की दूरी पर उसने जहान खाँ, फ़ैज तलब खाँ, बरखुरदार खाँ तथा दरवेश अली खाँ हज़ाराह को, अपने से अलग कर दिया तथा इन लोगों ने चक में जाकर अपने शिविर गाड़ लिए। जितने भी सिख वहाँ थे वे सब 10-12 कोस की दूरी पर हट गए। 28 तारीख

---

[1]खुशवक्त राय, 129; अली-उद्-दीन, 130 क।

को शाह ने फतेहाबाद[1] में अपना केंद्र स्थापित किया । लगभग आध घंटे तक उसने इसे लूटा तथा जो थोड़े बहुत सिख किले में थे उन्हें जान से मार डाला । सिखों ने उस पर हमला नहीं किया, परंतु वे लोग उससे 10 या 15 कोस की ही दूरी पर बने रहे ।[2]

चरत सिंह, लहना सिंह तथा दूसरे सिखों ने जो चक के पड़ोस में थे लाहौर के समीप पड़े शाह के माल असबाब पर धावा बोलने का निश्चय कर लिया । तदनुसार वे चल पड़े तथा व्यापारियों, सर्राफों आदि को लूट लिया । शाह का साला, शाह के परिवार तथा अनेक अधिकारियों के साथ उस समय लाहौर नगर में ही था । उसके पास 4,000 घुड़सवार भी थे, परंतु यह देखकर कि सिख बहुत शक्तिशाली हैं शाह के साले ने बाहर निकलने का साहस ही नहीं किया । उसने शाह को एक पत्र भेजते हुए कहा कि सिखों ने माल-असबाब लूट लिया है तथा वे लाहौर की ओर बढ़े आ रहे हैं । वे लोग उसे तथा उसके परिवार को घेर लेंगे । शाहंशाह से उसने सहायता के लिए आने की प्रार्थना भी की । जैसे ही शाह को यह 'अर्ज़ी' मिली वह वापिस चल पड़ा तथा एक जनवरी को उसने लाहौर के पार्श्व में स्थित महमूद तुली में जा डेरा जमाया । इस पर सिख लगभग 15 कोस पीछे हट गए । वे इससे 15 या 20 कोस की दूरी बनाए रखते तथा जो कुछ भी माल-असबाब उनके हाथ लगता उसे लूट लेते । सिखों ने अहमदशाह को लगातार परेशान किया तथा शांति के सब प्रस्तावों को घृणापूर्वक ठुकरा दिया ।[3]

---

[1]यह स्थान ब्यास के 5 मील पश्चिम में तथा अमृतसर से 20 मील दक्षिण-पूर्व में बसा हुआ है ।

[2]सी० पी० सी०, ii, 36, 108 अ ।

[3]सी० पी० सी०, ii, 108 क । (चंबा के इस राजा ने सिखों के सरदारों के पास एक वकील भेजा । अदीना बेग के परिवार से संबंधित सादतयाज़ खाँ ने उनके पास एक संदेश भेजा कि वे शाह से सुलह कर लें क्योंकि उनको उनके देश से हटाने की शहंशाह की बिल्कुल इच्छा नहीं है, वह तो हिंदुस्तान की ओर बढ़ रहा है । उसने यह भी कहा कि वह उनकी भेंट शाह से करवा देगा तथा यह तय कर देगा कि वे कौन-कौन से प्रदेश छोड़ दें तथा कितनी रक़म दें । लाहौर का कब्ज़ा वह उन्हें दिलवा देगा । सिखों ने चंबा के राजा के वकील को गालियाँ दी तथा उसे अपनी सेना से बाहर खदेड़ दिया । उन्होंने सादतयाज़ खाँ को भी एक पत्र भेज कर शाह से सुलह की मनाही कर दी) वही ।

जनवरी 15 को, अहमदशाह दुर्रानी नूर-उद्-दीन कोट के समीप था । यहाँ से उसने खुमडा (झंडा) सिंह, जैसा (जस्सा) सिंह गुलाल (कलाल) तथा

4. जहान खाँ की अमृतसर में पराजय

रास्ते में जो कुछ भी आया उसे लूटते हुए, अपने साथ 15,000 घुड़सवारों के हरावल दस्ते को लेकर जहान खाँ, 17 जनवरी को चक के पड़ोस में जा पहुँचा। जहाँ चरत सिंह, हीरा सिंह, लहना सिंह तथा गूजर सिंह एकत्रित थे। जब उन्हें खान के आने का समाचार मिला तो वे उसका सामना करने के लिए आ खड़े हुए। लगभग तीन घंटे के अंदर अति भयंकर संघर्ष हुआ पाँच या छः हज़ार दुर्रानी या तो मारे गए या फिर घायल हो गए। अंत में जहान खाँ को बाध्य होकर पीछे हटना पड़ा। जैसे ही शाह को इसका पता चला वह खुद जहान खाँ की सहायता के लिए आगे बढ़ा तथा सिखों पर जा टूटा। अंत में उन्हें लाहौर की ओर भागना पड़ा। अपना असबाब, जलालाबाद (ब्यास के तट पर) के समीप छोड़कर शाह ने उनका पीछा किया। इधर सिखों ने उस असबाब पर धावा बोल दिया परंतु नासिर खाँ बलौच ने, जिसकी देखभाल में वह था, उन्हें खदेड़ दिया तथा जंगलों की ओर भागते हुए सिखों का वह पीछा करने लगा। चरत सिंह, गूजर सिंह तथा चार-पाँच और दूसरे सरदार चक तथा पास-पड़ोस के किलों में अपने पैदल सैनिकों तथा तोपखानों के साथ थे।[1]

खुशहाल सिंह आदि सिखों के मुखियाओं को इस आशय के पत्र लिखे कि यदि वे उसकी सेवा में आना चाहते हों तो आकर उससे मिल जाएँ और यदि उनकी दुश्मनी की भावनाएँ हैं तो वे लड़ाई के मैदान में आकर उससे मिलें। चरत सिंह, हीरा सिंह तथा दूसरे सरदार अपनी-अपनी सेनाओं के साथ उस समय चक में थे। दो अन्य सरदार लाहौर के आस-पास मंडरा रहे थे। इसके साथ ही साथ उनके छोटे-छोटे दल शाह की सेना के चारों ओर 10 कोस की दूरी पर घूम रहे थे। वही, ii, 50।

[1]सी० पी० सी०, ii, 65। सिखों के हाथों शाह की सेनाओं की पराजय का समाचार कलकत्ता के ब्रिटिश गवर्नर लार्ड क्लाइव ने बड़ी प्रसन्नता के साथ सुना। कलकत्ता से, 19 फरवरी को अवध के नवाब वज़ीर को भेजे गए एक संदेश में कहा गया है:—"जिन पत्रों के साथ समाचार भेजा गया है उसमें लार्ड क्लाइव को भेजा गया पत्र प्राप्त हुआ है। वह यह जानकर बहुत प्रसन्न हैं कि सिखों ने शाह की प्रगति में बाधा डाली है यदि वे उसकी रसद को काटते रहे तथा उसके माल असबाब को लूटते रहे तो वह बिना लड़े ही विनाश को प्राप्त हो जाएगा। और उसके बाद या तो वह अपने देश को लौट जाएगा, नहीं तो उसे शर्म और बेइज्ज़ती का सामना करना पड़ेगा। जब तक वह सिखों को हरा नहीं देता या उनके साथ समझौता नहीं कर लेता वह भारत में आगे नहीं बढ़ पाएगा। और इनमें से कोई

5. जालंधर दोआब में दुर्रानी

अहमदशाह ने उसी दिन (17 जनवरी) ब्यास नदी को पार किया तथा 18 तारीख को शिनेर थेलेय (ब्यास से लगभग 22 मील पर स्थित सुहारीवाल ?) की ओर बढ़ कर वहाँ डेरे डाल दिए। नजीब-उद्-दौला के वकील, राव मेघराज; मीर कासिम के वकील, सुजान राव; जवाहर सिंह जाट के वकील, लाहौरी मल तथा राजा माधो सिंह के वकील, भीम सिंह ने यहाँ आकर शाह के प्रति सम्मान प्रकट किया। आला सिंह के पोते अमर सिंह तथा हिम्मत सिंह के वकील ने आकर अहमदशाह की अधीनता स्वीकार की तथा अपने स्वामियों की ओर से इसने शाह को 5,000 रुपए तथा दो घोड़े 'नज़र' में भेंट किए। शाह वली खाँ तथा जहान खाँ को उसने दो-दो हज़ार रुपए भेंट में दिए। राय काल्हा के पुत्र का वकील भी शाह की सेवा में उपस्थित हुआ। शाह ने सब वकीलों को आज्ञा दी कि वे अपने-अपने स्वामियों को उसके 'हज़ूर' में उपस्थित होने के लिए लिखें।

इसके बाद अहमदशाह ने, नूर महल (जालंधर के दक्षिण में 17 मील की दूरी पर) में डेरा डाला। यहाँ पटियाला का ज़मींदार 'अमर सिंह' उसे आकर मिला। पास-पड़ोस के दूसरे ज़मींदारों ने भी उपस्थित होकर शाह वली खाँ की मध्यस्थता से अपनी अपनी अदायगी की रक़मों का निपटारा कर लिया।[1]

भी बात संभव प्रतीत नहीं हो रही है। इसका कारण यह है कि सिखों ने बहुत प्रभावशाली चालों का सहारा लिया है तथा साथ ही वे चक के विनाश के कारण शाह से बुरी तरह घृणा भी करते हैं।" सी० पी० सी०, ii, 52।

शाह वली खाँ को उसके पत्र का उत्तर देते हुए, लार्ड क्लाइव ने, एक अन्य पत्र उसकी तथा शाह की खुशामद करते हुए लिखा। "ईश्वर का लाख-लाख धन्यवाद है, शहंशाह के सौभाग्य तथा आपकी बुद्धिमत्तापूर्ण कार्यवाइयों के कारण घृणित सिखों को अपने कुकृत्यों के लिए वह सज़ा मिल गई जिसके वे पात्र थे। शहंशाह की महानता की प्रसिद्धि संसार के चारों कोनों में फैल गई है तथा ईश्वर के बंदे, काफ़िरों के अत्याचार से मुक्त हो गए हैं।" सी० पी० सी०, ii, 327।

[1]सी० पी० सी०, ii, 79 तथा 139। (अहमदशाह की कमज़ोर स्थिति के बारे में एक संदेश में कहा गया है, "शाह का प्रभाव केवल उन्हीं भूखंडों तक सीमित है जिन पर इसकी सेना छाई हुई है। आमतौर से ज़मींदार सिखों से इतना स्नेह रखते दिखाई देते हैं कि वे प्रायः रात्रि में गाँवों में चले जाते हैं तथा वहाँ उन्हें सब प्रकार का आराम भी मिलता है। सुबह वह उनसे रुखसत ले लेते हैं तथा शाह के सैनिकों को फिर परेशान करने लगते हैं। यदि शाह ब्यास तथा सतलज की दोनों नदियों के ही बीच रहा तो सिख पास-पड़ोस

इसके बाद अब्दाली ने सतलज पार किया तथा मच्छीवाड़ा में जाकर विश्राम किया। यहाँ भी सिखों ने उसे परेशान किया।[1]

6. अहमदशाह का स्वदेश लौटना

सिखों ने अहमदशाह को चैन न लेने दी। उसने सब दिशाओं में उनका पीछा किया किंतु हाथ कुछ न आ सका क्योंकि वे शाह से खुले में आकर लड़ाई लड़ने को हमेशा टालते रहे। उन्होंने नासिर खाँ बलौच को बुरी तरह पराजित किया तथा शाह उससे इतना अधिक नाराज़ हो उठा कि उसने उससे भेंट न की। अहमदशाह धीरे-धीरे मकरी, गिद्दा, पटियाला तथा बनूर को पार करता हुआ अंबाला से दक्षिण में 20 मील पर स्थित इस्माइलाबाद जा पहुँचा। इस स्थान पर 9 मार्च को नजीब–उद्–दौला भी उससे आ मिला।[2]

दिल्ली[3] की ओर बढ़ने की शाह की इच्छाओं के प्रति नजीब के विरोध तथा पिछले भागों में सिखों की लूट खसोट को ध्यान में रखते हुए अहमदशाह ने

में ही मंडराते रहेंगे। परंतु यदि वह सरहिंद चला गया तो सिख उसके द्वारा पीछे छोड़े गए भूभागों के स्वामी बन बैठेंगे।" वही, 161 क।

ब्रिटिश गवर्नर ने फिर अपना मत व्यक्त किया कि यदि जाटों तथा रोहिल्लों ने सिखों को थोड़ी मदद दी तो हो सकता है कि अहमदशाह को पराजय तथा बेइज्जती का मुँह देखना पड़े। वही ii, 145।

[1]एस० पी० डी०, xxix, 165, दिनांक 2–2–1767

[2]सी० पी० सी०, ii, 107 ग तथा घ, 103 क, 213, 214, 234, 254, 266, 415; दिल्ली क्रानिकल 211; नूर-उद्-दीन, 109 ख, 110 क।

[3]"यह कहा जाता है कि, जब बहुत से वकीलों ने उससे यह कहा कि अपनी स्थिति बनाए रखने के क्या-क्या अच्छे परिणाम होंगे, तो वह क्रोध से भर उठा तथा उसने घोषणा की कि वह तत्काल दिल्ली की ओर कूच करेगा। इसके साथ ही उसने बड़ा आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा कि जब से उसने सिखों के विरुद्ध अभियान के लिए कदम उठाए हैं, एक भी ज़मींदार ने आकर उसे 'पेशकश' नज़र नहीं किया है। यह सुनकर नजीब-उद्-दौला ने याकूब-अली-खाँ तथा राव मेघराज से छः घंटे तक गुप्त बातचीत की। इसकी समाप्ति के बाद वह फिर हाज़िर हुआ तथा कहने लगा, "महामहिम यदि आपने दिल्ली की ओर कूच करने का पक्का इरादा कर लिया है तो ठीक ही है। परंतु इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि आप जहाँ से भी होकर गुज़रेंगे वहाँ से सब निवासी भाग खड़े होंगे तथा सारा देश रेगिस्तान बन जाएगा। अब भी देश का बड़ा भाग रेगिस्तान बन चुका

वापिस लौटने का निश्चय कर लिया । अब उसने अपनी संपूर्ण शक्ति, सिखों को दंड देने की ओर ही लगाने का फैसला किया । फलस्वरूप 17 मार्च को वह इस्माइलाबाद से वापिस हो गया । तारीख 18 को उसने अंबाला में डेरे डाले तथा अमर सिंह से 9 लाख रुपए अदा करने के लिए कहा । सरहिंद प्रदेश का प्रबंध उसके हाथों में रहने के कारण यह राशि उसे देनी थी ।[1]

7. अमर सिंह का 'राजा-ए-राजगान' की उपाधि प्राप्त करना

इसके बाद अहमदशाह सरहिंद पहुँचा । मार्ग में उसने नजीब पर अनेक प्रकार की कृपाएं कीं । शाह को अपने प्रति इतना अधिक कृपालु देख, शाह के सामने उसने प्रस्ताव रखा कि वह अपने पुत्र ज़बीता खाँ को सरहिंद प्रदेश दे दे परंतु उसे कोई उत्तर[2] नहीं मिला । कुछ सोच विचार के बाद अहमदशाह मान गया तथा ज़बीता खाँ ने सरहिंद के दुर्ग पर अपना कब्ज़ा जमा लिया । अमर सिंह को जिसके अधिकार में यह स्थान था, नजीब-उद्-दौला की निगरानी में रखा गया । एक दिन नवाब ने अमर सिंह से कहा, "राजा ! तुम्हारा पटियाला का किला किसी काम का नहीं है । मैं तुम्हें नजीबाबाद का अपना पत्थरगढ़ का किला दूंगा जिसे मैंने बहुत सुरक्षित तथा मज़बूत बनाया है ।" अमर सिंह समझ गया कि उसे बंदी बनाकर नजीबाबाद ले जाया जाएगा । उसका दिल टूट गया तथा वह अपने जीवन से निराश हो उठा । आला सिंह की विधवा तथा उसकी दादी माँ, रानी फत्तों, जो कि एक बहुत समझदार तथा होशियार महिला थीं, निजी रूप से जाकर वज़ीर शाहवलीं खाँ से मिली । उसके पाँवों पर अपनी "चादर" डालते हुए उन्होंने नजीब के फंदे से अमर सिंह के छुटकारे की मिन्नत की[3] ।

है । महामहिम मैं अब आपकी सेवा में आया हूं तथा आपसे मिलकर मेरी बड़ी से बड़ी इच्छाओं की पूर्त्ति हो चुकी है, मैंने आपसे भेंट करली है । यदि आप सचमुच बढ़ते हैं (दिल्ली की ओर) तो मुझे एक विनती करनी है, और वह यह है कि आप पहले मेरा बलिदान कर दें तथा फिर अपनी इच्छाओं के अनुसार काम करें ।" सी० पी० सी०, ii, 294 ।

[1]सी० पी० सी०, ii, 310 । (तय की गई राशि के हिसाब से नजीब-उद्-दौला ने दो लाख रुपए अदा किए । शाह ने उसे एक तुर्की घोड़ा भेंट में दिया तथा हिंदुस्तान में उसे सर्वोच्च पद पर नियुक्त कर दिया । इसके साथ ही ज़बीता खाँ को वज़ीर शाह वली खाँ का साथी नियुक्त किया गया) । दिल्ली क्रॉनिकल, 211 भी देख ।

[2]सी० पी० सी०, ii, 323 ।

[3]हुसैन शाही, 85 ।

उन्होंने वली खाँ के सामने एक बहुमूल्य 'नज़र' (तोफ़ा) भी पेश की। इस बात की ओर संकेत करते हुए कि वही एक ऐसा व्यक्ति है जो सतलज-पार के सिखों को हटा सकता है, वज़ीर ने, शाह को इस बात के लिए राज़ी कर लिया कि वह अमर सिंह को सरहिंद की फौजदारी पर फिर से प्रतिष्ठित कर दे। दूसरे दिन सुबह, शाह ने नजीब-उद्-दौला के घर से अमर सिंह को बुलवाया तथा उसे खिल्लत, निशान तथा नगाड़ा, मछली-चिह्न तथा सरहिंद की सूबेदारी प्रदान की। इन सब के साथ-साथ ही उसे 'राजा-ए-राजगान' की अत्यधिक उच्च उपाधि से विभूषित किया।[1] खुशवक्त राय ने अमर सिंह की इस बात के लिए प्रशंसा की है कि उसने भारत में अफ़गानों द्वारा बंदी किए गए अनेक लोगों को मुक्ति दिलवाई थी।

8. सतलज के तट पर शाह का डेरा

सरहिंद से अहमदशाह सतलज-तट पर स्थित मच्छीवाड़ा घाट गया। यहाँ से उसने सिखों का पीछा करने के लिए अनेक अभियान संगठित किए। यहाँ वह लगभग डेढ़ माह तक रुका रहा। जिन सिखों ने दुर्गम स्थानों में शरण ली थी उन्हें दंडित करने के लिए शाह ने अपने सैनिक दस्ते भेजे।[2] यहीं उसे सूचना मिली कि 40 मील पूर्व में मानि-मजरा में सिखों का एक बड़ा दल छिपा है। नजीब के भाई अफ़जल खाँ के साथ अफ़गान सैनिक उन पर टूट पड़े तथा अनेक स्त्रियों तथा पुरुषों को बंदी बना कर ले गए। परंतु उनका सरदार फिर भी न पकड़ा जा सका। यह लूट का माल तथा बंदी सस्ते दामों पर शिविर में बेचे गए।[3]

---

[1]हुसैन शाही, 84–5; खुशवक्तराय, 168। पहली पुस्तक का लेखक लिखता है: —"उस दिन से लेकर आज तक अर्थात् सन् 1798 तक पटियाला में अमर सिंह के घराने में शाह का सिक्का चल रहा है। जो कोई भी गद्दी पर बैठता है वह अपने देश में वही सिक्का चलाता है अपने को दुर्रानी सम्राट् की प्रजा समझता है: अमर सिंह ने अपनी मुद्रा पर 'अमर सिंह बामिजाई' खुदवाया था। यह इस लिए किया गया था क्योंकि शाह वली खाँ एक बामिजाई अफ़गान था।" हुसैन शाही 86; तारीख-ए-अहमद, 17 भी देखें।

पृष्ठ 113 पर कनिंघम ने यह बात गलत कही है कि इस अवसर पर अमर सिंह को 'महाराजा' की उपाधि से अलंकृत किया गया था। "राज खालसा" में ज्ञान सिंह, 388।

[2]सी० पी० सी०, ii, 323, 345।

[3]नजीब-उद्-दौला ने खुद, शाह के शिविर से, मुग़ल बादशाह शाह आलम को पत्र लिखते हुए कहा—"शाह ने मक्खोवाल की ओर अपनी सेना

9. सिखों की नजीब के प्रदेश में लूट

नजीब के गिरते स्वास्थ्य को देखते हुए अहमदशाह ने उसे 11 मई को सतलज के तट से जाने की छुट्टी दी । उसी समय सूचना मिली कि जिन सिखों ने एक सप्ताह पहले, दुर्रानी सैनिकों को चकमा देकर उनके शिविर के पास से होकर निकलने में सफलता प्राप्त की थी तथा सरहिंद के प्रदेश को लूटा था, उन्होंने अपने परिवारों तथा माल-असबाब को रोही के जंगल में छोड़कर बुढ़िया घाट से यमुना को पार कर लिया है तथा पूरी तरह अरक्षित पड़े नजीब के प्रदेश में लूटमार प्रारंभ कर दी है। उमबेटाह को लूटने के बाद वे लोग 14 मई को ननौटाह की ओर मुड़ गए । इसके बाद उन्होंने मुज़फ़्फ़रनगर की बरहा सादत बस्तियों की ओर ध्यान दिया । उसके बाद उन्होंने मेरठ पर धावा बोला ।[1] नजीब तत्काल अहमदशाह के पास गया तथा सिखों के विरुद्ध उससे सहायता माँगी। सिखों को दंड देने के लिए अहमदशाह ने जहान खाँ को हुक्म दिया । वह अफ़गान सिपहसालार, ज़बीता खाँ को अपने साथ लेकर वायु वेग से बढ़ चला तथा तीन दिन में (लगभग 200 मील) मेरठ जा पहुँचा।

चार घड़ी पहले ही इसका समाचार सिखों को मिल चुका था । यमुना पार करके वे वहाँ से जा भी चुके थे। जो पीछे बच गए उन सब को मार डाला गया तथा बहुत सा लूट का माल इनके हाथ लगा। इसके बाद सिखों का पीछा किया गया। मुजफ़्फ़रनगर ज़िले के दो प्रसिद्ध नगरों, शामली तथा कैरानाह के बीच उनसे एक लड़ाई हुई। सिखों का नेता खेत रहा । बघेल सिंह घायल हो गया तथा अनेक सिख मारे गए ।[2] बाकी भाग खड़े हुए । इसके बाद वह दल सात दिन का सफर तय करता हुआ उसी अपनी आरामगाह में वापिस लौट आया।

भेजी । यह काफ़िरों का एक शरण स्थान तथा किला है; इस गंदे कबीले को दंडित करने का कार्य शुरू किया गया है और वह अब भी चल रहा है। सी० पी० सी०, ii, 415। देखें नूर-उद्-दीन, 110 ख तथा सी० पी० सी०, ii, 310 ।

[1]जी० आर० सी० विलियम्स ने कलकत्ता रिव्यू, जनवरी, 1875, पृष्ठ 27 में, सिखों के इस धावे के बारे में, एक समकालीन व्यक्ति की डायरी को उद्धृत किया है। "उस अवसर पर ईश्वर के इस गुलाम ने भी सचमुच कुछ संपत्ति खोई थी। यह शम्स-उद्-दीन की शादी वाला महीना ही था। इन काफ़िरों के हाथों मुहम्मद खाँ के बेटे शेख अल्लाह यार खाँ ने भी शहीदी का ताज पहना।"

[2]अभियान में उपस्थित मिसकिन के अनुसार यह संख्या 9,000 थी, 276–8; सी० पी० सी०, ii, 212; नूर-उद्-दीन, 111–2।

10. भारत से अहमदशाह का प्रस्थान तथा लाहौर पर सिखों का पुनः आधिपत्य

नजीब ने शाह से सतलज पर बिदाई ली थी ।[1] दिन प्रतिदिन बढ़ती पंजाब की झुलसा देने वाली गर्मी तथा सिखों की परेशान करनेवाली कूट चालों, तथा उफान खा रही नदियों से तंग आकर अहमदशाह सतलज के किनारों को शीघ्रता से छोड़, तेज़ी से कूच करता हुआ, लाहौर[2] होकर अपने देश को लौट गया । इस भाँति इसने सारा देश अब सिखों के हाथों में छोड़ दिया ।

अहमदशाह अब्दाली के अंतिम हमले का यह लज्जाजनक अंत था । सतत तथा पूर्ण प्रयास करने पर भी वह लड़ाकू लोगों को दबाने में असफल रहा । वे ऐसे लोग थे जो जीत तथा धर्म के बंधन से एक हो गए थे और जिनके पास अजेय साहस तथा अनंत इच्छा शक्ति थी ।

अहमदशाह दुर्रानी की वापसी के बाद, सिख फिर से सारे प्रदेश में फैल गए तथा अपने पुराने स्थानों पर उन्होंने अधिकार जमा लिया । गूजर सिंह, लहना-सिंह तथा शोभा सिंह लाहौर आ पहुँचे तथा शालामार बगीचे में डेरे डाल लिए । उन्होंने दुर्रानी सूबेदार दादन खाँ के पास, लाहौर खाली करने या फिर लड़ाई के लिए तैयार होने का संदेश भेजा । दादन खाँ ने अपने सलाहकारों की एक परिषद् बुलवाई तथा मियाँ मुहम्मद आशिक, मीर नाथूशाह, हाफिज कादिर बख्श तजार तथा दीवान सूरत सिंह के पोते लाला महाराज सिंह, आदि नगर के प्रतिष्ठित व्यक्तियों को आमंत्रित किया । उन सब ने एक मत होकर उसे सलाह दी :—"लोग सिखों के शासन से बहुत खुश तथा संतुष्ट हैं । रात के समय वे नगर के द्वार खोल सकते हैं । वे नगर की दीवारों में सेंध लगाकर उन लोगों को अंदर ला सकते हैं । उस स्थिति में आप उनके क्रोध के शिकार हो जाएँगे । इसलिए हमारी तो यही सलाह है कि आप उनसे भेंट करें तथा अपने लिए, उनसे किसी प्रकार का भत्ता या जागीर तय करके,

---

[1]"इसके बाद अहमदशाह ने नजीब को जाने की अनुमति दी । नजीब सरहिंद ज़िले में आया तथा कई दिनों तक मुस्तफ़ाबाद (अंबाला से 25 मील पूर्व में) में ठहरा रहा । उसने सिखों के कई परगनों पर आक्रमण किया तथा सरस्वती नदी के तट पर डेरा डाला । हिंदुओं की यह एक पवित्र नदी है । 30 जुलाई को नजीब-उद्-दौला दिल्ली पहुँचा तथा शुजा-उद्-दौला की हवेली में जाकर ठहरा । दिल्ली क्रानिकल, 213 ।

[2]सिख इतने अधिक हैं कि उनका शीघ्र दमन करना शाह के लिए असंभव है । सी० पी० सी०, ii, 377, 393, 513, 1365 ।

नगर उन्हें सौंप दे। दादन खाँ मान गया तथा वह सिखों के पास गया। उन्होंने उसका यथोचित मान-सम्मान किया तथा बीस रुपए प्रतिदिन के हिसाब से उसका भत्ता तय कर दिया। इसके बाद उन्होंने नगर पर अधिकार जमा लिया।[1]

11. सिखों द्वारा राज्य-क्षेत्र का विस्तार

अब सिखों ने उन प्रदेशों की विजयों द्वारा जो अब तक नहीं दबाए जा सके थे अपने राज्यक्षेत्रों की सीमाओं को बढ़ाना आरंभ कर दिया। यह पहले ही बताया जा चुका है कि सरदार गूजरसिंह ने सन् 1765 में गुजरात के गक्खर मुखिया मुकर्रब खाँ को हरा कर मार डाला था तथा उस स्थान पर अपने प्रधान केंद्र की स्थापना कर ली थी। सन् 1767 में उसने नमक की पहाड़ियों तथा रावलपिंडी के लड़ाकू कबीलों का सुयोजित रूप से दमन आरंभ कर दिया। गक्खर, झँझुआ तथा अवान आदि सब कबीलों ने उसके सामने घुटने टेक दिए। इस प्रकार उसने संपूर्ण गक्खर इलाके पर अपना अधिकार जमा लिया तथा अपने इस इलाके पर उसने मिल्खा सिंह थेपुरिया[2] को शासन, चलाने के लिए छोड़ दिया। मिल्खा सिंह ने रावलपिंडी की, जिसका उस समय कोई खास महत्व नहीं था, विशेष स्थिति को भली-भाँति पहचान लिया। इसी लिए उसने इसे अपना प्रधान केंद्र बनाया, वहाँ नए घर बनवाए तथा कुछ सीमा तक उस स्थान की किलेबंदी भी कर डाली। इसके बाद उसने आस-पास के इलाके को अपने अधीन किया। इससे उसे तीन लाख वार्षिक की आय होने लगी। उसका निश्चय इतना दृढ़ था तथा उसकी शक्ति का इतना अधिक बोल-बाला था कि हज़ारा जैसे दूरवर्ती स्थान के खूँखार कबीले वाले भी उसका सम्मान करते थे। मरी की पहाड़ियों के लोगों ने अपनी स्वतंत्रता कुछ और समय तक बनाए रखी। पहाड़ों के गक्खर मुखिए उसके प्रति निष्ठा रखते थे। मिल्खा सिंह ने उन्हें 107 पहाड़ी गाँवों की जागीरें प्रदान कीं परंतु प्राप्त कर्त्ताओं ने इस

---

[1]अली-उद्-दीन, 130 ख तथा 144 ख।

[2]शक्तिशाली सिख सरदार मिल्खा सिंह कसूर के निकट स्थित कलेकी गाँव का निवासी था। लाहौर ज़िले में उसने थेपुर नामक गाँव की नींव रखी (इसी से उसे थेपुरिया की उपाधि मिली थी) तथा नखर, जंघीर, डलेन तथा अन्य कई गाँवों पर अपना अधिकार जमा लिया। इनमें से कुछ थेपुर के पास थे तथा कुछ गुजराँवाला तथा गुजरात ज़िले में थे। परंतु इन उपलब्धियों से उसे संतोष न हो सका तथा वह सरदार गूजरसिंह भंगी की सेना के साथ उत्तर की ओर चल दिया। अंत में वह रावलपिंडी में बस गया।

भेंट को कोई महत्व ही नहीं दिया । क्योंकि यह भेंट केवल नाम के लिए ही थी वास्तव में इसका कोई मूल्य नहीं था ।[1]

सुदूरपूर्व की ओर ध्यान देने पर हम पाते हैं कि गुरबक्श सिंह के पुत्र, भाई देशु सिंह ने दाय रूप में, कुलारन में जो थोड़े से गाँव प्राप्त किए थे, उनको बढ़ाना आरंभ कर दिया था । उस समय कैथल पर भीखबक्श तथा नियामत खां नामक दो भाइयों का अधिकार था । भाई देशु सिंह भौंचौकी से आगे बढ़ा, तथा कुताना पर रुका । यहाँ उसने और सैनिक तथा युद्ध सामग्री एकत्रित की तथा फिर कैथल की ओर कूच कर दिया । एक सप्ताह तक सामना करने के बाद उस स्थान ने आत्मसमर्पण कर दिया । भीखबक्श भाग गया और कहीं मारा गया परंतु उसके भाई नियामत खाँ के दिन सुख से बीते । विजेताओं ने उसके साथ बड़ा सहानुभूति पूर्ण व्यवहार किया तथा जागीर में उसे अनेक गाँव भी दिए ।[2]

इसी समय के लगभग बुधसिंह सिंहपुरिया ने, जालंधर के शेख निज़ाम-उद्-दीन को पराजित कर दिया तथा जालंधर, बुलंदगढ़, हैबतपुर, पट्टी, नूरपूर तथा बहरामपुर के परगनों पर अधिकार जमा लिया । इनसे लगभग तीन लाख की वार्षिक आय होती थी ।[3]

12. गंग दोआब पर सिख आक्रमण, दिसंबर, 1767—जनवरी, 1768

दिसंबर, 1767 में सिखों ने फिर यमुना के पार नजीब-उद्-दौला के प्रदेश की ओर ध्यान दिया । अहमदशाह अब्दाली की अनुपस्थिति में उन्होंने उसके उस पूर्णाधिकारी को दंड देने का दृढ़ निश्चय किया था, जिसने उनके सैकड़ों भाइयों का खून बहाया था । वे 19 दिसंबर को दिल्ली के पास आ पहुँचे । सिखों की प्रत्येक हलचल का नजीब-उद्-दौला को पूरा-पूरा ज्ञान था । उनके शाही राजधानी के समीप पहुँचते ही उसने याकूब अली खाँ तथा दूसरे अधिकारियों (अमीरों तथा फौजदारों) को आज्ञा दी कि वे उनकी लूटमार से, नगर की रक्षा करें ।

इसके बाद उन्होंने यमुना को पार किया तथा संपूर्ण प्रदेश को लूटना आरंभ कर दिया । कुछ ही नगरों को उन्होंने छोड़ा । ननौता नगर को, जो कि अपने

---

[1]रावलपिंडी गजेटियर, 38-9; पंजाब चीफ्स, 222–3; जे० ए०, एस० बी०, खंड 40, पार्ट i, 1871, पृष्ठ 100।

[2]करनाल गजेटियर, 38।

[3]राज खालसा, 48।

खंडहरों से एक बार फिर उठने का प्रयत्न कर रहा था, उन्होंने तबाह कर दिया।[1]

इसी बीच वृद्ध वीर नजीब-उद्-दौला अपने प्रधान केंद्र से हट कर कंदेला पहुँच चुका था। यह स्थान मेरठ ज़िले की ठीक उत्तर-पश्चिमी सीमा पर है। वह बिना कहीं रुके मुज़फ़्फ़रनगर के उत्तर की ओर बढ़ा तथा उसने सिखों को वापिस हटकर, ननौता जाने के लिए बाध्य कर दिया। वहाँ सिखों ने बड़ी बहादुरी से उसका सामना किया था, परंतु उन्हें हारकर उत्तर की ओर, इस्लाम नगर भाग जाना पड़ा। सहारनपुर ज़िले की नकूर तहसील में यह एक पठान बस्ती थी। यहाँ उन्होंने अमीर-उल्-उमरा का सामना किया तथा उसने एक भयंकर लड़ाई लड़ी।[2]

---

[1]दिल्ली क्रानिकल, 214-5 अपने रहने के पाँच मकानों के विनाश, अपने प्रिय पुस्तकालय के ध्वंस होने तथा छोटी-मोटी हर प्रकार की वस्तु के नुकसान का, समकालीन लेखक ने, बहुत बुरी तरह से रोना रोया है। उसका एक भी बरतन हमलावरों की नजरों से न बच पाया था।

[2]जी० आर० सी० विलियम्स, कलकत्ता रिव्यू, 1875, पृ० 28। बरार (जलालाबाद) से दो कोस इधर, बौरपुर से 13 जनवरी, 1768 को लिखे गए एक गुप्त सूचना पत्र में इस लड़ाई का बड़ा सजीव चित्रण किया गया है। "हरकारे सूचना लेकर आए कि छोटे-छोटे दलों में बँटकर सिख लोग शिविर के चारों ओर, तोपों की मार के बाहर-बाहर मंडरा रहे हैं तथा उन्होंने अनाज के काफिले को रोकने के लिए, जलालाबाद सड़क पर, अपना एक दस्ता नियुक्त किया है। काफिले की सहायता के लिए अफ़गानों का एक दस्ता भेजा गया तथा एक ज़ोरदार झड़प के बाद कुछ अनाज शिविर में लाया गया। नजीब-उद्-दौला ने तोपखाने को तैयार रखने तथा लड़ाई की तैयारी करने के, तात्कालिक आदेश दिए। अभी आवश्यक तैयारियाँ कठिनाई से ही पूरी हो पाई थीं कि सूचना आई कि अगले भाग में लड़ाई शुरू हो चुकी है। तोपखाने तथा बंदूकों आदि ने भयंकर रूप से आग उगलनी आरंभ कर दी तथा उसे बड़े उत्साह के साथ कायम भी रखा गया। हाथी पर सवार नजीब-उद्-दौला तोपखाने के पदावल में उपस्थित था। जिस प्रथम पंक्ति पर लड़ाई की मार सबसे अधिक पड़ रही थी उसने अनुपम साहस से उसे सहन किया। इस सब के बीच सिखों ने एक कपट भरा दाव चल कर तोपखाने की पंक्ति में कुछ गड़बड़ी पैदा कर दी तथा बड़ी बेसबरी के साथ आगे बढ़ने लगे। परंतु ठीक उसी समय सैयद मुहम्मद खाँ तथा अफ़गानों के एक चुने हुए दल ने आकर समयोचित सहायता दी तथा सिख हानि उठा कर पीछे

अंत में सिख सहारनपुर की ओर हट गए तथा बाद में वे राजघाट से होते हुए वापिस लौट गए। नजीब-उद्-दौला की यह अंतिम विजय थी। उसकी गिरती शक्ति सिखों की बढ़ती ताकत का मुकाबला सफलतापूर्वक न कर पाई। इसके बाद तो पंजाब से धावे, इतने आम तथा नियमित हो गए कि गंग दोआब के लोगों ने उनका प्रतिरोध करना ही छोड़ दिया तथा वे भाग्य के भरोसे रहने लगे।

"जैसे ही फसल कटती, सीमा प्रदेशों के सरदार, सीमा पार करके, इधर आते तथा बड़े व्यवस्थित रूप से प्रत्येक गाँव से जबरन कर वसूल करते। उनकी इस माँग को 'राखी' तथा कभी-कभी उसे मृदु रूप देते हुए, कँबली अर्थात् 'कंबल धन'[1] का नाम दिया जाता था। उनमें से प्रत्येक का अपना-अपना सुनिश्चित क्षेत्र या मंडल होता था। वह इतना मान्य तथा सुस्पष्ट होता था कि किसान आज भी कहते हैं कि अमुक स्थान जोधसिंह की पट्टी में है तथा अमुक दीवानसिंह या हिम्मत सिंह की पट्टी में है। वसूली लोगों की देय शक्ति पर निर्भर करती थी। औसतन यह 2 रुपए से लेकर 5 रुपए प्रति व्यक्ति के हिसाब से होती थी। आमतौर से दो या तीन घुड़सवार उसे वसूल करने के लिए काफ़ी होते थे, कारण यह था कि 2,000 से 3,000 घुड़सवार उनसे बहुत दूरी पर नहीं हुआ करते थे। अदायगी में विलंब होने की स्थिति में कुछ सुसज्जित घुड़सवार सैनिक, जिनमें से प्रत्येक के पास एक भाला, तलवार तथा बढ़िया बंदूक होती थी, शीघ्रता

हट गए। उनमें अव्यवस्था फैल गई। दिन छिपने के करीब नजीब-उद्-दौला ने अपने सैनिकों को लड़ाई रोकने के लिए आज्ञा दी। परंतु साथ ही उसने उन्हें हथियार-बंद रहने तथा शत्रु की किसी अप्रत्याशित चाल का सामना करने के लिए भी तैयार होने को कहा। दिन निकलने से पहले ही सिखों ने दूने उत्साह के साथ लड़ाई आरंभ कर दी। इसी समय यह भी सूचना मिली कि ढौल से आ रहे अनाज के एक काफिले को बीच में ही रोक कर लूट लिया गया है। इसलिए शिविर को जलालाबाद के अधिक निकट ले जाने का निश्चय किया गया। वहाँ अनाज काफी मात्रा में था। यह सोचा गया कि इस बात से माल के लाए जाने के खतरे दूर हो जाएँगे, खाद्य सामग्री की व्यवस्था ठीक हो जाएगी तथा सैनिकों के हौसले बढ़ जाएंगे। यह तो समय ही बताएगा कि भविष्य में उनकी कार्यवाहियों का क्या प्रभाव होगा। सिख छोटे-छोटे दल बना कर चारों ओर घूम रहे हैं। इस लड़ाई में अनेक सुप्रसिद्ध सरदार मारे तथा घायल हो गए हैं।" (सी० पी० सी०, 776)।

[1]ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्येक व्यक्ति से एक कंबल की कीमत का अनाज या रुपया वसूल किया जाता था।

से आ पहुँचते तथा बकाया रक़म उगाहने में तज़ी ला देते । मनाही घातक होती थी ।"[1]

13. नजीब का सिखों के हाथों अपनी पराजय का अनुभव, मार्च, 1768

गंग-दोआब से, सिखों के अपने इलाकों में लौट जाने के बाद नजीब ओनला गया । वहाँ उसने अपने पुत्र कालू खाँ का विवाह संपन्न किया । इसे उन वैवाहिक उत्सवों में लगा देख, सिख फिर से करनाल तथा पानीपत के परगनों में फैल गए तथा इन शाही इलाकों में तबाही मचा दी । इस पर नजीब ओनला से चला तथा शीघ्रता से दिल्ली पहुँचा। सदैव की भाँति सिखों को मार भगाने के लिए वह यहाँ से उनकी ओर बढ़ा । उसने सिखों के साथ अनेक लड़ाइयाँ लड़ीं परंतु पराजित हुआ । सिख नेता जयसिंह (जस्सासिंह?) ने पत्र लिखकर उन सब सिख दस्तों को वापिस बुला लिया, जो भरतपुर में जवाहर सिंह के साथ थे ।[2]

नजीब को पराजित करने के बाद, सिख दिल्ली की ओर बढ़े तथा शाहीनगर को लूटा । "वहाँ उन्होंने अत्याचार तथा लूट-खसोट की ।" बादशाह के कारिंदे मुसाबी खाँ के पास मामूली-सी सेना थी तथा आस-पास से सहायता प्राप्त करने के उसके पास कोई साधन भी नहीं थे। इसीलिए वह दिल्ली के किले की रक्षा करने तथा सिखों के विरुद्ध अभियान करने की स्थिति में नहीं था ।[3]

नजीब का निश्चय इतना अधिक डिग चुका था तथा सिखों के विरुद्ध अपनी कमज़ोरी को वह इतने स्पष्ट रूप से अनुभव कर रहा था कि उसने मक्का की तीर्थयात्रा, या फिर किसी निर्जन स्थान में जाकर राजनीतिक जीवन से संन्यास-ग्रहण कर लेने का विचार किया ।[4] शाह आलम द्वितीय की राजमाता को लिखे गए एक पत्र में उसने खुले आम अपनी पराजय स्वीकार की तथा शाही परिवार और नगर को उनके भाग्य पर छोड़कर, उसने वहाँ से अपने कारिंदे सुल्तान खाँ, तथा अपने सैनिकों और सामान को वापिस बुला लिया ।[5] राजधानी से

---

[1]जी० आर० सी०, विलियम्स, कलकत्ता रिव्यू, 1875, पृ० 28-9 ।

[2]उसने लिखा:—"आप वहाँ क्या कर रहे हैं ? नजीब को दंडित करने के लिए मैंने आपको बार-बार लिखा है, परंतु आपने ऐसा नहीं किया । इसलिए अब मैं यहाँ आ गया हूँ । आप उसके राज्य से आकर मुझ से मिलें ।" एस० पी० डी०, xxix, 143 ।

[3]सी० पी० सी०, ii, 835; नूर-उद्-दीन, 113 ।

[4]सी० पी० सी, ii, 847 ।

[5]नजीब ने, राजमाता को लिखा:—"इस घड़ी तक आपके सेवक ने तैमूर

नजीब के इस अचानक पलायन से बादशाह के मन को गहरा सदमा पहुँचा। यह बात हमें सी० पी० सी०, ii, 846 में दिए हुए पत्र को पढ़ने से स्पष्ट हो जाती है। इससे सिखों के हौसले इतने अधिक बढ़ गए कि अब उन्होंने शाह आलम को शाही राजधानी पहुँचाने की पेशकश करते हुए, राजा बनाने वालों का काम करना चाहा। परंतु सिख सरदारों में आपस में कोई मेल-मिलाप नहीं था तथा इनमें से प्रत्येक राजा बनाने वाला बनना चाहता था। यही

घराने के प्रति अडिग निष्ठा का परिचय दिया है। उसकी सेवाएँ, चाहे वे कितनी ही बेकार तथा अपर्याप्त रही हों, उत्साह तथा सद्भाव पूर्ण रही हैं। अब तक उसने शाही इलाकों को बनाए रखा है और यह जो कुछ भी दे सकता था, उसने दिया है। परंतु अब महामहिम साम्राज्ञी अपने सेवक को क्षमा करें तथा जो करने की उसमें शक्ति नहीं है, उसकी, उससे आशा न करें। सिख लोग विजयी हो चुके हैं तथा उन्होंने, सेवक की कमज़ोरी की ओर संकेत करते हुए उसे परास्त करने के लिए प्रोत्साहित करते हुए, आमतौर से सब कबीलों को पत्र लिखे हैं। महामहिम साम्राज्ञी अब यह समझें कि वह यहाँ अपनी सुरक्षा करने में असमर्थ है। इसलिए यदि इस प्रस्ताव को आपका शाही अनुमोदन मिलता है तथा इसे व्यवहार्य समझा जाता है, तो आपका यह सेवक संपूर्ण शाही परिवार को साथ ले जाने के लिए तैयार है। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए अभी काफी समय है। इसके सिवा जो बातें महामहिम तथा उसके सेवक के बीच तय हैं उनके कारण, वह जब तक दम में दम है, आपकी ओर ही जमा रहेगा। और जब उसके पास कोई शक्ति नहीं रहेगी वह महामहिम (राजमाता) को उसके पुत्र के सम्मुख ले जाएगा। ये सब बातें पूरी करने को वह तैयार है तथा वह किसी भी शर्त पर यह कहने का मौका नहीं देगा कि परीक्षा के दिन, वह उनमें असफल रहा।" सी० पी० सी०, ii, 847।

बादशाह को छः महीने बाद लिखे गए एक और पत्र में, नजीब उद्-दौला ने उस स्थिति को संभालने में अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुए लिखा, "इस घड़ी तक मैंने छोटे शहज़ादों तथा महामहिम बेगम के प्रति पूरी-पूरी लगन तथा राजभक्ति का परिचय दिया है। परंतु उनकी सुरक्षा के लिए जिस सहायता की आवश्यकता है वह अब मैं देने में असमर्थ हूँ। अब महामहिम खुद अपनी राजधानी में पधारें तथा अपने सम्मान की रक्षा करें। आपका सेवक बड़े दुःख के साथ निवेदन करता है कि, उसकी वर्तमान स्थिति में, वह अपना कार्यभार संभालने के योग्य नहीं है।" सी० पी० सी०, ii, 1101; एस० पी० डी०, xxix, 143

कारण था कि बादशाह ने अपने को उनके हाथों में सौंपने से मना कर दिया। यह बात हमें बादशाह द्वारा, सिखों के नेता, जस्सा सिंह अहलूवालिया को लिखे गए पत्र से, बिल्कुल साफ़ विदित हो जाती है। (सी० पी० सी०, ii, 849)।

14. नजीब की सिखों के हाथों पुनः पराजय, दिसंबर—1768

सदाशिव बल्लाल द्वारा विश्वास राव लक्ष्मण को 30 दिसंबर, 1768 को भेजे गए एक मराठी पत्र में कहा गया है कि नजीब फिर से सिखों के साथ लड़ा परंतु पराजित हो गया।[1] जो समकालीन अभिलेख हमें प्राप्त हो सके हैं उनसे पता चलता है कि सिखों तथा नजीब-उद्-दौला के बीच उस काल में हुई यह अंतिम लड़ाई थी।

15. सन् 1768 में सिख अधिकार-क्षेत्र

अपने सब शत्रुओं को पराजित करने के बाद, पंजाब का बहुत बड़ा भाग, सिखों के कब्ज़े में आ गया। यह भाग यहाँ वहाँ फैली, छोटी-मोटी कुछ एक स्वतंत्र रियासतों को छोड़कर, पूर्व में यमुना तट पर बुड़िया से लेकर करनाल तक, पश्चिम में सिंधु तट पर स्थित अटक से भक्कर के समीप तक, तथा दक्षिण में मुल्तान और सिंध से लेकर शिवालिक की पहाड़ियों तक और उत्तर में भीमबार, जम्मू तथा काँगड़ा की सीमाओं को छूता था। सिखों के प्रभुत्व के प्रति घृणा के कारण इस घटना की तिथि को, कुछ विद्वानों ने निम्नलिखित काललेख से, जिसमें सन् 1768 दिया गया है, स्मरणीय बना दिया है :—
"जहाने-खराब शुद्ह"[2] (संसार खराब हो चुका है)।

---

[1]एस० पी० डी०, xxix, 223।

[2]फोरेस्टर, i, 324-5 छहर गुलज़ार शुजाई, 501 क-ख; 545 क, 551 क; मासीर-उल्-उमरा, ii, 516; शाकिर, 105; अहमद शाह 966-8; सोहन लाल, i, 164; भाग 1, पृ० 14 का परिशिष्ट; तारीख–ए-अहमद, 43। (खशवक्त राय ने सिखों के प्रभुत्व का इन शब्दों में रोना रोया है :–
"सिखों ने पंजाब में इस प्रदेश पर कब्ज़ा तथा नियंत्रण प्राप्त कर लिया है तथा उनमें से प्रत्येक ने जो कुछ वह हथिया सकता था उसे हथिया लिया है। ऐसा लगता है कि भाग्य और नियति के कारिंदों ने पाँच नदियों के प्रदेश को अपने हाथों से उनमें, बाँट दिया है। यह न तो अहमदशाह की उदारता और न ही मुहम्मद शाह की कृपा से हुआ है, ईश्वर की जय हो, उसके सामने कोई बहादुरी, कोई शौर्य, कोई कापुरुषता तथा कोई कायरता की गिनती नहीं होती है। ऐसा कौन सा शौर्य तथा शक्ति, थी जिसे अहमदशाह तथा उसके

निष्कर्ष

सिखों के केवल तीन बाहरी शत्रु थे—लाहौर तथा दिल्ली की मुग़ल सरकार, अहमदशाह अब्दाली तथा नजीब-उद्-दौला । इनके सिवा उन्हें और किसी भी ओर से भय नहीं था। जब अहमदशाह अब्दाली लाहौर का स्वामी बन बैठा तो मुग़ल सरकार का अंत हो गया। उनको कुचलने में दुर्रानी ने खुद कोई बात उठा न रखी परंतु अब वह भी वृद्ध हो चुका था तथा उसके नाक के नासूर ने इतना भयंकर रूप ले लिया था कि अब उसके ठीक होने की कोई संभावना न थी। उसके भारतीय साथी भी एक-एक करके उससे अलग हो रहे थे। उसके हाल ही के अभियान में नजीब-उद्-दौला को छोड़ कर और कोई उसके सामने उपस्थित तक नहीं हुआ। भारत से प्राप्त होनेवाले उसके राजस्व में भी लगातार कमी होती चली गई। यहाँ तक कि अपने स्वामी दुर्रानी शाह की ओर से पूर्णाधिकारी के रूप में भारतीय साम्राज्य पर नियंत्रण रखने वाले अमीर-उल्-उमरा नजीब-उद्-दौला ने भी सात वर्ष के लिए देय 2 करोड़ 80 लाख के कर की रक़म में से, उसे केवल 2 लाख ही दिया। वेतन न मिलने के कारण उसके सैनिक भी उद्दण्ड होते जा रहे थे तथा उन्होंने खुला विद्रोह भी किया।[1]

उसने यह अनुभव कर लिया था कि भारत के शोषित जन समूह में समाज का एक भाग ऐसा है जो उसका सामना करने में सफलता पा चुका है। उसे अपनी शक्ति का भान हो गया है और वह उसकी शक्ति का भंजन कर, विशेषाधिकार की स्थिति से उसे गिरा, उसका स्थान ग्रहण करने के प्रयत्न कर

अनुयायियों ने प्रदर्शित न किया हो और साथ ही ऐसी कौन सी कायरता थी जो सिखों ने न दिखाई हो ? जब कभी भी अफ़गान सेना अपने महान् सेनापतियों के नेतृत्व में इस देश में घुसी, इस जाति के लोग पहाड़ों तथा जंगलों के दुर्गम स्थानों की ओर भाग खड़े हुए," इसके बाद वह दुख की आह भरते हुए गंदी बात कहता है संभवतया सिखों के कुलीन न होने के बारे में कहता है। देखें छहर चमन, 228 ख–229 क।

[1]सन् 1769 में अहमदशाह ने एक बार फिर भारत पर हमला करने का प्रयत्न किया, परंतु, "वह झेलम तक ही आया था कि अपने ही साथियों के मतभेद के कारण, उसे अपने देश को लौट जाना पड़ा। पेशावर से काबुल के मार्ग में इसकी सेना में विद्रोह भड़क उठा, इसका सारा शिविर लूट लिया गया तथा उसके अनेक सरदार तथा सैनिक या तो मारे गए या फिर तितर-बितर हो गए तथा उसके वज़ीर शाह वली खाँ ने बड़ी बुरी हालत में कंधार को जाने वाली सड़क पकड़ी"। सी० पी० सी०, ii, 1499।

रहा है। एक सच्चे राजमर्मज्ञ की भाँति अहमदशाह अब्दाली ने अपनी सीमाओं का अनुभव कर लिया तथा जिनके आक्रमण अब वह सहन नहीं कर सकता था उन को शांत करने का उसने भरसक प्रयत्न किया। जब वह अपने प्रयत्न में असफल रहा तो उसने सिस-सतलज प्रदेशों में, एक कृतज्ञ तथा संतुष्ट सिख सरदार को, वहाँ का कार्यभार सौंप कर संतोष कर लिया। इस व्यक्ति से वह वार्षिक कर की राशि प्राप्त करने पर भी भरोसा कर सकता था। अब उसने सिंधु के पश्चिमी तट तक ही अपनी महत्वाकांक्षाओं को सीमित रखा तथा संपूर्ण पंजाब, जिसमें प्रांतीय राजधानी भी थी, उसने अपने दुर्जय विरोधी सिखों के लिए छोड़ दिया। इसके बाद से उत्तरी भारत पर आक्रमण करनेवाले विदेशियों का, पंजाब होकर आना बंद हो गया। जहाँ तक विदेशी आक्रमणों का प्रश्न है, उस समय से लेकर शताब्दी के अंत तक, कुछ एक अवसरों को छोड़कर, पूरे प्रदेश में लगातार सुख-शांति बनी रही है।

अब्दाली के सबसे बड़े सरदार नजीब-उद्-दौला ने भी खुले आम स्वीकार कर लिया कि वह ऐसे राष्ट्र से पराजित हुआ है जिसके प्रत्येक व्यक्ति ने तलवार उठा ली है तथा जो अपार उत्साह तथा शक्ति से ओत-प्रोत है तथा जिनकी संख्या "चींटियों तथा टिड्डियों की भाँति" बढ़ती जा रही है।[1]

इस भाँति पिछले तीस वर्ष के जीवनमरण के संघर्ष के बाद सिख विजयी हुए। पराधीनता में कष्ट झेलने के समय का अंत हो गया तथा स्वतंत्रता प्राप्त करने का उनका स्वप्न साकार हो गया। अपने को बनाए रखने तथा अपने मार्ग पर स्थिर गति से बढ़ते रहने में उनकी सफलता सराहनीय है। यद्यपि कई विपत्तियाँ तथा दुर्घटनाएँ साथ-साथ ऐसी आईं, जिन्होंने उनकी उमंगों को दबा कर, उनकी प्रगति में ही बाधा नहीं डाली, अपितु उन्हें समाप्तप्रायः कर दिया। विरोध की विशाल बाढ़ आई तथा ऊँची उठी; निराशा के मेघ आच्छादित हुए और उन्हें डुबा दिया। विनाश के भयंकर तूफ़ानों ने हुंकारें भरीं, तथा तबाही मचाई, और इन सब विरोधी तत्वों ने उन पर बार-बार प्रहार किए, परंतु वे, धर्म तथा स्वातंत्र्य-लालसा की फौलादी चट्टान पर खड़े कठोर परिश्रमी सिखों को न हिला सके। अपनी आंतरिक शक्ति अर्थात् अपनी सक्षमता तथा गुरु गोविंद-सिंह की इस भविष्य वाणी में विश्वास के कारण, कि एक दिन वे राष्ट्र का रूप लेकर रहेंगे, तथा अपने अडिग साहस और अजेय प्रतिरोध भावना के कारण, वे न केवल ऐसे शासन के अत्याचारों तथा दमन को सह सके, जो उनके नाश के लिए कटिबद्ध था, वरन् उन्हें समूल नष्ट करने के प्रत्येक प्रयत्न के बाद और भी शक्तिशाली रूप से उठ खड़े हुए।

---

[1]छहर गुलज़ार-ए-शुजाई, 545 क।

सारांश में हम कह सकते हैं कि उनकी सराहनीय सफलता के दो कारण थे। उनका पहला गुण था लक्ष्य के प्रति लगन तथा कार्य को पूरा कर लेने के लिए तरकीब सोच निकालने की योग्यता। जिन कठिनाइयों तथा निराशाओं के सम्मुख अन्य भारतीय भाग्य को दोष दे, पराजय स्वीकार कर लेते थे, उनके सम्मुख भी, इस गुण ने, इस जाति के मुखियों तथा सैनिकों को चिर सहनशक्ति तथा सतत उद्यम के योग्य बना दिया था। दूसरा गुण इस बात का ज्ञान था कि लड़ाई, एक कला है, जिसमें तत्काल अवलोकन की सामर्थ्य, होशियारी, निःस्वार्थता और अपने साथियों तथा नेताओं में विश्वास की आदत की आवश्यकता होती है। सिखों में ये सब गुण पूरी-पूरी मात्रा में विद्यमान थे। सिखों ने रणजीत सिंह के समय से पहले इस सबसे महत्वपूर्ण बात को नहीं समझा था कि युद्ध एक विज्ञान है जिसमें अध्ययन तथा उच्च मानसिक शक्तियों के संकेद्रण की आवश्यकता होती है। परंतु यह कमी इनके अपरिमित उत्साह तथा असीमित आत्म-विश्वास ने पूरी कर दी।

सिख कारनामों की कहानी उस अंतर को स्पष्ट कर देती है, जो ज्ञान और कर्म, कथनी और करनी, शब्दों और कार्यों तथा मृत और जीवित विश्वासों में होता है।

अब हम उन सिखों के वर्णन को समाप्त करते हैं जो राष्ट्र के अग्रणी बने, जिन्होंने जन अधिकारों की व्याख्या की, जिन्होंने सद् और असद् जनता की संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न इच्छा और राजाओं के दैवी-अधिकारों तथा निरंकुशता और स्वतंत्रता के बीच संघर्ष कायम रखा; जिन्होंने सदियों से चली आ रही गुलामी, ज्यादतियों तथा अपमानों का बदला लिया, जिन्होंने अपनी मातृ-भूमि को विदेशी-आक्रांताओं के पंजों से मुक्त किया। जिन्होंने उन सब गुणों का प्रदर्शन किया जो महान् तथा सुंदर थे; जिन्होंने इस प्रांत के बच्चों को दाय-रूप में एक क्षेत्र दिया जो-किसी किसी विदेशी सैनिक की उपस्थिति से दूषित नहीं था। जिन्होंने पंजाब के लिए "सैनिकों के देश" की बहु-वांच्छित उपाधि प्राप्त की, जो यह गर्व कर सकते हैं कि उन्होंने पिछले आठ सौ वर्षों से निर्बाध रूप से होने वाले "विदेशी आक्रमणों के विरुद्ध प्रतिरक्षा की शक्तिशाली दीवार" खड़ी कर दी है; और जिसके लिए सामान्य रूप से संपूर्ण उत्तरी भारत के तथा प्रमुख रूप से पंजाब के लोग उनके आभारी हैं।

इस फल प्राप्ति में अमृतसर ने जो महत्वपूर्ण कार्य किया उसके बारे में यहाँ दो शब्द कहना अनुचित न होगा। इस उद्देश्य की प्राप्ति में उस नगर की सेवाएँ इतनी अधिक अलौकिक, उत्कृष्ट तथा महान् हैं कि यह लेखक उनका वर्णन नहीं कर सकता। यह उस पवित्र धर्म का आश्रय-स्थान था, जिसने गुलामी की जंजीरों को तोड़ डाला तथा मानव जाति का उत्थान किया। इसके दिव्य-

संदेश-वाहक अनेक लोगों के शिक्षक तथा मुक्तिदाता थे। इसकी मूलभावना थी, ऐसे लोगों का उद्धार करना जिनमें आपसी जलन के कारण फूट पड़ गई थी, तथा जो एक निरंकुश शासन के उत्पीड़न-चक्र में बुरी तरह पिस रहे थे इसने उत्कृष्ट कोटि के ऐसे सूरमाओं जो जन्म दिया जो आज़ादी की लड़ाई में अग्रणी रहे तथा जिन्होंने स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए लोगों को प्रेरित किया। इस स्थान ने जो कुर्बानियाँ कीं उनकी मिसाल नहीं है। इसी के कारण यह नगर बहुत पवित्र तथा प्रिय हो गया है। इसकी महानता को सिद्ध करनेवाली बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ ही नहीं परंतु इसकी छोटी से छोटी घटनाएँ भी स्मरण करने योग्य हैं। सारांश यह है कि अमृतसर सिख-जाति के लिए मातृ-भूमि तथा धर्म का प्रतीक बन चुका था।

पाठको! क्या हमने एक चमत्कार के दर्शन नहीं किए हैं? परंतु, फिर भी लोग कहते हैं कि चमत्कार में विश्वास मूर्खता है?

सोलहवाँ अध्याय

सिखों का जीवन तथा आचार-व्यवहार

1. शारीरिक गठन

सिखों की सैनिक शक्ति मुख्यरूप से मांझा अथवा केंद्रीय बारी दोआब के जाटों पर आधारित थी । शैशव से ही घर के बाहर रह कर कठोर परिश्रम करने तथा विपत्तियों से परिपूर्ण जीवन बिताने के आदी होने के कारण वे ऊँचे, पूरे, माँसल तथा स्वस्थ शरीर के थे । उनका आकार-प्रकार हल्का-फुलका तथा अत्यधिक लचीला होता था । उनकी सहनशक्ति आश्चर्यजनक थी । असली खालसा, युद्ध तथा कृषि के सिवा और कोई धंधा नहीं जानता था । साहसपूर्ण कारनामों के कारण परिश्रमी बनने तथा जलवायु के अभ्यस्त होने के कारण उन लोगों का शारीरिक-गठन, सामान्य भारतवासियों से कहीं अधिक अच्छा था । उनके तेजस्वी चेहरे, सैनिक हावभाव तथा गौरव-मय रूप की, उनके कटुतम शत्रु भी प्रशंसा करते थे । एक मुसलमान इति-हासकार ने यद्यपि सिखों के लिए गंदे से गंदे शब्दों का प्रयोग किया है, जिन्हें हम यहाँ नहीं दे रहे हैं, फिर भी वह उनके बारे में लिखता है:— "यह बात अज्ञात नहीं है कि दुर्रानियों को छोड़कर अन्य सैनिकों की सिखों के साथ तुलना नहीं की जा सकती । इस जाति में ऊँचे डीलडौल वाले तथा शेर के समान अंगों वाले जवानों की बहुतायत है । उनकी लात की एक ही चोट विलायती क़िपचक़ घोड़े को तत्काल समाप्त करने के लिए काफ़ी है। उनकी बंदूकें नौ सौ कदम की दूरी पर खड़े आदमी पर चोट करती हैं तथा उनमें से प्रत्येक व्यक्ति दो सौ कोस का फ़ासला घोड़े की पीठ पर ही बैठकर तय कर लेता है । साफ बात है, यदि ऐसा न होता तो वे किस तरह से सफलतापूर्वक विलायती सेनाओं का सामना कर पाते । अंत में दुर्रानी सेना ने भी मान लिया कि सिखों की तलवारों की धार तेज़ है ।[1]

---

[1]इमाद-ए-सादत, 71 । (एक और समकालीन लेखक जार्ज थोमस ने इन शब्दों में इस बात का समर्थन किया है :—"घोड़ों पर सवार, उन के लहराते काले बाल, सुगठित तथा कसरती नग्न शरीर, उनके हथियारों की चमक तथा उनके घोड़ों का कद तथा वेग उनके रूप को प्रभावशाली तथा भीषण बना देता है । उनका यह रूप हिंदुस्तान के दूसरे अनेक घुड़सवारों से अच्छा है ।" मेमोयर्स, 73; देखें, फ्रेंकलिन का शाह आलम, 77) ।

जहाँ तक उनके वैयक्तिक रूप का सवाल है हम उसकी कल्पना सरलता से कर सकते हैं अर्थात् घनी दाड़ी-मूछों के पीछे शांत, सौजन्यपूर्ण तथा प्रभावशाली चेहरा तथा तीक्ष्ण और सजीव आँखें । उनके चेहरे की आकृति नियमित, तीखे नाक-नक्शे वाली तथा सुंदर होती थी । उनसे ओज टपकता था । उनका गेहुँआ रंग था तथा चमड़ी आमतौर से चिकनी और स्वच्छ दिखाई देती थी । इनके दाँत सामान्यतया सुंदर, श्वेत, मज़बूत तथा नियमित होते थे, जिसे वे परंपरा से चली आ रही दतौन से साफ़ करते थे । उनके बाल काले होते थे तथा दाढ़ी और मूंछों की बहुत हिफाज़त की जाती थी । उन्हीं के वर्ग के एक बुद्धिमान व्यक्ति के अनुसार उनका औसत वज़न दो मन के लगभग होता था ।[1]

2. मनोवृत्ति

यद्यपि सिख बहुत प्रज्ञावान जाति के लोग नहीं हैं, फिर भी वे अत्यधिक चतुर तथा स्वतंत्र प्रकृति के थे । वे बड़े धीर, गंभीर, उत्साही, स्पष्टवादी तथा आडंबरविहीन स्वभाव के लोग थे । वे बड़े आचरण, शील, शूरवीर, आत्म-सम्मान से युक्त तथा इज्ज़तदार लोग थे । आपस में एक-दूसरे के साथ उनका व्यवहार बड़ा हँसमुख, आनंद से भरा तथा सरल होता था । शायद वे एक-दूसरे से कोई रहस्य भी नहीं छिपाते थे । उनके व्यवहार में कायरता तथा नीचता के लिए कोई स्थान न था । वे प्रसन्न-वदन तथा सीधे-सादे लोग थे । खेल-कूद से उन्हें प्रेम था तथा अपने गृहस्थ जीवन में वे मिलनसार तथा सत्यप्रिय थे । हास-परिहास का उनमें तनिक भी अभाव न था । वे लोग पर्याप्त अपरिष्कृत परिहास करते थे । जो चीज़ बिल्कुल प्रत्यक्ष तथा सुस्पष्ट होती थी उसके बारे में भी वे मज़ाक करना या सुनना पसंद करते थे । उचित स्थान पर कही गई कहावत का वे आनंद लेते थे । अपने आपको श्रेष्ठ समझने का भाव इनमें नाम-मात्र के लिए भी न था ।[2]

3. चरित्र

सिखों का सबसे बड़ा गुण था अपने चरित्र को परिस्थितियों के अनुकूल बना लेना । इसके कारण, वे अपने को प्रत्येक परिस्थिति में ढाल लेते थे ।

---

[1]कर्नल पोलियर के मेमोयर्स इन फोरेस्टर, i, 334; मालकाम, 104 ।

[2]ब्राउनी, इन्ट्रोडक्शन, x; मालकाम 130; खुशवक्त राय, 102; अली-उद्-दीन, 192 ख ।

जलवायु के परिवर्तनों के सहने के लिए उनके पास पर्याप्त मानसिक तथा शारीरिक शक्ति थी। तपती धूप, भीषण वर्षा, कठोर ठंड तथा आँधी, तूफ़ान का उन पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़ता था। उनके धर्म के शत्रुओं द्वारा उनका दमन, उनके घरों तथा पवित्र भवनों का नाश तथा उनकी औरतों और बच्चों को गुलाम बनाया जाना, उनके उत्साह को कम नहीं कर सके। अनंत चिंताओं, भागदौड़, नए-नए स्थानों पर भविष्य की अनिश्चितता में ही, उन्हें, उन भावनाओं का उपचार मिलता था जो एकांत में अपने प्रियजनों से दूर उनके हृदयों में उठती थीं। यही वे गुण थे जिनके कारण घोर विपत्तियों में भी सिखों ने दुराग्रहपूर्ण साहस तथा सहनशक्ति का परिचय दिया।

उनके चरित्र का दूसरा प्रधान लक्षण था अपने पंथ के प्रति उनकी पूर्ण भक्ति तथा निष्ठा, जो उनकी रग-रग में थी। उन्होंने कभी भी अपनी निजी भावनाओं, इच्छाओं, प्रेम, दुःख, रुचि, अरुचि को अपने तथा पंथ की भलाई के मार्ग में नहीं आने दिया। एक सच्चा सिख अपने धर्म के लिए लड़ते-लड़ते अपने शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो जाने देता था। यही नहीं युद्ध में मृत्यु होने को वह मुक्ति का मार्ग समझता था। कुछ लोग कह सकते हैं कि प्रत्येक मास वेतन के रूप में मिलने वाले कुछ सिक्कों के लिए, एक सैनिक अपना सिर बेच देता है। परंतु सिखों ने ऐसा नहीं किया। ज़बर्दस्ती भरती किए गए सैनिकों से वह भिन्न था। वह स्वेच्छा से अपने देश की सेवा करता था इसलिए वह सदैव उत्साह से भरा रहता था; अपने घावों पर गर्व करता था तथा मृत्यु को गौरवपूर्ण समझता था। अत्यधिक कष्ट की अवस्था में भी उसे प्राप्त हुई प्रशंसा, देश तथा धर्म के प्रति अपने प्रेम, अपनी प्रतिज्ञाओं तथा अपने उद्देश्य की सफलता के लिए 'वाह गुरु' से की गई अपनी प्रार्थनाओं से, उसे बहुत सांत्वना मिलती थी। अपने पंथ के प्रभाव को बनाए रखने के लिए वह अपना तन, मन और धन अर्पण कर देता था। हम कल्पना नहीं कर सकते हैं कि कितनी बार उसे विभिन्न रूपों में मौत का सामना करना पड़ता था। परंतु "नानक, दास सदा कुर्बानी" (नानक जी आपका यह सेवक बलिदान के लिए सदैव तैयार है) का धीरे-धीरे उच्चारण करते हुए एक सिख अपने को शांत, प्रसन्न, गरिमा संपन्न बनाए रखता था। उनकी भावनाओं की यह उत्कृष्ट अभिव्यक्ति थी।

सफलता से उनका सिर नहीं फिरता था। वे पहले जैसे ही विनयशील, सीधे-सादे तथा शांत बने रहते तथा दुर्दिनों में सरदार बनकर और अच्छे दिनों में भले साथी (भाई) बनकर उन्होंने सिद्ध कर दिया कि वे गुरु के सच्चे बंदे हैं। अपने शत्रुओं की भी वे कदाचित् ही नृशंस हत्या करते तथा स्त्रियों के सतीत्व की रक्षा करना वे लोग अपना धर्म तथा फर्ज़ समझते।

इसलिए हम कह सकते हैं कि समृद्धि उन्हें बिगाड़ नहीं सकी तथा प्रतिकूल परिस्थितियाँ उनका दमन न कर पाईं ।

जहाँ तक सिखों की बहादुरी तथा लड़ाकू प्रवृत्ति का प्रश्न है वे दुस्साहस, प्रचंड शौर्य, अदम्य साहस, सहनशक्ति, उच्च आकांक्षाओं तथा पुरुषोचित भावनाओं से भरे थे । शत्रुओं की संख्या, तलवारों के वार, बंदूकों की गोलियाँ तथा तोपों के गोले, उसके हृदय को नहीं दहला सकते थे क्योंकि सिख धर्म की दीक्षा लेते समय वह प्रतिज्ञा करता था कि वह अकेला ही लाखों से युद्ध करेगा । बेंत की तरह लचीली तथा उस्तरे की सी तेज़ धार वाली अपनी तलवारों को वे बड़ी सरलता तथा दक्षता से चला सकते थे । और जहाँ तक बंदूक चलाने का सवाल है उन लोगों का निशाना अचूक होता था । अपने शत्रुओं के साथ संघर्ष करते समय वे लोग उन पर शेरों की भाँति टूट पड़ते थे । उनकी तलवारें बिजली की तरह चपल हो उठती थीं तथा खौफनाक दुर्रानी भी उनका लोहा मानता था ।

जो कुछ हमने ऊपर कहा है उसके साक्ष्य में हम "जंगनामा" के धर्मांध लेखक काज़ी नूर मुहम्मद की लेखनी का सहारा लेते हैं, जो सिखों के विरुद्ध युद्ध करने के लिए सन् 1764 में अहमदशाह अब्दाली की सेना के साथ आया था । यद्यपि, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, उसने सिख जाति, उनके धर्म तथा गुरुओं के लिए अत्यधिक अश्लील भाषा का उपयोग किया है, फिर भी, अपने दुर्दम्य शत्रुओं का सही चित्र प्रस्तुत करने के लिए उसे विवश होना पड़ा है । वह लिखता है, "सिखों को 'कुत्ते' न कहो, क्योंकि वे शेर हैं तथा लड़ाई के मैदान में शेरों जैसे बहादुर हैं । शेर जैसे युद्ध करने वाला लड़ाई का नायक एक कुत्ता कैसे हो सकता है ? यदि तुम युद्ध-कला सीखना चाहते हो तो लड़ाई के मैदान में उनके सामने आओ । वे तुम्हें युद्ध कला के (आश्चर्यजनक) करतब दिखाएँगे । ओ तलवारबाज़ो, यदि तुम लड़ने के तरीक़े जानना चाहते हो तो उनसे सीखो कि एक वीर किस भाँति शत्रु का सामना करता है तथा बिना चोट खाए किस प्रकार लड़ाई से बाहर निकल जाता है । तुम्हें पता होना चाहिए कि सिंह (शेर) इनकी उपाधि है तथा उन्हें कुत्ते कहकर पुकारना अन्याय है । ओ जवानो ! यदि तुम्हें हिंदी नहीं आती (मैं तुम्हें बतला सकता हूँ कि) सिंह का अर्थ शेर होता है । सच्चाई तो यह है कि लड़ाई में वे शेर होते हैं तथा आनंदवेला में वे हातिम को भी पीछे छोड़ जाते हैं (उदारता में) । जब वे भारत की शमशीर अपने हाथों में लेते हैं तो वे हिंद (गंग दोआब, जिस पर फरवरी, 1764 में हमला हुआ था) से लेकर सिंधु तक अपने घोड़ों पर चले जाते हैं । बलवान से बलवान तथा धनवान से धनवान ने भी उनका सामना करने की हिम्मत नहीं की । जब वे भाला लेकर

लड़ते हैं तो वे शत्रु को पराजित कर देते हैं । जब वे भाले की नोक ऊपर करते हैं तो वे काकेशस पहाड़ को भी चकनाचूर कर डालते हैं । जब वे कमान झुकाते हैं तो उस पर शत्रु को धराशायी करने वाला बाण चढ़ाते हैं । जब वे उसे कान तक खींचते हैं तो शत्रु का शरीर बेंत की भाँति काँप उठता है । यदि उनका कुल्हाड़ा कवच पर पड़ता है तो वह कवच ही शत्रु के शरीर का कफन बन जाता है । उनमें से प्रत्येक का शरीर पहाड़ की भाँति दिखता है तथा पचास आदमियों से अधिक भव्य जँचता है । बहराम गौर (फारस का एक वीर) ने जंगली गदहों को मारा तथा वह शेरों को यभीत कर सकता था । यदि बहराम गौर उनके सामने आ जाए तो वह भी उनकी श्रेष्ठता को स्वीकार कर लेगा ।

"इन हथियारों के सिवा, लड़ाई के समय जब वे बंदूक हाथ में थांम लेते हैं, तो शेरों की भाँति भयंकर रूप से उछलते तथा दहाड़ते हुए बढ़ते हैं तथा (तत्काल) बहुत से सीनों को छलनी बना डालते हैं तथा बहुत से लोगों का ख़ून पृथ्वी पर बहा देते हैं । तुम कह सकते हो कि! स बंदूक का आविष्कार लुकमान हकीम (ऐसोप) ने नहीं परंतु प्राचीन समय में इन कुत्तों ने किया था । यद्यपि दूसरों के पास भी बहुत बड़ी संख्या में तोपें हैं परंतु फिर भी उनकी जानकारी इनसे बढ़कर किसी को नहीं है। ये बद-मिज़ाज (लोग) अपने शत्रु पर दाएँ, बाएँ, सामने तथा पीछे गोलियों की बौछार करते हैं, जो कुछ मैंने कहा है तुम यदि उस पर अविश्वास करते हो तो वीर योद्धाओं से पूछ देखो । वे लोग तुम्हें जो कुछ मैंने कहा है उससे कहीं बढ़-चढ़ कर बताएँगे । उनकी युद्ध कला के लिए उनके पास प्रशंसा के सिवा, तुम्हें और कुछ न मिलेगा । मेरे कथन के गवाह वे तीस हज़ार वीर हैं जिन्होंने इनके साथ युद्ध किया है ।

"ओ वीरो, यदि उनके सैनिक भाग खड़े होते हैं तो यह न समझो कि वे हार गए हैं । उनकी युद्ध-पद्धति की यह एक चाल है । हे ईश्वर, लोग इस प्रकार की धोखाधड़ी न करें । यह धोखा वे इसलिए करते हैं ताकि क्रोधित शत्रु की हिम्मत बढ़े तथा वे उनका पीछा करें । जब उन्हें वे उनके प्रमुख दल से दूर ले जाते हैं, जहाँ सहायता तथा कुमुक नहीं पहुँच सकती, तो वे एक दम पीछे घूम पड़ते हैं, तथा उनकी बुरी हालत कर देते हैं । क्या तुमने नहीं देखा था कि लड़ाई में वे लोग खान के सामने से मक्कारी करके भाग खड़े हुए थे तथा फिर कुछ दूरी पर जाकर उन्होंने पलट कर खान को चारों ओर से घेर लिया था । वह संसार प्रसिद्ध पहलवान (खान) अपने घोड़े से उतर पड़ा तथा बड़ी वीरता के साथ उनसे लड़ा तथा अंत में वह बीर उनके बीच से निकल भागा ।

"ओ वीर योद्धा ! उनके युद्ध (कौशल) को न्याय दृष्टि से देख । उनकी एक सेना ने मुल्तान पर हमला किया तथा नगर को लूट लिया । वे "कुत्ते" बहुत सा माल लूटकर ले गए । जो कुछ इन 'कुत्तों' ने वहाँ किया उसका (वर्णन) करने के लिए मेरा हृदय मुझे अनुज्ञा नहीं देता । किसी को याद नहीं कि आदम के समय से लेकर आज तक (इस प्रकार की विपत्ति) का उन्हें सामना करना पड़ा है । मुल्तान में इस प्रकार की लूट तथा मार काट और किसी ने नहीं मचाई । परंतु चूंकि ईश्वर को मंजूर था कि इस प्रकार की क्रांति हो, हम सब ने उसकी इच्छा के सामने अपना सर झुका लिया ।

"उनकी युद्धकला के अतिरिक्त, एक और बात सुनिए । दूसरे और योद्धाओं से वे इसमें भी बहुत बढ़ चढ़ कर हैं । वे कभी किसी कायर को नहीं मारते तथा लड़ाई से भागने वालों के रास्ते में बाधक नहीं होते । वे किसी स्त्री का ज़ेवर तथा स्वर्ण नहीं लूटते । चाहे वह रानी हो या दासी । पर-स्त्री गमन भी उन 'कुत्तों' में प्रचलित नहीं है । इनमें से कोई भी चोर नहीं है । प्रत्येक स्त्री को, चाहे वह जवान हो या बूढ़ी, वे 'बुढ़िया' कहते हैं—(जो संसार से विरक्त हो चुकी है) । हिंदी भाषा में 'बुढ़िया' का अर्थ होता है एक वृद्ध औरत । 'वे कुत्ते' कभी भी चोरी नहीं करते तथा इनमें कोई चोर नहीं होता । वे जार कर्म करने वालों तथा चोरों का संग कभी नहीं करते ।[1]

यदि हमें इस काल के सिखों के चरित्र में दोष बताना पड़े तो हम कह सकते हैं कि वे मारधाड़ तथा लूटमार से भरे अभियान किया करते थे । यह बात भी कठोर नैतिक स्तर को ध्यान में रखकर ही कही जा सकती है । परंतु इस निष्कर्ष पर पहुँचते समय हम दो महत्वपूर्ण बातें भूल जाते हैं । पहली बात तो यह है कि हम, आज के मापदंड के अनुसार या आदर्श नैतिक आचरण को ध्यान में रख कर, उनके विषय में अपनी धारणा बनाने का प्रयत्न करते हैं । जिस काल के बारे में विचार किया जा रहा है उस समय सरकारी अधिकारी भी संपत्ति के अधिकारों को कोई महत्व नहीं देते थे । कुंजपुरा का नजाबत खाँ, ईसा खाँ मुंज तथा अनेक दूसरे लोग खुले आम लूट-मार करते या यात्रियों को लूटते थे । दिल्ली साम्राज्य के मंत्री उनके काले-कारनामों की ओर कोई ध्यान न देते थे । यही नहीं, उन्हें भी लूट के माल में से हिस्सा मिलता था : दूसरी बात जो हम भूल जाते हैं वह यह है कि सिख जाति का दमन किया गया था तथा जीवन यापन के सब द्वार उनके लिए बंद कर दिए गए थे । इसलिए बाध्य होकर उन्हें यह मार्ग अपनाना पड़ता था ।

---

[1]देखें फोरेस्टर i, 333; अली-उद्-दीन, 128क; जंग नामा 172-5 ।

फिर संगठित डकैतियाँ करना तो केवलमात्र एक अंत:कालीन स्थिति ही थी, जो उस समय तक रही जब तक वे राष्ट्रीय वीर न बन पाए। आरंभ में डाकू बनकर ही नादिरशाह ईरान का सबसे बड़ा वीर बना तथा उसने अफ़गानों के पंजों से अपने देश को आज़ाद किया। उसी के पद चिह्नों पर चल कर अहमदशाह अब्दाली ने अपनी मातृ-भूमि अफ़गानिस्तान को स्वतंत्र किया। यद्यपि आम बोलचाल की भाषा में सिख एक लुटेरा तथा डाकू ही था, परंतु वह उच्च नैतिक शक्ति द्वारा प्रभावित था, इसलिए उसके सब सद्गुण उभर आए।

4. सिख सेना में भरती

सिख सेना में केवल सिख ही सिपाही के रूप में भरती किए जाते थे तथा सिख बनने से पहले उनकी जो जाति या जो धर्म होता था उसके बारे में कोई विचार नहीं किया जाता था। भरती स्वेच्छा से होती थी। नए भरती होने वाले सैनिक किसी भी सरदार के दल में भरती हो सकते थे तथा अधिक लोकप्रिय नेता की सेवा में चले जाने की भी उन्हें पूरी-पूरी स्वतंत्रता होती थी। यही कारण था कि मुखिया को अपनी लोकप्रियता बनाए रखनी पड़ती थी तथा अपने सैनिकों को सदैव प्रसन्न रखना पड़ता था। सैनिकों के नामों, उनकी सेवा तथा वेतन आदि का कोई लेखा नहीं रखा जाता था। इसलिए हम सिख सेना की सही-सही सैनिक संख्या के बारे में कुछ नहीं कह सकते हैं। इस बारे में हम केवल अनुमान लगा सकते हैं तथा हमें समकालीन लेखकों द्वारा स्थूल रूप से आँकी गई संख्या पर ही निर्भर रहना पड़ता है।[1]

5. कवायद तथा अनुशासन

व्यक्तिगत या फिर सामूहिक रूप से सिख सैनिकों को कवायद, प्रयाण तथा आक्रमण और प्रतिरक्षा करने की प्रणाली आदि का कोई प्रशिक्षण नहीं दिया जाता था। वास्तव में उन दिनों इस प्रकार की किसी चीज़ का विचार सिखों को स्वप्न तक में नहीं आता था। इस कमी के बावजूद भी सिखों ने यह नहीं दर्शाया कि वे बुरे सैनिक हैं या युद्ध की चालों को नहीं जानते। सैनिक विज्ञान की इस कमी की पूर्ति उनके धार्मिक उत्साह, पंथ के प्रति एकनिष्ठ भक्ति, बदले की तीव्र भावना तथा स्वाभिमान ने कर दी। सिख सैनिक ऐसे नियमित रेजिमेंटों में संगठित नहीं थे जिनमें सैनिकों की संख्या बराबर-बराबर होती है। कई मुखियों के अपने-अपने दल होते थे। चाहे

---

[1]देखें फोरेस्टर, i, 33

उनमें कम सैनिक होते या अधिक; वे दल खालसा की इकाइयाँ बन जाते थे। जब किसी बड़े पैमाने पर कोई अभियान संगठित किया जाता तो संपूर्ण दल खालसा एक सर्वोच्च मुखिया की कमान में एकत्रित हो जाता था। यह पद आमतौर से जस्सा सिंह अहलूवालिया को ही मिलता था। दूसरे विभिन्न दलों के सरदार उसकी आज्ञा मानते, यद्यपि उनके विवेक पर बहुत कुछ छोड़ दिया जाता था। आज्ञा न मानने के मामले एक युद्ध-परिषद् पर छोड़ दिए जाते थे। इसमें पाँच प्रमुख नेता होते थे जो दंड निर्धारित करते थे। इन दंडों को बिना किसी आनाकानी के माना जाता था क्योंकि इसे वे लोग 'पंज-प्यारों' की ओर से गुरु के निर्णय के रूप में स्वीकार करते थे। इसीलिए सिख ऐसे दंडों को मज़ाक में वेतन प्राप्ति का नाम देते थे। परंतु हमें यह बात भी जान लेनी चाहिए कि अवज्ञा के मामले बहुत कम होते थे।[1]

6. सैनिकों को पारिश्रमिक देने के ढंग

सिख सैनिकों को विभिन्न प्रकार से भुगतान किया जाता था। उन्हें मासिक या साप्ताहिक वेतन नहीं दिया जाता था। धावे में प्राप्त लूट के माल में से उन्हें एक भाग अपने पास रख लेने की अनुज्ञा प्राप्त थी। कुछ एक को थोड़ी रक़म तथा कुछ को भूमि भी दी जाती थी। परंतु अदायगी का उस समय प्रचलित आम तरीक़ा ही अपनाया जाता था। प्रत्येक फ़सल के अवसर पर उन्हें वस्तुओं के रूप में भुगतान किया जाता था। अनाज, रूई, शक्कर, चारा, तथा देश में उत्पन्न होने वाली अन्य वस्तुओं की एक निश्चित राशि प्रत्येक व्यक्ति को उस समय दी जाती थी।[2]

7. साज़-सामान

कूच करते समय जो साज़-सामान एक सिख सैनिक के पास होता था उसमें हमला तथा बचाव करने के हथियार, बारूद भरने की सिंगी, गोली रखने की थैलियाँ, दो कंबल, एक अनाज का थैला तथा घोड़े बाँधने के रस्से होते थे। भोजन आदि पकाने के बर्तन खच्चरों पर लादे जाते थे। आमतौर से तलवारें, भाले, दरातियाँ, कृपाणें, दुधारी कटारें, नेज़े, बंदूकें, तोपें, बर्छियाँ तथा तीर-कमान आदि का प्रयोग किया जाता था। इन हथियारों के चलाने

---

[1] "यद्यपि सिख सेना में आज्ञाएँ जारी की जाती हैं तथा उन पर अमल भी होता है परंतु दंड कदाचित् ही किसी को दिया जाता है। फोरेस्टर, पृ० 329, खंड 1।

[2] मैमोयर्स ऑफ जार्ज थामस 75-6।

तथा विशेष रूप से बंदूक, तथा कृपाण के चलाने में वे आश्चर्यजनक रूप से दक्ष होते थे। चमड़े की ढाल तथा कभी-कभी कवच का भी बचाव के लिए प्रयोग होता था। अपने साथियों से मुखियों की पहचान केवल उनके बढ़िया घोड़ों तथा हथियारों से ही होती थी। अपने अभियान के समय तथा पड़ाव डालते समय उनके पास कोई तंब आदि नहीं होते थे। ज़मीन में गाड़े गए चार नेज़ों के ऊपर डाले गए खद्दर के कपड़े के नीचे सरदार रहते थे तथा दूसरे सैनिक, यदि वर्षा या धूप हुई तो, दो नेज़ों पर डाले गए कंबल के नीचे सोते थे। इसी के नीचे वे अपनी काठी का तकिया तथा कंबल का बिस्तर बना कर पड़े रहते थे। अन्यथा वे गर्मियों में सूती चादर तथा सर्दियों में कंबल लपेट कर सोते थे। कूच करते समय यही कंबल वे अपनी काठियों के नीचे रख लेते थे। इस थोड़े से साज़-सामान के कारण ही वे इच्छानुसार कहीं भी, कुछ ही मिनटों म, डेरे डाल सकते थे तथा वहाँ से कूच कर सकते थे।[1]

8. युद्ध-प्रणाली

सिखों की युद्ध-प्रणाली काफ़ी अपरिष्कृत थी। आमतौर से वे युद्ध के समय छापामार (गुरिल्ला) चालों का ही सहारा लेते थे। परंतु ऐसा प्रतीत होता है कि सन् 1765 के लगभग उन लोगों ने पंक्ति-बद्ध होकर जमकर युद्ध करना आरंभ कर दिया था। समकालीन लेखकों ने उनके हमला करने के ढंग का वर्णन इन शब्दों में किया है। चालीस से ऊपर सिख घुड़सवारों का एक दल शत्रु की ओर बड़ी तेज़ी से बढ़ता तथा शत्रु की सेना के समीप पहुँच कर अचानक अपने घोड़ों को रोक लेता। उसके घोड़े इस काम के लिए इस खूबी से सिखाए गए थे कि तेज़ी से दौड़ते समय भी, हाथ की एक थाप पड़ते ही वे जहाँ के तहाँ थम जाते थे। घोड़ों के रुकने पर, वे वहीं से एक साथ अपनी भरी बंदूकें खाली करते। उन लोगों का निशाना इतना सधा हुआ होता था कि उनकी एक भी गोली निशाना नहीं चूकती थी। इसके बाद वे लोग अचानक लगभग सौ-क़दम पीछे हट जाते तथा अपनी बंदूकों को भरकर फिर वही खेल खेलते। यह सब इतनी फुर्ती तथा कुशलता से किया जाता कि अन्य भारतीय वैसा नहीं कर सकते थे। इससे शत्रु दल को बड़ी परेशानी होती तथा उनका मुक़ाबला करने में वे असहाय बन जाते थे। इसके विपरीत सिखों को

---

[1]फोरेस्टर, i, 332-4; ब्राउनी, इन्ट्रोडक्शन, ix, x; मेमौयर्स आफ जार्ज थामस, 71-3; फ्रैंकलिन द्वारा लिखित शाह-आलम, 76; मालकाम 411; अली-उद्-दीन, 193 क।

शत्रुओं के गोले तथा गोलियाँ उतना ही कष्ट देतीं जितना उन्हें मच्छर, मक्खी या मधुमक्खी देती हैं।[1]

युद्ध करने का उनका दूसरा तरीका यह था कि वे बढ़कर शत्रु से भिड़ जाते थे तथा फिर पीछे हट जाते थे। ऐसा वे इतनी तीव्र गति से तथा इतनी शक्ति से करते कि शत्रु शीघ्र ही चकरा जाता था। उनकी यह कार्यवाही तब तक चलती रहती जब तक कि आदमी तथा जानवर दोनों ही न थक जाते। इसके बाद सामने के दस्ते पीछे हट जाते तथा उनका स्थान ग्रहण करने के लिए नवीन सैन्य दल आ पहुँचते। थके हुए घोड़ों को चरने के लिए खुला छोड़ दिया जाता था तथा सैनिक पानी पीकर तथा भुने हुए कुछ चने खाकर विश्राम ले लेते तथा फिर आक्रमण के लिए तैयार हो जाते।[2]

एक और पुरानी चाल का सिख लोग आमतौर से सहारा लेते थे। वे अचानक गोलियों तथा गोलों (हुक्का ?) की एक बौछार शत्रु पर करते, एक दो घंटे उनसे लड़ते तथा फिर अचानक लड़ाई के मैदान से पीछे हट जाते। शत्रु यह समझता कि सिख भाग खड़े हुए हैं। शत्रु का एक दल उनका पीछा करता। जब सिख देखते कि उनका पीछा करने वाले काफ़ी आगे आ गए हैं तथा अब उन्हें उनके प्रमुख दल से शीघ्र सहायता न मिल पाएगी तब वे अचानक रुक जाते तथा घूमकर उन पर भयंकर वेग से टूट पड़ते। अब प्रत्येक सिख अपने प्रतिद्वंद्वी के साथ द्वंद्व युद्ध करने लगता। वह उस शरीर के साथ चिपक जाता, उसके साथ मल्ल युद्ध करता, आग्नेय नेत्रों, भयानक चेष्टाओं, विकराल आकृतियों तथा हृदय विदारक ध्वनि से उसे डराता। फिर उसका गला घोंट कर या उसे काट कर मार डालता। इसी प्रकार सारे दल के लोगों की बोटी-बोटी कर दी जाती थी।

कभी-कभी व्यक्ति-व्यक्ति के बीच भी संघर्ष होते। इस प्रकार की लड़ाई बड़ी आकर्षक हुआ करती थी क्योंकि इससे एक सैनिक अपना निजी शौर्य दिखा सकता था।

सिख घुड़सवारों के पास ज्यादा सामान नहीं होता था। प्रत्येक व्यक्ति के पास अपना खाना, चारा, बिस्तर तथा घोड़े का साज़-सामान होता था। पराजित होने पर वे 50 से 100 मील तक कूचकर जाते थे तथा रुककर विश्राम करने के बाद दूसरे दिन लड़ने के लिए फिर तैयार हो जाते थे।

अहमदशाह के सातवें आक्रमण के समय, दो तीन ऐसे भी मौके आए जब सिखों ने उसके साथ जमकर लड़ाई लड़ना ही उचित समझा। उन

---

[1]फोरेस्टर, i, 332-3; फ्रैंकलिन का शाह आलम, 76।

[2]मेमोयर्स ऑफ जार्ज थामस, 71–3।

अवसरों पर हमने उन्हें नियमित रूप से व्यूह रचकर लड़ते हुए पाया है। इसका वर्णन हम पहले कर चुके हैं ।

9. धावे

धावा करने में सिख बड़े कुशल थे । सिखों के उत्थान काल में, जिसका वर्णन पिछले पृष्ठों में किया गया है, हमने देखा कि वे लोग लूट के लिए धावे करते थे । वे ही लोग अंत में शासक बन गए, फिर भी उनके चरित्र में व गुण बचे रहे जो प्रारंभिक काल में उनमें थे । उनमें पूर्ण आत्मविश्वास होता था, तथा उनकी गति विद्युत के समान चपल थी तथा लोगों से रुपया निकलवाने के अपने तरीक़ों के कारण उनका आतंक फैल गया था। विशाल जनसंख्या वाले विस्तृत भूखंडों ने उनके सामने आत्मसमर्पण कर दिया था। वे उनसे इतना भय खाते थे कि एक या दो सिख ही संपूर्ण गाँव पर बड़ी आसानी से छा जाते थे ।[1]

वे लोग लगातार कई दिनों तक पचास से लेकर एक सौ बीस मील तक का प्रतिदिन सफ़र कर सकते थे । यद्यपि यह बात हमें बड़ी अविश्वासनीय लग सकती है परंतु इस कारण उनके धावे भीषण प्रमाणित हो चुके थे ।[2] सामान्यतया प्रत्येक सिख सैनिक के पास दो या तीन घोड़े होते थे इसलिए वे बड़ी शीघ्रता से बहुत सा लूट का माल इकट्ठा कर लेते थे । वे लोग जिस

---

[1]अपनी यात्रा के दौरान श्री फोरेस्टर द्वारा देहरादून के समीप खैयनामपुर में, 28 फरवरी, 1783 को अंकित इस टिप्पणी से यह बात साफ़ हो जाएगी । उन्होंने लिखा : "मैंने दो सिख घुड़सवार देखे जो श्रीनगर से कर प्राप्त करने के लिए अपने प्रदेश से भेजे गए थे । यह कर कुछ सीमाशुल्क गृहों की आय में से वसूल किया जाता है । जो व्यवहार इन आदमियों के साथ किया गया था, या फिर जैसा व्यवहार उन्होंने किया था, उसे देखते हुए मेरी कई बार इच्छा हुई कि मेरे पास शक्ति होती, ताकि मैं सिख के शरीर में प्रविष्ट हो सकता । उन घुड़सवारों का खूब स्वागत सत्कार होता है । उनके पहुँचते ही उनके आराम के लिए बिस्तर तैयार किए गए । उनके घोड़ों के लिए खेतों से जौ के हरे-हरे पौधे उखाड़ कर लाए गए। काफिले में जो यात्री थे, उन्होंने ज़मीन पर ही सोकर पूर्ण संतोष कर लिया तथा जो कुछ वे खरीदना चाहते थे उसे खरीदने की अनुज्ञा प्राप्त करने पर उन्होंने उनका धन्यवाद दिया । सत्ताधारियों तथा सत्ताहीनों में यह अंतर होता है ।" जर्नी, खंड 1, 229 ।

[3]ब्राउनी, इन्ट्रोडक्शन, ix; फोरेस्टर, i, 333 ।

प्रकार लूटमार करते थे उसका फ्रैंकलिन ने अपने शाह-आलम (पृ० 76-7) में बड़ा रोचक वर्णन किया है। वह लिखता है :—"बचपन से ही सैनिक जीवन की कठिनाइयों के आदी होने के कारण, सिख जिस प्रकार लूटमारपूर्ण-युद्ध चलाते हैं वह अपने ढंग का निराला होता है। जब किसी पड़ोस के प्रांत पर आक्रमण का निश्चय किया जाता है तो वे पहले छोटे-छोटे दलों में उसकी सीमा पर एकत्रित हो जाते हैं। पहले वे राखी या कर की माँग करते हैं। यदि यह माँग स्वीकार कर ली जाती है तो वे शांतिपूर्वक वापिस हो जाते हैं। यदि यह माँग अस्वीकार कर दी जाती है तो युद्ध छिड़ जाता है। आगे बढ़ते हुए सिख संपूर्ण प्रदेश को तहस-नहस कर डालते हैं तथा सारे पशु तथा जितने भी निवासियों को वे बंदी बना सकते हैं, उन सबको, अपने साथ ले जाते हैं। जब तक कि बंदियों को बदले में धन देकर छुड़ा नहीं लिया जाता, उनको दास बनाकर रखा जाता है।[1]

10. घोड़े

सिखों ने घुड़सवारी में आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त कर ली थी। जिस काल में सिखों का दमन किया जाता था उस समय संपत्तिहीन, घर परिवार से दूर, सिखों की सारी संपदा उनके घोड़े तथा हथियार ही होते थे। यही उनकी प्रिय वस्तुएँ होती थीं जिन्हें वे अनिच्छा से ही छोड़ते थे। उनके घोड़े इतनी दक्षता से सिखाए जाते थे कि वे उनकी आवाज़, उनकी थपकी तथा एड़ को भली भाँति पहचानते थे। तैरते हुए घोड़ों को भी संचालित करने का उन्हें इतना अभ्यास हो गया था कि वे तेज़ धारा वाली नदियों को बाढ़ के समय बड़े मज़े से पार कर लेते थे। सिख सैनिक का घोड़े के प्रति प्रेम लोक-प्रसिद्ध हो गया था। अपने घोड़ों को सजाने संवारने में वे कोई भी रक़म व्यय करने से न हिचकिचाते थे। वास्तव में, बात तो यह थी कि घोड़े की नस्ल तथा उसके साज़-सामान से उसके मालिक की सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति का अंदाज़ा लगाया जाता था। उन दिनों के जीवन में, इसकी उपयोगिता को, उन लोगों ने ठीक-ठीक समझ लिया था। अपनी 'ट्रवल्स'

---

[1]उनके पक्ष में एक बात अवश्य कही जानी चाहिए जो उन्हें मध्य भारत के पंडारियों तथा बंगाल के डाकुओं से ऊँचा उठाती है। वे मानवों की तरह लड़ते तथा लूटमार करते थे, दानवों की तरह नहीं। महिलाओं के प्रति अत्याचार तथा पुरुषों को सताए जाने की भयंकर तथा खून-खराबी से भरी वे कहानियाँ, सिख इतिहास में नहीं मिलतीं, जिनसे दक्षिण-भारत का इतिहास रंगा पड़ा है। (राजाज़ ऑफ दी पंजाब 17)।

नामक पुस्तक के खंड 1, पृ० 334 पर फोरेस्टर लिखता है, "यद्यपि वे लोग अपने बंधुजनों की मृत्यु पर खुशियाँ मनाते हैं परंतु एक घोड़े की मृत्यु पर मातम करते हैं। इस तरह उस पशु के प्रति अपना प्रेम प्रदर्शित करते हैं, जो उनके पेशे के लिए बहुत आवश्यक होता है।" उनके घोड़े मध्यम कद के, बलवान, चुस्त, सहनशील, नम्र स्वभाव वाले थे तथा वे कड़ी से कड़ी मेहनत करने के लिए बहुत प्रसिद्ध थे। सिखों के पास भारत की सर्वोच्च नस्ल के घोड़े थे। "क्योंकि वहाँ पहले अरबी तथा फारसी बीजाश्वों का उपयोग किया गया था और उस प्रदेश की जलवायु, हवा तथा पानी अच्छा था।[1]

घोड़ों के संवर्द्धन के लिए कई बड़े अच्छे स्थान थे। फतहगंज, पिंडी, घेव तथा रावलपिंडी के उप-मंडलों के घोड़ों की बड़ी माँग थी। झेलम ज़िले, और विशेषरूप से धान के घोड़ों को बड़ा महत्व दिया जाता था। सिख रिसाले के अधिकतर घोड़े नमक की पहाड़ियों के उत्तर में स्थित धन्नी के मैदानों से ही लिए गए थे। उनमें से कुछ तो बड़े ही द्रुतगामी थे। परंतु वे सब के सब भव्य तथा सहनशक्ति वाले थे तथा वे बिना नालों के ही पथरीली भूमि पर चल सकते थे। झंग तथा मुल्तान के घोड़ों का बड़ा नाम था तथा वहाँ की घोड़ियों को तो पंजाब में सबसे अच्छा माना जाता था। नक्का प्रदेश में लाहौर की सीमा के पास के घोड़ों की बड़ी प्रसिद्धि थी। ये देशी नस्ल के ऊँचे, पूरे शक्तिशाली तथा लंबी यात्रा करने के योग्य थे। सिख इन्हें बहुत पसंद करते थे। यहाँ की घोड़ियाँ तथा बीजाश्व विशेष रूप से अच्छे होते थे।[2] लक्खी का जंगल भी अच्छी नस्ल के घोड़ों के लिए प्रसिद्ध था। इन्हें 'जंगल ताज़ी' कहा जाता था।

घोड़ों को आमतौर से खाने के लिए चना, जौ तथा 'दूब' दी जाती थी। यह घास बड़ी पोषक होती है। इसके साथ-साथ मोठ, बाजरा तथा तारामीरा भी खाने के लिए दिए जाते थे। वसंत ऋतु में उन्हें कच्चा गेहूँ तथा गुड़ दिया जाता था। प्रजनन के लिए रखी गई घोड़ी को घास के अलावा, प्रतिदिन चार सेर अनाज दिया जाता था। बछड़ों को गेहूँ के खेतों में छोड़ दिया जाता था तथा उन्हें ज्वार तथा मोठ भी दिया जाता था। जब वे दो साल के हो जाते थे तो उन्हें सधाने का कार्यक्रम शुरू होता था। पहले उन पर नंगी-पीठ सवारी की जाती। दुगामा चाल को बड़ा अच्छा

---

[1]ब्राउनी, इन्ट्रोडक्शन, ix।

[2]आइन-ए-अकबरी में अबुल फ़ज़ल लिखता है, "यह 'इब्राकिस' से मिलते-जुलते घोड़े हैं तथा बहुत ही अच्छे हैं।" तारीख-ए-अहमद, 41-42; *खुलासात, 66, 75।*

समझा जाता था । परंतु एक होशियार घोड़ी को अनेक चालें सिखाई जाती थीं । घोड़ों की कीमत दो सौ से लेकर एक हज़ार रुपयों तक होती थी। जार्ज थामस का कहना है कि अश्व-पालक उत्तम नस्ल की घोड़ियों को नहीं बेचना चाहते थे । यदि उन्हें वैसा करने के लिए मना भी लिया जाता था तो वे दूने दाम वसूल करते थे और जहाँ तक विदेशियों का सवाल था उन्हें किसी भी कीमत पर उत्तम नस्ल की घोड़ियों को बेचने के लिए तैयार नहीं किया जा सकता था ।[1]

11. भोजन

सिख लोगों का भोजन सीधा सादा तथा रूखा सूखा होता था । वह नाना प्रकार का नहीं होता था । उदर पूर्ति के लिए भारत के सबसे ग़रीब तबक़े के लोग जो भोजन करते थे वैसा ही उनका भोजन होता था। ऋतु तथा किए गए श्रम के अनुसार वे दिन में दो या तीन बार खाना खाते थे । सुबह लस्सी के साथ तथा शाम को सब्ज़ी तथा विभिन्न प्रकार की दालों के साथ तवे तथा अंगारों पर सेकी गई रोटी उनके लिए सर्वश्रेष्ठ भोजन था । जब उन्हें समय होता था तब वे लोग इसका आनंद उठाते थे। जल्दी के समय तो वे लोग थोड़े से भुने हुए मोठ, अखंड़ा तथा मुट्ठी भर चने खाकर ही अपना काम चला लेते थे । वे प्रतिदन काफ़ी मात्रा में दूध पीते थे तथा गन्ने के मौसम में उसे भी खूब चूसते थे। नमक, मिर्च, प्याज़ तथा दूसरे मसाले, यदि मिल जाते, तो उनका भी प्रयोग किया जाता था । गेहूँ, ज्वार तथा मकई का दलिया और बाजरा तथा मूँग की दाल की खिचड़ी भी वे बहुत पसंद करते थे । एक भाग चना तथा दो भाग गेहूँ के आटे में थोड़े से नमक के साथ मिला कर बनाई गई रोटी को वे अच्छा मानते थे । इस प्रकार की रोटी को 'मिस्सी' या 'बेसनी' का नाम दिया जाता था । केवल गेहूँ से बनी मोटी रोटी को 'पानी की रोटी' तथा चकले पर बेली गई पतली रोटी को वे 'फुलका' कहते थे । थोड़ा अचार तथा चटनी मिल जाने पर उनका प्रिय भोजन बन जाता था ।

---

[1]देखें, फोरेस्टर, i, 332, 334; ब्राउनी, इन्ट्रोडक्शन, ix; मेमोयर्स ऑफ जार्ज थामस, 73-4, 133-4; फ्रैंकलिन का शाह-आलम, 76; मॉलकाम 140; एलेकजेंडर बर्न्स ट्रेवल्स, i, 11; अली-उद्-दीन, 27ख-28क; झेलम गज़ेटियर, 113-4; झंग गज़ेटियर, 123; मौंटगुमरी गज़ेटियर, 127 ।

विवाह या दूसरे उत्सवों पर वे उत्तम प्रकार का भोजन खाते थे। ऐसे अवसरों पर किसी न किसी प्रकार के मीठे (गुड़, शक्कर, खाँड) का खुलकर प्रयोग होता था। यदि गुड़ खरीदना पड़ता तो उसे सर्दी के दिनों में बड़ी शान के साथ खाया जाता। परंतु यदि उसे 'कोल्हू' पर तैयार करना पड़ता तो उसे तैयार करते समय उसके विभिन्न रूपों में उसका उपयोग किया जाता था। सुघड़ गृह-स्वामिनी सुबह-सुबह अपने पति को नाश्ते में गन्ने के रस तथा दूध में तैयार किए गए चावलों को बड़े स्नेह के साथ परोसा करती थी। "कड़हापरशाद' बराबर मात्रा में आटा, खाँड तथा घी लेकर उसमें दुगना पानी मिलाकर तैयार किया जाता था। यही धर्मार्पित भोजन होता था। धार्मिक अवसरों पर तथा 'पहौल' के अवसरों पर, जब सब दीक्षित लोग एक थाली से भोजन करते थे, इसी का प्रयोग होता था।

गौ माँस को छोड़कर उन्हें और किसी माँस से परहेज़ न था। वे लोग मुर्गी, मछली आदि सब खाते थे। जानवर को 'झटका' (एक ही वार में सिर धड़ से अलग करना) पद्धति के अनुसार मारा जाना आवश्यक था। शिकार में मारे गए जानवर के लिए 'झटका' आवश्यक नहीं माना जाता था। पक्षियों की गर्दनें मरोड़ दी जाती थीं परंतु शिकार में मारे गए पक्षियों के लिए यह लागू न था। जंगली सूअरों का आखेट उन्हें बहुत प्रिय था। सिख, जैसा कि अब भी है, इसके माँस के बड़े शौकीन थे। तंबाकू पीने से वे घृणा करते थे, परंतु अफीम, भाँग,[1] तथा अपने ही देश में बनी शराबों का नशा वे खूब किया करते थे।[2]

पुरुष, स्त्रियाँ तथा बच्चे एक ही प्रकार का भोजन करते थे। पुरुष अपना पूरा भोजन करते समय एक सेर खाद्य पदार्थ खा लेता है।[3] स्त्रियाँ

---

[1]एक जंगली पौधे के बीजों तथा डंठलों को पीसकर तथा उसके रस को कपड़े से छानकर यह पेय तैयार किया जाता था। तैयार होने पर यह मटमैला हरे रंग के पानी के समान दिखता था।

[2]जार्ज थामस, 72।

[3]एक सैनिक के लिए भी यह मात्रा काफ़ी समझी जाती थी। महाराज रणजीत सिंह के समय में सिख सेना के अभिलेख भी इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। देखें केटेलाग ऑफ दी खालसा दरबार रेकार्ड्स, भाग i, 1919। अली-उद्-दीन 358 क359 क; एशियाटिक एनुअल रजिस्टर, 1802, पृ० 10; तोहफाई पंजाब, 4; कलकत्ता रिव्यू, 1875, पृ० 29; कर्नल पौलियर्स मेमोयर; फोरेस्टर, i,334; जार्ज थामस, 72।

भी पुरुष के जितना ही खाती थीं। आश्चर्य नहीं है कि एक सुघड़ जाट पत्नी न तो आलसी होती थी न ही कमज़ोर।

12. वेशभूषा

सिखों का लिबास बड़ा सादा तथा आडंबरहीन होता था। मान्य रूप से वे लोग बिना रंगे हुए तथा घर में कते सूत के कपड़े पहनते थे। उनके परिधान में तीन सीधी सादी चीज़ें होती थीं। मोटे कपड़े की नीली या सफ़ेद रंग की एक पगड़ी, सामान्य रूप से नीले रंग का कच्छा तथा चारखाना या नीले रंग का एक बड़ा सा कपड़ा। इसे दोनों कंधों पर डालकर टाँगों के बीच तक आने दिया जाता तथा कमर के स्थान पर एक कपड़े की पेटी से बाँध लिया जाता था। इसके साथ गाँव के मोची द्वारा बनाई गई चप्पलों का जोड़ा एक सिख के परिधान को पूरा कर देता था। वर्ष के अधिकतर भाग में वह इसी का प्रयोग करता था। सर्दियों में उसके पास कंबल होता था। आमतौर से इसकी कीमत लगभग दो रुपए होती थी। कंबल न होता तो दुहार तथा चौताही होती थी अर्थात् मोटे सूत की दुहरी बुनाई वाली चादर होती थी। मुखियों की पहचान, कलाइयों में पहने गए सोने के भारी कड़ों या फिर पगड़ी के चारों ओर उसी धातु की बनी जंज़ीर, उत्तम घोड़ों पर उनकी सवारी तथा उनके द्वारा धारण किए गए उत्तम शस्त्रों द्वारा की जाती थी। इसके सिवा उनमें तथा उनके सैनिकों में और कोई भेद दिखाई न पड़ता था।[1] विवाह के अवसरों पर कुछ अधिक कपड़े पहने जाते थे। पगड़ी में भी कुछ रंग दिखाई पड़ने लगते थे। पीले, लाल या हरे रंग के कपड़े पर सफ़ेद कपड़ा बाँध लिया जाता था। कभी-कभी ये रंग-बिरंगी पगड़ियाँ पहनते थे जो बहुत सुंदर लगती थीं।

सिख महिलाए पाजामा, जिसे सुत्थन कहा जाता था, पहनती थीं। यह रंगीन सूती कपड़े की बनती थीं। जिसे सुसी कहा जाता था। सिर तथा कंधों पर चादर डाली जाती थी। युवतियों की चादर रंगीन होती थी अन्यथा ये सफ़ेद होती थी। ये गाढ़ा या धोतर की बनी होती थीं तथा मौसम के अनुसार महीन या मोटी हुआ करती थीं। ऊपरी भाग का यह परिधान रंगे हुए कपड़े का या 'फुलकारी' अर्थात् रेशमी धागे से कढ़े फूलों वाला, या फिर सितारी, एक दूसरे प्रकार के रेशमी काम वाला, होता था। बहुत-सी औरतें कुरता भी पहना करती थीं। जब किसी दूसरे गाँव को जाना होता तो वे पाजामे के ऊपर घाघरा तथा रंगीन कपड़े की बनी चोली पहन लेती थीं।

---

[1]ब्राउनी, इन्ट्रोडक्शन, x।

रोज़ पहने जाने वाले कपड़ सदैव गाँव में ही बने कपड़े के होते थे। यद्यपि वे मोटे होते परंतु बहुत मज़बूत तथा टिकाऊ हुआ करते थे। नीला रंगने के लिए नीला तथा लाल और पीला रंगने के लिए कुसुम का आमतौर से प्रयोग होता था।

13. आमोद-प्रमोद

आमतौर से सिख बड़े साहसी, तगड़े तथा शौर्यवान हुआ करते थे। खेलकूद से तो उन लोगों को विशेष स्नेह था। लड़के आमतौर से गुल्ली डंडा[1] तथा पिटकौड़ी अर्थात् कबड्डी[2] खेला करते थे। पुरुष भारी तथा लंबे मुगदर बड़ी होशियारी से घुमाया करते थे। वे लोग वज़न उठाने तथा उसे फेंकने का खेल भी खेलते थे। इन दोनों खेलों से उनका शरीर संतुलित तथा चुस्त हो जाता था। 'सौन्ची'[3] खेल भी बहुत लोकप्रिय था।

मल्लयुद्ध सबसे अधिक लोकप्रिय खेल था। वर्ष में निश्चित समयों पर ग्रामीण जनता निश्चित स्थानों पर आम-मुकाबलों को देखने के लिए इकट्ठी हुआ करती थी। अच्छे पहलवानों को इनाम में घोड़े, दुधारू गाएँ तथा दुशाले दिए जाते थे।

---

[1]खिलाड़ी इसमें गुल्ली को डंडे से मारकर खेल खेलता है।

[2]कबड्डी में दल को दो बराबर टोलियों में बाँट दिया जाता है। दोनों अपने-अपने पालों में खड़े हो जाते हैं। जब एक टोली वाले अपना आदमी दूसरे पाले में भेजते हैं तो वह उधर जाकर वहाँ किसी एक को छूने का प्रयत्न करता है तथा छूकर वापिस अपने पाले में आने का प्रयत्न करता है। परंतु जिस आदमी को छू लेता है वह इससे लिपटकर उसे ऐसा करने से रोकता है।

[3]इसके लिए काफ़ी खुले स्थान की आवश्यकता पड़ती है। खिलाड़ी इकट्ठे होकर दो घेरे बना लेते हैं। बाहर के घेरे में से एक आदमी निकल आता है, आगे पीछे दौड़ता है तथा अंदर वाले घेरे के एक या दो आदमी उसका पीछा करते हैं, यह तब तक चलता है जब तक वह उन्हें चकमा देकर अपने घेरे में न आ जाए या उसके विरोधी उसका पीछा न छोड़ दें। यदि वह पकड़ा गया तो दूसरी टोली की पारी आ जाती है। जिसका पीछा किया जाता है वह अपने विरोधी की छाती पर प्रहार कर सकता है, उसे अडंगी लगा सकता है (ताकि वह पकड़ा न जाए)। लाहौर गज़ेटियर, पृ० 49।

संगीत, गाना तथा नाच आदि से भी वे खूब मनोरंजन करते थे। विशेष-रूप से मेलों के समय[1] विवाह तथा उत्सव के दूसरे अवसरों पर नाच आम-तौर से व्यावसायिक नर्तकियों द्वारा करवाया जाता था।

व्यावसायिक 'मिरासियों' अर्थात् भाटों द्वारा गाए गए गानों को परिष्कृत रुचि का मनोरंजन माना जाता था। मिरासियों की जाति में वीरगाथा कहने तथा वीर काव्य सुनाने की पैत्रिक परंपरा होती है। सारंगी या तंबूरे की संगत से गाए गए ये वीर काव्य वास्तव में उस समय का प्रिय साहित्य था। घुमक्कड़ नटों के दल भी कभी-कभी गाँवों में आया करते थे तथा उनको देखने के लिए लोग इकट्ठे होते थे।

14. महिलाएँ

सामान्यतया महिलाएँ सुंदर, ऊँची, पूरी तथा भव्य होती थीं। युवा-वस्था में वे बड़ी सुडौल तथा कोमल होती थीं। परंतु पुरुषों की अपेक्षा उनका शारीरिक गठन कुछ घटिया होता था। इसका कारण शायद बाल-विवाह, घटिया भोजन तथा सफ़ाई की कमी थी। जैसा कि आज भी है उनका प्रमुख काम घर की देखभाल करना होता था। वे अनाज पीसतीं, गायों तथा भैंसों को दुहतीं, मक्खन निकालतीं, खाना पकातीं, पानी लातीं, घर के लिए सूत कातती और घर के कपड़े सीती थीं। इसके साथ-साथ वे खेतों में अपने पति का भी हाथ बटाती थीं। पत्नी दूसरे अधिक महत्वपूर्ण कार्य भी करती थी। वह पूरी गृह स्वामिनी थी, वह परिवार के खर्चे पर नियं त्रण रखती थी तथा अपने पति को फिज़ूल खर्ची से हर प्रकार रोकने का प्रयत्न करती थी। इसके साथ-साथ वह परिवार में विवाह आदि का प्रबंध करती और यदि वह एक चतुर महिला होती तो उसके पति को अपने ही आराम के लिए उसे सदैव प्रसन्न रखना पड़ता था।

उत्सवों पर महिलाएँ रंग बिरंगे कपड़े पहनती थीं तथा काफ़ी दिखावा किया जाता था। महिला की सामाजिक स्थिति उसके आभूषणों[1] से आँकी जाती थी। बचत का रुपया इसी पर लगा दिया जाता था। आवश्यकता के समय इससे सरलता से धन भी मिल जाता था। विवाहों पर खूब खर्च किया जाता था। गंधर्व विवाह को अच्छा नहीं समझा जाता था तथा इसके अवसर भी बहुत कम आते थे।

---

[1]सब वर्गों के लोग लगभग एक से ही गहने पहनते थे परंतु मुसलमान औरतें सिर के गहने नहीं पहनती थीं। विस्तृत वर्णन के लिए देखें, अली-उद्-दीन 360ख, 362क; लुधियाना गज़ेटियर, 53।

स्वतंत्रता संग्राम में सिख महिलाओं ने कोई कम काम नहीं किया था। वे बड़ी ही होनहार तथा तेजस्विनी महिलाएँ थीं। वे अपने पतियों को आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करतीं तथा खुद भी संघर्ष में भाग लेती थीं। इस प्रकार हम देखते हैं कि उनमें स्वाभिमान था, वे वीर थीं, उन्हें अपने धर्म पर विश्वास था तथा वे देश प्रेम और स्वतंत्रता के भावों से परिपूर्ण थीं।

15. मेले

सिख बड़े ज़िंदादिल तथा मधुर स्वभाव वाले लोग थे। मेलों, उत्सवों तथा आम सभाओं का उन्हें बड़ा शौक होता था। उनके प्रमुख मेले दीवाली तथा बैसाखी पर होते थे। ये मेले क्रमशः नवंबर तथा अप्रैल माह में अमृतसर में लगते थे। तरनतारन में दो बड़े-बड़े मेले मार्च तथा अगस्त माह में होते थे। गोविंद वाल, खादूर, डेरा बाबा नानक तथा अन्य सिख धार्मिक स्थानों पर धार्मिक मेले भी होते थे। परंतु बड़े-बड़े मेले तो ऊपर दिए हुए स्थानों पर ही लगा करते थे।

सत्रहवाँ अध्याय

देश की दशा

1. अराजकता तथा गड़बड़ी का काल

जिस काल का (1739–1768) पुनर्विलोकन किया जा रहा है उसमें पंजाब की स्थिति भयावनी थी। अराजकता तथा अव्यवस्था, भीरुता तथा विश्वास-घात और अत्याचार तथा यातना का बाज़ार खूब गरम था। प्रांत के सूबेदार निष्क्रियता तथा भोग-विलास में डूबे हुए थे। केंद्रीय सरकार की ओर से किसी भी प्रकार के हस्तक्षेप का भय न था, और क्योंकि उसकी स्थिति और भी खराब थी इसीलिए प्रांतीय सूबेदार निरंकुश हो चुके थे। इसका परिणाम यह हुआ कि कुशासन पर कोई रोक न रही। न्यायकर्ता दूषित हो गए। कठोरता तथा दुर्व्यवहार के बिना शायद ही कभी राजस्व इकठ्ठा हो पाता था।[1] गाँवों में आग लगा दी जाती। वहाँ के निवासियों को लंगड़ा-लूला बना दिया जाता, उन्हें दास बना कर बेच दिया जाता या फिर उन्हें सता-सता कर जान से मार दिया जाता था। सरकारी अधिकारी दीन-हीनों को सुरक्षा प्रदान करने के स्थान पर खुद ही बड़े भयंकर लुटेरे तथा माल हड़पने वाले बन जाते थे। लूटे गए प्रदेशों की धन-दौलत से चाटुकार तथा खोजे ऐश का जीवन बसर करते थे। आततायियों के कुकृत्यों तथा अहंकारी के सभ्य व्यवहार से राहत पाने के लिए ग़रीबों के पास कोई मार्ग न था। इस भाँति लोग बड़े दीन-हीन तथा निराश हो गए थे।

इस अव्यवस्था को सुलेमान पर्वत के पार से आनेवाले विदेशी हमलावरों ने और भी गंभीर बना दिया था। इस प्रदेश में दस बार फ़ारसी तथा अफ़गान टिड्डी दल खून की नदियाँ बहाते तथा अपने पीछे तबाही और राख के ढेर छोड़ते हुए आए[2] और प्रत्येक बार उनके जाते ही इस प्रदेश के लोगों ने एक दूसरे का गला

---

[1] "राजस्व-प्रशासन बिलकुल नहीं था। हल के साथ-साथ किसान अपने हाथ में तलवार भी रखता था। लगान वसूल करने वाला सैनिक दस्ता लेकर आता था और यदि उसे सफलता मिलती तो बच-खुचे को समेटने के लिए शीघ्र ही दूसरा आ धमकता था।" (करनाल गज़ेटियर, 35-6)।

[2] "पुरानी प्रमुख सड़क के समीप के उजड़े गाँव आज भी यह बतलाते हैं कि किस प्रकार शक्तिशाली ग्रामवासियों को वे गाँव छोड़ने पड़े थे, जहाँ उनके पूर्वज सदियों तक रहे थे तथा उन्हें ऐसे नए स्थानों में बसना पड़ा, जहाँ पर विनाशकारी काफिलों की निगाह ज़रा कम पड़ती थी।" (करनाल गज़ेटियर, 35-6)।

काटा । उस समय चारों ओर फैली अराजकता का लाभ उठा कर प्रभावशाली लोगों ने युद्ध तथा लूटमार से शक्ति और धन का संचय किया । वे स्वतंत्र हो गए तथा एक दूसरे के साथ लड़ने लगे तथा निर्बलों को लूटने तथा मारने लगे ।[1] जिसकी लाठी उसकी भैंस वाली कहावत चरितार्थ हो गई । सामान्य नियंत्रण-सत्ता के अभाव में संपूर्ण देश सत्तालोलुप, महत्वाकांक्षी और स्पर्धी सरदारों का शिकार हो गया । इस स्थिति का बड़ी-बड़ी शक्तियों ने लाभ उठाया तथा उसका परिणाम यह हुआ कि पंजाब के मैदानों पर अधिकार जमाने के लिए पूर्व में मराठों, पश्चिम में दुर्रानी तथा केंद्र में सिखों के बीच संघर्ष छिड़ गया ।

2. लोगों का चरित्र

घृणित नादिरशाह तथा उसके क्रूर उत्तराधिकारी अहमदशाह के भयानक हमले से देश को कोई लाभ नहीं हुआ, युद्ध तथा रक्तपात ही मिला । विदेशी सैनिक आए तथा अपने पीछे मृत-शरीर, लुटे-लुटाए घर, निर्जन गाँव तथा नष्टभ्रष्ट खेत छोड़ते गए । ये सब बातें क्षणिक थीं । लोगों ने उन्हें शीघ्र ही भुला दिया । परंतु लोगों के स्वभाव पर वे अमिट रेखाएँ छोड़ गए । इन हमलों तथा नाममात्र के शासकों के दमन के कारण वे खूँखार, क्रूर, चंचल, जिद्दी तथा उद्विग्न हो गए । सम्मान, जीवन तथा संपत्ति की रक्षा के लिए प्रतिदिन होनेवाले भयंकर संघर्षों ने उन्हें धीरे-धीरे कुछ ऐसा बना दिया कि उन्हें रक्तपात से ही प्रेम हो गया । उस समय के समाज का प्रधान लक्षण था गुटबंदी । हिंदू तथा मुसलमान दोनों ही इसका सहारा लेते थे । उनके जीवन का प्रत्येक व्यवहार इस भावना से प्रेरित होता था । इस लक्षण के कारण उनमें आपसी झगड़े, दलबंदी, कटु शत्रुता तथा पुस्तैनी दुश्मनी होने लगी और यह लक्षण उनके चरित्र का एक अंग बन गया । मतभेद होने पर

---

[1]"देश के शासकों ने अब तक लोगों से कमरतोड़ मालगुज़ारी वसूल की है; एक के बाद एक आनेवाले लुटेरों ने इसे लूटा है । सारे प्रदेश में खेती सुधारने या सामान्य खेती करने का लोगों में इतना कम उत्साह रहा है कि हमें तो इसी बात से आश्चर्य होता है कि प्रत्येक वर्ष इतना अधिक कर कैसे उगाहा जाता है ।" (कलकत्ता रिव्यू, खंड ii, अक्तूबर-दिसंबर, 1844, पृ० 174) ।

"कबीला कबीले से, मुखिया मुखिए से तथा गाँव, गाँव से लड़ता था । समाज एक प्रकार के अविश्वासपूर्ण युद्ध-विश्रांति पर जीवित था, जो समय-समय पर विश्वासघातपूर्ण हत्याओं तथा चोरी डकैतियों से भंग होती रहती थी" । (झेलम गज़ेटियर, 45) ।

तत्काल हथियारों का सहारा लिया जाता था। वे आपस में लड़कर ही विवाद तय करना चाहते थे। इससे बहुधा जान-माल की हानि ही होती थी।[1]

पंजाब में आज भी जो हिंसात्मक अपराध होते हैं और जिनकी संख्या पश्चिम में और बढ़ती जाती है इस बात के प्रमाण हैं कि इस प्रदेश के लोगों को यह क्रूर स्वभाव विरासत में मिला है।

वर्षों के कुशासन, दारिद्र्य, दमन तथा अनंत दुःखों ने लोगों को पत्थर दिल बना दिया और वे स्वार्थी तथा रूखे हो गए। चारों ओर फैली अराजकता ने सारे समाज को छिन्न-भिन्न कर दिया। सद्गुणों के लिए प्रत्येक व्यक्ति का अपना मापदंड था। बिना दंड पाए एक मनुष्य जो कुछ भी कर लेता वह उसे ठीक मानता। चोरी आदि के अनौचित्य के प्रति लोगों का तनिक भी ध्यान न था। इसे कोई भी लज्जा की बात नहीं मानता था। संपूर्ण गाँव ही नहीं, सारे के सारे कुल ही न केवल भयंकर अपराधियों को शरण देते थे, बल्कि वे इस काम के लिए अपने गाँव के मुखिया के अधीन एकत्रित होते थे। डाका, चोरी, आगज़नी तथा अन्य अपराध निर्भीकता से किए जाते थे। वे लोग इतने कठोर दिल के हो चुके थे कि किसी अनाथ या विधवा की ज़मीन तथा संपत्ति हड़पने में उनके अंतःकरण को ठेस नहीं पहुँचती थी।[2] छल, जालसाज़ी तथा अप्राकृतिक अपराध अच्छे खासे मज़ाक समझे जाते थे।"

---

[1]फोरेस्टर, जिन्होंने सन् 1783 में पंजाब का भ्रमण किया था लिखते हैं:--"पंजाब के निवासियों में कितनी विषमता दिखाई देती है। घरेलू काम तथा मेहनत-मज़दूरी करनेवाले लोग भी वीर, साहसी तथा प्रायः क्रूर होते हैं। इस प्रदेश के सैनिक सामान्यतः ब्राह्मण होते हैं। उनमें से बहुत से माँस खाते हैं। ये लोग चाहे फौज में न भी हों, तो भी अपने घरों से, बिना घातक हथियारों के नहीं निकलते। जब कभी व्यापारी तथा कारीगर घर से कुछ ही मील बाहर जाते हैं तो वे पूरी तरह हथियारों से लैस होते हैं (खंड 1, आमुख, xi)।

[2]'ग्रिफन द्वारा लिखित लॉ ऑफ इनहैरिटैंस टू चीफ़शिप', 5। इस स्थिति का वर्णन एक समकालीन इतिहासकार ने, जिसे टॉड ने उद्धत किया है, इस प्रकार किया है: "इस काल के हिंदुस्तान के लोग केवल अपनी निजी सुरक्षा तथा भलाई के बारे में ही सोचते हैं। जो लोग विपत्ति से बच निकलते हैं वे उसकी चिंता ही नहीं करते। एक व्यक्ति केवल अपनी ही ओर ध्यान देता है, अपने जैसे सब लोगों की ओर नहीं। यह स्वार्थभरी भावना, जोकि सामाजिक तथा वयक्तिक सद्गुणों का विनाश कर देती है, नादिरशाह के आक्रमण के बाद सारे हिंदुस्तान में घर कर गई है। तब से लोग अधिक सद्गुणी नहीं बन

पाए हैं। फलस्वरूप वे न तो प्रसन्न हैं न स्वतंत्र" (कलकत्ता रिव्यू, खंड XVIII, 1879, पृ० 92)।

लोग हमलावरों द्वारा बार-बार[1] तथा इतने अधिक लूटे गए कि उनमें मितव्यय की आदत नहीं रही। पंजाब के असहाय लोग अफ़गानों से अर्थात् उन दो पाँव-वाले जानवरों से भय खाते थे जो मनुष्य की खाल में भेड़िए थे। वे लोग यंत्रणा देनेवाले दानवों तथा बेरहम हिंसक पशुओं से कम न थे। 'सियार-उल्-मुत्खरीन' का लेखक मुस्तफ़ा, जो 18वीं सदी के उतरार्ध में भारत में था, हमारे सम्मुख अफ़गान विभीषिकाओं का थोड़ा-सा चित्र प्रस्तुत करता है।

"एक पुरुष कैदी को लेकर जाने की उनकी पद्धति इस प्रकार की थी। यद्यपि वे यह रीति अपने बैलों तथा गदहों को ले जाने के लिए भी नहीं बरतते थे। वे लोग हँसली के नीचे उसके कंधे में बड़ी होशियारी से छेद करते तथा उसमें चमड़े या सूत की रस्सी पिरो कर उसका एक सिरा अपनी काठी के साथ बाँध लेते तथा घोड़े पर चढ़कर चल देते। यदि कैदी 30 या 40 या 60 मील प्रति दिन के हिसाब से उनके साथ मार्ग न तय कर पाता तो उसे तत्काल मौत के घाट उतार दिया जाता था। वे ऐसे आततायी होते थे कि कोई जवान आदमी, चाहे वह बीस साल का ही क्यों न हो, उनके हाथों से बच नहीं सकता था। यदि उनके बीच आपस में कैदियों के संबंध में कोई झगड़ा उठ खड़ा होता, तो कैदियों को ही क़त्ल करके वह झगड़ा सुलझाया जाता था। औरतों के साथ वे इतना घृणित और पाश-विक व्यवहार करते थे कि उनके आने पर वे भाग खड़ी होतीं तथा किसी अफ़गान के हाथ में पड़ने की अपेक्षा वे कुएँ में कूद जाना अच्छा समझती थीं। उन पिशाचों के हाथों में पड़ कर 12–14 वर्ष की कन्याएँ विवाह के अयोग्य हो गई हैं। हमने एक ऐसी महिला भी देखी है जिसने एक अफ़गान के समक्ष आत्मसमर्पण नहीं किया, बल्कि निहत्थे होने पर भी उसके साथ दृढ़ता से संघर्ष किया। उसने अपनी कटार उठाई और वह उसे काटकर फैंकने ही वाला था कि उस महिला ने हाथ में पहने हुए एक सेर के सोने के कंकण को सामने कर उस पर उसका वार सहा। हाथ के कंकण से उसने अफ़गान पर वार किया तथा उसे लहूलुहान कर दिया। अफ़गान ने फिर वार किया। उसने अपने को फिर बचा लिया तथा उस पर फिर प्रहार किया। तीसरी बार उसने फिर हमला किया। बिचारी महिला थक चुकी थी, घायल हो गई थी तथा हाँफ रही थी और वह गिरने ही वाली थी। चमत्कार

---

[1]करनाल गज़ेटियर, पृ० 46; सियालकोट गज़ेटियर, 41।

[2]देश में आज भी प्रचलित यह कहावत उसी समय आरंभ हुई थी:— "काबुल दे जन्म्या, नित रहन मेहमान"। (काबल में जन्म लेने वाले हमारे नित के मेहमान हैं)।

होने पर ही वह बच सकती थी, और चमत्कार हुआ भी। तीसरे वार के समय क़ज़ालबाश प्रहरियों में से एक फारसी व्यक्ति चिल्लाता हुआ तेजी से आगे बढ़ा। कृपालु ईश्वर के नाम पर उसने अपनी तलवार के एक ही वार से अफ़गान के सर को धड़ से अलग कर दिया। बेचारी गरीब महिला, जिसने अपने घर से बाहर कभी कदम न रखा था तथा कभी पैदल न चली थी, जिधर मुँह था उधर ही चल पड़ी तथा भाग्य से शाम के समय उसे उस घातक गली से पूरे बारह कोस की दूरी पर अपना पति तथा परिवार वाले मिल गए। हमने उस महिला से बातचीत की है। वह लखनऊ में है तथा कुल से खतरानी है।[1]

उन लोगों द्वारा ढाए गए जुल्म लोगों को अब तक स्पष्ट रूप से याद हैं। आज भी देश में प्रचलित नीचे दिया गया 'शेर' उन दिनों की याद दिलाता रहता है:—

"खादा पीता लाहेदा,
रैंदा अहमद शाहे दा।"

(जो कुछ हम खा-पी लें वही अपना है। बाकी बचा सब अहमदशाह का है।[2])

अपनी किसी वस्तु को कोई भी असल में अपना नहीं समझ सकता था। भूमि में गाड़ देने पर भी धन तथा ज़ेवरात आदि सुरक्षित नहीं थे। उन लोगों को इस रीति का पता था तथा छिपे खजानों की खोज में वे लोग घरों के फर्श तक खोद डालते थे। जो कुछ उनके पास बच जाता या फिर आक्रमणों के बीच के समय में वे अर्जित कर लेते थे उसे सरकारी करों के नाम पर अत्याचारी सूबेदार तथा अधिकारी छीन लेते थे। इससे एक ओर तो लोग खर्चीले बन गए तथा दूसरी ओर वे आलसी तथा आवारा बन गए क्योंकि उन लोगों को यह अच्छी प्रकार विदित था कि उनकी मेहनत का फल उन्हें नहीं मिलेगा। इसका फल यह हुआ कि उनके पास जो कुछ होता था उसे खर्च कर देते थे। वे अच्छा खाते-पीते, अच्छा पहनते, सुंदर घोड़े रखते तथा विवाह के अवसरों पर अंधाधुंध खर्च करते। चूँकि उत्तर की पहाड़ियों की सुंदरियों के नियमित बाज़ार लाहौर, जम्मू, दिल्ली और दूसरे अन्य बड़े शहरों में लगते थे, धनवान पुरुष तथा धनवान सरकारी अधिकारी इन 'कोमलांगी दासियों' से अपने हरम को भरते रहते थे।[3]

---

[1]देखें सादत-ए-जाविद; इलियट के भाग viii, पृ० 336–54 में; एस० पी० डी०, xxi, 104।

[2]देखें लतीफ़ द्वारा लिखित पंजाब, 301; जर्नल ऑफ़ दी पंजाब हिस्टोरिकल सोसाइटी, खंड iii, संख्या 2, पृ० 110; पंजाब एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट, 1921–2, पृ० 9।

[3]सरकार, ii, 348।

मुग़लों के अत्याचारी शासन तथा अफ़गानों के पाशविक राज्य काल में पंजाब के हिंदुओं को सबसे अधिक कष्ट हुआ था। जान-लेवा कर, उनकी सुंदर औरतों और बालकों की गुलामी तथा विभिन्न प्रकार के दुर्व्यवहार उस समय की हिंदु जनता के भाग्य में लिखे हुए थे। इनकी मनोवृत्ति भ्रष्ट हो चुकी थी। सम्मान तथा स्वाभिमान की भावनाओं का उनमें नामोनिशान न रहा था। पतित तथा असहाय अवस्था में रहकर भी वे दिल्ली के महान निरंकुश शासकों की विरुदावली निम्न लिखित शब्दों में गाया करते थे:—

'दिल्लीश्वरो य: जगदीश्वरो स:"

सामान्य, अनपढ़ तथा गरीब हिंदुओं के बारे में ही क्या कहें, पढ़े-लिखे तथा विद्वान लोग भी इस लांच्छन से मुक्त नहीं थे। इतिहासकार शिव प्रसाद ने सन् 1776 के लगभग यह लिखा कि अहमदशाह दुर्रानी ने "धर्म-युद्ध चलाने के लिए भारत पर दस या पंद्रह बार चढ़ाई की तथा उसे स्वर्ग बना दिया।"[1]

परंतु लोगों के चरित्र में कुछ सद्गुण थे। वे एक दूसरे की ऐसें मामलों में तत्परता से सहायता करते थे जिसमें वे समझते थे कि उन्हें भी दूसरों की सहायता की आवश्यकता होगी। घर की छतें या रहट बनाने, बड़े-बड़े शहतीर उठाने, कीचड़ में धँसे या कुएँ में गिरे जानवर को बाहर निकालने और आग बुझाने के लिए तथा शादी और ग़मी के अवसरों पर वे पूरे दिल से सहायता करते। ऐसे अवसरों पर वे लोग रुपया तक भी उधार दे देते थे।

यदि किसी का जानवर चोरी हो जाता तो चोरों का पीछा करने के लिए बहुत से लोग आ जुटते। जुताई तथा बुआई के अवसर पर वे अपने बैलों तथा हलों से एक दूसरे की सहायता करने आ पहुँचते। परंतु दूसरे गाँवों के लोगों के प्रति सहानुभूति नहीं दिखाई जाती थी; चाहे उनमें आग लगे, अकाल पड़े या महामारी फैले। इस प्रकार के अवसरों पर वे अपने ही नाते-रिश्तेदारों तथा जाति-भाइयों से ही सहायता की आशा कर सकते थे। दूसरी महत्वपूर्ण बात थी यात्रियों के प्रति उनका अतिथि-सत्कार। यात्री चाहे बिलकुल ही अजनबी क्यों न हो, वे उसे अपने द्वार से दुतकारते न थे। आमतौर से उसे गाँव की धर्मशाला या तकिया में ठहराने का प्रयत्न किया जाता था। कभी-कभी उसे परिवार में भी रख लिया जाता था। सर्दियों में उसे बिस्तर तथा रजाई दी जाती तथा 'लंबरदार' के पास रखे गए 'मलबा' अर्थात् सार्वजनिक-धन में से उसके खाने-पीने का प्रबंध होता था।[2]

---

[1]फराह बक्श, 51 ख।

[2]लाहौर गज़ेटियर, 50-51।

3. गाँव

पंजाब में बहुत कम शहर थे तथा अधिकांश लोग गाँवों में ही रहते थे। गाँव की ओर जानेवाले रास्तों के दोनों ओर कंटीली झाड़ियों की बाड़ होती थी ताकि पशु खेतों में न घुस सकें। आमतौर से गाँव के चारों ओर जंगल होता था। परंतु कभी-कभी गाँव के एक या दो ओर ही जंगल होता था बाकी दिशाओं में गाँव की दीवारों तक खेत ही फैले होते थे। गाँव के बाहर चारे तथा ईंधन के लिए 'बाड़ा' या गोहरा होते थे। उनके चारों ओर काँटों की घनी बाड़ लगाई जाती थी। आसपास चारों ओर तालाब होते थे। गाँव के मकान बनाने के लिए यहीं से मिट्टी निकाली जाती थी। जानवरों के लिए जल भी वहीं से लिया जाता था। पीने के पानी के कुएँ गाँव के अंदर होते थे। हटाए जाने योग्य लकड़ी के पुल[1] से खाई पार करने के बाद गाँव को चारों ओर से घेरने वाली दीवार होती या फिर घरों की बाहरी दीवारें होती थीं। इन दीवारों में गाँव के अंदर जाने वाली सड़कों के लिए द्वार बने होते थे। ये सड़कें इतनी चौड़ी होती थीं कि उन पर बैल गाड़ियाँ आसानी से आ-जा सकती थीं।

घरों के द्वार गलियों में खुलते थे। अंदर एक आँगन होता था जिसमें जानवर रखे जाते थे। इसके दूसरी ओर घर के निवासियों के रहने के लिए एक कमरा होता था। गोबर तथा चिकनी मिट्टी के घोल से बार-बार लीपे जाने के कारण वे बड़े सुहावने लगते थे। यहीं पर अनाज की चक्की, लकड़ी की ओखली तथा बड़ा मूसल, चरखा, ओटनी, टोकरियाँ, बरतन भाँड़े तथा बखार रखे रहते थे।

मुसलमानों के गाँवों में मुर्गियाँ तथा जाटों के गाँव में सूअर इधर-उधर गलियों में घूमते दिखाई पड़ते थे। पीतल या मिट्टी के घड़ों में पानी ले जाती औरतों तथा लड़कियों की कतारें, तथा धूल में लौटते, हॉकी, गुल्ली-डंडा तथा आँख मिचौनी का खेल खेलते नंग-धड़ंग बच्चे अजनबियों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लेते थे।

4. गाँव के प्रतिरक्षा-उपाय

उस समय की पूर्ण असुरक्षित स्थिति के कारण पंजाबी गाँव आत्म-निर्भर होते थे। लुटेरों के दलों से अपनी प्रतिरक्षा के लिए वे लोग मिलकर कदम उठाते

---

[1]उन दिनों पंजाब के हर गाँव या शहर के चारों ओर एक दीवार होती थी। डाकुओं तथा शत्रुओं के अचानक धावों से बचने के लिए उनके द्वारों को रात के समय बंद कर दिया जाता था। पंजाब जैसे प्रदेश के लिए, जिसके स्वामी नित बदलते रहते थे, ऐसा करना आवश्यक था। यह कोई बड़ी बात न थी कि उसके एक शहर पर तो घेरा पड़ा हुआ हो तथा आसपास का प्रदेश पूरी शांति से रह रहा हो। देखें एम० ग्रेगौर, खंड i, 5।

थे। गाँव का लगभग प्रत्येक निवासी घुड़सवारी, बंदूक चलाना, कुश्ती तथा हथियारों का प्रयोग सीखता था। अमीर लोग बंदूकें रखते थे। तलवारें, भाले तथा तीर-कमान आदि प्रत्येक के पास होते थे। प्रत्येक गाँव के चारों ओर खाई तथा परकोटा होता था।[1] आमतौर से प्रत्येक गाँव में एक दुर्ग भी होता था।

गाँव की भूमि के एक बड़े भाग को परती छोड़ दिया जाता था। यह स्थान जानवरों के चरागाह का काम देता था। केवल उसी भाग में खेती की जाती थी जिसकी रक्षा गाँव वाले सरलता से कर सकते थे। ये खेत गाँव के आसपास ही हुआ करते थे। फ़सल की रक्षा के लिए 50 से 80 फुट ऊँची गोल मीनारें बनाई जातीं तथा सिंचाई के लिए कुएँ खोदे जाते थे। खेतों तथा कुओं पर काम पर लगे जानवरों की रक्षा इन मीनारों में चढ़े बंदूकची किया करते थे। ये लोग रस्से की सीढ़ियों से उन पर चढ़कर उन्हें ऊपर खींच लिया करते थे। रात्रि में या लुटेरों के आने पर लकड़ी का सामान तथा बैल आदि उनमें बंद कर दिए जाते थे। यह इतना कारगर था कि दो या तीन बंदूकची ही घुड़सवारों के पूरे दल को रोके रख सकते थे। जहाँ कुएँ नहीं होते थे वहाँ गाँव के बीचोंबीच अधिक जनसंख्या वाले बड़ गाँव में अधिक बुर्ज बनाए जाते थे। ये मिट्टी या ईंटों के बनते थे तथा इतने ऊँचे होते थे कि उन पर से पास-पड़ोस के सब इलाके दिखाई देते थे। इन बुर्जों से सदैव बड़ी सतर्कतापूर्वक निगरानी रखी जाती थी और जैसे ही धूल के बादल दिखाई पड़ते, वहाँ से चेतावनी के ढोल बड़ी ज़ोर से पीटे जाते। ताकि किसान, चरवाहे तथा और दूसरे लोग शीघ्रता से आकर मिट्टी की दीवारों के पीछे शरण ले लें। खाई से लकड़ी के तख्ते हटा लिए जाते थे तथा विपत्ति का सामना करने के लिए सब लोग बंदूकें या और दूसरे हथियार लेकर तैयार हो जाते।[2] कुछ गाँवों के बीच एक या एक से अधिक इस प्रकार के गाँव भी बस जाते थे, जहाँ के निवासी नियमित रूप से डकैतियाँ या चोरियाँ करते थे। पूरे का पूरा गाँव या उस प्रकार

---

[1]"पंजाब में प्रत्येक गाँव के चारों ओर परकोटे हैं।" मालकाम 105, तलटीप। दुर्ग फौजी ढंग के चतुर्भुजीय आकार के होते थे। उनकी दीवारें तथा बुर्जियाँ ऊँची-ऊँची होती थीं। प्राय. ये दुर्ग गाँव के मध्य में बनाए जाते थे तथा उनमें मुखिया के सैनिक रहते थे। इसके चारों ओर मिट्टी की दीवारें होती थीं तथा कभी-कभी उसके बाहर एक खाई भी बना ली जाती थी इसके भीतर विशाल अस्तबल बने होते थे।
(एलैकज़ैंडर बर्नेस् ट्रवल्स i, 14)।

[2]पंजाब गवर्नमेंट रेकार्ड्स, दिल्ली रेज़िडेंसी तथा ऐजेंसी, 1807–1857, भाग i, पृ० 112; कलकत्ता रिव्यू, भाग ii, अक्तबर-दिसंबर, 1844, पृ० 190; करनाल गज़ेटियर, 46।

के सारे गाँव मिलकर लूटमार करते तथा लूट के माल को आपस में बराबर-बराबर बाँट लेते थे। ये लोग जानवर ले भागते, संपत्ति चुराते, यात्रियों को लूटते तथा खड़ी फ़सलों के खेतों में अपने पशु चराया करते थे।[1] दूसरे गाँव वाले भी कभी-कभी इस प्रकार की लूट-मार करते थे। विशेषरूप से उस समय जब खतों में उनके लिए काम नहीं होता था, जैसे फ़सल कटने के बाद।[2]

उस समय की राजनीतिक उथल-पुथल के कारण ग्राम-निवासियों को मामूली आक्रमणों से अपने को सुरक्षित रखने के लिए बड़े आश्चर्यजनक तरीक़े अपनाने पड़ते थे। वे अपनी ही बिरादरी में इस प्रकार से आपसी विवाह संबंध करते थे कि एक गाँव के सब युवक अपना विवाह किसी निश्चित गाँव की कन्यायों से ही करते थे। इस प्रकार रक्त-संबंध स्थापित हो जाने के बाद वे अपनी शक्ति बढ़ा लेते तथा आपत्काल में अपने संबंधियों से सहायता प्राप्त करते। स्थानीय फौजदारों तथा लुटेरों के दलों के आक्रमणों को असफल करने में वे बहुधा सफल होते थे।[3] दूसरा कारगर तरीक़ा था पड़ोस के डाकू सरदार को धन देकर या उसकी कुछ सेवा कर सुरक्षा प्राप्त करना। यह एक प्रकार का ठेका होता था तथा इसे दोनों दल स्वीकार कर लेते थे। लुटेरों का मुखिया इस प्रकार के लोगों से कोई

---

[1]ऐसा सुनने में आया है कि कैथल के केवल एक जाट गाँव ने दिन-दहाड़ नाभा, झींद, पटियाला या करनाल के एक हज़ार जानवर उड़ा लिए तथा सौ मील परे मेरठ या सहारनपुर के गाँवों में उन्हें एक ही सप्ताह में बेच डाला। कलकत्ता रिव्यू, भाग ii, अक्तूबर-दिसंबर, 1844, पृ० 202-3।

[2]इस प्रकार की वारदातें—दिल्ली के सिविल कमिश्नर श्री टी० फौटेस्क्यू ने देखी थीं तथा 28 अप्रैल, 1820 के अपने पत्र द्वारा उसने सरकार के टेरिटोरियल विभाग के सैक्रेटरी श्री हौल्ट मकैंजी को इसकी सूचना भेजी थी।

[3]"आपसी विवाह तथा मिलकर कार्य करने की आवश्यकता के कारण बहुत-से गाँवों के हित एक हो गए थे। इस प्रकार संगठित होने के कारण वे इतने शक्तिशाली हो गए थे कि वे नियमित और भीषण शत्रुओं का मुकाबला कर सकते थे। हमें विदित है कि इसके फलस्वरूप एक-एक गाँव ने सफलतापूर्वक अमील तथा फौजदार की स्थानीय सेनाओं को मार भगाया तथा कई गाँवों के लोगों ने, जो रूका (या विशेष प्रकार की ध्वनि) द्वारा एकत्रित हुए थे, राज्य द्वारा भेजी गई विशाल सेनाओं को बुरी तरह से हराया था। यह थी लोगों की एकता, उनका उत्साह, तथा उनकी शूरवीरता।" (पंजाब गवर्नमेंट रेकार्ड्स, दिल्ली रेज़िडेंसी तथा एजेंसी, 1807–57, खंड i, 113)।

छेड़-छाड़ नहीं करता था तथा दूसरे डाकुओं और लुटेरों से भी उनकी रक्षा करता था। उस समय कबीले की भावनाएँ फिर से जागृत हो चुकी थीं तथा वैसी ही हो गई थीं जैसी प्राचीन काल में थीं। लोग अपने सम्मान, जीवन तथा संपत्ति की रक्षा के लिए अपने ही कबीले के किसी सरदार पर निर्भर करते तथा उसके प्रति पूर्ण निष्ठा और वफ़ादारी रखते थे। सीमांत के जाटों, पठानों तथा बलूचियों में कबीले की यह भावना बहुत ज़ोरदार थी। इसका कारण यह था कि देश की अशांत स्थिति से उनके कबायली संगठन को कोई हानि नहीं पहुँची थी। राजपूतों ने भी व्यावहारिक रूप से उसी कबायली पद्धति को बनाए रखा। मध्य पंजाब के जाट तथा गूजर इसे बहुत पहले भुला बैठे थे। सिख दलों के नेताओं के रूप में उसका पुनरुज्जीवन हुआ। जहाँ कहीं कबीले के मुखिया कमज़ोर पड़े गाँव का संपूर्ण समाज बलशाली हो उठा तथा वह लगभग वही अधिकार, सत्ता तथा शक्ति का उपभोग करने लगा जोकि स्थानीय स्वायत्त शासन किया करता है। कबीले का मुखिया गाँव या गाँवों के समूह का सर्वेसर्वा होता था तथा सब उसकी आज्ञा-पालन करते। कारीगर, दूकानदार, व्यापारी तथा दूसरे लोग उसके दीन सेवक तथा आश्रितों में ही अपने-अपने धंधे करते थे।

5. गाँव के कर्मचारी

असुरक्षा की भावना, आवागमन के साधनों की कमी तथा बटमारों के घुमक्कड़ दलों का सामना करने की आवश्यकता के कारण अविकसित पंजाब के गाँव आत्मनिर्भर बन गए। प्रत्येक गाँव एक छोटा-सा गणराज्य बन गया। गाँव का मुखिया लंबरदार होता था। गाँव के सब काम उसकी सामान्य देख-भाल में होते थे। वह लोगों के झगड़ों को निबटाता, आरक्षी (पुलिस) बल की सहायता करता तथा सरकार के लिए मालगुज़ारी एकत्रित करता। ज़मीन का हिसाब-किताब तथा उससे संबंधित सब प्रकार के मामले पटवारी के पास दर्ज होते। पहरेदार का काम "अपराधियों को गिरफ्तार करना तथा संदिग्ध व्यक्तियों पर निगाह रखना तथा स्थानीय सूचनाएँ देना था"[1]। अध्यापक बच्चों को रेत पर ही पढ़ना-लिखना सिखलाता था। पंडित या ज्योतिषी शादी-विवाह तथा कटाई-बुआई के लिए मुहूर्त निकालता था। मुल्ला या मौलवी मसजिदों में इबादत की अगुआई करता, बच्चों को फ़ारसी तथा अरबी पढ़ाता तथा मुसलमानों की अन्य रसमें पूरी करता था। लुहार तथा बढ़ई खेती-बाड़ी के औज़ार बनाते, कुओं के लिए लकड़ी का सामान तैयार करते तथा मकान बनाते थे। पंसारी खाने-पीने का

[1]इंपीरियल गज़ेटियर ऑफ़ इंडिया, खंड iv, अध्याय 12, पृ० 39।

सामान, कपड़ा तथा दवाइयाँ देता, किसानों का अनाज रखता, उनका हिसाब-किताब रखता तथा आपत्काल में अनाज तथा धन उधार देता था। नाई बाल काटता तथा शल्यचिकित्सक का काम करता। गाँव के दूसरे कर्मचारियों में वैद्य, धोबी, कुम्हार, मिरासी, नर्तकियाँ तथा गड़रिए आदि आते थे। वेतन के रूप में उन्हें लगान मुक्त भूमि या खेतों की उपज में से एक निश्चित भाग मिलता था। कारीगरों को ग्राम-समाज का सार्वजनिक सेवक माना जाता था तथा उन्हें सब सदस्यों की सेवा करनी पड़ती थी।

6. पंचायत

ग्राम्य जीवन का सबसे सुंदर पहलू था पंचायत पद्धति का प्रचलन। अव्यवस्था तथा अराजकता के दिनों में भी यह भली भाँति चलती रहती थी। गाँव के मामलों पर निश्चय करने के लिए पंचायत एक प्रकार की सभा या परिषद् होती थी तथा उसमें तपे-तपाए और गण-मान्य व्यक्ति होते थे। "मामूली मामलों में एक या दो मुकद्दम या कोई और जिसमें पक्ष वालों के मित्र या पड़ोसी होते थे, पर्याप्त होते थे। ज़ोरदार मामलों में या जब पक्ष वालों को संतोष नहीं होता था तो औरों को बुलाया जाता था। अब मामला आगे बढ़ता तथा अधिकांश पंचों की जो सामान्य राय होती, उसके अनुसार मामला तय किया जाता।[1] आमतौर से पंचायत में मत विभाजन नहीं होता था। वाद-विवाद खूब होता। बहुधा ज़ोर-ज़ोर से ओजस्वी भाषण दिए जाते परंतु अंत में प्रभावशाली सदस्यों की राय चलती तथा कमज़ोरों को उसे मानना पड़ता था। इस तरह निर्णय सर्व-सम्मति से किया जाता था।

पंचायत में पूर्ण न्याय होता तथा सुनीति बरती जाती थी। बलवान पर वह अंकुश रखती थी तथा निर्बल व्यक्ति के साथ यदि ज्यादती होती तो उसकी सहायता करती। चूंकि पंचायत जनता पर ही आधारित होती थी, उसके द्वारा किए गए निर्णय निर्विवादरूप से मान लिए जाते थे। यद्यपि अपने निर्णय मनवाने के लिए इसके पास वह शक्ति नहीं थी जो शासन के पास होती है अपराधी पर इतना अधिक सामाजिक दबाव पड़ता था कि समाज का हठी से हठी सदस्य भी कठोर से कठोर दंड शांति तथा संतोष व्यक्त करते हुए सुनता तथा सहन

---

[1]पंजाब गवर्नमेंट रेकार्डस, दिल्ली रेज़िडेंसी तथा एजेंसी, 1807–1857, खंड 1, पृ० 121।

उन दिनों के भारतीय, अँग्रेज़ों के न्यायप्रशासन को उसकी (पंचायत) तुलना में 'बड़ा उकता देने वाला, तंग करने वाला, खर्चीला और केवल धूर्तों को ही लाभ पहुँचाने वाला समझते थे। मालकाम, 128; तलटीप।

करता था ।[1] पंचायत के निर्णय की अवज्ञा के मामले में दोषी को जाति से बाहर कर दिया जाता तथा समाज के सब सदस्य, इस भय से कि कहीं उन्हें भी वैसा दंड न मिल जाए, उससे मेल-जोल रखने से इंकार कर देते। गाँव के कर्मचारी उसकी कोई सहायता न करते। यही नहीं, छोटे-मोटे काम करने वाले भी उसकी सेवा करने से इंकार कर देते थे। ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है जिससे पता चले कि पंचायतों में भ्रष्टाचार तथा दुराचार होता था। यही एक भावना कि वह अपने ही लोगों के लिए न्यायाधिकरण का काम कर रहा है तथा उस रूप से वह ईश्वर के प्रति उत्तरदायी है उसे ईमानदार तथा न्यायी बना देती थी।[2]

न्याय-प्रशासन के अतिरिक्त पंचायत ग्रामसमाज के सदस्यों को और भी महत्वपूर्ण और ठोस सहायता दिया करती थी। सन् 1820 की अपनी रिपोर्ट में दिल्ली के सिविल कमिश्नर टी० फॉरटैस्क्यू ने इस तथ्य की परिपुष्टि की है। वे कहते हैं:—'दबाव या हिंसा के बलबूते पर किसी भू-स्वामी को एक या अनेक सह-भागियों द्वारा गाँव से मार भगाए जाने की घटना कभी

---

[1]मृत्यु-दंड कभी नहीं दिया जाता था। मालकाम, 128।

[2]"इन न्यायाधिकरणों पर किसी ने परिणामी अथवा सामान्य अन्याय या पक्षपात का आरोप नहीं लगाया है। उनके पक्ष में यह कोई साधारण प्रमाण नहीं है। छोटे बड़े, अमीर ग़रीब में वे भेद नहीं करते थे। यद्यपि उनमें से कुछ के पास समाज के अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक बीघे ज़मीन या अधिक धन था फिर भी उनके स्वामी अनुपाततः अधिक शक्तिशाली नहीं थे, न इनका आधिक्य उन्हें शक्ति देता था" (पंजाब गवर्नमेंट रेकार्ड्स, दिल्ली रेज़िडेंसी एंड एजेंसी, 1807–1857, खंड i, पृ० 121)।

गवर्नर-जनरल के एजेंट चास इलियट ने भी सन् 1824 में लैपस्ड एंड रिज़र्व्ड सिख एंड हिल स्टेट्स पर प्रस्तुत की गई अपनी रिपोर्ट में इसी प्रकार की बात लिखी है :—

"इन राज्यों में अपने दस वर्ष के अनुभव की अवधि में मुझे ऐसा एक भी मामला याद नहीं आता जिसमें किसी ने पंचायत पर रिश्वत का दोषारोपण किया हो। यह आम कहावत कि 'पंचायत में परमेश्वर का वास है' पंचों को सम्मानित बनाकर उनके निर्णयों पर मुहर लगा देती है। चुने गए सदस्य प्रायः शहर या गाँव के वयोवृद्ध निवासी होते हैं। वे ईमानदारी तथा अनुभव की आग में तप कर खरे प्रमाणित हुए व्यक्ति होते हैं। वे लोग अपना फैसला मौखिक या लिखित रूप में, जैसा भी दोनों दलों को अच्छा लगे, देते हैं।" (वही; पृ० 242)।

नहीं घटती है। इसके विपरीत देखने में यह आता है कि विपत्ति के अवसर पर वे एक दूसरे की पूरी-पूरी तथा मैत्रीपूर्ण सहायता करते हैं। जब कभी कोई भागीदार वास्तव में दुर्भाग्य का शिकार हो जाता है तो वे लोग उसे मवेशी देते हैं, उसकी ज़मीन खुद जोत देते हैं तथा उसके लिए धन इकट्ठा करते हैं। यही नहीं यदि वे उससे संतुष्ट हैं तो वे उसकी पैदावार को बेचने में उसकी सहायता करते हैं, उसे बीज देते हैं, उसके लिए बैलों तथा औज़ारों का प्रबंध करते हैं। जैसा कि मैंने पैराग्राफ़ 23 में पहले भी कहा है, विधवा तथा किसी मृत भागीदार के ज़रूरतमंद परिवार की सहायता इसी भावना से की जाती थी। यह बात बहुत लाभदायक सिद्ध होती थी।[1]

7. शिक्षा

यह पहले ही देखा जा चुका है कि ग्राम-समाज में स्कूल-मास्टर का एक निश्चित स्थान होता था। निःशुल्क शिक्षा तथा कभी-कभी विद्यार्थियों को निःशुल्क आवास तथा खाना-कपड़ा दिया जाना ग्राम्य-जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग था। पंजाब के जिन गाँवों में तीनों संप्रदायों—हिंदू, मुसलमान तथा सिख—के लोग रहते थे वहाँ तीन प्रकार के स्कूल चला करते थे। हिंदू पाठशाला सबसे पुरानी संस्था थी जिसमें लगभग पूरी तरह धर्मनिरपेक्ष शिक्षा दी जाती थी। पढ़ाई हिंदी में या फिर लंडे महाजनी (आमतौर से पैसों के लेन-देन में काम में लाई जाने वाली लिपि) में या फिर दोनों में ही होती थी। मुस्लिम मक़तब आमतौर से मसजिदों में ही लगते थे। मुल्ला, मौलवी या फिर हाफिज़ उन्हें चलाते थे। अरबी में आध्यात्मिक शिक्षा देते थे। विद्यार्थियों को कुरान का कुछ भाग अवश्य कंठस्थ करना पड़ता था। फ़ारसी राजकीय भाषा थी इसलिए यह हिंदू मुसलमान दोनों को पढ़ाई जाती थी। सिखों के गुरुमुखी मदरसे आमतौर से धर्मशालाओं में लगा करते थे। यहाँ भी आध्यात्मिक शिक्षा दी जाती थी।

मकतब तथा गुरुमुखी स्कूलों के अध्यापकों की स्थिति निश्चित थी। मसजिदों तथा गुरुद्वारों के नाम पर कुछ ज़मीन होती थी तथा उसकी आमदनी से वे लोग अपना तथा स्कूल का खर्चा चला सकते थे। इसके

---

[1]पंजाब गवर्नमेंट रकार्ड्स, दिल्ली रेज़िडेंसी एंड एजेंसी 1807–57, भाग 1, पृ० 122 ("ग्राम समुदाय जहाँ अपने समाज की संपत्ति को पवित्र मानते थे, वहाँ वे दूसरे गाँवों तथा यात्रियों को लूटते थे तथा उनके साथ ज़ोर-ज़बरदस्ती करते थे। लूट के माल में से वे एक हिस्सा उसे देते थे जिसके शासन में वे रहते थे या प्रधान स्थानीय अधिकारी को देते थे"। करनाल गज़ेटियर, 35-6)।

साथ-साथ वे लोग शादी या उत्सव के अवसरों पर अपनी सेवाओं के लिए अतिरिक्त द्रव्य लेकर अपनी थोड़ी सी आय में कुछ और वृद्धि कर सकते थे। परंतु हिंदू पाठशाला के अध्यापक की स्थिति बड़ी दयनीय थी। वह धार्मिक शिक्षा नहीं देता था क्योंकि ब्राह्मणों के सिवा औरों को शास्त्र पढ़ाना वर्जित था। ब्राह्मण अपने माता-पिता से ही शास्त्र पढ़ लेते थे। इसका फल यह होता था कि स्कूलों के नाम पर कोई भूमि न होती थी तथा उसे अपने जीवन-निर्वाह के लिए अपने छात्रों के दान पर ही निर्भर रहना पड़ता था। छात्र बारी-बारी से उसे खाना देते तथा तीज-त्यौहार पर या विवाह जैसे अवसरों पर उसे पहनने के संपूर्ण वस्त्र या कुछ कपड़े देते। कभी-कभी उसे कुछ धन तथा और सामान भी देते थे। गाँव में वह तब तक बना रहता था जब तक वह उस गाँव में जीवनयापन कर सकता था। परंतु जब यह सब न हो पाता तो उसके पास स्कूल बंद कर देने के सिवा और कोई मार्ग न रहता। इस प्रकार की स्थिति में वह किसी और गाँव में चला जाता, जहाँ अपने जीवनयापन के लिए अच्छे साधन मिलने की संभावना होती।[1]

परंतु इन सब सुविधाओं के होते हुए भी आमतौर से लोग अनपढ़ ही होते थे। उस समय की सामान्य आवश्यकताओं के कारण लोगों को पढ़ाई छोड़नी पड़ती थी। बहुधा गाँवों के सामान्य लोग 100 तक गिनती भी नहीं गिन पाते थे। यदि 64 कहना होता तो वे लोग तीन बीसी और चार कहा करते थे।[2]

8. सिंचाई के साधन

पंजाब में वर्षा बहुत कम तथा अनिश्चित होती है अतः भूमि को उपजाऊ बनाने के लिए पानी की बहुत आवश्यकता पड़ती है। इसीलिए जो प्रदेश नदी के प्रभाव क्षेत्र से बाहर होते थे। वहाँ भू-संपत्ति का हिसाब पैमाइश से न करके वहाँ के कुओं की संख्या से किया जाता था। जैसा कि पहले बताया जा चुका है प्रत्येक कुएँ की रक्षा एक मीनार द्वारा की जाती थी जिसमें आवश्यकता पड़ने पर किसान शरण भी लेते थे। जिसकी भूमि पर जितने अधिक कुएँ होते उसे उतना ही अधिक धनवान माना जाता था।[3]

---

[1]देसी स्कूलों के सविस्तार वर्णन के लिए देखें, अंबाला गज़ेटियर, 35–7।

[2]रिसाला-ए-साहिब-नुमा, लेखक गणेशदास, करमसिंह ने अगस्त 1928 की फुलवारी के पृष्ठ 727–8 पर इसे उद्धृत किया है।

[3]देखें, कलकत्ता रिव्यू, 1844, भाग ii, अक्तूबर–दिसंबर, पृ० 190।

कुओं से पानी खींचने के लिए दो प्रकार के साधन काम में लाए जाते थे। इसके लिए ढेंकली तथा रहट का प्रयोग होता था। कृषक किस साधन का प्रयोग करेगा यह प्रश्न केवल इसी बात पर निश्चित नहीं होता था कि कुएँ में पानी कितनी गहराई पर है, परंतु इस बात पर भी निर्भर करता था कि लोगों का क्या रिवाज है तथा वे परंपरा से किस साधन का उपयोग करने के अभ्यस्त हैं। यह बात इस पर भी निर्भर करती थी कि किस सिंचाई साधन में कितना पशु का श्रम और कितना मनुष्य का श्रम लगता है।

उठाऊ तथा तोड़ सिंचाई, खेतों में पानी देने के दो और तरीके थे। पहली पद्धति निश्चित रूप से अच्छी थी। इसमें ऊँची भूमि की सिंचाई होती थी। दूसरे में सदैव जल-लग्नता का भय बना रहता था। पहाड़ियों के नीचे के या समीप के प्रदेशों में बाँधों द्वारा सिंचाई होती थी। वर्षा-जल को इस प्रकार नियमित किया जाता था कि वह एक विशेष कृषि क्षेत्र के पानी की आवश्यकता को स्थायी रूप से पूरा कर सके। अतिरिक्त जल को बह जाने दिया जाता था। यह पद्धति विशाल क्षेत्रों के लिए भी काम में लाई जाती थी।[1]

9. लोगों की ग़रीबी

समग्र दृष्टि से पंजाब के लोग बहुत ग़रीब थे। इसके कई कारण थे। आक्रांताओं तथा देश के ढीठ लोगों की लूटमार ने उन्हें दरिद्र बना दिया था। सरकार द्वारा मालगुज़ारी की अंधाधुंध माँग ने इस स्थिति को और बिगाड़ दिया। समय पर वर्षा आदि न होने से फ़सलों की बर्बादी, विवाह तथा अंत्येष्टि क्रियाओं पर होने वाले खर्चे तथा अपनी और पशुओं की बीमारी आदि कुछ ऐसे कारण थे जिन्होंने उन्हें उस स्थिति में पहुँचाया था।

यदि पंजाब का कोई ज़मींदार सामान्यरूप से समृद्ध जीवन व्यतीत करता भी था तो आपत्काल में उसके पास इतना द्रव्य नहीं होता था कि वह उससे काम चला ले। सामान्य वर्षों में तथा सामान्य खर्चे के साथ वह आमतौर से बसर कर सकता था परंतु बाहरी खतरों की विभीषिका सदैव उसके सर पर मंडराती रहती थी।

10. मेले

भारत में आमतौर से मेले व्यापार के लिए आरंभ नहीं किए जाते थे। उनका मूल, धार्मिक होता था। परंतु आमोद-प्रमोद के शौकीन उसे मनोरंजन

---

[1]देखें अली-उद्-दीन, 24 ख–25 क; प्रिन्सैप 205–6।

का स्थान बना डालते थे । और जब हज़ारों आदमी एक स्थान पर इकट्ठे होते हों तो व्यापारियों के लिए यह बात स्वाभाविक ही थी कि वे भी अपना माल बेचने के लिए वहाँ जा पहुँचे। लोगों के सामाजिक-जीवन में मेलों का एक विशेष स्थान था । लोगों के जीवन की एक रसता को दूर करके वे उन्हें निष्पाप मनोविनोद तथा विश्राम देते थे। जवान तथा बूढ़े, माता-पिता और बच्चे सभी वहाँ आनंद उठाते थे। अपने सुंदर से सुंदर वस्त्रों में सज-धज कर, हँसते-गाते तथा नाचते कूदते वे आनंद विभोर हो साथ-साथ मेलों को जाते थे। वे लोग अनेक मेलों को जाया करते थे जो समय-समय पर देश के विभिन्न स्थानों पर लगते रहते थे ।[1]

इस प्रकार के अवसरों पर लोगों का आचरण बड़ा सराहनीय होता था। "उत्तर भारत के ग्राम-वासियों की मेले को जाती हुई तथा वहाँ से लौटती हुई भीड़ को देखने से वहाँ के मामूली आदमी के सदाचार का, और उनकी कुलीनता का जितना अच्छा पता चलता है उतना शायद किसी और बात से नहीं लगता। हट्टे-कट्टे किसान युवक अपनी पत्नियों के साथ होते हैं, जो रंगीन घूंघट काढ़े तथा अपनी सुंदर बाँहों में कुहनी तक कांच की सस्ती चूंड़ियाँ पहने होती हैं। उनमें से प्रत्येक प्रसन्नवदन है तथा मुस्कराते समय अपनी सुंदर तथा स्वस्थ दंतावलि की झलक दिखाता है । वे बड़ी नरमी तथा प्यार से आपस में बातचीत कर रहे हैं। इधर एक छोटा बालक अपनी श्वेत दाढ़ी वाले तथा मुस्कराते दादा को घोड़े पर बिठाए लिए जा रहा है। उधर पूर्ण संतुष्ट नन्हा-सा शिशु अपने पिता के कंधों पर बैठा जा रहा है। सैंकड़ों

---

[1]छहर गुलशन में मेलों के बारे में लंबा-चौड़ा वर्णन दिया गया है। उनमें से 15 दिल्ली के पास ही लगा करते थे। उस महत्वपूर्ण वर्णन के बारे में सर जदुनाथ सरकार ने लिखा है :—

"जब हम दिल्ली के पास इन अनगिनत मेलों तथा जमघटों का वर्णन पढ़ते हैं तो हम लगभग यह भूल जाते हैं कि छहर-गुलशन को किसी ने सन् 1759 में लिखा था। ऐसा प्रतीत होता है कि राजधानी की सुसज्जित तथा चंचल तितिलियों ने, वर्ष को एक दीर्घ-कालीन अवकाश में बदल दिया था। वे जीवन भर आनंद विभोर हो दृश्यावलोकन करती हुईं एक स्थान से दूसरे स्थान को ऐसे जाती थीं मानो नादिरशाह का हमला उन्होंने देखा ही नहीं है तथा मराठों के भाले तथा दुर्रानी अफ़गानों के लंबे छुरे उनकी आँखों के आगे प्रतिवर्ष नहीं चमका करते थे ।" (इंडिया ऑफ औरंगज़ेब। आनंदराय मुखलिस ने गढ़ मुक्तेश्वर के वार्षिक मेले का लंबा-चौड़ा वर्णन दिया है । बादशाह मुहम्मद शाह भी उसमें उपस्थित हुआ था)।

हज़ारों की संख्या में लोग मंदगतिवाली नदी की भाँति व्यवस्थित रूप से बढ़ते चले जा रहे हैं। राह में पड़ने वाले किसी वृक्ष की एक टहनी तक नहीं टूटती है। अपने घोड़े पर सावधानी से आगे बढ़ने वाले यात्री को जनसमूह बिना अपशब्द कहे मार्ग दे रहा है। इस प्रकार वे लोग सुबह चलते हैं तथा रात पड़े घर लौटते हैं।"[1]

11. व्यापार

जहाँ तक विदेशी व्यापार का संबंध है पंजाब की स्थिति अच्छी नहीं है। इसके उत्तर, पश्चिम तथा दक्षिण में बहुत कम आबादी वाले प्रदेश हैं तथा उपभोक्ताओं की कमी के कारण वे पंजाब के उत्पादन के लिए कोई अच्छे बाज़ार नहीं हैं।[2] पूर्व में संयुक्त प्रांत आगरा तथा अवध में माल की खपत अच्छी हो सकती है, परंतु पंजाब के लिए उनका भी कोई विशेष मूल्य नहीं है। वहाँ भी वे ही वस्तुए पैदा होती हैं जो पंजाब में होती हैं। दूसरी ओर इसकी नदियों द्वारा समुद्री मार्ग से व्यापार नहीं किया जा सकता है। उनमें आसानी से जहाज़रानी भी संभव नहीं है। इसीलिए हम अधिक विदेशी व्यापार की आशा नहीं कर सकते हैं। यदि थोड़ा बहुत व्यापार संभव भी था तो उसे भी उस समय की अराजकता ने समाप्त कर दिया। मैदान से होकर जानेवाले सब व्यापारिक मार्ग बंद हो चुके थे। पहाड़ों के मार्ग से ही थोड़ा सा व्यापार होता था। काश्मीर तथा अफ़गानिस्तान की ओर जानेवाले व्यापारी देहरादून के पास से सिवालिक की पहाड़ियों के ऊपर से नाहन, बिलासपुर, हरीपुर, नूरपूर, बसौली तथा जम्मू के मार्ग से आगे बढ़ते थे।[3]

सड़कें बुरी हालत में थीं। पत्थर की रोड़ी से पक्की सड़कें बनाना कोई नहीं जानता था। जब पानी बरसता तो लोग कीचड़ में धंस जाते और जब न बरसता तो रेत में धंस जाते थे। नदियों पर पुल न थे। बड़ी-बड़ी नदियों को कुछ स्थानों पर नावों के सहारे पार किया जाता था। यात्रा करना असुरक्षित था। चोर तथा डाकुओं से मार्ग भरे पड़े थे। बड़ी-बड़ी सराएँ भी, जहाँ रात्रि के समय यात्री विश्राम करते थे, खतरों से खाली न थीं।

---

[1]कीन द्वारा लिखित, फॉल ऑफ दि मुग़ल एंपायर, 12–3।

[2]इसके उत्तर में तिब्बत, काश्मीर, लद्दाख तथा तुर्किस्तान हैं। पश्चिम में उत्तरी पश्चिमी सीमाप्रांत, अफ़गानिस्तान, बलूचिस्तान व ईरान तथा दक्षिण में राजपूताना और बीकानेर हैं।

[3]पंजाब के मैदानों को छोड़कर लोग नदियों के कछारों और पहाड़ी स्थानों में जा बसे। वे स्थान आक्रांता की पहुँच के बाहर थे। यथा करनाल परगना के 221 गाँवों में से 178 के निवासी अपने-अपने घरों तथा खेतों को छोड़कर भाग गए थे। (करनाल गज़ेटियर, 35) जनरल ऑफ दि पंजाब हिस्टॉरिकल सोसायटी, भाग iii, नं० 2, 1915, पृ० 117।

पंजाब के मैदानों में सिख-शासन की स्थापना से भी व्यापार की स्थिति में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ। सिख लोग फलते-फूलते व्यापार के लाभों के प्रति सचेत थे। इसीलिए उन्होंने अपनी शरण में आए व्यापारियों को सुरक्षा प्रदान करने का प्रयत्न भी किया। परंतु जब ये व्यापारी विभिन्न स्वतंत्र सिख सरदारों के प्रदेशों से होकर गुज़रते तो उनसे अधिक शुल्क माँगकर उन्हें परेशान किया जाता था। अपने ग्रंथ के खंड i के पृष्ठ 337–8 पर फोरेस्टर महाशय लिखते हैं, "प्रत्येक देश तथा जाति के व्यापारी, जो भी उनके इलाकों में व्यापार प्रारंभ करते थे या फिर जो उनके शासन में थे, पूर्ण सुरक्षा का अनुभव करते थे। उन लोगों को वही व्यापारिक सुविधाएँ मिलती थीं जोकि उनकी अपनी प्रजा को दी जाती थीं। परंतु इसके साथ ही यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि यह निरापदता केवल उन्हें ही मिलती थी जो उनके साथ रहते थे या फिर सिख बाज़ारों के लिए माल का आयात करते थे। परंतु पंजाब से होकर जानेवाले विदेशी व्यापारियों तथा यात्रियों को प्रायः लूट लिया जाता है तथा उनके साथ दुर्व्यवहार किया जाता है।"

फिर भी पंजाब तथा पास-पड़ोस के देशों में थोड़ा बहुत व्यापार होता ही था। एक समकालीन लेखक ने उसका वर्णन इस प्रकार किया है :—"हिंदुस्तान के प्रत्येक भाग से इस देश का अबाध व्यापार बहुत पहले से समाप्त हो चुका है परंतु छोटे व्यापारी सिख इलाकों के विभिन्न सरदारों से, उनकी सीमा में घुसने के पहले, पारपत्र लेकर अभी भी थोड़ा बहुत व्यापार करते रहते हैं। प्रायः ये पारपत्र उन्हें मिल जाते थे। अटक के पश्चिम के देशों को वे चीनी, चावल, नील, गेहूँ तथा सफ़ेद कपड़ा निर्यात[1] करते हैं। उन देशों से वे तलवारें, घोड़े, फल, सीसा तथा गर्म मसाले आयात करते हैं। काश्मीर को भी वे लोग प्रायः वही चीज़ें निर्यात करते हैं जो ईरान भेजी जाती हैं। काश्मीर से वे शाल तथा विशेष प्रकार का कपड़ा, केसर तथा फल आयात करते हैं। पहाड़ों के निवासियों को कपड़ा, बंदूकें तथा घोड़े देकर, बदले में लोहा तथा घटिया वस्तुएँ लेते हैं। दक्षिण से वे गंधक, नील, नमक, सीसा, लोहा तथा गर्म मसाला आयात करते हैं। वहाँ वे लोग घोड़े, ऊँट, चीनी, चावल, सफ़ेद कपड़ा, बंदूकें, तलवारें तथा तीर कमान निर्यात करते हैं।[2]

12. सिख-शासन

इस पुस्तक में जिस काल तक का वर्णन किया गया है, उसके अंत तक पंजाब के बड़े भाग पर सिखों ने अपना शासन स्थापित कर लिया था, परंतु

---

[1]"जो वस्तुएँ वे बनाते हैं उनमें महीन कपड़ा, जिसे वे लाहौर में बनाते हैं, तथा अच्छे हथियार, जो हिंदुस्तान में बनते हैं, मुख्य हैं। ब्राउनी, इंट्रोडक्शन, ix।

[2]मेमोयर्स ऑफ जार्ज थामस, 253-4।

जैसा कि स्वाभाविक ही है वे अपना शासन इतने पूर्ण रूप से विकसित नहीं कर पाए थे कि उसके लिए विस्तृत तथा आलोचनात्मक वर्णन अपेक्षित हो। इसलिए इस काल में उनकी प्रशासन विधि के बारे में विस्तारपूर्वक मूल्यांकन करना स्पष्टतः उचित न होगा। अतः हम यहाँ केवल सरसरी तौर से विचार करेंगे। यद्यपि सिख शासन "अभिजात्य, अनियमित तथा अपूर्ण था,"[1] तथापि देश में दीर्घकाल से चले आ रहे युद्ध तथा अराजकता से ऊबे हुए लोगों के लिए वह समग्र दृष्टि से एक वरदान था। विदेशी हमले लगभग समाप्त हो चुके थे। दिल्ली की सरकार कमज़ोर तथा असहाय थी। यदि उनके मार्ग में कोई खतरा बाधक बन सकता था तो वह थी आंतरिक अव्यवस्था, परंतु इसे उन्होंने सशक्त उपायों द्वारा नियंत्रित कर लिया था। इसीलिए वे सरलता से दुर्व्यवस्था तथा अव्यवस्था का अंत कर शांति तथा व्यवस्था स्थापित करने में सफल हुए।[2]

सिखों ने देश में एक प्रकार की सामंती-सरकार की स्थापना की थी। संपूर्ण प्रदेश बड़े-बड़े बारह सरदारों में बाँट दिया गया था। उनके अधीन बहुत-से छोटे सरदार हुआ करते थे। इन छोटे सरदारों के अधीन भी अनेक सरदार होते थे। अंत में मामूली सैनिक होते थे। इन सब को उनकी स्थिति के अनुसार गाँव प्रदान किए जाते थे।

प्रत्येक सिख मुखिया औरों से स्वतंत्र होता था। वह पास-पड़ोस के स्वतंत्र राज्यों से सीधा संबंध बनाए रखता था। राजनीतिक पत्र-व्यवहार के लिए प्रत्येक सरदार के पास कुछ अधिकारी हुआ करते थे।

धार्मिक मामलों की देखभाल अकाली किया करते थे। ये ही लोग अमृतसर के मंदिर तथा सरोवर की देखभाल करते थे। परंतु यह सिख "पुरोहितों की मंडली" सिख-सरदारों के लौकिक अधिकारों में बिलकुल हस्तक्षेप न करती थी।[3]

सिख सरदारों की यह निरंकुश सरकार कुप्रशासन लानेवाली प्रमाणित नहीं हुई। इस तथ्य की पुष्टि जार्ज थामस द्वारा लिखा गया समकालीन वर्णन करता है। उन्होंने लिखा है :—"अपने क्षेत्राधिकार में प्रत्येक सरदार सब कुछ

---

[1]ब्राउनी, इंट्रोडक्शन, vi।

[2]"अपने देश के अंदरूनी भागों में सिख सुव्यवस्था तथा नियमित सरकार का संचालन करते हैं।" (फ्रैंकलिन का शाह आलम, 77)। "सच्चाई तो यह है कि सूबेदार और थानेदार लोगों को बहुत कम परेशान करते हैं।" (हूगेल, 150)।

[3]फौरेस्टर, i, 331।

होता है। अपनी प्रजा पर उसका अनन्य अधिकार होता है। लोगों का जीवन-मरण तक उसके हाथों में होता है। अपने ज़िले की जनसंख्या को बढ़ाने के लिए वह भारत के प्रत्येक भाग से आने वाले भगोड़ों का बड़ी तत्परता तथा प्रसन्नता के साथ स्वागत करता है। इसीलिए यद्यपि सिख इलाकों में सरकार निरंकुश है तथापि पास-पड़ोस के राज्यों की अपेक्षा कहीं कम उत्पीड़न है।"[1]

अच्छी सरकार के लाभों से परिचित होने के कारण सिखों ने श्रमिकों तथा किसानों के साथ नम्रतापूर्ण तथा सम्मानपूर्ण व्यवहार किया। इसीलिए देश में सुनियमित सरकार की स्थापना के साथ-साथ उन्होंने खेती की ओर बड़े उद्यम तथा लगन के साथ ध्यान दिया। आमतौर से सिख लोग सिंचाई वाली भूमि से उत्पादन का पाँचवा भाग तथा वर्षावाले भूभागों से चौथाई भाग लगान के रूप में वसूल करते थे। वे इस बात को ध्यान में रखते थे कि किसी ज़मींदार के साथ छेड़छाड़ न की जाए।[2] किसान की सुविधा का ध्यान रखते हुए वे रबी तथा खरीफ की फ़सलों की कटाई के अवसरों पर फ़सल में अपने हिस्से के रूप में लगान, दो भागों में वसूल किया करते थे। भूमि के वास्तविक काश्तकार को ही लगान के लिए उत्तरदायी ठहराया जाता था। इस बात की ओर कोई ध्यान न दिया जाता था कि वह उस भूमि का अधिपति है, भू स्वामी है, काश्तकार है अथवा श्रमिक है। प्रत्येक काश्तकार से ही लगान वसूल किया जाता था। परंतु जहाँ कहीं भू-स्वामी तथा खेतिहर अलग-अलग होते थे वे आपस में फ़सल का बराबर-बराबर बँटवारा कर लेते तथा उत्पादन में से खेतिहर को पाँचवाँ भाग, उसके पारिश्रमिक के रूप में, अपने पास रख लेने देते थे। उनके भूमि-प्रशासन का एक और महत्वपूर्ण लक्षण यह था कि वे खुद गांव के साझीदारों में शामिल नहीं हुए तथा इस भाँति गाँव के सामाजिक गठन को उन्होंने जैसे का तैसा ही रहने दिया। उन्होंने फ़सल के केवल उतने ही भाग को कर के रूप में ग्रहण करके संतोष कर लिया जितना प्राचीन भारतीय रीति-रिवाजों ने शासन के लिए नियत किया था।[3]

---

[1]मेमोयर्स ऑफ जार्ज थामस, 76।

[2]वे बहुत मामूली लगान लेते हैं और वह भी वस्तुरूप में होता है। आपसी झगड़ों के दौरान उनके सैनिक कभी भी किसानों को परेशान नहीं करते।" (ब्राउनी, इंट्रोडक्शन, ix)। "मुखिया कभी अपना पूरा भाग वसूल नहीं करता है और शायद ही कोई और देश हो जहाँ रैयत के प्रति इतना अनुग्रह दिखाया जाता हो।" (मालकाम, 126); सैयार, iii, 75।

[3] फ्रैंकलिन का शाह-आलम, 77; हूगेल, 156; कलकत्ता रिव्य भाग v, जनवरी-जून, 1846, पृष्ठ 360; ज्ञानसिंह 1101; लुधियाना।

संदर्भ-ग्रंथ सूची

ग्रंथों के नाम, उनके रचना काल के अनुसार तैथिक-क्रम में दिए गए हैं। इस पुस्तक में प्रमुख रूप से निम्नलिखित शब्द-संक्षेपों का प्रयोग किया गया है—

ब्रि० म्यू० ला० : ब्रिटिश म्यूज़ियम लाइब्रेरी
रियू० केटॉलॉग ऑफ पर्शियन मैन्यूसक्रिप्ट ऑफ दी ब्रि० म्यू० ला०
इ० ऑ० ला० : इंडिया आफिस लाइब्रेरी।
ऐथे० केटॉलॉग ऑफ पर्शियन मैन्यूसक्रिप्ट ऑफ इ० ऑ० ला०
ई० डा० हिस्ट्री ऑफ इंडिया ऐज़ टोल्ड बाई हर ओन हिस्टोरियन्स, ईलियट तथा डाऊसन
ए० सो० बंग० : एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल
ज० ए० सो० बंग: जर्नल ऑफ दी ए० सो० बंग
ई० हि० क्वा० : इंडियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली
यदु० सरकार : सर यदुनाथ सरकार का पुस्तकालय, कलकत्ता
पं० प० ला० : पंजाब पब्लिक लाइब्रेरी, लाहौर
प० यू० ला० : पंजाब यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी, लाहौर
ओ० प० ला० बांकी : ओरियंटल पब्लिक लाइब्रेरी, बांकीपुर

मूल स्रोत

फ़ारसी

1. खुलासात—खुलास-उत्-तवारीख सुजान, लेखक; बटाला का राय भंडारी—1695 प० प० ला०। सन् 1918 में दिल्ली के एम० ज़फर हसन द्वारा संपादित तथा प्रकाशित। स्थल रूपरेखीय विवरण के लिए अत्यधिक उपयोगी। यदु० सरकार द्वारा लिखित इंडिया ऑफ औरंगज़ब (1901) में अनुवादित (अँग्रेज़ी में)।

2. दिल्ली क्रानिकल—वाक़ा-ए-शाह आलम सानी, लेखक का नाम अज्ञात है। यह संक्षिप्त दैनिकी के रूप में लिखी गई है। इसमें शाही राजधानी में घटी घटनाओं तथा साम्राज्य के विभिन्न भागों से आए, सन् 1738 से 1798 तक के विवरणों का सविस्तार तैथिक क्रमानुसार वर्णन है। बहुत सी तिथियों तथा घटनाओं के लिए इसका अत्यधिक महत्व है।

3. खुशाल चंद—तारीख-ए-मुहम्मद शाही उर्फ नादिर-उज़-ज़मानी,—लेखक, खुशाल चंद। यह व्यक्ति सन् 1741 में दिल्ली के दीवानी दफ्तर में एक मुंशी था।—पं० प० ला० मुहम्मद शाह के प्रकाशन के बारे में इसने उपयोगी बातें लिखीं हैं।

4. आनंदराम—तज़किरा-ए-आनंदराम मुखलिश—लाहौर का आनंदराम। यह व्यक्ति दिल्ली के वज़ीर कमरुद्दीन खाँ का सचिव था—1748 यदु० सरकार की पाँडुलिपि, तीन भागों में :—(1) नादिर शाह का हमला, (2) बनगढ़ अभियान, (3) अहमदशाह दुर्रानी की प्रथम चढ़ाई।

5. तारीख-ए-अहमद शाही—गुमनाम 1748—1754 ब्रि० म्यू० ला० की पाँडुलिपि। यदु० सरकार के पास हस्तलिखित पुस्तक का रोटोग्राफ़। इसका लेखक "प्रत्येक अवसर पर उपस्थित था तथा उसने अपनी आँखों से बादशाह अहमदशाह की पूर्ण असहाय अवस्था को देखा था और उस पर रोया था।"

6. ज़फर नामा—लेखक, गुलाम मुहिमुद्दीन—1750 पं० यू० ला० पाँडुलिपि। अहमदशाह दुर्रानी के पहले दो हमलों के बारे में थोड़ी बहुत जानकारी देता है।

7. सं० प० द० के विविध कागज़ात—यह दिल्ली तथा उत्तरी भारत के और दूसरे महत्वपूर्ण स्थानों में रह रहे मराठा कारिंदों द्वारा भेजे गए विवरण हैं। सन् 1752 से आगे घटी घटनाओं के बारे में यह उपलब्ध हैं। घटनाओं तथा तिथियों के बारे में यह पूर्ण रूप से मौलिक हैं।

8. तारीख-ए-आलमगीर सानी—लेखक का नाम अज्ञात है। 1754–59 ब्रि० म्यू० ला० की पाँडुलिपि, यदु० सरकार के पास हस्तलिखित पुस्तक का रोटोग्राफ़। आलमगीर सानी के शासन पर सबसे उत्तम तथा विस्तारयुक्त समकालीन पुस्तक।

9. सामिन—अहमदशाह अब्दाली का चौथा हमला—लेखक, शेख गुलाम हसन (साहित्यक उपनाम, सामिन) 1756–57 इंडियन एंटीक्यूरी, 1907, डब्ल्यू इरबिन द्वारा अँग्रेज़ी में अनुवादित। यह विवरण एक अक्षु-साक्षी का है।

10. जहाँ कुशा—जहाँ कुशा-ए-नादरी—लेखक, मुहम्मद महदी अली खाँ, नादिरशाह का निजी सचिव—1758, बंबई में प्रकाशित 1875। इसमें नादिरशाह के हमले का पारिस्थितिक वर्णन दिया गया है।

11. मासिर-उल्-उमरा, तीन भाग—लेखक शाह नवाज खाँ—समसम-उद्-दौला 1758—ए० सो० बंग द्वारा प्रकाशित। अकबर के समय से लेकर अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक के मुग़ल सामंतों का चारित्रिक कोश।

12. छहर गुलशन, इसे अखबार-उन-नगदीर के नाम से भी जाना जाता है । लेखक, दिल्ली के वजीर इमाद-उल्-मुल्क का सेवक राय छतरमन—1759, पं० यू० ला० की पाँडुलिपि । इस पुस्तक के चार भाग हैं तीसरे भाग में उन सड़कों का वर्णन किया गया है जो कि दिल्ली से भारत के दूसरे प्रमुख नगरों को जाती हैं। इसमें स्थान, दूरी तथा पड़ावों का भी वर्णन है। चौथे भाग में हिंदू संतों, सिख गुरुओं तथा मुसलमान फकीरों का चरित्र चित्रण किया गया है। 'इंडिया ऑफ औरंगज़ेब, (1901) में यदुनाथ सरकार ने इसका अनुवाद किया है।

13. कै० पर० का०—कैलेंडर ऑफ परशियन-कॉरेसपौंडेंस, भाग 1, 1759—1767 और भाग 2, 1767-1769, इंपीरियल रेकार्ड डिपार्टमेंट, कलकत्ता द्वारा अनुवादित तथा प्रकाशित (i, 1911 और ii, 1914) ये वह पत्र हैं जिनका आदान-प्रदान इंगलिश ईस्ट इंडिया कंपनी के कुछ एक सेवकों तथा भारतीय शासकों तथा महत्वपूर्ण व्यक्तियों के बीच हुआ था। ये उत्तरी भारत की महत्वपूर्ण घटनाओं तथा तिथियों के बारे में बिलकुल सही जानकारी देते हैं। उदाहरण के लिए अहमदशाह दुर्रानी का अंतिम हमला।

14. तारीख-ए-मंज़िल-उल्-फतुह्—लेखक, मुहम्मद जफ़र शमूल, सन् 1761 के लगभग—ब्रि० म्यू० ला० की पाँडुलिपि, यदु० सरकार के पास हस्तलिखित पुस्तक का रोटोग्राफ़। लेखक, अहमदशाह द्वारा भारत पर किए गए कई आक्रमणों के अवसरों पर उसके साथ उपस्थित था। पानीपत की लड़ाई के समय भी वह वहाँ उपस्थित था। कंधार से दिल्ली तक के विभिन्न पड़ावों का उस द्वारा किया गया वर्णन बहुत उपयोगी है। अहमदशाह ने उन स्थानों पर पड़ाव डाले थे।

15. खज़ाना-ए-अमीरा—गुलाम अली आज़ाद बिलग्रामी—1762-63—सन् 1871 में नवल किशोर प्रेस, कानपुर द्वारा प्रकाशित। लेखक ने पंजाब का भ्रमण किया था । सन् 1761 में सिखों द्वारा लाहौर विजय, घलुघरा घटना की तिथि तथा पानीपत के स्थान पर आला सिंह द्वारा मराठों को दी गई सहायता के बारे में उसने मूल सूचना दी है।

16. जंग नामा—लेखक, काज़ी नूर मुहम्मद—1765, के० सी० एल० पाँडुलिपि । यह एक अत्यधिक उपयोगी पुस्तक है। इसमें अहमदशाह अब्दाली के सातवें (1764—65) आक्रमण का सबसे मौलिक वर्णन किया गया है। यह काज़ी, अपने सरदार, कलातके खान नासिर खाँ बकौच की इच्छा से आक्रांता की सेना के साथ-साथ आया था। उसका मुख्य कार्य उस

अभियान की घटनाओं का अभिलेख तैयार करना था। यह पद्य में लिखा गया था; इसमें 226 पृष्ठ हैं। खालसा कालेज ने इसका प्रकाशन करवाया था।

17. नूर-उद्-दीन—तारीख-ए-नजीब-उद्-दीन—लेखक सैयद नूर-उद्-दीन। यह व्यक्ति दिल्ली के वज़ीर इमाद-उल्-मुल्क का एक निजी सेवक था। —1773—ब्रि० म्यू० ला० की पाँडुलिपि, यदु० सरकार के पास हस्तलिखित पुस्तक का रोटोग्राफ़। आइ० एच० क्यू० तथा इस्लामिक कल्चर, 1933 में सरकार द्वारा अनुवादित। उसमें अहमदशाह अब्दाली के कुछ हमलों, यमुना के पास सिखों के धावों तथा सिखों के विरुद्ध नजीब के अभियानों का बहुत सही, मौलिक तथा समकालीन वर्णन दिया गया है।

18. शिव प्रसाद—तारीख-ए-फराह बक्श—लेखक शिव प्रसाद—1776—पं० प० ला० की पाँडुलिपि—रियू०—vii, 306; iii, 959; ऐथे, i, 584; ईडा; 4, 175-9। रियू० तथा इलियट ने इस ग्रंथ को तारीख-ए-फैज़बक्श का नाम दिया है। यह रूहेलों का एक इतिहास है परंतु इसमें यहाँ वहाँ पंजाब की घटनाओं पर भी प्रकाश डाला गया है। श्री होय ने इसका अँग्रेज़ी में अनुवाद किया है।

19. काशीराज—इसमें पानीपत की अंतिम लड़ाई के कारणों तथा घटनाओं का वर्णन दिया गया है। —काशीराज—1780-1785 की एक पाँडुलिपि का सर यदुनाथ सरकार द्वारा इं० हि० क्वा० 1934 में किया गया अनुवाद। यह अनुवाद सरकार साहब ने "ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस द्वारा सन् 1926 में ब्राउनी के अविश्वसनीय अनुवाद के पुनः प्रकाशन (एशियाटिक रिसर्चेज, 1799 से) को शुद्ध करने के लिए किया था। काशीराज, शुजा-उद्-दौला का एक विश्वस्त सेवक था तथा वह लड़ाई के समय वहाँ उपस्थित भी था।

20. मिसकिन—तज़किरा-ए-तहमास मिसकिन—लेखक तहमास खाँ मिसकिन—1780 ब्रि० म्यू० ला० की पाँडुलिपि, यदु० सरकार के पास हस्त-लिखित पुस्तक का रोटोग्राफ़। इसका लेखक लाहौर में मुइन-उल्-मुल्क (1748—53) तथा उसकी पत्नी मुग़लानी बेगम (1753—58) के निजी सेवक के रूप में रहता था। इसके बाद भी उसने पंजाब में सियालकोट, जम्मू तथा सरहिंद में चार वर्ष (1758—62) और व्यतीत किए। इस काल में सिखों के विरुद्ध किए जाने वाले लगभग प्रत्येक अभियान में मिसकिन विभिन्न सरदारों के साथ रहा था। उसने उन सब का बहुत सजीव तथा सविस्तार वर्णन किया है। इस काल के पंजाब के इतिहास के लिए यह सबसे अधिक महत्वपूर्ण पुस्तक है।

21. शाकिर—तज़किरा-ए-शाकिर-खाँ—लेखक, शाकिर खाँ। यह व्यक्ति अमीर शमस-उद्-दौला लुतफुल्ला, जो कि सप्तहज़ारी का मनसबदार तथा नादिर के हमले के समय दिल्ली का सूबेदार था, का चौथा पुत्र था। रिसाला सुल्तानी में शाकिर खाँ बक्सी के पद पर था तथा शाह आलम द्वितीय के शासन में वह दीवान के पद तक जा पहुँचा—सन् 1780 के लगभग। यदु० सरकार के पास पाँडुलिपि—रियू० i, 279—1 इसमें लेखक ने मुहम्मद शाह से लेकर शाह आलम द्वितीय के राज्यारोहण तक घटी घटनाओं के बारे में अपना दृष्टिकोण दिया है। पंजाब की गतिविधियों के बारे में इसमें संक्षिप्त संदर्भ मिलते हैं।

22. बयान—बयान-ए-वाक़ी—ख्वाज़ा अब्दुल करीम काश्मीरी—1784—पं० यू० ला० की पाँडुलिपि। लेखक ने नादिर शाह के हमले तथा अब्दाली के प्रथम अभियान का वर्णन किया है।

23. अशूब—तारीख-ए-खरोज—ए-नादिर शाह—बा—हिंदुस्तान उर्फ तारीख-ए-मुहम्मद शाही, भाग 2—लेखक (बादशाह मुहम्मद शाह का सहपालित भ्राता) मुहम्मद बक्श अशूब—1785—ई० आ० ला० की पाँडुलिपि, यदु० सरकार के पास प्रति। यह नादिर शाह के हमले तथा अहमद-शाह अब्दाली की चढ़ाई के बारे में विस्तृत जानकारी देने वाला ग्रंथ है।

24. बिहारी लाल— अह्वाल-ए-नज़ीब-उद्-दौला अमीर-उल्-उमरा साबित जंग—लेखक, बिहारी लाल—1787—हैदराबाद की पाँडुलिपि यदु० सरकार के पास प्रति। इसका लेखक नजीब उद्-दौला के मुंशी का भतीजा था। इसी विषय पर नूर-उद्-दीन से यह पुस्तक निम्नकोटि की है। ई० हि० क्वा० में सरकार द्वारा अनुवादित (अँग्रेज़ी में)।

25. गुलाम अली—शाह आलम नामा—लेखक गुलाम अली। (यह व्यक्ति भिकारी खाँ का पुत्र था। सन् 1753 में मुग़लानी बेगम ने लाहौर में इसकी हत्या कर दी थी। 1788—ए० सो० बंग ने प्रथम भाग (सन् 1761 तक) का प्रकाशन किया है। लेखक ने लाहौर की गतिविधियों का पारिस्थितिक साक्ष्य दिया है। इ० आ० ला० पाँडुलिपि (जे० एन० एस० प्रति)।

मराठी

मराठी भाषा के अभिलेख नियमित इतिहास नहीं हैं। वे केवल समाचार देने वाले पत्रादि तथा विवरणिकाएँ हैं। परंतु इस रूप में भी उनका बहुत महत्व है। इनसे हमें बहुत सी मौलिक सामग्री का पता चलता है। उस समय के फारसी इतिहास से भी जिनका पता हमें नहीं चलता उन

तिथियों का पता इससे चल जाता है। सन् 1758 से लेकर आगे के समय में यह पत्रादि हमें बहुत सहायता पहुँचाते हैं। इसी काल में मराठों ने इस प्रांत पर अपना अधिकार जमाया था। इसमें से बहुत सी सामग्री प्रकाशित हो चुकी है तथा बाकी भी धीरे-धीरे प्रकाशित होती जा रही है।

1. स० पे० द०—पेशवा दफ्तर संग्रह। 45 भागों में, जी० एस० सरदेसाई द्वारा संपादित, मराठी के भाग 2, 21, 27 तथा 29 तथा फारसी के विविध पत्रादि विशेष रूप से काम में लिए गए हैं।

2. राजवाड़े —मराठांच्या इतिहास सादनें 21, भाग राजवाड़े तथा अन्य विद्वानों द्वारा संपादित।

फ्रांसीसी

1. वेनडेल—हिस्ट्री ऑफ दी जाट्स—एफ० एक्स वेनडेल—1768 इ० आ० ला० आर्मे पाँडुलिपि, ओ० पी०, 216; यदु० सरकार की प्रति——फादर जेवियर वेनडेल एक ईसाई पादरी तथा अँग्रेज़ों का समाचारदाता था। वह आगरा में रहा करता था। यह पादरी सूरजमल तथा जवाहर सिंह का समकालीन था तथा प्रायः भरतपुर जाता रहता था। यह पुस्तक जाटों तथा सिखों के संबंधों के बारे में उपयोगी सामग्री देती है।

अँग्रेजी

कलकत्ता में अँग्रेज़ों ने सिखों के कारनामों के बारे में सुना। ब्रिटिश सरकार के दूरदर्शी राजमर्मज्ञ व्यक्तियों से इस प्रकार के महत्वपूर्ण लोग छिपे नहीं रह सकते थे। इसी के फलस्वरूप उन लोगों ने इनके जीवन तथा चरित्र के बारे में बहुत रुचि लेना आरंभ कर दिया। जिस समय सन् 1767 में सिख अहमदशाह अब्दाली के अंतिम अभियान का डट कर मुकाबला कर रहे थे, हमें इसके बारे में कुछ-कुछ हवाला मिलता है। (देखें, सी० पी० सी०, 2)। अठारहवीं सदी के सातवें दशक के साथ-साथ उन लोगों ने सिखों के बारे में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करने का बाकायदा प्रयत्न आरंभ कर दिया। यह खोज उन्नीसवीं सदी के सातवें दशक तक बराबर चलती रही। उसी वर्ष सर लेपेल ग्रिफन ने अपने दो महत्वपूर्ण ग्रंथ पूर्ण किए। इनमें से एक का नाम "दी राजास् ऑफ दी पंजाब' तथा दूसरे का नाम 'दी पंजाब चीफस' है। इसलिए हम सिखों के बारे में आधुनिक जानकारी के लिए ब्रिटिश सरकार के बहुत आभारी हैं।

1. कर्नल पौलियर्स एकाऊंट ऑफ दी सिख्स—कर्नल पौलियर ने अठारहवीं शताब्दी के सातवें दशक के प्रारंभिक दिनों में सिखों के बारे में एक विवरण तयार किया था। यह पाँडुलिपि कभी प्रकाशित नहीं की गई, परंतु फोरेस्टर ने

कुछ हद तक अपनी पुस्तक के प्रथम भाग में उसे उद्धृत किया है । एशियाटिक एनुअल रजिस्टर 1802 में 'ए कैरेक्टर ऑफ दी सिखस् फ्रॉम दी ओबजरवेशन्स ऑफ कर्नल पौलियर तथा मिस्टर फोरस्टर" के शीर्षक के अंतर्गत एक लेख प्रकाशित हुआ था।

2. फोरेस्टर—ए जरनी फ्रॉम बंगाल टू इंग्लैंड (1782–83) दो भाग; लेखक जौज फौरेस्टर, मद्रास में ईस्ट इंडिया कंपनी की सिविल सर्विस का एक कर्मचारी । फौरेस्टर ने एक भारतीय मुसलमान व्यापारी के रूप में हिमालय की निचली पहाड़ियों से होकर जाने वाले उत्तरी मार्ग से पंजाब का भ्रमण किया था । जितना हो सकता था उसने उतना सिखों के बारे में ज्ञान प्राप्त किया तथा बहुत हद तक सिखों के चरित्र का उसने सही-सही चित्रण किया है । इससे लेखक की तीव्र अवलोकन तथा निर्णय शक्ति का पता चलता है।

3. ब्राउनी—मेजर जेम्स ब्राउनी द्वारा लिखित 'इंडिया ट्रेक्टस' में सिखों के मूल तथा प्रगति का इतिहास दिया गया है। यह पुस्तक सितंबर, 1786 में लिखी गई थी तथा सन् 1788 में इसका प्रकाशन किया गया । इसका लेखक दिल्ली में अंग्रेजों की ओर से शाह आलम के दरबार में 'मिनिस्टर' था । वहाँ रहकर उसने "सिखों के महान् अनियमित कुलीन तंत्र" की शक्ति, साधन, स्वभाव तथा संविधान के बारे में काफ़ी जानकारी प्राप्त की । सिखों के बारे में यह पुस्तक विधिवत जानकारी देती है। परंतु इसमें कुछ अशुद्धियाँ भी हैं ।

4. जार्ज थामस—मिलिटरी मेमोयर्स ऑफ मि० जार्ज थामस । विलियम फ्रैंकलिन ने मि० थामस के मूल दस्तावेज़ों से इनका संकलन तथा विन्यास किया है। सन् 1803 में हुराकू प्रेस, कलकत्ता ने इसका प्रकाशन किया था । जार्ज थामस एक प्रसिद्ध लुटेरा था । उसने पंजाब के दक्षिण पूर्वी कोने में एक स्वतंत्र राज्य स्थापित करके हांसी को अपनी राजधानी बनाया था । पंजाब में बसने से बहुत पहले ही जबकि वह बेगम समरू की सेवा में था, वह अनेक बार सिखों से भिड़ चुका था । इसीलिए वह उन्हें भली-भाँति जानता था । इसी कारण सिखों के बारे में उसके द्वारा दिया गया विवरण, मौलिकता की दृष्टि से बहुमूल्य है ।

5. मालकाम—स्केच ऑफ दी सिख्स—लेखक, लैफ्टिनेंट कर्नल मालकाम । सन् 1812 में जान मरी, लंदन द्वारा प्रकाशित लार्ड लेक द्वारा पंजाब की ओर होल्कर का पीछा किए जाते समय यह लेखक उसकी सेना के साथ था । मालकाम ने सूचनाएँ तथा सामग्री एकत्रित की, अपना विवरण लिखा तथा "एशियाटिक रिसर्चेस्" भाग 6, पृ० 197—293 में उन्हें प्रकाशित किया । इसमें सिखों के बारे में विश्वसनीय सामग्री दी गई है ।

गौण स्रोत

फारसी

1. फरहात—फरहात -उन-नाज़िरीन, लेखक—मुहम्मद असलम 1770—कपूरथला स्टेट लाइब्रेरी की पाँडुलिपि, पं० यू० ला० के पास हस्तलिखित पुस्तक का रोटोग्राफ़ । इसका लेखक शुज़-उद्-दौला का एक सेवक था ।

2. सियार—सियार-उल्-मुतखरीन, सैयद गुलाम हुसैन—1782—सन् 1833 के कलकत्ता संस्करण को उद्धृत किया गया है। पं० पा० ला० सन् 1707 से 1782 तक का सविस्तार भारतीय इतिहास। इस ग्रंथ से हमें सिखों तथा पंजाब की दूसरी गतिविधियों के बारे में बहुत-सी जानकारी प्राप्त होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि बहुत-सी सामग्री खज़ाना-ए-अमीरा से प्राप्त की गई है।

3. छहर गुलज़ार—छहर-गुलजार-ए-शुजाइ, लेखक, हरचरण दास—1783—पं० यू० ला० की पाँडुलिपि, रियू०, 3; 912 ई० डा०—8, 204—31 इस लेखक ने, जो कि शुजा-उद्-दौला की सेवा में था, यह ग्रंथ अपने स्वामी को समर्पित किया था । उसने यमुना के पार सिख धावों का अच्छा वर्णन दिया है।

4. हुसैन शाही—तारीख-ए-हुसैन शाही, लेखक—सैयद इमाम-उद्-दीन हुसैनी—1798—ओ० पं० ला० बांकी की पाँडुलिपि, यदु० सरकार की प्रति से उद्धरण लिए गए हैं । यह पुस्तक अहमदशाह अब्दाली का एक जीवन चरित्र है, परंतु यह सर्वथा विश्वसनीय नहीं है ।

5. अह्वाल-ए-अदीना बेग खाँ, लेखक का नाम अज्ञात है—1806—ब्रि० म्यू० ला० की पांडुलिपि, पं० यू० ला० हस्तलिखित पुस्तक का रोटोग्राफ—रियू०—3, 1044 यह अदीना बेग खाँ का जीवन चरित्र है। इसकी तिथियां प्राय: अशुद्ध हैं ।

6. खुबख्त मल—खालसा नामा—दीवान बख्तमल—1807—पं० प० ला० की पाँडुलिपि, रियू०, 1, 294 सिखों का यह एक सविस्तार इतिहास है। यह बहुत उपयोगी है। सर जान मालकाम ने अपने 'स्कैच ऑफ दी सिख्स' का संकलन करते समय इसका भी उपयोग किया था ।

7. खुशवक्त राय—किताब-ए-तारीख-ए-पंजाब, लेखक—खुशवक्त राय—1812—पं० प० ला० पाँडुलिपि, रियू०, 1, 294 । इसका लेखक ब्रिटिश सरकार का अमृतसर में रहने वाला कारिंदा तथा गुप्तचर था । उसने अपनी यह बहुमूल्य कृति सर चार्ल्स मैटकॉफ की इच्छा से संकलित की थी ।

इसमें सन् 1811 तक का वर्णन दिया गया है। सिख सरदारों के प्रारंभिक इतिहास की दृष्टि से यह बहुत विस्तृत तथा उपयोगी भी है। प्रिंसेप ने अपने "ओरिजिन ऑफ दी सिख पावर इन दी पंजाब" तथा मरी ने अपने "मैमोयर्स ऑफ कैप्टन मरी" ग्रंथों के लिए इसका खुलकर उपयोग किया है।

8. सोहनलाल—उमदात-उत-तवारीख, लेखक—सोहनलाल सूरी—1812—सन् 1885 में आर्य प्रेस लाहौर द्वारा प्रकाशित। इसका लेखक महाराजा रणजीत सिंह का दरबारी इतिहासलेखक था। इसके द्वारा दिए गए प्रारंभिक विवरण उसके पिता व गणपत राय द्वारा रखे गए अभिलेखों पर आधारित हैं। गणपत राय ने रणजीत सिंह के पिता तथा दादा की सेवा की थी। इस बात की भी संभावना है कि सोहनलाल ने बख्तमल के 'खालसा नामा' का खुलकर उपयोग किया हो। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि सोहनलाल के भाग 1 का परिशिष्ट, अहमद शाह के तारीख-ए-पंजाब पृ० 901 से 1014 की बिल्कुल सही प्रतिलिपि है। देखें संख्या—11 (नीचे) का भाग।

9. इबरत मिक़ल—लेखक, अब्दुल करीम काश्मीरी—1816—पं० पा० ला० की पाँडुलिपि। यह शाह आलम का इतिहास है परंतु सिखों के बारे में भी इसमें उपयोगी सामग्री दी गई है।

10. इर्शाद-उल्-मुस्तकिम—अमन-उल्-हक—1818—पं० प० ला० की पाँडुलिपि। यह शाह आलम, हैदराबाद के निज़ामों का एक सामान्य इतिहास है, परंतु इसमें पंजाब के बारे में भी बहुत सी उपयोगी बातें सविस्तार दी गई हैं।

11. अहमद शाह—तारीख-ए-पंजाब, लेखक— बटाला का अहमद शाह—1820—दयाल सिंह लाइब्रेरी, लाहौर की पाँडुलिपि, यह पंजाब का एक सविस्तार इतिहास है। इसमें अत्यधिक उपयोगी तथा विशेष रूप से कन्हैया तथा रामगढ़िया मिसलों के बारे में बहुत ही उपयोगी बातें मिलती हैं। पृ० 901 से 1014 तक के लिए देखें ऊपर उद्धृत संख्या 8।

12. तारीख-ए-सलातीन-ए-अफ़ग़ानान—अहमद यादगार—1835—पं० प० ला० की पांडुलिपि, ई० डा० v, संख्या xxxiv में इस ग्रंथ का विभिन्न वर्णन दिया गया है इस बृहदाकार ग्रंथ में भारत में रह रहे अफ़गान कुटुंबों का वर्णन दिया गया है। उसके साथ ही इसमें नादिर शाह तथा अहमदशाह के हमलों का भी अच्छा-खासा वर्णन है।

13. रतनचंद—खालिस नामा, लेखक—रतन चंद—1843—पं० यू० ला० की पाँडुलिपि, इसका लेखक अटारी के सुप्रसिद्ध सरदारों का मुंशी था। यह सिखों का एक इतिहास है।

14. तारीख-ए-अहमद उर्फ मुहब्बत-ए-सलातीन-ए-दुर्रानी—अब्दुल करीम उल्वी—1847 —1849 में मुस्तफ़ाई प्रेस, कानपुर में

प्रकाशित। इसका लेखक लुधियाना में ब्रिटिश सरकार का एक नौकर था तथा उसे राजनयिक मिशन पर खुरासान भेजा गया था। इस पुस्तक में अब्दाली के साथ सिखों के युद्ध का अच्छा-खासा वर्णन दिया गया है।

15. बूटे शाह—तारीख-ए-पंजाब, लेखक—गुलाम-मुहि-मुद्-दीन ऊर्फ बूटे शाह—1848—पं० यू० ला० की पाँडुलिपि, रियू० iii, 953, ऐथे, i, 503 इसका लेखक ब्रिटिश सरकार का एक सेवक था। उसने इस वृहदाकार ग्रंथ की रचना कर्नल ओक्टर लोनी की इच्छा से की थी। कर्नल ने विभिन्न सिख सरदारों से एकत्रित की हुई सामग्री भी उसे प्रदान की थी। इसके छः भाग हैं। प्रथम में स्थल रूप रेखा का वर्णन है तथा पाँचवें में अठारहवीं सदी के सिख सरदारों का इतिहास दिया गया है। यह दोनों बहुत उपयोगी हैं।

16. गणेश दास—रिसाला-ए-साहिब नुमा उर्फ बाघ-ए-पंजाब, लेखक—गणेश दास—1849—खालसा कालेज, अमृतसर के पास पाँडुलिपि, रियू०, iii, 952, इसका लेखक पंजाब के गुजरात ज़िले में कानूनगो के एक सुप्रसिद्ध परिवार का सदस्य था। यह पुस्तक सन् 1849 तक के पंजाब का इतिहास है। इस पुस्तक में स्थल रूपरेखा का सविस्तार वर्णन दिया गया है। सिखों के बारे में भी इसमें उपयोगी सामग्री है।

17. अली-उद्-दीन—इबरत नामा—लाहौर का मुफ्ती अली-उद्-दीन—1854—ई० आ० ला० पाँडुलिपि संख्या 3241 (ई० 504), पं० यू० ला० में हस्तलिखित पुस्तक का रोटोग्राफ़। इसका लेखक ब्रिटिश सरकार की सेवा में था। इस पुस्तक में सिखों के मूल से लेकर सन् 1849 तक के सविस्तार वर्णन के साथ-साथ पंजाब के भूगोल, सांख्यकीय तथा ऐतिहासिक बातों का वर्णन भी दिया गया है।

18. शाह यूसुफ—हालत-ए-मुल्तान, लेखक—शाह यूसुफ—1861 पं० प० ला० के पास पाँडुलिपि। लेखक ने मुल्तान डिवीज़न के कमिश्नर कर्नल जार्ज विलियम हैमिल्टन की इच्छा से इस ग्रंथ का संकलन किया था। यह व्यक्ति मुल्तान का रहने वाला था। इस पुस्तक में प्रारंभ से लेकर इसके पूर्ण होने के समय तक के मुल्तान प्रांत का इतिहास है।

19. तारीख-ए-झंगसियाल—लेखक, मौलवी नूर मुहम्मद, 1865, सन् 1865 में अहमदी प्रेस, मेरठ में प्रकाशित, रियू०, 1, 295। यह झंग ज़िले का संक्षिप्त इतिहास है। इस ज़िले की सिखों द्वारा विजय तथा आधिपत्य का इसमें सुंदर चित्रण किया गया है।

उर्दू

1. तुलसी राम—तारीख-ए-ईज़ला-ए-अनरू-ए-सतलज-तुलसी राम, 1856।

2. गोशा-ए-पंजाब, राधा किशन, 1861।

3. हयात-ए-अफ़गानी, मुहम्मद हयात खाँ, 1865।

4. तारीख-ए-सिखाँ, सरूप लाल उर्फ गोविंद सरन कानूनगो, 1865, पं० प० ला० पाँडुलिपि।

5. दस्तूर-उल्-अमल मुल्क-ए-महफ़ूज़, सरूप लाल, 1865, पं० प० ला० पाँडुलिपि।

6. तारीख-ए-सिद्धू, अत्तर सिंह, भदौर राज्य का मुखिया, 1867, पं० प० ला० के पास पाँडुलिपि।

7. तारीख-ए-मखजान-ए-पंजाब, लेखक लाहौर का मुफ्ती गुलाम सरदार कुरेशी, 1868।

8. सैर-ए-पंजाब, किताब-ए-सैर-ए-पंजाब, भाग 1, लेखक सुल्तान-पुर छकलान का काले राय, ई० ए० सी० जिला अंबाला, भाग 2, लेखक काले राय का भाई तुलसी राम (देखें, ऊपर संख्या 1)।

9. सौलत-ए-अफ़गानी, हाज़ी मुहम्मद ज़रदार खाँ।

10. तारीख-ए-पटियाला, लेखक, उस राज्य का प्रधान मंत्री खलीफ़ा सैयद मुहम्मद हसन।

11. शमशीर खालसा, लेखक ज्ञान सिंह ज्ञानी, 1878।

12. राज खालसा, 2 भाग—ज्ञान सिंह ज्ञानी, 1878।

13. तारीख-ए-लाहौर, लेखक कन्हैयालाल, 1884।

14. तारीख-ए-पंजाब, लेखक कन्हैयालाल।

गुरुमुखी

1. रतन सिंह, प्राचीन पंथ परकाश—लेखक रतन सिंह, 1830 के लगभग—सन् 1914 में वज़ीर-ए-हिंद प्रेस अमृतसर में मुद्रित। इसका लेखक अमृतसर के मस्सा रंगढ़ का प्रसिद्ध कातिल महताब सिंह का पौत्र था। उसकी माता करोड़ा सिंघिया मिसल के सरदार शाम सिंह की एक पुत्री थी। उसके पिता राम सिंह ने अपने ससुर के साथ कई लूटमार के अभियानों में उसका साथ दिया था। अपने पिता के विवरण पर आधारित रतन सिंह की पुस्तक एक अति उच्चकोटि का ग्रंथ है। जब बूटे शाह पंजाब का इतिहास लिख रहा था, रतन सिंह कप्तान मरी के पास इस प्रस्ताव के साथ पहुँचा कि सिखों का इतिहास एक सिख द्वारा ही लिखा जाना चाहिए। इस बात को कप्तान मान गया। फलस्वरूप रतन सिंह ने पंथ परकाश का संकलन किया। जैसे जैसे वह इसे पूरा करता जाता था वह खंडश: उसे मरी को सुनाता भी जाता था। यह मुख्य रूप से लेखक के परिवार का इतिहास है,

परंतु अठारहवीं सदी के सिख इतिहास की प्रत्येक महत्वपूर्ण घटना का उसने अपने पारिवारिक उपाख्यान के चारों ओर तानाबाना बुन लिया है। तिथियों के संबंध में रतन सिंह बहुत सही है तथा उसके द्वारा किया गया सिखों का वर्णन बहुत महत्वपूर्ण है। सिखों के इतिहास को एक सिख द्वारा संकलित करने का यह प्रथम प्रयास है। मुसलमान तथा सिख दृष्टिकोण से तुलना करने की बात को ध्यान में रखा जाए तो एक सिख इतिहास लेखक द्वारा लिखे गए इस ग्रंथ का सर्वोपरि महत्व है।

2. ज्ञान सिंह, पंथ परकाश, लेखक ज्ञानी ज्ञान सिंह—पहले पहल सन् 1880 में मुर्तज़वी प्रेस, दिल्ली में मुद्रित। बाद वाले संस्करण को उद्धृत किया गया है। पंजाबी पद्य में लिखा गया यह विशाल ग्रंथ सिखों का एक संपूर्ण इतिहास है। इसमें छोटी से छोटी बातें भी सविस्तार वर्णित हैं। इसकी सामग्री बूटे शाह, रतन सिंह तथा पारंपरिक विवरणों पर आधारित हैं। लेखक ने स्वतः संपूर्ण प्रांत की यात्रा करके तथा वृद्ध लोगों से पूछताछ करके इसे एकत्रित किया था।

3. इतिहास-ए-रामगढ़ियां, भाग 1, लेखक सूरत सिंह तथा दरबारा सिंह। सन् 1915 में एम्पायर प्रेस लाहौर, द्वारा मुद्रित। यह पुस्तक रामगढ़िया मिसल के सरदार जस्सा सिंह रामगढ़िया के बारे में उपयोगी जानकारी देती है।

4. करम सिंह, महाराजा आला सिंह, लेखक करम सिंह—1918 चीफ़ खालसा दीवान अमृतसर द्वारा प्रकाशित। लेखक इतिहास का एक प्रसिद्ध विद्वान तथा योग्य आलोचक था। नूर मुहम्मद के जंग नामा को प्रकाश में लाने का श्रेय उसी को है। यह पुस्तक मूल स्रोतों पर आधारित है तथा बहुत उपयोगी है।

5. वड्डा खालसा सिद्क—लेखक, संत सूरज सिंह ज्ञानी, अमृतसर के भाई आत्मा सिंह तथा करतार सिंह द्वारा प्रकाशित। प्रकाशन वर्ष नहीं दिया गया है। ऐसा लगता है कि यह एक नवीन प्रकाशन ही है। यह सिखों द्वारा अठारहवीं शताब्दी में स्वतंत्रता के लिए लड़ी जाने वाली लड़ाई के बारे में उपयोगी सामग्री देता है।

अँग्रेज़ी

अँग्रेज़ी स्रोत जहाँ तक वे समकालीन प्राच्य विद्वानों द्वारा लिखी गई पुस्तकों के अनुवाद नहीं हैं, वे सन् 1767 तक के काल के केवल मात्र व्युत्पन्न ग्रंथ ही हैं। उनके नाम इस पुस्तक की पादटिप्पणियों में मिल जाएँगे। स्थान बचाने के लिए उन्हें यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

पारिभाषिक शब्द-सूची

(हिंदी--अँग्रेज़ी)

अकर्मण्य	indolent
अक्षु-साक्षी	eye-witness
अखंडा	tares
अखबार नवीस	Chronicler
अज्ञात नाम	anonymous
अत्याचार	tyranny
अधिकार क्षेत्र	possessions
अधिपति	liege-lord
अधीन	subjugation
अनुचर	follower
अनुदान	grants
अपरिष्कृत पद्धति	crude system
अपरिष्कृत परिहास	coarse-raillery
अपवित्र करना	(to) defile, desecration
अभिग्रहण	acquisition
अभिजात वर्ग	aristocracy
अभियान	expedition
अभिलेख	record
अभिशाप	menace
अभ्यस्त	inured
अलंघनीय	impregneable
अलौकिक	sublime
अवलोकन	observation
आक्रांता	invader
आगज़नी	arson
आचार-व्यवहार	manners
आडंबर विहीन	unsofisticated
आत्म-समर्पण	capitulate, succumb
अभित्रस्त (करना)	(to) intimidate

आरक्षित सेना	reserve force
आक्रमण	aggression, attack
आसक्ति	attachment
आसन्न	impending
आसूचना	intelligence
इतिवृत्त	annal
उठाऊँ सिंचाई	lift method (of irrigation)
उद्धृत	quoted
उत्कृष्ट	noble
उत्तराधिकारी	successor
उत्पीड़न	persecution
उद्दंड	refractory
उपचार	antidote
उलझाना	detain
उल्टा पार्श्व	reverse (of a coin)
कत्लेआम	massacre
कपट चाल	feint
कर	tribute
कराहना	groan
कलगी	crest
कवच	armour
कवायद	drill
कातिल	slayer
काफ़िला	convoy
कारिंदा	agent
किला, दुर्ग	fort
किलेबंदी	fortification
कुमुक	reinforcement
कुबेर का खज़ाना	eddorado
कुलीन तंत्र	aristocracy
कुशासन	misrule
कूच	march
कृपाण	sabre
क्रांति	revolution

खंबनी	festal Ribbon
खदेड़ना	route
खिलअत	robe of honour
खुदाई करना	excavate
खोजा	eunuch
गर्जिका	blunder busse
गढ़	stronghold
गतिशील दल	moving column
गरिमा सम्पन्न	dignified
गारद, गेरिज़न	garrison
गुप्तचर	scout
गुमनाम	anonymous
गुमाश्ता	factotum
गुरिल्ला युद्ध	guerilla warfare
गृह-युद्ध	civil war
गैर-लड़ाकू	non-combatants
गौण स्रोत	secondary source
गौरवमय रूप	dignified appearance
गौरवहीन	inglorious
घटना	event
घबराहट	consternation
घल्लू घारा	carnage
घाट	ford
घाघरा सरकार	petticoat government
घात लगा कर लड़ना	ambush
घुड़सवार दस्ता	cavalry
घुमक्कड़ नट	strolling acrobats
घृणित	exerable, perfidious
घेरा	sieze
चंदावल (चंडावल)	rear
चकमा	slip
चढ़ाई	invasion
चतुर चाल	stratagem
चतुराई	shrewdness

चरित्र	character
चरित्रहीनता	profligacy
चाकर	page
चाटुकार	sycophants
छापामार लड़ाई	guerilla warfare
छिप कर गोली चलाना	snipisy
छुड़ाई (धन लेकर)	ransom
छुट-पुट लड़ाई	skirmishes
छेड़-छाड़	molest
जत्था	band
जनरल	general
जबर्दस्ती भरती करना	conscript
ज़ब्त करना	confiscate
जल-लग्नता	water-logging
ज़ोर शोर से हमला	(to) charge vigorously
टकराव स्थल	point of impact
टोह लेना	reconnoitre
ढील	relaxation
ढेंकली	rope and bucket
तंग	harass
तंत्र	machinery
तटस्थता	neutrality
ताना शाह	dictator
तीव्र प्रगति	swelling
तुर्क सिपहसालार	turki general
तूफ़ानी बवंडर	whirlwind incursion
तेजस्वी चेहरा	thorough-bred-look
तैथिक क्रम	chronological
तोड़ सिंचाई	flow method (of irrigation)
तोपखाना	artillery
थैलियाँ	pouches
दंडात्मक	punitive
दल	group
दरांती	scymetar

दर्रा	pass
दस्ता	detachment
दस्तावेज़	document
दस्यु	marauder
दाय	heritage
दिव्य संदेश	apastle
दूर-दर्शी	far-sighter
दैवी-अधिकार	divine right
दुर्व्यवहार	mal-treatment
द्वंद्वयुद्ध	hand to hand fight, duel
धर्म निरपेक्ष	secular
धर्मोन्मत्त व्यक्ति	zealot
धार्मिक कट्टरता	bigotry
धावा	incursion, assault, raid
धोखा धड़ी	fraud
नक्कारा	drum
नरसंहार	bloody carnage
नायब	deputy
निकाय	body
निगरानी	surveillance
निर्णय	judgement
निम्न	inferior
नियमित इतिहास	regular history
निरंकुशता	despotism
निर्वासन	exile
निष्कर्ष	conclusion
निष्ठा	allegiance
नृशंसता	atrocity
नेज़ा	lance
न्यायाधिकरण	tribunal
पलायन	desertion
पराजय	defeat
परिवेदना	grievance
पाँडुलिपि	manuscript

पारंपरिक विवरण	traditional account
पारपत्र	passport
पारिवारिक उपाख्यान	family anedote
पारिस्थितिक वर्णन	circumstantial narrative
पारिस्थितिक साक्ष्य	circumstantial evidence
पार्श्व	flank
पीछा करना	pursue
पीछे हटना	retreat
पुनःस्थापन	restoration
पुनरुत्थान	revive
पूर्णाधिकारी	plenipotentiary
पेशकश	offer
प्रज्ञावान जाति	intellectual race
प्रतिरोध	resistance
प्रतिष्ठित व्यक्ति	grandees
प्रधान सेनापति	commander-in-chief
प्रभाग	division
प्रभुसत्ता	sovereignty
प्रलोभन देकर वश में करना	decoy
प्राच्य	oriental
बंदीगृह	confinement
बगली दस्ते	flanks
बलवर्धन	reinforcement
बाधा	impediment
बारूद भरने की सिंगी	priming horns
बालक शासन	baby rule
बीजाश्व	stallions
बुरा बर्ताव	maltreatment
बेरोक टोक	unmolested
भंजन	break
भक्त	votary
भगदड़	stampede
भयंकर संघर्ष	severe scuffle
भयानक हमला	terrible visitations

भरती	recruitment, enlistment
भविष्य वाणी	prophecy
भारी तोपखाना	heavy artillery
भीरुता	timidity
मंडप	pavilion
मछली-चिह्न	fish-emblem
मनोवृत्ति	disposition
मशालें	burning wicks
महान	grand
महामहिम	your majesty
महामहिम (राज माता)	her-majesty
मांसल	muscular
मालगुज़ारी	revenue
मिलन-स्थान	rendezvous
मिसल	confederacy (Misl)
मीनार	tower
मुकाबला	resistance
मुक्तिदाता	emancipator
मुखिया	headman
मुख्तार	plenipotentiary
मूल/मौलिक स्रोत	original source
यातायात	traffic
युद्ध-नीति	strategy
युद्ध-पद्धति	mode of war
युद्ध परिषद्	council of war
युद्ध पिपासा	lust of war
युद्ध-प्रणाली	method of warfare
युद्धप्रिय	warlike
रचना काल	date of composition
रत्न जड़ित	aigrette
रसद	supplies
रहट	persian-wheel
राजतंत्र	monarchy
राजनय	diplomacy

राजनयज्ञ	diplomat
राजनयिक मिशन	diplomatic mission
राजमर्मज्ञता	statesmanship
राजस्व	revenue
राज्य क्षेत्र	territory
राष्ट्र-मंडल	commonwealth
राज्य-संघ	confederacy
रिसाला	cavalry
लंगर	free kitchen
लक्षण	trait
लचीला	wiry
लज्जाजनक	inglorious
लड़ाई	fight
लांछन	stigma
लालच देना	seduce
लुटेरा	freebooter
लूट का माल	booty
लूट-खसोट	ravages, rapine
लूट-मार	depredation
वंश	dynasty
विकट परिस्थिति	predicament
विजयी	triumphant
विद्रोह	insurrection, relation, tumult
विवरण	report
विशेषाधिकार	privilege
विश्वसनीय	trustworthy
विश्वासघात	treachery
विश्वास पात्र	confident
वीरगति	martyrdom
वीर गाथा	ballad
व्युत्पन्न ग्रंथ	derivative works
शकुन	augury
शब्द संक्षेप	abbreviation
शरण	refuge

शरण स्थान	shelter
शहीद	martyr
शांति तथा व्यवस्था	peace and order
शारीरिक गठन	physique
शालीनता	modesty
शाहीदल	imperialists
शाही फरमान	royal rescript
शाही मीर बख्शी	imperial paymaster general
शिकार होना	victim
शिकारगाह	hunting ground
शुगुल	avocation
संकलन करना	compile
संक्षिप्त दैनिकी	skeleton diary
संघर्ष	struggle
संदर्भ ग्रंथ सूची	bibliography
संपदा	estate
संरक्षित राज	protectorate
संवर्धन	breeding
संस्थापक	founder
सक्रिय	vigorous
सजग	agile
समकालीन	contemporary
समूह	solidarity
सरदार	chief
सरोवर (अमृतसर का)	tank of nector
सवार	mounted
सर्वोपरिता	supremacy
सहधर्मी	co-religionist
सहयोगी	associate
सहायता	succour
साज-सामान	equipment, accoustrement
साझेदार	partner
सामग्री	material
सामंती सरकार	feudal government

सिक्का	coin
सीधा पार्श्व	obverse (of a coin)
सिपहसालार	general
सूवाह्य तोपखाना	light artillery
सूबेदार (मुस्लिम समय के)	viceroy
सेनापति	general
सैनिक हाव-भाव	martial-bearing
स्रोत	source
स्थल रूप रेखीय	topographical
स्वभाव	disposition
हथियाना	usurp
हरावल	vanguard
हार	defeat
हौसला	spirit

M6CHDte/64—1-12-66—GIPF

Price : Inland Rs. 5.00.
Foreign 11 sh. 8 d. or 1 $ 80 cents.